हमारा हिन्दी साहित्य

और

भाषा परिवार

पंडित भवानीशंकर शर्मा त्रिवेदी

प्राप्ति स्थान

रूप कमल प्रकाशन

दिल्ली

प्रकाशक
मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास
दिल्ली

लेखक · भवानी शंकर त्रिवेदी

मूल्य : बारह रुपये

मुद्रक
नैशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

भीष्माष्टमी सं० २००६—२६ जनवरी सन् १६५० को

सम्पूर्णप्रभुत्वसम्पन्न

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भारतीय गणराज्य

की स्थापना के शुभावसर पर

प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय पिता

श्री पूज्य पण्डित कालूराम जी शर्मा त्रिवेदी

की पावन स्मृति में राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्यिक मनस्विवर्गों

तथा उन्नायक छात्रवृन्द के कर-कमलों में सादर

एवं सस्नेह समर्पित ।

—भवानीशंकर त्रिवेदी

आत्म-निवेदन

भारतीय स्वातन्त्र्य के अरुणोदय के साथ राष्ट्रभाषा के साहित्य-सरोज का सुषमासम्पन्न होना स्वाभाविक है। वैधानिक रूप मे हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो जाने पर विश्व-विद्यालयो मे हिन्दी-साहित्य के अध्ययन को अनिवार्य रूप दिया जा रहा है। इधर दस-बारह वर्षों मे साहित्य ने एक नवीन महत्त्वपूर्ण क्रांति-युग की प्रतिष्ठा भी हो चुकी है। प्राचीन साहित्यिक शोध-सम्बन्धी अनेक नवीन मान्यताए समादृत हो रही हैं। इस प्रकार साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे—प्राचीन साहित्य का अन्वेषण, समालोचना, कविता, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि सभी विधाए प्रतिक्षण प्रगति-पथ पर है। समाज और राष्ट्र ने सहसा करवट बदल ली है। लगभग एक हजार वर्ष तक विविध विदेशी जातिया के अधीन रहने के पश्चात् हमने सार्वभौम स्वातन्त्र्य प्राप्त कर लिया है, इस प्रकार इस एक युग—बारह वर्ष—की सक्षिप्त-सी अवधि मे भारत ने प्रत्येक दिशा मे आशातीत अकल्पित प्रगति और उन्नति की है। राष्ट्र के राजनैतिक इतिहास की विचार-सरणी का भी ऐसी अवस्था मे अभिनव प्रशस्त पथ की ओर अग्रसर होना स्वाभाविक है। उक्त परिवर्तन के प्रभाव से ऐतिहासिक चिन्तन-धारा सैकडो वर्षो के पश्चात् परिवर्तित परिस्थितियो की प्रबल पर्वत-पक्ति से प्रताडित होकर परतन्त्रता के पथ का परित्याग कर स्वतन्त्र सरणी का अनुसरण कर रही है। आज से बारह वर्ष पूर्व की ऐतिहासिक विचारधारा मे और आज की विचारधारा मे आकाशपाताल का अन्तर पड गया है। आज इतिहास अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक मौलिक अथच स्वाभाविक रूप ग्रहण कर रहा है। छात्रोपयोगी ऐतिहासिक पाठ्यपुस्तको मे तो यह परिवर्तन अत्यन्त स्पष्ट रूप मे हुआ है। सन् १९३८ मे लिखित इतिहास की कोई भी पुस्तक आज के छात्र के लिये सैकडो वर्ष पुरानी इतिहास की एक अग्राह्य पुस्तक का रूप ग्रहण कर बैठी है—इतिहास सम्बन्धी पुरानी पुस्तके आधुनिक छात्र के लिए सर्वांगपूर्ण नवोन्मिषित ज्ञान प्रदान करने मे सर्वथा असमर्थ है। आज किसी भी स्कूल या कालिज मे १०-१५ वर्ष पहले का लिखा हुआ इतिहास पाठ्य पुस्तक के रूप मे स्वीकृत नही हो सकता।

इधर जब हम साहित्य को समाज की विचारधारा का पुस्तकाकार मे सचित

प्रतिबिम्ब मानते है तो हमे यह भी स्वीकार करना होगा कि सामाजिक या राजनैतिक इतिहास के साथ ही साथ साहित्य का इतिहास भी उसी अनुपात मे परिवर्तित होता रहे—नित्य नवीन रूप मे लिखा जाता रहे। अत जिस प्रकार राजनैतिक इतिहास की पुरानी पुस्तको के स्थान पर नव-निर्मित रचनाए पाठ्य-क्रम मे प्रतिष्ठित हो रही है, वैसे ही साहित्य के इतिहास भी अभिनव-रूप मे लिखे-लिखाए तथा पढे-पढाये जाने चाहिए। प्राचीन प्रामाणिक इतिहासो की तो सदा स्थायी महत्ता और उपयोगिता रहेगी ही—जिज्ञासु जन उनसे लाभ उठाते ही रहेगे। विज्ञविवेचक विद्वानो का कार्य तो पुराण—जो पहले नये थे—इतिहास के आधार पर ही चलेगा, पर छात्रो के लिए तो ऐसे नूतन इतिहास-ग्रथो की आवश्यकता सदा सर्वमान्य रहेगी जिनमे उस समय तक की विचारधाराओ व घटनाओ का सकलन कर दिया गया हो।

इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही प्रस्तुत इतिहास का उपक्रम हुआ है। इतिहास कोई कल्पना या कोरी मस्तिष्क की उपज तो हो नही सकता, फलत वह कदापि सर्वाशत मौलिक भी नही हो सकता, हा उसमे मौलिकता का तारतम्य अवश्य रहता है। इतिहास लिखते समय यह बात मेरे ध्यानमे रही है कि किसी काल-विशेष या सम्पूर्ण कालो के बृहद् अन्वेषणात्मक इतिहास की बात को छोडकर पाठ्यक्रम की दृष्टि से प्रस्तुत किसी छात्रोपयोगी नूतन इतिहास मे निम्न विशेषताएँ रहनी चाहिएँ —

१. सामान्यतया पूर्व-युगो का सम्पूर्ण वृत्त व परिचय आदि प्राचीन ऐतिहासिको द्वारा प्रमाणित हो।

२ प्राचीन काल की किन्ही घटनाओ के सम्बन्ध मे कुछ नवीन खोज हुई हो तो उसका समावेश उसमे रहे।

३ विवादास्पद विषयो का अधिक-से-अधिक तर्कसगत और प्रामाणिक विवेचन करने का प्रयत्न किया जाय।

४. इतिहास के प्रकाशन-काल तक की सब नवीन व प्रवृत्तियो व प्रगतियो का उस मे वर्णन रहे।

५ विचारधारा चिन्तन-पद्धति या समालोचना प्रणाली मे मौलिकता हो।

६ जटिल से जटिल और गम्भीर विषय को भी सरल,सुबोध और स्वाभाविक भाषा मे अभिव्यक्त किया जाय।

७ प्रत्येक साहित्यिक या उसके साहित्य-सेवा-सम्बन्धी कार्य का विवेचन सर्वथा निष्पक्ष, तटस्थ द्रष्टा के रूप मे हो।

८. व्यक्तियो या लेखको की सख्या या नामो की अपेक्षा माहित्यिक परि-स्थितियो के विवेचन को प्रमुखता देते हुए यथासम्भव अधिक-से-अधिक साहित्य-मेवियो के स्मरण से पुस्तक की सार्थकता बढा दी जाय।

९. पुस्तक को छात्रोपयोगी व सहज बोधगम्य बनाने के उद्देश्य मे विषय को वैज्ञानिक, स्वाभाविक भागो मे विभक्त कर दिया जाय।

१०. प्रमुख व प्रतिनिधि-कवियो तथा सामयिक परिस्थितियो आदि का साविस्तर स्पष्ट विवेचन किया जाय।

मैं प्रस्तुत पुस्तक को लिखते समय सदा अपनी उक्त मान्यताओ को क्रियात्मक रूप देने का प्रयत्न करता रहा हू। इसके लिए १६ वर्ष के अध्यापनकार्य से जो कुछ ज्ञान और अनुभव मुझे हुआ था उस सब का तो मैंने पूर्ण उपयोग किया ही है, साथ ही १ वर्ष तक निरन्तर अन्य सब कार्यो को सम्पूर्णरूपेण तिलाजलि देकर केवल इसी एक पुस्तक को प्रस्तुत करने, सजाने, सवारने तथा तैयार कराने मे सलग्न रहा हू। इतनी निष्ठा, साधना व तपस्या के पश्चात् सम्पन्न इस सरस्वती की उपासना से छात्रवृन्द को अवश्य यथेष्ठ लाभ होगा और विज्ञ विवेचक-वृन्द इसे अपनाकर मुझे प्रोत्साहित करेगे, इस आत्मविश्वास के साथ अपनी यह तुच्छ भेंट साहित्यिक ससार को समर्पित करते हुए मेरा अन्ततंम अपार प्रसन्नता से पुलकित हो रहा है।

साहित्य के इतिहास-जैसे गम्भीर विषय को समझने मे छात्रो को इस पुस्तक से यत्किंचित् भी सहायता प्राप्त हुई तो मैं अपने श्रम को सफल समझूगा। मैं अपने उद्देश्य मे कहा तक सफल हुआ हू, इसके निर्णायक तो पाठक ही है।

इस आत्म-निवेदन की समाप्ति से पूर्व अपने सम-सामयिक सहयोगी साहित्यिको से विशेष रूप से निवेदन करना चाहता हू कि समयाभाव, साधनाभाव, पुस्तकाभाव और सबसे बढकर ज्ञान तथा स्मरणाभाव एव परिमित पाच सौ पृष्ठो में पुस्तक को समाप्त करने का उद्देश्य होने से स्थानाभाव आदि अनेक अभावो की परम्परा के उपस्थित हो जाने के कारण अनेक साहित्य-सेवियो या उनकी सभी रचनाओ का नामोल्लेख मै चाहता हुआ भी इस सस्करण मे नही कर पाया। बात तो यह है कि आधुनिक हिन्दी का काव्य-कानन अत्यधिक विस्तृत रूप धारण कर चुका है, उसमे नित्य-नवीन असख्य साहित्य-सुमन विकसित हो रहे है, मेरे-जैसे असमर्थ व्यक्ति के लिए सर्वथा असम्भव है कि वह अपने इतिहास-स्तवक (गुलदस्ते) में उन सब साहित्यिक सुमनो को सकलित कर सके। यह स्वाभाविक है कि अनेक

एकान्त कोनो में, तो कई सर्वथा सम्मुख विकसित काव्य-कुसुम भी इस स्वल्प से स्तबक में स्थान न पा सके हो, इसी प्रकार सभव है अन्य कई त्रुटिया भी इसमें रह गई हो, परन्तु इन अपरिहार्य त्रुटियो के—एकमात्र कारण—परिस्थिति-जन्य अक्षमता की ओर ध्यान देते हुए आशा है मुझे क्षमा किया जायगा। साथ ही यह भी विश्वास दिलाता हू कि मै अपने इतिहास को बधा हुआ सरोवर न बनाकर स्वच्छ प्रवाह के रूप मे प्रस्तुत कर रहा हू। इसके प्रत्येक सस्करण मे नवीन धाराओ का—गतिविधियो का अवश्य समावेश होता रहेगा—अत विज्ञविवेचको से निवेदन है कि इसके द्वितीय सस्करण के सम्बन्ध मे आवश्यक उपयोगी सुझाव देकर कृतार्थ करे, ताकि यह साहित्यिक सेवाकार्य अधिक-से-अधिक उपयोगी एव सर्वांगसुन्दर रूप में सम्पन्न हो सके।

कृतज्ञता-प्रकाश

प्रस्तुत इतिहास के निर्माण मे स्वभावत सैकडो रचनाओ से असीम सहायता ली गई है। हिन्दी-साहित्य के सम्बन्ध मे आज तक प्रकाशित ऐसी शायद ही कोई समालोचनात्मक या ऐतिहासिक कृति हो जिससे मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायता न मिली हो। उन सब रचनाओ तथा उनके लेखको के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हू। जिन प्रमुख आचार्यो के ग्रन्थ मेरी इस रचना के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए है उनके प्रति मैं किन शब्दो मे आभार प्रकट करूं। सर्वप्रथम श्री शिवसिंह सेंगर ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'शिवसिंह सरोज' में तथा फिर मिश्रबन्धुओ ने 'मिश्र-बन्धु-विनोद' मे सहस्रो लेखको व उनकी रचनाओ का परिचय प्रस्तुत किया। श्रीयुत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास द्वारा आगामी सभी साहित्येतिहासो की एक सुनिश्चित वैज्ञानिक समालोचनात्मक विचार-सरणी और समालोचना-पद्धति का पथ-प्रदर्शन किया है। इधर डा० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' मे अन्तरंग तथा बहिरगसाक्ष्य के आधार पर भक्ति-काल तक के कवियों की जीवनियो व रचनाओ की व्यापक समीक्षा कर इतिहासकारो के लिए अज्ञात और अनिश्चित विषयो पर सुन्दर सामग्री प्रस्तुत की। डा० सूर्यकान्त जी ने अपने 'हिन्दी साहित्य के विवेचनात्मक इतिहास' के द्वारा समालोचना मे सरस प्रेरणामयी चेतना का सचार किया। इस प्रकार इन प्रमुख हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक इतिहास-लेखको ने अपने-अपने ढंग से वास्तव में स्मरणीय अमर कार्य किया है। एक ऐतिहासिक के लिए आवश्यक विचार-स्वातन्त्र्य, मतभेद व

विवेचनात्मक निर्णय को अपने लिए सुरक्षित रखते हुए भी मैंने अपने ढग पर सभी प्राचीन इतिहास ग्रथो से पर्याप्त तथ्य सकलित किये हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का समग्र श्रेय समादरणीय श्रेष्ठिवर श्री ला० खजानचीरामजी जैन (अध्यक्ष फर्म—श्री मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, हिन्दी संस्कृत पुस्तकालय, दिल्ली) को है । इन्ही के प्रबल प्रेरणात्मक प्रोत्साहन एव साहाय्य से प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित होकर पाठको तक पहुँच पाई है। तदर्थ सधन्यवाद प्रभु मे प्रार्थना है कि वह श्री लालाजी को चिरायुष्य प्रदान कर इनकी हिन्दी-सस्कृत-साहित्य सेवा की सुरुचि को उत्तरोत्तर समुन्नत करते रहे ।

इस इतिहास के लेखन-कार्य मे मेरी सहधर्मिणी श्रीमती शकुन्तलादेवी त्रिवेदी ने अधिक सहयोग देकर अर्धांगिनी के कर्तव्य का पूर्णत पालन किया । उक्त सब महानुभावो तथा अन्य समग्र सहयोगियो के हार्दिक धन्यवादपूर्वक साहित्यिक ससार व छात्र-जगत् को अपनी यह सामान्य कृति समर्पित करता हुआ—

जयदेव मन्दिर देहली,
समभाव से जिस पर चढी ।
नृप हेम-मुद्रा और रक वराटिका ॥

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त के उक्त आश्वासन से प्रोत्साहित होकर आशा करता हू कि साहित्य-देवता मुझ रक की इस श्रद्धापूर्वक प्रस्तुत की गई वराटिका को भी सप्रेम अपनाकर कृतार्थ करेगे ।

श्री पचमी
स० २००६

—भवानी शकर त्रिवेदी

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में

परम हर्ष का विषय है कि हिन्दी जगत् ने इस ग्रथ का समुचित समादर कर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया, उच्च कक्षाओ के छात्रो ने तो इसे अपने लिये परमोपयोगी मानकर अपनाया । फलत इसका प्रथम सस्करण एक ही वर्ष में हाथो हाथ निकल गया ।

इस द्वितीय सस्करण में यथास्थान आवश्यक परिवर्तन परिवर्धन सशोधन आदि कर दिए गए हैं । प्रथम सस्करण के पच्चीसवे अध्याय में जिन विशिष्ट साहित्य सेवियो का विवरण था, वह अब यथास्थान दे दिया गया है । आशा है इस रूप में यह ग्रथ और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा ।

शिवरात्री, स० २००८

—लेखक

विषय-सूची

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

प्राचीन युग

संक्रमण-काल

तीसरा अध्याय

वीरगाथा-काल

चौथा अध्याय

(वीरगाथात्मक तथा लोक-साहित्य)

भक्ति-काल

पाँचवा अध्याय

छठा अध्याय

सातवा अध्याय

आठवा अध्याय

नवा अध्याय

दसवां अध्याय

ग्यारहवा अध्याय

रीति-काल

बारहवा अध्याय

तेरहवा अध्याय

चौदहवा अध्याय

आधुनिक युग

राष्ट्रीय चेतनात्मक गद्य-काल

पन्द्रहवा अध्याय

सोलहवां अध्याय

सत्रहवां अध्याय

अठारहवां अध्याय

उन्नीसवां अध्याय

बीसवा अध्याय

गद्य-साहित्य

पच्चीसवा अध्याय

पारिभाषिक शब्द और उनकी व्याख्याएँ

नोट—इतिहास के पढने से पूर्व इस प्रकरण को पढ़िये अन्यथा इतिहास--मर्म को समझना कठिन होगा ।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे अनेक पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए है । यहा पर छात्रों की सुविधा के लिये सूत्र-रूप मे परिभाषाएँ दी जाती है । इनकी विस्तृत व्याख्या यथास्थान देखे ।

१ **डिंगल**—शुद्ध साहित्यिक राजस्थानी भाषा को डिंगल कहते है ।

२ **पिंगल**—व्रजभाषा और व्रजभाषा से प्रभावित राजस्थानी-भाषा को प्राचीन काल मे पिंगल के नाम से पुकारा जाता था ।

३ **व्रजभाषा**—शौरसेनी-अपभ्रंश से उत्पन्न यह भाषा व्रज-मण्डल मे बोली जाती है । सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियो की रचनाएँ इसी भाषा मे ह ।

४ **अवधी**—अयोध्या के आस-पास बोली जाने वाली यह भाषा अर्द्धमागधी प्राकृत से उत्पन्न हुई है । जायसी के पद्मावत मे इसका ठेठ और तुलसीदास-जी के रामचरितमानस मे इसका साहित्यिक रूप है ।

५ **बिहारी या मगही अथवा मैथिली और भोजपुरी**—ये बिहार प्रान्त की भाषाये मागधी प्राकृत से उत्पन्न हुई है । प्रसिद्ध कवि विद्यापति की रचनाएँ इसी भाषा मे है ।

६ **पंजाबी**—पंजाब प्रान्त मे प्रयुक्त यह भाषा पैशाची प्राकृत से उत्पन्न हुई है । गुरुनानक आदि सन्तो की अधिकतर रचनाएँ इसी भाषा मे है ।

७ **खड़ीबोली**—दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली यह भाषा आज प्राय: हिन्दी के नाम से ही प्रसिद्ध है । विधान-परिषद् द्वारा यह भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी है । प्रसाद, पंत, निराला, गुप्तजी, प्रेमचन्द आदि अनेक कलाकार आज इसी भाषा द्वारा अपने विचार व्यक्त कर रहे है ।

८ **सहजिया सम्प्रदाय अथवा वज्रयान शाखा**—यह बौद्ध-धर्म और शैव-धर्म के सम्मिश्रण से उत्पन्न एक सम्प्रदाय है । बिहार, उडीसा आदि पूर्वी प्रान्तो मे इसका बारहवी-तेरहवी शताब्दी तक पर्याप्त प्रचार रहा । आगे चल कर इस सम्प्रदाय ने वाम-मार्ग का व्यभिचारात्मक तान्त्रिक रूप

ग्रहण कर लिया। तिब्बत में प्रचलित आधुनिक बौद्ध धर्म इसी सम्प्रदाय का एक रूप है। किन्तु उसमें व्यभिचारात्मक प्रवृत्तियां नही है। कण्हप्पा आदि इसके चौरासी सिद्ध या साधु हुए है।

९ **गोरखपन्थ या नाथपन्थी योगी**—यह एक शैव साधुओ का सम्प्रदाय है। कानो मे स्फटिक की मुद्रा डाले हुए कनफटे साधु (जोगी) भारत मे सर्वत्र पाये जाते हैं। गोरखनाथ आदि इसके प्रसिद्ध योगी हो चुके है।

१० **जैन सम्प्रदाय**—अहिसा-धर्म को प्रधान मानने वाले इस सम्प्रदाय के आदिनाथ से लेकर महावीर स्वामी तक चौबीस तीर्थकर हो चुके हैं। इनका साहित्य सस्कृत और प्राकृत तथा अपभ्रश मे है। किन्तु प्रमुख रूप से प्राकृत ही को प्रधानता दी गई है। इस सम्प्रदाय के साधु अत्यन्त त्यागी और सयमी प्रसिद्ध है।

११ **निर्गुण सम्प्रदाय**—ईश्वर को निराकार मानने वाले सम्प्रदाय निर्गुण-वादी कहलाते है। ये लोग तीर्थ, व्रत, पूजा, रोज़ा, नमाज़ आदि धार्मिक बाह्य विधि-विधानो को नही मानते और घर ही मे तथा घट ही मे अलख को निरखने का उपदेश देते है। कबीर आदि इसी सम्प्रदाय के सन्त कवि है।

१२ **सगुण सम्प्रदाय**—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, राम, कृष्ण आदि वैदिक और पौराणिक देवताओ को साकार रूप मे भी स्वीकार करने वाले और अवतार को मानने वाले सगुणवादी कहलाते है। राम की उपासना करने वाले राम-भक्त और कृष्ण की उपासना करने वाले कृष्ण-भक्त कहलाते हैं।

१३ **वेदान्त-अद्वैतवाद**—स्वामी शकराचार्य जी ने इस अद्वैतवाद का प्रचार किया कि वास्तव मे आत्मा और परमात्मा एक ही है। सम्पूर्ण विश्व और चराचर मात्र उसी एक अखण्ड सत्ता के परिवर्तित रूप है। उससे भिन्न दूसरी कोई सत्ता नही है। जड और चेतन, साकार-निराकार के ये जो भेद दिखाई देते हैं वे वास्तविक नही है। वे अज्ञानमूलक माया के कारण प्रतीत होते है। अत· वास्तव में भेद-प्रतीति—भ्रममूलक है। यही अद्वैतवाद दार्शनिक दृष्टि से 'विवर्तवाद' भी कहलाता है। दो (आत्मा और परमात्मा) की पृथक् सत्ता न मान कर दोनो को एक ही मानने के कारण इसे 'अद्वैतवाद' कहते है।

१४ **रहस्यवाद**—उक्त अद्वैतवाद जब साहित्यिक रूप मे प्रकट होता है, तो उसे ही रहस्यवाद कहते हैं।

मक्षेप मे कह सकते है कि जब कवि उस अज्ञात-शक्ति या अपन परम प्रियतम के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और उस सम्बन्ध को कविता में प्रकट करता है तो वे कविताएँ रहस्यवादात्मक कविताएँ कहलाती हैं। स्पष्ट है कि रहस्यवादात्मक कविताओ मे प्रदर्शित आत्मा-परमात्मा के सभी प्रकार के सम्बन्ध निर्गुण निराकार के प्रति ही होगे। अत साकारोपासना में रहस्यवाद के लिये कोई स्थान नही। क्योकि जब प्रभु को साकार मान लिया जाता है तो उसमे रहस्य की भावना का समावेश हो ही नही सकता।

१५ **छायावाद**—छायावाद भी रहस्यवाद ही का एक विशेष भेद है। प्रकृति के नाना रूपो मे जब कवि उस अनन्त सत्ता की झलक पाकर उसे अपनी रचना में प्रतिबिम्बित करता है तो वे छायावाद सम्बन्धी कविताएँ कहलाती हैं।

१६ **प्रगतिवाद**—आध्यात्मिक, शृगारिक या प्राकृतिक सौन्दर्य सम्बन्धी, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य या शृगार अथवा छायावाद और रहस्यवाद सम्बन्धी रचनाएँ मानव के भौतिक जीवन के दु ख-द्वन्द्वो को मिटाने का कोई प्रत्यक्ष प्रयत्न नही करती। वे आत्मा को रस-विभोर तो अवश्य कर देती है, पर मनुष्य की विविध जटिल समस्याओ का स्पष्ट समाधान नही कर पाती। प्रगतिवादी रचनाओ मे रूढिवादो और अन्ध-परम्पराओ को तोडकर समाज के नव-निर्माण की भावनाये ही मुख्य रूप से रहती है। दार्शनिक दृष्टि मे जिसे 'साम्यवाद' या 'समाजवाद' कहते है, वही साहित्यिक रूप ग्रहण करने पर 'प्रगतिवाद' कहलाता है।

१७ **गांधीवाद**—गाधीजी के अहिसात्मक सिद्धान्त साहित्य मे गाधीवाद के नाम से व्यवहृत होते है। प्रगतिवादी परिवर्तन मे नही प्रत्युत पुराने को नष्ट-भ्रष्ट कर नव-निर्माण मे विश्वास रखता है। विपरीत इसके गाधीवाद एक वस्तु को सर्वथा नष्ट कर उसके स्थान पर दूसरी वस्तु का निर्माण करने की अपेक्षा हृदय-परिवर्तन मे विश्वास रखता है। यही गाधीवाद और प्रगतिवाद मे मौलिक अन्तर है। यो सामाजिक विषमता को दूर करते हुए दु ख-द्वन्द्वो को मिटा कर मानव-कल्याण करना इन दोनो ही वादो का समान लक्ष्य है।

१८ **यथार्थवाद**—समाज मे जो कुछ जैसा होता है, भले-बुरे प्रत्येक कार्य का साहित्य में वास्तविक चित्र अकित कर देना और किसी आदर्श या उपदेश को उसमें न आने देना ही यथार्थवाद का लक्ष्य है। कला कला के

लिए है न कि आदर्शों का प्रचार करने के लिए। यह सिद्धान्त यथार्थवाद का ही समर्थन करता है ।

१९ **आदर्शवाद**—प्रत्येक रचना में किसी न किसी आदर्श या सिद्धान्त का समावेश आवश्यक रूप मे स्वीकार करने वाला सिद्धान्त आदर्शवाद कहलाता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरजन नही प्रत्युत समाज का निर्माण भी है। और यह तो निश्चित है कि समाज का निर्माण सदा सुसस्कारो से ही होगा।

२० **हालावाद**—कवि अलौकिक प्रेम के मद मे छककर मतवाला हो जाता है, और उसी दिव्य आसव का पान करते-करते अपने आपको भूल बैठता है । ऐसी स्थिति का वर्णन करनेवाली कविताए हालावादी कहलाती है। प्रसिद्ध फ़ारसी कवि 'उमर-खैय्याम' की रुबाइयो के अनुवाद से हिंदी मे हालावाद का प्रारम्भ हुआ है। साकी (प्रेमी, साथी) मय (मद्य-मधु) मयखाना (मधुशाला) जाम (पात्र) आदि पदार्थ भी इसमे आध्यात्मिक रूप मे प्रस्तुत होते है। कवि गहरी निराशा की अनुभूति के पश्चात् ही इस कल्पित मादकता के लोक मे पहुचना चाहता है। बच्चन आदि कुछ-एक हिन्दी-कवि कुछ समय तक इस वाद मे प्रभावित रहे थे। अब इसका प्रभाव समाप्त-सा हो गया है।

२१ **स्वच्छन्दतावाद**—साहित्य की किसी एक बहती हुई धारा के बहाव मे न बहकर पुराने सभी प्रकार के रूढिबन्धनो को तोड देने के सिद्धान्त को स्वच्छन्दतावाद (रोमान्टिसिज्म) कहते है। ऐसे कवि को परिवर्तनवादी या स्वच्छन्दतावादी (रोमान्टिक) कहा जाता है। प्राय प्रत्येक काल मे कोई न कोई रोमान्टिक कवि हुआ है। आधुनिक-काल मे 'निराला' को प्रतिनिधि-स्वच्छन्दतावादी-कवि माना जाता है ।

२२ **कवि और काव्य**—हर्ष, शोक, उत्साह आदि मनोवेगो को तरगित करने वाली रचनाए 'काव्य' कहलाती है। १ दृश्य और २. श्रव्य ये काव्य के दो मुख्य भेद है। नाटक, एकाकी नाटक, गीति-नाट्य आदि दृश्य-काव्य के अन्तर्गत गिने जाते है। गद्य (उपन्यास, कहानी आदि) और पद्य (प्रबन्ध-काव्य, मुक्तक-काव्य और गीति-काव्य आदि) श्रव्य-काव्य है। इन सभी का रचयिता कवि कहलाता है ।

२३ **साहित्य और साहित्य-शास्त्र**—किसी भाषा मे लिखे हुए सभी विषयो के सम्पूर्ण ग्रन्थो को या केवल काव्य को 'साहित्य' कहते है। साहित्य की आलो-

चना, उसके निर्माण के नियम, छन्द, अलकार, रस, गुण, दोष आदि बताने वाले शास्त्र या ग्रन्थ 'साहित्य-शास्त्र' कहलाते हैं। साहित्य-शास्त्र को ही 'काव्याग निरूपक ग्रन्थ' या 'रीति-ग्रन्थ' भी कहते हैं।

२४ **आचार्य**—उक्त रीति-ग्रन्थ या साहित्यशास्त्र के निर्माता तथा भाषा, विषय, शैली, समालोचना आदि के नवीन सिद्धान्त और मार्ग के प्रवर्त्तक अथच परिष्कारक विद्वान् को 'आचार्य' कहते हैं।

२५ **रस**—किसी कवि की रचना को पढ-सुन या देखकर विभाव, अनुभाव, सचारी-भाव के सयोग से स्थायी-भाव के जागृत होने पर सहृदय के हृदय मे जिस अलौकिक आनन्द का सचार होता है, उस आनन्द ही को 'रस' कहते हैं।

२६ **विभाव**—शोक, क्रोध, उत्साह, रति, (प्रेम) स्नेह आदि भावो को जागृत करने वाले साधन (आलम्बन) और उनकी चेष्टाए (उद्दीपन) ये दोनो विभाव हैं। काव्य मे जहा इन्ही का मुख्य रूप से वर्णन होता है उसे 'विभाव' पक्ष का वर्णन कहते हैं।

२७ **भाव-पक्ष या स्थायी-भाव**—रति, हसी, शोक, क्रोध, भय, उत्साह, घृणा, विरक्ति, आश्चर्य और स्नेह ये मनुष्य के हृदय में सदा विद्यमान रहने वाले दस स्थायी भाव हैं। इन्ही के प्रकट होने पर जब आनन्दानुभूति होती है तो इनकी रस सज्ञा हो जाती है। इसलिए रस भी दस माने गये हैं जैसे कि—१ रति—शृगार, २. हसी—हास्य, ३ शोक—करुणा, ४. क्रोध—रौद्र, ५ उत्साह—वीर, ६. भय—भयानक, ७. घृणा—बीभत्स, ८. आश्चर्य—अद्‌भुत, ९ विरक्ति या निर्वेद—शान्त और १० स्नेह—वत्सल। लज्जा, ईर्ष्या, असूया आदि ३३ सचारी भाव हैं। इन्ही स्थायी भाव या सचारी भावो के वर्णन को भाव-पक्ष का वर्णन कहते हैं।

२८ **कलापक्ष**—यमक, अनुप्रास, श्लेष, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो और छन्दो के विधान को काव्य में कलापक्ष की सज्ञा दी गई है।

२९ **नखशिख**—नायक-नायिकाओ के अग-प्रत्यग के सौन्दर्य का वर्णन 'नख-शिख' कहलाता है। पाव के नाखून से लेकर सिर की चोटी तक का वर्णन रहने के कारण ही इसे 'नखशिख' कहते हैं।

३० **नायिकाभेद**—स्वकीया, परकीया, प्रोषित-पतिका, विप्रलब्धा, मुग्धा आदि

नायिकाओ के भेद-उपभेद किये गये है । इनका वर्णन नायिका-भेद का वर्णन कहलाता है ।

३१ **षड्ऋतुवर्णन**—वसन्त आदि छ ऋतुओ के वर्णन को षड्ऋतुवर्णन कहते है ।

३२ **बारहमासा**—वर्ष के १२ मासो का वर्णन बारहमासा कहलाता है ।

३३ **प्रबन्ध-काव्य**—जिस काव्य मे एक सम्बद्ध कथा हो उसे प्रबन्ध-काव्य कहते है । महाकाव्य और खड-काव्य ये इसके दो भेद है ।

३४ **मुक्तक-काव्य**—फुटकर या परस्पर सम्बन्ध रहित स्वतन्त्र कविताओ को मुक्तक कहते है ।

३५ **गीत-काव्य**—गीतबद्ध रचना को गीत-काव्य कहते है । ये भी दो प्रकार के है । एक सूरदास आदि के प्राचीन-पद्धति पर निर्मित गीत और दूसरे आधुनिक छायावादी, रहस्यवादी, कवियो के गीत । इन्हे ही 'लिरिक' काव्य कहा जाता है ।

३६ **साखी**—निर्गुणोपासक कवियो के दोहा छन्द में लिखे गये उपदेशो को साखी कहते है ।

३७ **भ्रमरगीत**—गोपी-उद्धव-सवाद को 'भ्रमरगीत' कहते है ।

३८ **अष्टछाप**—गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने चार अपने तथा चार अपने पिता श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य-कवि, इन आठो को अष्ट-छाप का नाम दिया । सूरदास, नन्ददास आदि ये आठ कवि है ।

३९ **हजारा**—हजार कविताओ का सग्रह 'हजारा' कहलाता है ।

४० **सतसई**—सात सौ कविताओ का सग्रह 'सतसई'—'सप्तशती' कहलाता है ।

४१ **शतक**—सौ कविताओ का सग्रह 'शतक' कहलाता है ।

४२ **बावनी**—बावन कविताओ का सग्रह 'बावनी' है ।

४३ **पच्चीसी**—पच्चीस कविताओ का सग्रह ।

४४ **रासो**—प्राचीन वीर काव्य को प्राय रासो कहा जाता था ।

४५ **सूक्ति**—किसी उपदेशात्मक चमत्कृत रचना को 'सूक्ति' कहते हैं । इसमें रस सचार की अपेक्षा चमत्कारपूर्ण उपदेश की प्रधानता रहती है ।

४६ **पद्य**—कोरी छन्दोबद्ध तुकबन्दी को 'पद्य' कहते है ।

४७ **एकेश्वरवाद**—ईश्वर को एक तथा प्रकृति और आत्मा को उससे भिन्न मानना 'एकेश्वरवाद' कहलाता है ।

४८ **पैगम्बरी खुदावाद**—मुसलमान और ईसाइयो का एकेश्वरवाद पैगम्बर की प्रधानता को स्वीकार करता है। मुहम्मद, ईसा आदि को ईश्वर का दूत और मनुष्यो का उद्धारक माना जाता है, जो मनुष्य इन पैगम्बरो की शरण मे नही जाता है, उसका उद्धार नही हो सकता। इस सिद्धान्त को 'पैगम्बरी खुदावादात्मक एकेश्वरवाद' कहा जाता है।

४९ **पुष्टिमार्ग**—वल्लभाचार्य जी का यह सिद्धान्त कि प्रभु की कृपा से प्राप्त भक्ति के द्वारा विशेष अधिकारी जीवो की ही मुक्ति होती है 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।

५० **सूफ़ी सम्प्रदाय**—प्रेम के द्वारा आत्मा और परमात्मा का मिलन मानने वाला यह सम्प्रदाय 'सूफी-सम्प्रदाय' है। इसका प्रारम्भ फारस मे हुआ। मन्सूर आदि सूफी सन्त 'अनलहक' की रट लगाया करते थे जो वेदान्त में **'अहम् ब्रह्मास्मि'** है।

पहला अध्याय

पूर्व-पीठिका

साहित्य—इस समय 'साहित्य' शब्द निम्न दो अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है :—

१—किसी भाषा में लिखी हुई गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, दर्शन, काव्य आदि विषयो की समग्र पुस्तको को 'साहित्य' कहा जाता है। जब हम कहते हैं कि 'हिंदी-साहित्य' में विज्ञान की पुस्तके यथेष्ट परिमाण मे नही हैं, तो 'साहित्य' से हमारा अभिप्राय हिंदी की अशेष पुस्तको से है। इस प्रकार यह 'साहित्य' शब्द अपने पहले अर्थ मे अग्रेज़ी के 'लिट्रेचर' शब्द के समानार्थक रूप में प्रयुक्त होता है। २—किंतु 'साहित्य' शब्द का प्राचीन शास्त्रीय अर्थ केवल 'काव्य' है। काव्य तथा अन्य सब विषयो के ग्रथो के लिए 'साहित्य' नही प्रत्युत 'वाङमय' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इस ग्रथ में भी 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'काव्य' अर्थ में ही किया गया है। अत प्रस्तुत इतिहास में काव्य के इतिहास पर ही प्रधान रूप से प्रकाश डाला जायगा। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि साहित्य का सरल और सुबोध लक्षण क्या है ? इसके सबध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार कह सकते हैं कि—

'किसी देश की जनता की चित्तवृत्तियो का पुस्तकाकार में सचित प्रतिबिम्ब ही साहित्य है।' अर्थात् प्राय प्रत्येक देश की जनता अपनी तात्कालिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर एक ही प्रकार की विचार-धारा से प्रेरित रहती है। उस देश-विशेष व युग-विशेष के विचार ही जब पुस्तक रूप में सचित हो जाते हैं, तो वे साहित्य का रूप ग्रहण कर लेते हैं। अत सिद्ध होता है कि मनुष्यो की भावनाएँ या विचार-धाराएँ ही पुस्तकाकार में आ जाने पर 'साहित्य' बन जाती हैं।

साहित्य का इतिहास—जैसा कि ऊपर कहा गया है—जनता की चित्त-वृत्तियो का सचित प्रतिबिम्ब ही 'साहित्य' कहलाता है, और ये चित्तवृत्तिया देश की राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक आदि परिस्थितियो के कारण समय-समय पर बदलती रहती हैं। उनमें कभी वीरता की प्रधानता रहती है तो कभी विलासिता की, कभी देशभक्ति की तो कभी भगवद्भक्ति की। ज्यो-ज्यो समाज की विचार-धारा परिवर्तित होती है त्यो-त्यो साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होना भी

स्वाभाविक है। आदि से अन्त तक इन्ही विचार-धाराओ की परम्परा को परखते हुए उनका साहित्य के साथ सामजस्य या मेल दिखलाने वाली रचना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाती है। अत किसी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखते समय उसके साहित्यकारो और उनकी रचनाओ के परिचय व आलोचना आदि के साथ-साथ साहित्य पर तात्कालिक परिस्थितियो के प्रभाव का प्रदर्शन भी परमावश्यक है।

हिंदी भाषा—हिंदी भाषा के साहित्य का इतिहास जानने से पूर्व हिंदी भाषा व उसकी उत्पत्ति और क्रमिक विकास के सबध मे सक्षिप्त ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। अत' सर्वप्रथम यहा इस सबध में कुछ विचार किया जाता है। 'हिंदी भाषा' यह समस्त पद अपने यौगिक अर्थों मे तो सारे हिंद या भारत की सपूर्ण भाषाओं के लिए प्रयुक्त होना चाहिए किंतु वर्तमान समय मे इसका प्रयोग सपूर्ण भारत की भाषाए तो अलग रही, उत्तर-भारत की सब भाषाओ के लिए भी नही किया जाता। यह शब्द अपने व्यापक अर्थ मे जब प्रयुक्त होता है तो इससे (१) पजाबी, (२) खडी बोली, (३) ब्रज, (४) अवधी, (५) बिहारी और (६) राजस्थानी भाषाओं का ग्रहण होता है। आजकल यह 'हिंदी' शब्द खडी बोली के सकुचित अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा है। जैसे जब हम कहते हैं कि 'भारत की राष्ट्र भाषा हिंदी है' तो यहां 'हिंदी' शब्द से अभिप्राय पजाबी आदि उक्त सभी—छहो—भाषाओं से नही, प्रत्युत उनमे से केवल एक 'खडी बोली' से होता है।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति—भारतवर्ष में सर्वप्रथम वैदिक भाषा बोली जाती थी। यह वैदिक भाषा एक प्रकार से आधुनिक लौकिक सस्कृत का ही एक प्राचीन रूप कही जा सकती है। अन्तर केवल इतना है कि वैदिक सस्कृत 'लौकिक सस्कृत' की भाँति व्याकरण के कडे नियमो से बंधी या जकडी हुई नही है। उसमे लिंग, वचन, पुरुष और कारक आदि का यथेष्ट परिवर्तन तथा प्रयोग दिखाई देता है। यह वैदिक भाषा जो कि तात्कालिक जनसाधारण की बोल-चाल की भाषा थी भाषाविज्ञान-वेत्ताओ के मतानुसार कभी-कभी 'प्राकृत'* नाम से भी पुकारी गई है। कालान्तर में वह वैदिक भाषा व्याकरण के नियमो से बाधी जाकर एक स्थिर और सुनिश्चित रूप ग्रहण करने लगी तब उसे 'संस्कृत' अर्थात् 'शुद्ध या निखरी हुई' यह विशेष नाम प्राप्त हो गया।

---

* यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रसिद्ध प्राकृत भाषा इस वैदिक वाणी या प्राकृत से भिन्न है। यह 'वैदिक प्राकृत' सस्कृत की माता है किन्तु प्रसिद्ध प्राकृत सस्कृत की पुत्री।

प्राकृत—प्राय प्रत्येक देश में शिक्षितो और अशिक्षितो, सभ्यो और असभ्यो, ग्रामीणो और नागरिको की भाषा में अवश्य कुछ अन्तर रहा करता है। अशिक्षित लोग शिक्षितो की भाषा के अनेको शब्दो का शुद्ध उच्चारण नही कर पाते, अत वे उन शब्दो को जैसे चाहे टूटे-फूटे रूप मे बोलने लगते हैं। इस प्रकार प्रत्येक देश व प्रत्येक समय में भाषा के दो रूप एक साथ चला करते है। भारत में जिस समय सम्पूर्ण जनता की राष्ट्र भाषा और राजभाषा संस्कृत थी, उस समय भी साधारण समाज में उसका विकृत रूप प्रचलित था। जैसे क्षीर और दुग्ध शब्दो का उच्चारण करने मे असमर्थ लोग उन्हे 'खीर' 'षीर' 'शीर' 'छीर' और 'दुद्ध' 'दूध' आदि अनेक रूपो में उच्चारण करते थे। इस प्रकार सस्कृत से विकृत या बिगड़ी हुई भाषा ही 'प्राकृत' कहलाती है।

प्राकृत अनेक रूपों में क्यो ?—एक शुद्ध सस्कृत शब्द का भिन्न-भिन्न प्रातो में अनेक प्रकार से विकृत उच्चारण करने के कारण प्राकृत के भी अनेक भेद हो गये, क्योकि सस्कृत के एक ही शब्द को विभिन्न प्रातवासियो ने अनेक सरल रूपो में बोलना आरभ कर दिया। जैसे कि—सस्कृत के उक्त एक ही दुग्ध या क्षीर शब्द का भिन्न-भिन्न प्रातवासियो ने अनेक रूपो मे प्रयोग कर डाला। पश्चिमोत्तरीय प्रातो ने 'क्षीर' को षीर, शीर, शीर तो ब्रज मंडल ने 'छीर' और मध्य प्रदेश ने उसे 'खीर' बना दिया। सस्कृत के 'उपाध्याय' शब्द मे तो इतना रूप-परिवर्तन हुआ कि आज हम उसके विकृत रूप मे मूलरूप को पहचान भी नही सकते। देखिए—राजस्थान के मेवाड आदि प्रातो मे 'उपाध्याय' 'उपाधा' बन गया, पजाब में उसका 'उ' भी उड गया और केवल 'पाधा' या 'पाँदा' ही रह गया। उधर बिहार आदि पूर्वी प्रातो मे यही उपाध्याय पहले 'उवज्झा' फिर 'ओझा' का रूप ग्रहण कर गया और अत मे इस 'उ' की उपाधि को त्यागकर और बाकी सब अक्षरो (व्, ज्) से भी छुटकारा पाकर केवल निर्विकार निर्लेप 'झा' ही रह गया। क्या आप कभी पहचान भी सकते हैं कि 'झा' उपाध्याय शब्द का ही विकृत रूप है ? इस प्रकार हमने भली-भाति समझ लिया कि प्राकृत भाषाएँ सस्कृत से ही बिगड़ कर बनी है, और विभिन्न प्रातो में एक ही सस्कृत शब्द के अनेक विकृत उच्चारणो के कारण प्राकृत के कई भेद हो गये।*

---

* यह विवादास्पद विषय है कि प्राकृत भाषाओ का प्रयोग कब आरम्भ हुआ। अनेक विद्वान् ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मानते है किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, हमारी सम्मति मे वैदिक काल और सस्कृत काल मे भी इन दोनो भाषाओ के साथ-साथ प्राकृत भाषाए भी चलती होगी। सभ्य शिक्षित नागरिको की भाषा 'सस्कृत' और ग्राम्य जनसाधारण की भाषा 'प्राकृत' रही होगी।

स्मरण रहे कि प्राकृत भाषाओ मे पहले-पहल सस्कृत के प्रत्येक शब्द को जान-बूझ कर विकृत नही किया जाता था, प्रत्युत 'उपाध्याय'-सरीखे क्लिष्ट उच्चारण वाले शब्द सरलता की दृष्टि से रूपान्तरित हो जाते थे। किंतु कालान्तर में प्राकृत के साम्प्रदायिक व साहित्यिक रूप धारण कर लेने पर उसमे सस्कृत के किसी भी शब्द को मूल रूप में न रख कर प्रत्येक को विकृत किया जाने लग पडा। प्राकृत व्याकरण के सभी नियम (कारक-प्रत्यय, क्रिया-प्रत्यय आदि) सस्कृत के अनुसार ही चलते है।

प्राकृत के भेद—प्राकृत का प्रथम रूपान्तर 'पाली' नाम से पुकारा जाता है, आगे चल कर इसी प्राकृत के प्रात-भेद से निम्न मुख्य पाच भाषा-भेद हो गये—

१ पैशाची—काश्मीर आदि पश्चिमोत्तरीय प्रातो में बोली जाने वाली।

२ शौरसेनी—व्रज मडल में प्रयुक्त होने वाली।

३ मागधी—बिहार आदि पूर्वी प्रातो में व्यवहृत।

४ अर्धमागधी—अवध प्रदेश मे बोली जाने वाली।

५ महाराष्ट्री—महाराष्ट्र, मध्य-प्रात आदि प्रातो में प्रयुक्त होने वाली।

उक्त पाचो प्राकृतो की अगली अवस्था 'अपभ्रंश' नाम से प्रसिद्ध है।

देश-भाषाएं—अपभ्रशो से ही उत्तर-भारत की वर्तमान आर्य-देश-भाषाओं का निम्न-प्रकार से विकास हुआ है—

१ पैशाची से काश्मीरी, पजाबी, सिन्धी आदि।

२ शौरसेनी से ब्रजभाषा।

३ मागधी से बिहारी, बगला आदि पूर्वीय प्रान्तो की भाषाएँ।

४ अर्धमागधी से अवधी।

५ महाराष्ट्री से मराठी।

खडी बोली का विकास पैशाची से हुआ[1]। इसी प्रकार राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाएँ, पैशाची शौरसेनी और मराठी प्राकृतो से विकसित हुई हैं।

इस भाषा-विकास को २५ पृष्ठ पर अकित वश-वृक्ष से भली भाति समझ सकते है।

---

१. इस सम्बन्ध में डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि कुछ विद्वान् उसका (खडी बोली का) जन्म पैशाची प्राकृत से मानते हैं, जो पंजाब (पँचनद) प्रदेश में बोली जाती थी और कुछ विद्वान उसकी उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत तथा नागर-अपभ्रश से मानते हैं।

भारतीय आर्यभाषाओं का वंशवृक्ष
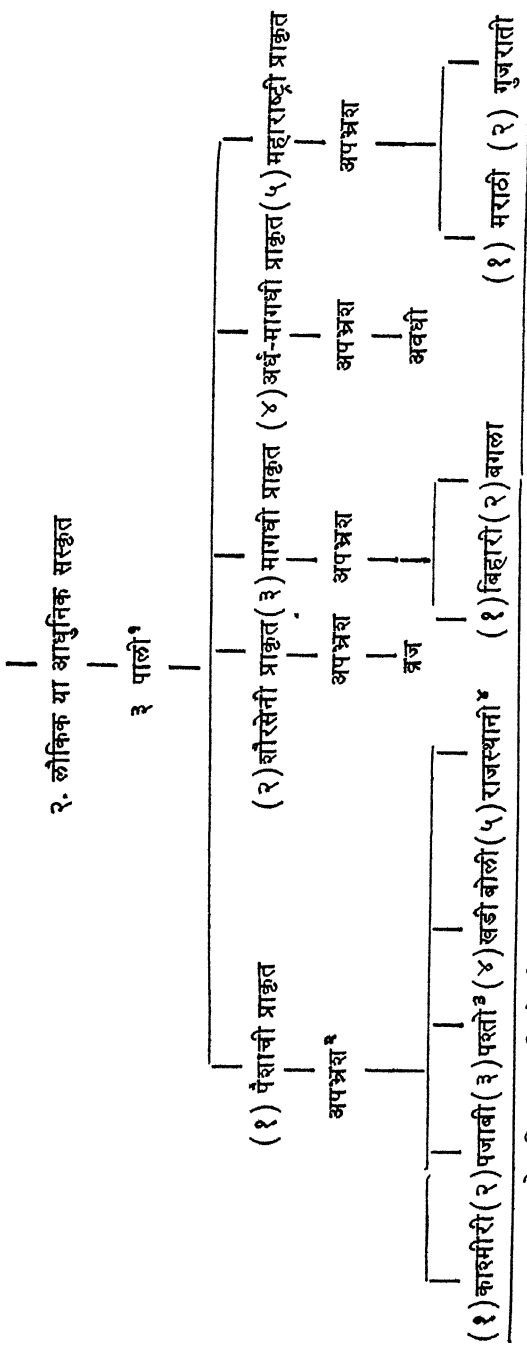
१—अनेक विद्वान् पाली को भी 'मागधी' आदि के साथ प्राकृत का छठा भेद मानते हैं।

२—नागर, उप-नागर ब्राचड आदि अपभ्रंश के भी भेदोपभेद किये गये हैं।

३—फारसी से प्रभावित। ४—शौरसेनी और महाराष्ट्री से प्रभावित। ५—पैशाची से प्रभावित।

अब स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि एक ही सस्कृत जननी से उसकी पांच प्राकृत पुत्रिया और उनसे अपभ्रश भाषाएँ तथा अपभ्रशो से उत्तर-भारत के प्रान्तो की उक्त ग्यारह आर्य-भाषाएँ उत्पन्न हुई है ।

इनका पारस्परिक अन्तर—

१ सस्कृत और प्राकृत मे यही अन्तर है कि प्राकृत मे सस्कृत शब्दो का रूप विकृत कर दिया गया है । बाकी व्याकरण आदि के नियम सस्कृत के ही है ।

२ प्राकृत और अपभ्रश मे यह अन्तर है कि अपभ्रश मे भी प्राकृत के समान ही सस्कृत के प्रत्येक शब्द को जान-बूझकर बिगाडा जाता था अर्थात् तत्सम शब्दो का बहिष्कार किया जाता था । इस प्रकार एक ओर तो यह भाषा प्राकृत की रूढियो से बधी हुई थी और दूसरी ओर उसके व्याकरण के नियम (कारक, क्रिया आदि) सस्कृत से कुछ-कुछ भिन्न हो गये थे । अपभ्रश भाषाएँ वर्तमान देश-भाषाओ की मूलरूप कही जा सकती है ।

३. अपभ्रश और देश-भाषा मे यह अन्तर है कि देश-भाषाएँ व्याकरण के नियमो की दृष्टि से सस्कृत से सर्वथा भिन्न हो गईं, किन्तु इनमे अपभ्रश के समान सस्कृत के शब्दो का तिरस्कार नही हुआ । इन भाषाओ मे 'नगर' 'विद्या' आदि शब्द 'नअर' 'विज्जा' आदि अपभ्रष्ट रूपो को छोडकर अपने वास्तविक तत्सम रूप मे फिर से प्रयुक्त होने लग पडे ।

चूकि उक्त भाषाओ का सक्षिप्त परिचय प्राप्त किये बिना हिन्दी साहित्य के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना कठिन है इसलिए यहा इन भाषाओ पर साधारण प्रकाश डाला गया है । उक्त ग्यारह देश-भाषाओ में से बगला, मराठी और काश्मीरी आदि को छोडकर १ खडी बोली, २ राजस्थानी, ३ अवधी, ४ व्रज और ५ बिहारी यह पाचो भाषाएँ हिन्दी के अन्तर्गत गिनी जाती हैं । आगामी पृष्ठो मे इन पाचो भाषाओ के साहित्य का समालोचनात्मक परिचय दिया जायगा[१] ।

अभ्यास

१ साहित्य व साहित्य के इतिहास की परिभाषा लिखें ।

२. हिन्दी भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?

---

१ पजाबी भी हिन्दी ही की एक प्रादेशिक भाषा है । पर उसका साहित्य अपना पृथक् रूप रखता है, अत. उसका यहाँ उल्लेख नही किया गया ।

३. सस्कृत और प्राकृत, प्राकृत और अपभ्रश तथा अपभ्रश और देश-भाषाओ का पारस्परिक अन्तर स्पष्ट करें।

४ प्राकृत की अनेकता के क्या कारण है ?

५. प्राकृतें कितनी और कौन-कौन सी हैं ? किस २ प्राकृत या अपभ्रश से कौन-कौनसी देश-भाषाए निकली है ?

६. हिन्दी भाषा के अन्तर्गत किन-किन उपभाषाओ की गणना की जा सकती है ?

दूसरा अध्याय

अवतरण

हिन्दी साहित्य का आरभ—हिन्दी साहित्य का आरम्भ कब से हुआ, इस सम्बन्ध मे अनेक मतभेद हैं। श्रीयुत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का आरम्भ स० १०५० से माना है। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता श्री डा० काशीप्रसाद जी जायसवाल दसवी शताब्दी (स० ९०१) से और श्रीयुत डा० रामकुमार वर्मा स० ७०० से ही इस का आरम्भ स्वीकार करते है। इसी प्रकार अन्यान्य विद्वान् भी इस सम्बन्ध मे अनेक मतभेद रखते और अपने-अपने पक्ष के समर्थन मे अनेक प्रमाण व तर्क उपस्थित करते है। उन सब विद्वानो के मतों व सिद्धान्तो को सहसा स्वीकार या अस्वीकार नही किया जा सकता। पर इतना तो सर्वसम्मति से निश्चित हो गया है कि हिन्दी (देशभाषा) के मूलरूप का आरम्भ सातवी शताब्दी मे ही हो चुका था। क्योकि बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में अन्यान्यभाषाओ के कवियो की गणना करते हुए 'भाषा-कवि' का भी उल्लेख किया गया है। यहा पर 'भाषा' शब्द का प्रयोग सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, इन तीनो भाषाओ से भिन्न उस समय के जन-साधारण की देशभाषा को सूचित करता है और वज्रयानी सिद्धो की रचनाओ मे कही-कही इस भाषा का दर्शन भी हो जाता है, जैसे—

> जहि मन पवन न सचरइ, रवि ससि नाहिं पबेस।
> तहि बट चित्त विसाम करू, सरेहे कहिअ उवेस ॥

सिद्ध सरहपा की उक्त रचना मे वर्तमान देश-भाषा का मूलरूप स्पष्ट लक्षित होता है। सरहपा का समय डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य ने स० ६९० माना है। उक्त प्रमाण के आधार पर यह निश्चित हो गया कि सम्राट् हर्षवर्धन के समय में आधुनिक देशभाषा का मूलरूप प्रचलित हो चुका था और उसमें कुछ रचनाए की जाने लगी थी।

इन बातो को देखते हुए हिन्दी साहित्य-का आरम्भ स० १०५० से न मानकर स० ७०० से ही मानना अधिक उचित प्रतीत होता है।

सामयिक परिस्थितियो का साहित्य पर प्रभाव—विक्रम की आठवी शताब्दी से लेकर आज २१ वी शताब्दी तक १३०० वर्षों के हिन्दी साहित्य का समालोच-

नात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट विदित होता है कि विभिन्न समयो में साहित्य अनेक रूपो में बनता रहा है। उन-उन समयो मे प्रधानतया प्राय एक ही प्रकार की भाषा, विषय और शैली के दर्शन होते है। एक समय में एक प्रकार की विचार-धारा प्रवाहित है, तो दूसरे युग मे वह उससे विपरीत दिशा की ओर बह रही है। उदाहरण के लिए हम कह सकते है कि तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के साहित्य मे रीति, नायिकाभेद व कल्पना की ऊची उडानो का कही चिन्ह भी नही दिखाई देता। १७वी १८वी शताब्दी के साहित्य मे वे ही मुख्य वर्ण्यविषय बन गये है। इसी प्रकार राष्ट्रीयता, समाज-सुधार, निराशावाद, प्रकृति के प्रति प्रेम आदि जो आज के साहित्य के मुख्य विषय है, १७ वी शताब्दी के साहित्य मे कही उनके दर्शन तक नही। उधर सत्रहवी शताब्दी के शृगारिक साहित्य का वर्तमान साहित्य में अभाव-सा हो गया है। साहित्य की यह विविधता व परिवर्तनशीलता कोई आकस्मिक घटनाए नही है। इसके पीछे समाज की एक परिपुष्ट विचारधारा कार्य करती रहती है। समाज की यह विचार-धारा सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सास्कृतिक आदि अनेक कारणो से सदा परिवर्तित होती रहती है। जैसे हम देखते है कि आज से सौ वर्ष पूर्व भारतीय जनता मे अग्रेजो के प्रति एक प्रकार से आदर व भय की भावनाए थी, पर बाद में परिस्थितियो के परिवर्तन से उनके प्रति घृणा, द्वेष व क्रोध के भाव बढने लगे। और आज उनके प्रति जनसाधारण में केवल उपेक्षा की भावनाए शेष रह गई हैं।

यह हुई केवल इन एक सौ वर्षों की बात। जब हम तेरह सौ वर्षों के लबे समय पर विचार करते हैं तो हमे इन विचार-धाराओ में अनेक उतार-चढाव दिखाई देते है। इस दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि विक्रम की आठवी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक जनता में कोई विशेष राजनैतिक प्रवृत्तिया नही थी। धार्मिक प्रवृत्तियो में जहा एक ओर वाम-मार्ग या 'सहजिया सम्प्रदाय' के [1]तान्त्रिको की प्रधानता दिखाई देती है वहा दूसरी ओर उसकी प्रतिक्रियास्वरूप जैन धर्म का प्रचार उत्तरोत्तर बढता दृष्टिगोचर होता है[2]। जब तान्त्रिको की बीभत्स प्रवृत्तिया अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गईं, क्रमश उनका ह्रास होना स्वाभाविक था और परिणामस्वरूप उनके स्थान पर नाथपन्थ या योगमार्ग की विचार-धारा विकसित होने लगी।

---

[1] 'हर्षचरित' में भी तात्रिको का पर्याप्त प्रभाव व महत्त्व बताया गया है।

[2] उक्त सम्प्रदायो या पथो का प्रचार भारत के पूर्वी और पश्चिमी प्रान्त-विशेषो मे ही प्रधान-रूप से लक्षित होता है। शेष सम्पूर्ण भारत में इस समय भारत का प्राचीन 'ब्राह्मण धर्म' फिर से अपने नये रूप मे फलने-फूलने लगा था।

इधर ग्यारहवी शताब्दी के लगभग देश पर यवन-आक्रमणो का ताता-सा बध गया। कभी महमूद गजनवी तो कभी शहाबुद्दीन गौरी, एक के बाद दूसरा आक्राता भारत पर चढाई करने लगा। फलत. जनता की चित्तवृत्ति धार्मिक और तान्त्रिक भावनाओ से हटकर वीरता की ओर झुकी। कुछ समय तक इस शौर्य-वीर्य और स्वदेश-रक्षा के लिए मर मिटने की भावनाओ का बोलबाला रहा। किन्तु परिस्थितिया फिर बदली, मुसलमान आक्रमणकारियों की बला भारतीयो के लाख प्रयत्न करने पर भी टाले न टली। फलत· हिन्दुओ की वीर-भावनाएँ भी क्रमशः लुप्त होने लगी। उस समय मेवाड ही मे वीरता के चिन्ह कही-कही दिखाई दे जाते।

मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब उस पर कोई विपत्ति आती है, तो पहले वह अपने बाहुबल से उसके निराकरण का प्रयत्न करता है। जब उसके बाहु-बल के क्षीण हो जाने पर भी वह विपत्ति नही टलती, तब अन्त मे हार कर वह प्रभु की शरण लेता और कहता है कि हे प्रभो! अब तू ही हमारा उद्धार कर। तदनु-सार जब निरन्तर चार सौ वर्षों तक यवनो से लोहा लेते रहने पर भी हमारे देश में आक्रमणकारियो के पाव जम ही गये और हमारे देखते ही देखते मन्दिर गिराये जाने लगे, वेद ग्रन्थ जलाये जाने लगे और जनता कुछ बोल न सकी, ऐसी

ब्राह्मण ग्रथो या पूर्व मीमासा में प्रतिपादित यज्ञो के जटिल विधि-विधानो के जंगल से निकलकर वैदिक धर्म, शैव और वैष्णव धर्म के पुराण-प्रतिपादित अभिनव आक-र्षक मार्ग पर चल पडा था। सम्पूर्ण दक्षिण और उत्तर भारत मे इस नवीन वैदिक धर्म ने बौद्धधर्म को आत्मसात् कर लिया। फलत. शकराचार्य द्वारा प्रचारित षण्मत (शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, गणेश और सूर्य इन छ: देवो की वैदिक उपासना) का प्रचार उत्तरोत्तर बढ रहा था। इनमे भी शैवधर्म ने अत्यन्त लोकप्रियता और व्यापकता प्राप्त कर ली थी। ग्यारहवी शताब्दी से चौदहवी शताब्दी तक वैष्णव धर्म अपनी उत्तर-भारतीय जन्मभूमि को छोड दक्षिण में नवीन रूप मे प्रकट हो पनपता रहा, और वही से वैष्णव धर्म अपने वर्तमान नये रंग रूप को लिए हुए चौदहवी शताब्दी में फिर से उत्तर भारत में आ जमा। शैव और वैष्णव इन दोनो वैदिक सम्प्रदायो का सम्पूर्ण साहित्य तेरहवी शताब्दी तक सस्कृत में ही निर्मित होता रहा। इस काल के वास्तविक साहित्य के स्वरूप का दर्शन सस्कृत में ही होता है। माघ, भारवी, मुज, भोज, जयदेव, विशाखदत्त, मम्मट, विश्वनाथ आदि इस समय के महाकवि और आचार्यों ने साहित्यिक अमर रचना-रत्नों द्वारा सस्कृत साहित्य के भडार को परम श्रीसम्पन्न व वैभवविभूषित कर दिया।

स्थिति में वीरता की भावनाए भला कहा टिक सकती थी। ऐसे समय में निराशा और दैन्य की दशा में सहारा देने वाली एकमात्र भगवद्-भक्ति थी। इसलिए शान्ति-प्राप्ति के उद्देश्य से जनता निर्गुण, सगुण, राम, कृष्ण आदि ईश्वर के अनेको रूपो की उपासना की ओर प्रवृत्त हो गई। उत्तर-भारतीय उर्वरा (ब्रज) भूमि मे उत्पन्न वैष्णव धर्म ने दक्षिण भारत मे जाकर अभिनव रूप मे पल्लवित और पुष्पित होकर उत्तर-भारतीयो को अपने सुमधुर फलो का रस-पान कराना आरम्भ कर दिया।

परिस्थितियों ने पुन पलटा खाया और जहागीर, शाहजहा जैसे शान्तिप्रिय परन्तु विलासी सम्राटो के शासनकाल मे विलासिता की प्रवृत्तिया प्रस्फुटित होने लगी। राजा लोगो को लडाई-भिडाई या वीरता से कुछ प्रयोजन नही रह गया था। आक्रमणकारियो से देश की रक्षा व आन्तरिक शान्ति का उत्तरदायित्व मुगल सम्राटो के कधो पर डाल कर उस समय के अधिकाश राजा लोग अपने रनिवासो या अन्त पुरो मे ही मस्त रहने लगे थे। प्रसिद्ध है कि जयपुर-नरेश मिर्जा राजा जयशाह (जयसिंह) सप्ताहो तक अन्त पुर से बाहर न निकलते थे। इसी कारण बिहारी को अपना सुप्रसिद्ध दोहा —

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहिकाल।
अलि कली ही सो बन्ध्यो, आगे कौन हवाल॥

लिखकर उनके पास अन्दर रनिवास में भेजना पडा था। यह है तात्कालिक राजाओ की विलासिता की एक झलक। राजाओ की जब यह दशा थी तो 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धान्तानुसार प्रजा का भी वैसा होना स्वाभाविक ही था; अत उस समय का जनसमाज विलासप्रिय हो गया।

दूसरी ओर इसी समय औरगजेब आदि अत्याचारी शासको की क्रूरता के कारण राष्ट्रीयतामूलक धर्म-रक्षा की सत्य भावनाएं अपने प्रबल रूप मे प्रकट होने लगी।

इधर उन्नीसवी शताब्दी मे अग्रेजो के आगमन के साथ देश के वातावरण में एक बार फिर विक्षोभ हुआ। राष्ट्र मे समाज-सुधार, स्वदेश-भक्ति, श्रमिक वर्ग की उन्नति आदि नवीन भावनाओ का प्रचार, साथ ही विलासिता के विचारो का शनै. २ ह्रास होने लगा।

उक्त परिवर्तनो के फलस्वरूप हम हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल—आठवी शताब्दी से लेकर आज तक—की उत्तर-भारतीय विचार-धाराओं को निम्न पाच भागो में विभक्त कर सकते हैं —

१ तान्त्रिक, योगी, शैव, वैष्णव और जैनियो की धार्मिकता और दार्शनिकता-प्रधान विचारधारा, आठवी शताब्दी से ग्यारहवी शताब्दी के मध्यभाग (सवत् ७०० से १०५०) तक ।

२ लडाई-भिडाई अथवा वीरता की प्रवृत्तिया—ग्यारहवी शताब्दी से चौदहवी शताब्दी (सवत् १०५१ से १३७५) तक।

३ सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म की उपासना की प्रवृत्तिया—चौदहवी शताब्दी से सत्रहवी शताब्दी (१३७६ से १७००) तक।

४ विलासिता व धर्मरक्षा की भावनाए—अठारहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी (१७०१ से १९००) तक।

५ राष्ट्रीयता और समाज-सुधार आदि की प्रवृत्तिया—२० वी शताब्दी-(सवत् १९०१ से अब) तक।

कालविभाग—जनता की चित्तवृत्तियो का पुस्तकाकार में सचित प्रतिबिम्ब ही साहित्य है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि जनता की विचारधारा के अनुसार साहित्य का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहे। अर्थात् जिस युग मे जनता के जैसे विचार होगे उस युग के साहित्य मे भी उन्ही विचारो की प्रधानता रहेगी। हमारे हिन्दी साहित्य पर भी यह सिद्धान्त अक्षरश चरितार्थ हुआ और उक्त पाच विचार-धाराओ के अनुसार यह साहित्य भी निम्न पाच मुख्य विभागो या कालो में विभक्त किया गया है—

१. सक्रमण-काल *—जैनो व सिद्धो का अपभ्रश-काल (सवत् ७०० से १०५० तक)।

२. आदि काल—चारणो का वीरगाथा-काल (स० १०५१ से १३७५ तक)

३ पूर्व-मध्य-काल—सन्तो का भक्ति-काल (स० १३७६ से १७०० तक)

४. उत्तर-मध्यकाल—आचार्यों का रीति-सम्बन्धी कला-काल (सं० १७०१ से १९०० तक)

---

* श्री डा० रामकुमार वर्मा ने इस प्रथम काल का नाम सधिकाल रक्खा है किन्तु इगलिश में जिसे (Transit period) कहते हैं उसके लिए हिन्दी की शुद्ध और सुन्दर पारिभाषिक सज्ञा 'सक्रमण-काल' है। उक्त समय मे लोक-व्यवहार-क्षेत्र से एक (प्राकृत या अपभ्रश) भाषा विदा हो रही थी और दूसरी (देशभाषा) उसका स्थान ले रही थी अत उक्त काल को 'सक्रमण काल' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

५. आधुनिक काल—राष्ट्रीयचेतनात्मक गद्य-काल (स० १९०१ से आज तक)

यह कालविभाग तत्तत्प्रवृत्तिकी प्रधानताकेआधार पर ही किया गया है। इस से यह न समझना चाहिए कि किसी कालविशेष मे उससे भिन्न विषयो की रचनाए हुई ही नही। भक्तिकाल मे वीरता और शृगार आदि दूसरे विषयो की रचनाए भी होती रही, पर बहुसख्या भक्ति सम्बन्धी पुस्तको की ही थी। किसी काल की समाप्ति पर बाद मे उस विषय की रचनाए सर्वथा बन्द हो गई हो, ऐसा भी नही था। (यह काल-विभाग किसी देशकी निश्चित राजनैतिक सीमा या किसी बाज़ार के नाम की भाति नही है) साहित्यिक कालविभाग दो साथी प्रदेशो की भाषाओ के समान है, जिनके नाम राजनैतिक दृष्टि से भिन्न होने पर भी दोनो प्रदेशो की भाषाओ पर बहुत दूर तक एक दूसरी का प्रभाव चिरकाल तक बना रहता है। अत किसी काल-विशेष का नाम 'वीर-गाथा-काल' रख देने से यह नही मान लेना चाहिए कि स० १३७५ के पश्चात् वीरता की रचनाए हुई ही नही, होती तो अवश्य रही पर (प्रधानता उनकी नही रही) इसी प्रकार दूसरे कालो के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए।

अभ्यास

१. हिन्दी भाषा व साहित्य का आरम्भ कब हुआ, सप्रमाण सिद्ध करें।

२ 'समाज की परिस्थितियो के अनुसार साहित्य सदा अपना रूप परिवर्तित करता रहता है' यह उक्ति हिंदी साहित्य पर कहाँ तक चरितार्थ होती है ?

३ आठवी शताब्दी से आज तक की भारतीय सामाजिक परिस्थितियो का सक्षिप्त सिंहावलोकन करे।

४ हिंदी साहित्य की विविध प्रवृत्तियो का सक्षिप्त परिचय दें।

५ हिंदी साहित्य के इतिहास को किन मुख्य कालो मे विभक्त किया जा सकता है ?

संक्रमण-काल

(स० ७०० से १०५० तक)

तीसरा अध्याय

सिद्धो, नाथो व जैनियो का अपभ्र श-साहित्य

हिन्दी साहित्य के इस आरम्भिक युग अर्थात् सक्रमण-काल के साहित्य को भाषा, विषय व शैली की दृष्टि से निम्न तीन विभागो मे विभक्त किया गया है —

१ पूर्वी अपभ्रश मे वज्रयानी बौद्धो या सिद्धो का तान्त्रिक साहित्य ।

२. मध्यदेशीय अपभ्रश मे नाथ-योगियो का साहित्य ।

३ पश्चिमी अपभ्रश मे जैन-आचार्यों का साहित्य ।

कालक्रम की दृष्टि से पहले सिद्धो के साहित्य व सिद्धान्तो आदि का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है ।

वज्रयानी सिद्धो व नाथ-योगियो का साहित्य

परिचय और सिद्धांत—विक्रम की पांचवी शताब्दी से ही बौद्ध धर्म अपनी महायान शाखा और शैव धर्म के मिश्रण से 'वज्रयानशाखा' के नाम से विकृत हो रहा था। यह वज्रयान शाखा सहजिया सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय का स्वरूप धारण कर लेने पर कुछ समय तक तो बौद्ध-धर्म ने अपने वास्तविक सदाचार- प्रधान स्वरूप को बनाये रखा किन्तु सातवी शताब्दी के लगभग इसने वाममार्गियो का-सा तात्रिक रूप ग्रहण कर लिया। इस शाखा के कण्हपा, लुहिपा,सरहपा आदि चौरासी सिद्ध हुए है । ये नाम 'कृष्णपाद', 'सरोज-पाद' आदि सस्कृत नामो के अपभ्र श रूप है । सस्कृत मे 'पाद' शब्द पूज्य अर्थ में प्रयुक्त होता है, अत इन नामो मे 'पा' शब्द भी पूज्यार्थ मे ही लिया गया है । इन सिद्धो ने एक ओर तो वाम-मार्ग से मिलते-जुलते 'महासुखवाद' के सिद्धान्त को अपनाया और दूसरी ओर घट ही में 'अलख' को निरखने की भावनाओ को विकसित कर 'गुह्य समाज' का प्रचार किया। इस प्रकार गुह्य या रहस्य की आड मे ये लोग मनुष्य की पाशविक वासनाओ की परितृप्ति को ही 'महासुख' कहते और अपने सम्प्रदाय के महत्त्व को बढ़ाने के लिए बीच-बीच में योग के विभिन्न अगो का भी सन्निवेश कर दिया करते थे। सक्षेप मे कह सकते है कि बिहार से आसाम तक पूर्वी भारत मे अधिक प्रचलित उक्त सम्प्रदायो ने सातवी शताब्दी से ही जादू, टोना, तत्र और वाममार्गियो की 'पचमकार' सेवन आदि

की विभिन्न व्यभिचारात्मक प्रवृत्तियो का प्रचार वसाकार की उपासना तथा तीर्थ, व्रत, पूजा, वेद-शास्त्र आदि का खण्डन आरम्भ कर दिया था। ये ही इनके साहित्य के मुख्य विषय थे।

भाषा व शैली—वज्रयानी सिद्धो के साहित्य की भाषा देशभाषा-मिश्रित पूर्वी अपभ्रश या पुरानी हिन्दी का मूलरूप थी। सामान्यतया इस भाषा को सधुक्कडी या खिचडी भाषा कह सकते है, यद्यपि सरहपा कण्हपा आदि के पद पूर्वी अपभ्रश मे है तथापि उनके उपदेशो की भाषा मे पश्चिमी अपभ्रश के भी अनेक प्रयोग आ जाते है। जैसे कि—

भेलै, बूढिल आदि शब्द पूर्वी भाषा के ही है। उधर नाथो या योग-मार्गियो की भाषा पूर्वीपन लिए हुए पश्चिमी अपभ्रश है।

इन लोगो ने दोहा (साखी) पद (बानी) की शैली मे अपनी रचनाए लिखी है।

समाज व साहित्य पर प्रभाव—इस शाखा का तात्कालिक व परवर्ती साहित्य एव समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पडा। पूर्वी प्रान्तो मे जो तान्त्रिको की प्रधानता पाई जाती है वह सब इसी शाखा के प्रचार को प्रकट करती है। पूर्वी-भारत के निम्न व मध्यम वर्गों को इस शाखा ने बहुत अधिक प्रभावित किया था। पश्चिमी भारत की जनता नाथ-पथ से अत्यधिक प्रभावित हुई। यहा तक कि न केवल हिन्दू प्रत्युत मुसलमान भी इनके सिद्धान्तो को अपनाने लग गये थे। परवर्ती साहित्य पर भी इनका पर्याप्त प्रभाव पडा क्योकि हम देखते है कि आगे चलकर कबीर आदि निर्गुणमार्गियो ने जो कुछ भी लिखा उसके लिए भाषा, विषय व शैली ये सिद्ध और योगी लोग ही पहले से प्रस्तुत कर गये थे। एक मिली-जुली खिचडी या सधुक्कडी भाषा, मनमाने अस्त-व्यस्त रूपको के द्वारा उलटबासियो या पहेलियो के रूप मे गुह्य सिद्धान्तो को प्रतिपादित करने की पद्धति, और घट मे अलख-निरजन को निरखना, षट्चक्रो और शून्य आदि के प्रतिपादक सिद्धान्त तथा 'साखी' 'बानी' आदि सज्ञाए, यह सम्पूर्ण सामग्री इन ज्ञानमार्गी कवियो ने वज्रयान शाखा व योगियो के साहित्य से प्राप्त की थी। अत हम कह सकते है कि कबीर आदि निर्गुणोपासक सतो के साहित्य-सृजन के लिए बीज तो उक्त सिद्धो और योगियों ने बो दिया था, भूमिका वे लोग ही प्रस्तुत कर गये थे—अब केवल उसे सीच कर पल्लवित व पुष्पित करने का कार्य रह गया था, जो इन निर्गुणोपासक सतो ने पूर्ण किया।

यहा यह भी अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि कबीर आदि सन्तो ने सहजिया सम्प्रदाय के सिद्धो के समाज मे दुराचार फैलाने वाले व्यभिचारमूलक दूषित सिद्धान्तो को कभी नही अपनाया । उन्होने सिद्धो से उक्त भाषा, विषय शैली के उपादेय अशो को लेकर उन्हे लोक-कल्याणकारी रूप मे प्रकट किया। सिद्धों की अपेक्षा नाथ-पथ के साहित्य व सिद्धान्तो का प्रभाव आगामी साहित्य पर विशेष पडा ।

रचयिता व उनकी रचनाएँ

सहजिया सम्प्रदाय के ८४ सिद्धो मे से सरहपा या सरोजवज्र सब से प्राचीन हैं । इनका रचनाकाल सवत् ६९० के लगभग माना गया है । इनकी रचना का एक उदाहरण यहा दिया जाता है —

पडिअ सअल सत्त बक्खाणइ । देहहि बुद्ध बसन्त न जाणइ।
अमणागमण ण तेन बिखडिअ । तोबि णिलज्ज भणइ हउं पंडिअ ।

इनके अतिरिक्त लुहिपा, विरुपा, कण्हपा, कुक्कुरिपा, तान्तिपा आदि सिद्धों की रचनाए भी पूर्वी अपभ्रश मे पर्याप्त रूप मे प्राप्त हैं ।

नाथ-साहित्य

योगियो ने सिद्धो की व्यभिचारात्मक प्रवृत्तियो से रहित शुद्ध शैव योग-मार्ग का प्रचार किया, नाथ-पथ सहजिया सम्प्रदाय की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप प्रचलित हुआ था और शैव धर्म को लेकर चला था, अत सहजिया सम्प्रदाय के विपरीत इस पथ मे अत्यन्त शुष्कता व योग की कठोर साधनाओ की प्रमुखता स्वाभाविक ही थी। यहा तक कि ये लोग ससार या लोकपक्ष से सर्वथा बहिर्मुख हो गये । 'नाथपथ' भी इसी योगी सम्प्रदाय को कहते हैं। नागार्जुन, जालन्धरनाथ, मछन्दरनाथ आदि योगी गोरखनाथ से पूर्व हो चुके थे। इन सब योगियो की सख्या ९ मानी गई है।

गोरखनाथ—गोरखनाथ को सहजिया सम्प्रदाय वालो ने अपने ८४ सिद्धो में गिना है । इस दृष्टि से वे वज्रयान शाखा के अनुयायी ठहरते हैं, किन्तु वास्तव मे ये वज्रयान शाखा के सिद्धान्तो को नही मानते थे ।

गोरखनाथ के समय के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद है । राहुल साकृत्यायन जी ने सिद्धो की परम्परा के आधार पर इनका समय दसवी शताब्दी सिद्ध किया है, किन्तु श्रीयुत रामचन्द्र शुक्ल का अनुमान है कि गोरखनाथ दसवी शताब्दी मे नहीं प्रत्युत पृथ्वीराज के समय या उनसे कुछ देर बाद तेरहवी शताब्दी में हुए

होगे। पर वास्तव मे ये आठवी शताब्दी से भी पूर्ववर्ती है। इन्होने नाथ पथ का प्रचार पश्चिमी प्रान्तो या राजपूताना आदि मे विशेष किया था। इन की रचनाए गद्य व पद्य दोनो रूपो मे प्राप्त है। गोरख-गणेश-गोष्ठी, महादेव-गोरखसवाद, गोरखबोध, विराट्पुराण, गोरखसार, गोरखनाथकी बानी, योगेश्वरी साखी, दत्त-गोरख-सवाद, नरवइबोध, गोरखनाथ की सत्रह कलाए, ये दस पुस्तके इनके नाम पर लिखी उपलब्ध हुई है। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि ये सब पुस्तके इनकी नही है, केवल साखी और बानी में इनकी कुछ रचनाए भले ही हो। इनकी रचना का एक नमूना यहा दिया जाता है—

स्वामी तुम्हइ गुर गोसाईं। अम्हे जो सिष सबद एक बूझिवा।
निरारंबे चेला कूण विधि रहै। सत गुरु होइ स पुछया कहै ॥
\+ + + +
अवधू रहिया हाटे वाटे रूप विरष की छाया,
तजिया काम क्रोध लोभ मोह ससार की माया।

नाथो के साहित्य में मानव जीवन की व्याख्या या सरसता का अभाव-सा है। अत जनसाधारण पर इनके सिद्धान्तो का प्रभाव रहते हुए भी इनके साहित्य का विशेष प्रचार न हो पाया।

पश्चिमी अपभ्रंश का जैन-साहित्य

परिचय और सिद्धांत—जैन साहित्य प्रमुखतया प्राकृत मे लिखा गया है, किन्तु उसका बहुत-सा अश अपभ्रश से मिलता-जुलता है। यह साहित्य है तो अत्यन्त प्राचीन, किन्तु अपभ्र श का आधुनिकतम रूप हमे आचार्य देवसेन के 'श्रावकाचार' नामक ग्र थ में मिलता है। इन्हो ने अपभ्रश में दूहा या दोहा नामक छन्द में रचनाए लिखी और बीच-बीच मे चौपाइयो का भी प्रयोग किया। इनकी रचनाए सिद्धो या नाथ-पथियो के समान केवल शुष्क उपदेशात्मक या नीरस न होकर साहित्यिक व सरस हैं। यद्यपि अधिकाश जैन-आचार्यों ने भी उपदेश दिये है पर इन के उपदेशो में भी एक आकर्षण, प्रवाह और रसात्मकता है। साथ ही इन्होने कुछ चरित या आख्यान-काव्य भी लिखे है, जो कि प्राय चौपाइयो मे है। धार्मिक सिद्धान्तो में भी इन्होने सत्य, दया, अहिंसा आदि लोकोपकारी और चरित्र को उन्नत बनाने वाले अशो को ही अपनाया है। हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने शृगार, वीर, नीति आदि विभिन्न रसो व विषयो पर भी विभिन्न रचनाए लिखी है। इन सब बातो को देखते हुए कह सकते है कि हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक सच्चा स्वरूप जैन साहित्य ही मे उपलब्ध होता है।

इनकी भाषा पश्चिमी-राजस्थानी अपभ्रंश है, जिसमे अनेक स्थानो पर भाषा के वर्तमान स्वरूप का स्पष्ट दर्शन होता है। और शैली दोहा या दूहा-चौपाई की है।

समाज व साहित्य पर प्रभाव—जैन-साहित्य का भारतीय समाज पर बहुत अधिक प्रभाव है। कुछ लोगो का मत है कि वैष्णव-धर्म की मूर्ति-पूजा व अहिंसा भी जैनप्रभाव के परिणाम-स्वरूप ही प्रचलित हुई। जनसामान्य मे जो जीव-दया की भावनाए पाई जाती है वे जैन-साहित्य के द्वारा विकसित हुई। परवर्ती हिन्दी साहित्य पर भी जैन-साहित्य का प्रभाव कोई कम नही पडा। आगे चलकर मलिक-मुहम्मद-जायसी आदि प्रेम-मार्गी कवियो ने पद्मावत आदि प्रेम-प्रबन्धो मे तथा श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में जिस दोहा और चौपाई की पद्धति को अपनाया उसका सर्वप्रथम प्रचार और चरित-काव्य के लिए मार्ग जैन-साहित्य-कारो ने प्रशस्त किया था।

लेखक गण—

जैन साहित्य के प्रसिद्ध लेखको का परिचय इस प्रकार है —

१—**देवसेन**—इनका रचनाकाल सवत् ९९० के लगभग माना जाता है। इन्होंने 'श्रावकाचार' और 'दव्व सहाव पयास' अर्थात् 'द्रव्य-स्वभाव-प्रकाश' नामक दो ग्रन्थो की रचना की थी। ये दोनो ग्रन्थ दोहा, छन्द मे लिखे गये है, भाषा भी बहुत कुछ आधुनिक रूप लिए हुए अपभ्र श है। इनकी रचना का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है —

जो जिण सासण भाषियउ सो मइ कहियउ सारु ॥
जो पालइ सइ भाउ करि सो तरि पावइ पारु"

२—**पुष्पदन्त**—इनका रचनाकाल सवत् १०२९ के लगभग माना जाता है। आदिपुराण और उत्तरपुराण नामक चरित्र-काव्य इनकी दो प्रसिद्ध रचनाए है।

३—**हेमचन्द्र**—इनका रचनाकाल सवत् ११५० से १२३० तक माना गया है। गुजरात के सोलकी राजा सिद्धराज जयसिह और उनके भतीजे कुमारपाल इन का बडा आदर करते थे। ये अनेक विषयो के विद्वान्, कवि और आचार्य थे। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनो भाषाओ का एक बडा भारी व्याकरण-ग्रन्थ बनाया जो 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे इन्होने अपने आपको पाणिनि से भी बढकर वैयाकरण घोषित किया है। व्याकरण के विभिन्न रूपो के उदाहरणो के लिए इन्होने कोई एक पद या शब्द न देकर पूरे के पूरे पद्य

उद्धृत किये है, जिनमे से अनेक प्राचीन व बहुत से इनके अपने बनाये हुए है। व्याकरण के उदाहरणो के लिए इन्होने सस्कृत के 'भट्टिकाव्य' के समान एक 'द्वयाश्रय-काव्य' भी रचा। प्रसिद्ध 'कुमारपालचरित' इसी द्वयाश्रय-काव्य का एक अश है। इसके दो दोहे देखिए—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कतु।
लज्जेजं तु वयसि अहु जइ भग्गा घरु एतु ॥१॥
जइ सो न आवइ, दूइ ! घरु, काइ अहोमुहु तुज्झु।
वयणु जु खडइ तउ, सहि ए ! सो पिउ होइ न मुज्झु ॥२॥

४—**सोमप्रभ सूरि**—इनका रचनाकाल सवत् १२४१ के आस-पास है। इन्होने 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक काव्य लिखा जिसमे सस्कृत, प्राकृत व अपभ्र श तीनो भाषाए गद्य और पद्य दोनो रूपो मे प्रयुक्त हुई है। प्रस्तुत पुस्तक कुमारपाल को दिये गये हेमचन्द्र के उपदेशो के आधार पर लिखी गई थी। यहा अपभ्रश का एक पुराना उदाहरण उपस्थित किया जाता है—

रावण जायउ जहि दिअहि दह मुह एक सरीरु।
चिताविय तइयहि जणणि कवणु पियावउ खीरु॥

५-**मेरुतुग**—आचार्य मेरुतुग का रचनाकाल सवत् १३६१ है। इन्होने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक एक प्रसिद्ध आख्यान-काव्य की रचना की, जिसमे अनेक पूर्ववर्ती राजाओ की कथाए दी गई है। सस्कृत का विख्यात ग्रन्थ 'भोज प्रबन्ध' भी इसी ढग की रचना है। प्रबन्ध-चिन्तामणि के आख्यानो मे यत्रतत्र पुरानी अपभ्रश के सवाद भी है। राजा भोज के चाचा महाराज मुज के दोहे अत्यन्त मार्मिक है। महाराज मुज ने तैलग देश के राजा तैलप को अनेक बार परास्त कर छोड दिया। किन्तु अन्तिम चढाई मे वे स्वय बन्दी बनाये जाकर पिंजरे मे डाल दिये गये। उसी अवस्था मे उनका तैलप की बहिन मृणालवतीसे प्रेम होगया'[1]। उनकी उक्त अवस्था व प्रेम के परिचायक कुछ दोहे 'प्रबन्ध-चिंतामणि' मे से आगे उद्धृत किये जाते है।

१— मृणालवती की प्रेरणा व प्रोत्साहन से ही तैलप महाराज मुज से कई बार लोहा लेने मे समर्थ हो सका। मृणालवती के हृदय मे पहले अपने भाई के शत्रु मुज के प्रति बडी भारी घृणा व द्वेष की भावनाए भरी हुई थीं। जब उसने मुज को कारागार के सीकचो मे बन्द कर अपमानित करना चाहा, तब मुज उस अवस्था मे भी—

१ एउ जम्मु नग्गुह गिउ, भडसिरि खग्गु न भग्गु ।
तिक्खा तुरियँ न माणियाँ, गोरी गलैं न लग्गु ॥
२ झाली तुट्टी कि न मुयउँ, किउ न हुएउँ छरपुंज ।
हिन्दइ दोरी बँधीयउ, जिम मकड तिम मुंज ॥१॥
३ बाह बिछोड़वि जिह तुहुँ, हउँ वइँ का दोसु ।
हिअयट्ठिय जइ नीसरहि, जानउ मुंज सरोसु ॥२॥

अभ्यास

१ सिद्धो व योगियो के साहित्य की भाषा, विषय, शैली व सिद्धान्तो का परिचय देकर स्पष्ट करे कि इस साहित्य का तात्कालिक व आगामी समाज तथा साहित्य पर क्या प्रभाव पडा ?

२ जैन-साहित्य की भाषा, विषय व शैली कैसी है ?

३ हेमचन्द्र, सोमप्रभ व मेरुतुङ्ग के साहित्य का सक्षिप्त परिचय दे ।

४ गोरखनाथ तथा सरहपा का रचनाकाल लिखकर इनकी भाषा का एक-एक उदाहरण दे ।

'सुखदु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' ॥

गीता के उक्त सिद्धान्तानुसार सदा प्रसन्न रहकर अपने सगीत की मधुर स्वर-लहरी से जन-मन को मुग्ध करते रहते । ऐसे लोकोत्तर चरित को देखकर ही मृणालवती मुज पर मुग्ध हो गई थी ।

आदि

चारणों का

वीर-गाथा-काल

(सं० १०५० से १३७५ तक)

चौथा अध्याय

वीरगाथात्मक तथा लोक-साहित्य

पूर्व-परिचय

विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी के मध्यभाग से हमारे देश-भाषा-साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ होता है। भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से यह साहित्य प्राचीन साहित्य से सर्वथा भिन्न है। भाषा ने अपना रूप बदला। उसने अपने पुराने प्राकृत के रूढिबन्धनो को तोड फेका और साथ ही सस्कृत के व्याकरण से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। अपना नाम भी अपभ्रश से बदल कर देश-भाषा रख लिया। आध्यात्मिक, दार्शनिक या धार्मिक विचार-धाराए स्वदेश-रक्षा, वीरता और शृगार के रूप मे प्रवाहित होने लगी। साहित्य की पुरानी नीरसता और उपदेशात्मकता जाती रही। उसका स्थान ले लिया वीर-दर्प और शृगार की कोमल भावनाओ ने। यह साहित्य केवल दोहो की दो पक्तियो के सीमित छन्दो या पदो मे न समाकर कवित्त, सवैया, त्रोटक, शार्दूलविक्रीडित आदि विविध वार्णिक वृत्तो व मात्रिक छन्दो मे निर्मित होने लगा। इस नवीन साहित्य की भाषा में सब से बडा परिवर्तन यह हुआ कि—पूर्वी या पश्चिमी प्रान्तो के स्थान पर राजस्थान की डिगल भाषा ने प्रमुख पद प्राप्त कर लिया।

डिगल और पिंगल—इस आदिकाल का आरम्भिक साहित्य अधिकतर डिंगल भाषा ही मे मिलता है। राजस्थान की शुद्ध भाषा को 'डिंगल' भाषा कहते है और जिसे आज व्रज भाषा कहते हैं, वही पहले 'पिंगल' नाम से पुकारी जाती थी। राजस्थान की भाषा को 'डिंगल' क्यो कहा जाता है—इस सम्बन्ध मे अनेक मतभेद हैं। कुछ विद्वान् इसकी व्युत्पत्ति 'डींग' शब्द से बताते है। कुछ कहते हैं कि यह शब्द 'डिम्' और 'गल' से बना है अर्थात् भगवान् शकर की वीर-रसात्मक डमरू की ध्वनि 'डिम्-डिम्' के आधार पर यह शब्द निर्मित हुआ है, क्योंकि डिंगल मे भी वीर भावनाए ही वर्णित हैं। किन्तु हमारी सम्मति मे इस शब्द को यौगिक या योगरूढ न मान कर केवल रूढ ही माना जाय तो ठीक है। उसके व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थों के चक्कर मे न पडना ही अच्छा है।

श्रीयुत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में डिंगल के केवल वीरगाथात्मक साहित्य को ही स्थान दिया है, उसके लोक-साहित्य को नही। उन्होने लिखा

है कि—"फुटकल रचनाओ का विचार छोडकर यहा वीरगाथात्मक रचनाओं का ही उल्लेख किया जाता है ।"

साहित्य के इतिहास मे फुटकर तथा अन्यान्य रचनाओ का उल्लेख क्यो न किया जाय इसका उन्होने कुछ भी कारण नही बताया । वास्तव मे सब प्रकार की साहित्यिक रचनाओ का उल्लेख होना ही चाहिए ।

भाषा के दो रूप—आदिकाल के साहित्य की भाषा दो प्रकार की मिलती है । एक तो प्राकृत की रूढियो में बँधी हुई—अपभ्र श से प्रभावित और दूसरी उक्त रूढियो से मुक्त—स्वच्छ देश-भाषा । इसका प्रमाण हमे विद्यापति और अमीर खुसरो की रचनाओ से मिलता है । अमीर खुसरो की स० १३५० के आस-पास की रचना का नमूना देखिए —

एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा ।
चारो ओर वह थाल फिरे, मोती उससे एक न गिरे ।।

ये कैसी सुन्दर और स्वस्थ निखरी हुई देश-भाषा लिख रहे है । किन्तु दूसरी ओर लगभग इनसे सौ वर्ष बाद मे होने वाले विद्वान् विद्यापति कवि कैसी अपभ्रष्ट भाषा लिखते है —

'रज्ज—लुद्ध असलान बुद्धि बिक्कम बले हारल ।
पास बइसि बिसवासि राय गयनेसर मारल' ।।

❀ ❀ ❀

'बालचन्द विज्जावइ भासा'

विद्यापति अपने शुद्ध सुन्दर नाम को भी बिगाडकर 'विज्जावइ' बना देने में गौरव का अनुभव करते है । दो प्रकार की भाषाओ का उल्लेख वे स्वय निम्न शब्दो में करते है —

'देसिलवयना सब जन मिट्ठा । ते तैसन जपओ अवहट्ठा ।।

यहा 'देसिलवयन' अर्थात् देश-भाषा और 'अवहट्ठा' अर्थात् अपभ्र श इन दोनो भाषाओ का स्पष्ट उल्लेख किया है । उन्होने अपनी रचनाए भी इन दोनो प्रकार की भाषाओ मे लिखी थी ।

उनकी 'कीर्तिलता' और कीर्तिपताका' अपभ्रंश में है और गीत या पदावली देश-भाषा मे । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ग्यारहवी शताब्दी के लगभग हमारी देश-भाषा घिस-घिसाकर, मँज-मँजाकर लगभग अपने वर्तमान रूप में आ गई थी । किन्तु कवि लोग पुरानी अपभ्रंश भाषा से लिखने मे ही अपना

महत्त्व समझते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि आदिकाल का—अपभ्रश से प्रभावित—साहित्य अपने समय की लोकभाषा का प्रतिनिधित्व नही करता था। वह केवल तात्कालिक लोक-भावनाओ का ही प्रतिनिधि था।

इस साहित्य के विभाग—आदिकाल का साहित्य **विषय की दृष्टि से**—दो भागो मे विभाजित है १—चारणो का वीर-रसात्मक-साहित्य और २—अन्यान्य कवियो का शृगार नीति आदि विविध विषयो का साहित्य।

शैली की दृष्टि से— उसे १—प्रबन्ध काव्य २—गीतकाव्य और ३—मुक्तक या फुटकर रचनाए—इन तीन भागो मे बाटा जा सकता है।

भाषा की दृष्टि से—'डिंगल' व 'पिंगल' इन दो भाषाओ मे यह साहित्य उपलब्ध होता है।

जिन पुस्तको के रचनाकाल मे सदेह है वे 'संदिग्ध' तथा जिनका रचनाकाल निश्चित है वे 'असदिग्ध' कहाती है।

इस काल का वीर-रसात्मक साहित्य प्राय 'रासो' नाम से व्यवहृत हुआ है। इस 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति रहस्य या रसायन से मानी जाती है। 'बीसलदेवरासो' में रासो के लिए 'रसायन' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, जो सर्वथा उचित है, क्योकि जिस प्रकार 'रसायन' निर्जीव और नि शक्त शरीर मे अपूर्व बल, वीर्य और पराक्रम का सचार कर देती है उसी प्रकार यह वीर-रसात्मक ग्रन्थ भी राष्ट्र के निर्बल प्राणो मे 'रसायन' की भाँति अपूर्व ओज और उत्साह का सचार कर देते थे। अत रासो की उत्पत्ति 'रसायन' ही से मानना युक्तियुक्त है।

प्रस्तुत साहित्य पर परिस्थितियों का प्रभाव—हमारा आदिकाल का साहित्य प्रधानतया वीरगाथात्मक रूप ही में क्यो लिखा गया, इस प्रश्न पर विचार करते हुए हमें सर्वप्रथम तात्कालिक राजनैतिक आदि परिस्थितियो का परिचय प्राप्त करना होगा।

हा, तो हम देखते है कि सम्राट् हर्षवर्धन के पश्चात् एकच्छत्र साम्राज्य-भावना देश से सर्वथा लुप्त हो गई थी। कोई भी ऐसा शक्तिशाली सम्राट् नही रह गया था जो विभिन्न प्रान्तो के छोटे-मोटे राजाओ को अपने अधीन रखकर उन्हे आपस मे लडने-भिडने से रोक सकता। फलत अपने शौर्य का प्रदर्शन करने के लिए या राज्य-विस्तार की भावना से ये राजा लोग सदा एक दूसरे पर चढाइया करते रहते थे। कभी कन्नौज के राठौर अजमेर के चौहानो पर चढ आते थे तो कभी चौहान गुजरात के चालुक्यो पर आक्रमण कर देते।

दूसरी ओर ८ वी शताब्दी से ही शनै -शनैः भारतवर्ष पर मुसलमानो के आक्रमण आरभ हो गये थे। मुहम्मद बिन कासिम ८वी शताब्दी मे सिंध के महा-

राज दाहर को पराभूत करने में समर्थ हो गया था। उसके बाद भी ऐसे आक्रमण प्राय होते रहे थे। इस प्रकार ८ वी शताब्दी से १४ वी शताब्दी तक उत्तर भारतीय राजनैतिक वातावरण बडा ही विक्षुब्ध रहा। एक ओर इन राजाओ के आतरिक सघर्ष चल रहे थे, दूसरी ओर विदेशी यवन-आक्रमणकारियो का ताता-सा लगा रहता, अत उस समय का वायुमडल वीरता से ओत-प्रोत हो गया। ऐसी परिस्थितियो मे हमारे हिंदी-साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। प्रत्येक देश का साहित्य अपने समय की परिस्थितियो से सदा प्रभावित होता है, वह तात्कालिक परिस्थितियो और चित्त-वृत्तियो को अपने आप मे प्रतिबिम्बित करता है इसलिए हमारे आरभिक हिंदी-साहित्य ने प्रधानतया वीरगाथात्मक रूप मे ही प्रथम दर्शन दिये। उस समय यह वीरता भारत के विविध प्रातो से सिमिट कर केवल राजस्थान या मेवाड ही मे आ बैठी थी, अत इस साहित्य का निर्माण अधिकतर राजस्थानी डिंगल भाषा में राजस्थान मे हुआ। सर्वप्रथम देश-भाषा हिंदी (डिंगल) की रचना 'खुमानरासो' उपस्थित करने का श्रेय महामहिमशालिनी वीर-प्रसू मेवाड-भूमि को प्राप्त हुआ।

इस साहित्य के सबध मे इतनी आवश्यक चर्चा कर लेने के पश्चात् इसका सक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

ग्रथकार

दलपतिविजय का खुमानरासो—इस ग्रथ मे भगवान् रामचन्द्र से लेकर महाराणा प्रताप तक का सक्षिप्त और चित्तौड के महाराणा खुमान द्वितीय की वीरता का विस्तृत वर्णन है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कर्नल टाड ने भ्रम से तीनो खुमानो को एक ही मान लिया है, पर वास्तव मे खुमान नाम से चित्तौड के महाराणा एक नही प्रत्युत तीन हुए थे, जिनका शासन-काल स० ८१० से ९९० माना गया है। प्रस्तुत पुस्तक मे बगदाद के खलीफा अलमामू के साथ खुमान के युद्धो का वर्णन है। यह खलीफा सवत् ८७० से ८९० तक विद्यमान था। इधर उस समय चित्तौड मे खुमान द्वितीय शासन कर रहा था। अत यह निश्चित है कि खुमानरासो का नायक महाराणा खुमान द्वितीय ही है। इस ग्रथ मे महाराणा प्रताप तक का वर्णन है इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस पुस्तक को वर्तमान रूप विक्रम की सत्रहवी शताब्दी मे प्राप्त हुआ होगा। यह संदिग्ध है कि इसका कितना अश प्राचीन है। यह भी निश्चित नही है कि दलपत-विजय मूल-पुस्तक के लेखक का नाम है या सत्रहवी शताब्दी के उस लेखक का

जिसने इसे वर्तमान रूप दिया । इसकी रचना-शैली का एक नमूना देखिए.—

आव भाव अबाव, भगति कीजे भारत्ति ।
जाग जाग जगदंब, सन्त सानिध सकत्ति ।।
सुप्रसन्न होय सुरराय, बयण वाचावर दीजे ।
बालक बेलें बाँह, प्रीत भर प्यालो पीजे ।।

नरपति नल्ह का बीसलदेवरासो—इस रचना मे अजमेर के महाराज विग्रहराज चतुर्थ उपनाम बीसलदेव का वर्णन है। सौ पृष्ठ की यह छोटी-सी पुस्तक चार खंडो मे विभक्त है । प्रथम खड मे मालवा के परमार वशज महाराजा भोज की पुत्री राजमती से बीसलदेव का विवाह, द्वितीय खड मे राजमती के व्यग्य पर बीसलदेव का उडीसा-प्रस्थान, तृतीय मे राजमती का विरह-वर्णन और बाद में बीसलदेव का उडीसा से वापस लौट आना व चतुर्थ खड मे राजमती का अपने मायके चले जाना और बीसलदेव का उसे वापस अजमेर ले आना वर्णित है ।

इस प्रकार इन घटनाओ के आधार पर कह सकते है कि यह ग्रथ एक वीर काव्य न होकर प्रेमपूर्ण गीत-काव्य है । श्रृगार रस के सयोग और वियोग दोनो पक्षो का प्रदर्शन करने के लिए ही इस पुस्तक की रचना की गई थी । पुस्तक में लेखक ने स्वय इसका निम्नलिखित रचनाकाल दे रखा है.—

बारह सै बहोत्तरा मझारि, जेठ बदी नवमी बुधवारि ।
नाल्ह रसायन आरम्भही, शारदा तुठी ब्रह्मकुमारि ।

अर्थात् सवत् १२१२ की ज्येष्ठ वदी नवमी बुधवार को नरपति नल्ह कवि ने बीसलदेवरासो की रचना आरम्भ की। सवत् १२१२ का पचाग बनाने पर ज्येष्ठ बदी नवमी को बुधवार ही पडता है । बीसलदेव के शिलालेख भी स० १२१० से सवत् १२२० तक के प्राप्त होते है । लेखक ने सर्वत्र वर्तमान काल का प्रयोग किया है । इन चार कारणो से स्पष्ट सिद्ध होता है कि नरपति नल्ह अपने आश्रयदाता महाराजा बीसलदेव का समसामयिक रहा होगा और यह ग्रथ भी अवश्य ही स० १२१२ में ही लिखा गया होगा। किंतु निम्न कारणों से इसके रचनाकाल के सबन्ध मे भी कुछ सदेह प्रकट किया गया है —

१ इसमें बीसलदेव का विवाह धार के भोज की पुत्री राजमती से बताया गया है, किन्तु बीसलदेव से लगभग सौ वर्ष पूर्व ही महाराजा भोज की मृत्यु हो चुकी थी। ऐसी अवस्था मे कोई भी समसामयिक लेखक ऐसी इतिहास-विरुद्ध घटना नही लिख सकता।

२ बीसलदेव एक बडे पराक्रमी योद्धा थे। उन्होने कई बार मुसलमानो को नाको-चने चबवाये और दिल्ली व हासी* के प्रदेशो को अपने राज्य मे मिलाया। ऐसे वीर पुरुष की वीरता का इसमे कही उल्लेख भी नही है। यदि यह रचना बीसलदेव के समय की होती तो अवश्य इसमे कही न कही उनकी वीरता का भी दिग्दर्शन होता। साथ ही बीसलदेव जैसे युद्धरत राजा के लिए यह असम्भव-सी बात है कि वह अपनी रानी से रूठ कर लम्बे समय तक उडीसा जैसे सुदूर प्रात मे जाकर रहे।

डा० रामकुमार वर्मा और बीसलदेवरासो — डाक्टर साहब ने धार के परमार-वशज राजा भोज की लडकी राजमती से बीसलदेव का विवाह सिद्ध करने के लिए इस काव्य के नायक बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) का समय स० १०५८ मान लिया है। इस सबध मे वे लिखते है —

'बीसलदेव का काल-निर्णय हमे इतिहास मे इस प्रकार मिलता है—जैपाल जो नवम्बर १००१ मे पुन सुल्तान महमूद से पराजित हुआ था आत्मघात कर मर गया। उसका पुत्र अनगपाल उत्तराधिकारी हुआ, जो अपने पिता की भांति अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के नेतृत्व मे हिन्दूशक्तियो के सघ मे सम्मिलित हुआ। अतएव बीसलदेव का समय सन् १००१ (स० १०५८) माना जाना चाहिए। बीसलदेवरासो मे वर्णित धार के राजा भोज जिन्होने अपनी पुत्री राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ किया था, का भी इसी समय मे होने का प्रमाण मिलता है।

मुज का भतीजा यशस्वी भोज तत्कालीन मालवा की राजधानी धार के राज्यासन पर लगभग स० १०७५ मे आसीन हुआ और उसने चालीस वर्ष से अधिक प्रतापशाली राज्य किया। गौरीशकर हीराचद जी ओझा के अनुसार बीसलदेव का समय स० १०३० से १०५६ माना गया है। और राजा भोज का राजसिंहासनासीन होना स० १०५५। अतएव यह निश्चित होता है कि बीसलदेव का समय विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी है। नल्ह ने अपने रासो को भी उसी समय लिखा क्योकि ग्रथ मे जहा क्रिया का प्रयोग वर्तमान-काल मे किया गया है वहाँ 'कहइ', 'वसइ', इत्यादि क्रियाओ के रूप समय की घटनाओ के अनुसार ही घटित होते है।

इन सब बातो को दृष्टि मे रखते हुए एक कठिनाई सामने आती है। नल्ह अपनी पुस्तक-रचना की तिथि इस प्रकार देता है —

*कुछ इतिहासकारो ने भ्रम से 'झासी' लिख दिया है।

"बारह सै बहोत्तरा हा मँझारि,
माघ सुदी नवमी बुधवारि" ।

मिश्रबन्धुओ ने इसे स० १२२०, लाला सीताराम ने १२७२ तथा सत्यजीवन वर्मा ने १२१२ माना है। प० रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे स० १२१२ माना है। यदि गौरीशकर हीराचन्द ओझा के अनुसार बीसलदेव का काल स० १०३० से १०५६ मान लिया जाय तो बीसलदेवरासो की रचना १५६ वर्ष बाद होती है। ऐसी स्थिति मे लेखक का वर्तमान काल मे लिखना समीचीन नही जान पडता। अतएव या तो बीसलदेव का काल जो विनसेट स्मिथ और गौरीशकर हीराचन्द ओझा द्वारा निर्धारित किया गया है, अशुद्ध मानना चाहिए, अथवा बीसलदेवरासो मे वर्णित इस 'बारह सै बहोत्तराँ हा मंझारि' वाली तिथि को[1] ।'

इसके आगे डाक्टर साहब ने बीसलदेव रासो के दो रूपान्तरो का उल्लेख किया है और कहा है कि एक प्राचीन रूपान्तर १०७३ का भी मिला है। इस प्रकार भोज की पुत्री से विग्रहराज चतुर्थ का विवाह सिद्ध करने के लिए अनेक क्लिष्ट कल्पनाए की और बीसलदेव को तथा बीसलदेवरासो को भोज (स० १०२६ से १०९०) का समकालीन ठहराने का प्रयत्न किया। किन्तु उक्त कथन से कुछ पृष्ठ पूर्व ही डाक्टर साहब अपने इसी इतिहास मे बीसलदेव का समय स० १२१० से १२२० तक स्पष्ट सिद्ध और स्वीकार कर चुके है। वे काश्मीरी कवि जयानक रचित पृथ्वीराज-विजय काव्य की प्रामाणिकता को प्रकट करते हुए लिखते है कि—

"गुजरात के इतिहास में हेमचन्द्र कृत 'द्वयाश्रय कोष' तथा अन्य इतिहास जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल का अर्णोराज के विरुद्ध सफल युद्ध करने का वर्णन करते है। चित्तौरगढ शिला-लेख सिद्ध करता है कि इस युद्ध की समाप्ति स० १२०७ (सन् ११४९–५०) या उसके कुछ ही पूर्व हुई। अर्णोराज के द्वितीय पुत्र विग्रहराज चतुर्थ या बीसलदेव के अजमेर शिला-लेख (स० १२१०) से ज्ञात होता है कि उसकी (अर्णोराज) की मृत्यु स० १२०७ और १२१० के बीच मे अवश्य हुई होगी [2]।"

इस प्रकार एक ही बीसलदेव का समय एक ओर तो स० १२०० के पश्चात् और दूसरी ओर स० १०५८ के बाद माना गया है। ये दोनो कथन परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते है।

---

[1] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २०८ से २०९

[2] आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ २०३

चौहान वश के महाराजाओ का नाम-साम्य ही इस विरोध का कारण दिखाई देता है। जो बीसलदेव या विग्रहराज स० १०५८ मे विद्यमान था वह विग्रराज तृतीय है। और स० १२१० के लगभग विग्रहराज चतुर्थ विद्यमान थे। अब विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि बीसलदेव रासो का नायक विग्रहराज तृतीय है या चतुर्थ। आचार्य शुक्ल जी आदि कई एक प्रसिद्ध इतिहासकारो ने विग्रहराज चतुर्थ को ही इसका नायक प्रमाणित किया है। डा० रामकुमार वर्मा ने इस सम्बन्ध मे कुछ भी विचार व्यक्त नही किया। और न कही विभिन्न विग्रह-राजो की सत्ता का सकेत ही किया है। इसलिए वे विग्रहराज-तृतीय को ही बीसलदेवरासो का नायक मानते दिखाई देते है। किन्तु इस अवस्था मे भी नरपति नल्ह को वे बीसलदेव का समसामयिक सिद्ध नही कर पाये। इधर कवि ने सर्वत्र वर्तमान काल का प्रयोग किया है। लेखक को बीसलदेव का समसामयिक न मानने पर वर्तमान-काल का प्रयोग व्यर्थ हो जाता है। इस प्रकार डा० रामकुमार वर्मा के विचार कुछ परिपुष्ट प्रतीत नही होते। ऐसा लगता है कि उन्होने अन्यान्य बातो पर विशेष विचार किए बिना चारो मे से एक बीसलदेव को भोज का समकालीन सिद्ध कर दिया जिससे बीसलदेव रासो मे वर्णित भोज की लडकी राजमती के साथ बीसलदेव का विवाह किसी प्रकार सम्भव हो जाय। ऐसा करने से जो अन्य अनेक ऐतिहासिक विषमताए उपस्थित हो गईं, उन पर कुछ भी ध्यान नही दिया गया।

बीसलदेवरासो का नायक अजमेर का महाराजा है। विग्रहराज तृतीय के समय (स० १०५८) मे तो अजमेर बसा भी नही था। इस तृतीय विग्रहराज के वशज महाराज अजयराज ने अजमेर नगर बसाया और अजयराज के पुत्र तथा विग्रहराज चतुर्थ के पिता महाराज अर्णोराज ने अजमेर के पास आनासागर नामक एक झील बनवाई। बीसलदेवरासो मे इस आनासागर झील का भी वर्णन है। अत स्पष्ट है कि बीसलदेवरासो मे स० १२१० से शासन करने वाले अजमेर के महाराज विग्रहराज चतुर्थ का वर्णन है न कि स० १०५८ मे विद्यमान विग्रहराज तृतीय का।

हमारा पक्ष—उक्त अनेक विवादास्पद विषयो पर पर्याप्त ऊहापोह करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है—

१ बीसलदेवरासो का चरित-नायक वही विग्रराज चतुर्थ उपनाम बीसलदेव है जिसका शासन-काल १२१० से १२२० तक था।

२ बीसलदेवरासो के रचयिता नरपति नल्ह ने स० १२१२ ज्येष्ठ वदी

नवमी बुधवार को ही इस पुस्तक की रचना आरम्भ की थी।

३ राजा भोज की लडकी राजमती से बीसलदेव का विवाह होना भी सर्वथा सभव है, किन्तु यह भोज धार के परमार-वशज महाराज भोज नही प्रत्युत जैसल-मेर नगर के बसाने वाले महाराज जयसल देव के भतीजे रावल भोजदेव थे जिनका समय स० १२०५ के पश्चात् आरम्भ होता है। ये भोजदेव सुल्तान शहाबुद्दीन गौरी के सेनापति मजेज खा के साथ लडते-लडते युद्ध मे काम आये थे। इस घटना का वर्णन निम्न दोहे मे मिलता है—

तोडा धड तुरकाण री, मोडो खान मजेज।
दाखै अनमी 'भोजदे' जादम करै न जेज॥

बीसलदेवरासो में कवि ने स्वय राजमती को कई स्थानो पर जैसलमेर की राजकुमारी भी कहा है। जैसे कि—

क. 'जनमी गोरी तू जैसलमेर'
परणी आव गढ अजमेर'[1]

ख. 'गोरडी जैसलमेर की, आदि

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि राजमती जैसलमेर के महाराव भोजदेव की पुत्री थी न कि धार के प्रसिद्ध महाराज भोज की। मूल पुस्तक के लेखक ने अनेक स्थानो पर इसका स्पष्ट उल्लेख भी कर दिया था। किन्तु परवर्ती प्रक्षेपकार चारणो ने इसमें अपना प्रक्षिप्त पाठ मिलाते समय नामसाम्य के कारण प्रसिद्ध भोज ही को राजमती का पिता मानकर उसके वर्णन के अश बाद मे मिला दिये। इस प्रकार जैसलमेर आदि नगरो के नामो का इस पुस्तक मे आ जाना भी कुछ इतिहास-विरुद्ध नही प्रतीत होता। द्वितीय और तृतीय खण्ड मे सर्वत्र राजमती को जैसलमेर और मारवाड की राजकुमारी ही कहा है। प्रथम और चतुर्थ खण्ड मे वह धार के राजा की पुत्री कही गई है। इसका चौथा खड तो अनेक उपलब्ध प्रतियो मे है ही नही, तृतीय खण्ड पर ही कथा समाप्त हो जाती है। अत चतुर्थ खण्ड तो पूरा का पूरा प्रक्षिप्त है ही, प्रथम खण्ड का भी पर्याप्त अश परवर्ती लेखको की कल्पना से उत्पन्न प्रतीत होता है।

४ लेखक ने इस पुस्तक को इतिहास या वशावली के रूप मे नही प्रत्युत सरस कल्पनात्मक काव्य के रूप मे लिखा था। अत इसमें वीरता के वर्णन की उपेक्षा भी कुछ विशेष महत्त्व नही रखती।

५ महाराज बीसलदेव का उडीसा-प्रस्थान, जगन्नाथपुरी की तीर्थयात्रा व

---

[1] बीसलदेवरासो पृष्ठ ३४

वहा के राजा के निमन्त्रण या दिग्विजय की भावना से हुआ था जिसको विरह-वर्णन के उद्देश्य से कवि ने अपनी कल्पना की पुट देकर विप्रलम्भ शृगार के लिए उपयुक्त नवीन रूप दे दिया ।

उक्त प्रमाणो के आधार पर हम कह सकते है कि पर्याप्त प्रक्षिप्त पाठो से परिपूर्ण होने पर भी प्रस्तुत रचना अपने मूल रूप मे स० १२१२ मे ही लिखी गई थी, भले ही उसका वर्तमान रूप सोलहवी शताब्दी मे निर्मित हुआ हो। बीसलदेवरासो की कुछ कविताए नीचे दी जाती है—

१ "गरबि न बोलो हो साँभरया-राव ।
तो सरीखा घणा ओर भुवाल ॥
एक उडीसा को धणी ।
बचन हमारइ तू मानि जु मानि ॥
ज्यू थारइ साँभर उग्गहइ ।
राजा उणि घरि उगहइ हीरा-खान ॥"

२ कुँवरि कहइ "सुणि, साँभरया-राव ।
काई स्वामी तू उलगइँ जाइ ?
कहेउ हमारउ जइ सुणउ ।
थारइ छइ साठि अँतेवरि नारि" ॥
"कडवा बोल न बोलिस नारि ।
तू मो मेल्हसी चित्त बिसारि" ॥
जीभ न जीभ बिगोयनो ।
दव का दाधा कुपली मेल्हइ ॥
जीभ का दाधा नू पाँगुरइ ।
नाल्ह कहइ सुणीजइ सब कोइ ॥

३ त्री जन्म काइ दीयौ हो महेस ?
अवर जनम थारे घणा हो नरेस ।
रानह न सिरजी हरिणली ।
सूरह न सिरजी धीणु गाई ।
वनषड काली कोईली ।
बइसती अब कइ चप की डालि ॥
बइसती दाख बीजोरडी ।
इणि दुख झूरइ अबला बालि ॥

चन्दवरदाई का पृथ्वीराजरासो—कहा जाता है कि चन्दवरदाई लाहौर के भट्टवशज ब्राह्मण थे। यह अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के सामत, सखा और राजकवि थे। इन दोनो का जन्म और मरण एक ही दिन व एक ही समय हुआ था। आकार-प्रकार, वेश-भूषा, भाषा आदि मे भी दोनो एक दूसरे से सर्वथा मिलते-जुलते थे। चद ने तो यहा तक लिखा है कि लोग हम दोनो को पहचान भी नही सकते थे कि कौन चन्दवरदाई है और कौन पृथ्वीराज। इन दोनो अर्थात् चरित-नायक और चरित-लेखको का व्यक्तित्व भारतीय इतिहास मे अपना विशेष महत्त्व रखता है। महाराज पृथ्वीराज अन्तिम हिन्दू सम्राट् या यो कहे कि हिन्दू जगत् के अस्तमन-वेला के सूर्य थे और चन्दवरदाई हिन्दी जगत् के उदयकालीन चन्द्र। इस प्रकार उस सधि-वेला मे इन दोनो—अपने-अपने क्षेत्र के सूर्य और चन्द्र—की एक साथ उपस्थिति एक बडी ही मनोहर और स्वाभाविक घटना प्रतीत होती है।

चन्दवरदाई ने अपने आश्रयदाता महाराज पृथ्वीराज के यशोगान के लिए हिन्दी के आदि महाकाव्य "पृथ्वीराजरासो" की रचना की। यह ७२ समयो या सर्गों मे विभक्त कई हजार पृष्ठो का विशाल महाकाव्य है। काशीनागरी-प्रचारिणी-सभा ने इसका सर्वप्रथम सम्पादन और प्रकाशन कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इसका सक्षिप्त कथानक यो है —

इसमें आबू के अग्निकुण्ड से चौहान आदि चार क्षत्रिय कुलो की उत्पत्ति से लेकर महाराज पृथ्वीराज की मृत्यु तक का विस्तृत वर्णन है। इसमे लिखा है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के राजा अनगपाल की कन्या कमला से हुआ था। उसी से पृथ्वीराज उत्पन्न हुए। अनगपाल की दूसरी कन्या "सुन्दरी" का विवाह कन्नौज के महाराज विजयपाल से हुआ जिनके पुत्र जयचन्द हुए। इस प्रकार जयचन्द और पृथ्वीराज आपस मे मासी के बेटे भाई सिद्ध होते हैं। इधर अनगपाल ने अपने दौहित्र पृथ्वीराज को गोद ले लिया। इस प्रकार वे दिल्ली और अजमेर के सयुक्त शासक बन गये। इस पर चिढ कर जयचन्द ने राजसूय यज्ञ और सयोगिता के स्वयवर की तैयारी की जिसमे पृथ्वीराज को नही बुलाया गया। इस अपमान से क्रुद्ध हो पृथ्वीराज ने सयोगिता का हरण कर लिया। फलत जयचन्द तथा उसके सहयोगी कालिंजर के महाराज परमर्दीदेव के साथ पृथ्वीराज के कई युद्ध होते रहे। इधर शहाबुद्दीन गौरी ने अवसर पाकर भारत पर चढाई कर दी। पहले तो वह अनेको वार परास्त हुआ, परन्तु अन्त में वह पृथ्वीराज को हराकर कैदी बनाकर गज़नी ले गया। वहा एक दिन चन्द

के सकेत से शब्दवेधी बाण द्वारा पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को मार डाला और अन्त मे चन्द और पृथ्वीराज दोनो एक दूसरे को मारकर अपनी ससार-लीला को समाप्त कर गये ।

प्राचीन काव्य-लेखको की यह परिपाटी-सी रही है कि वे युद्ध का कारण प्राय स्त्रियो को ही बताते थे । शहाबुद्दीन की भारत पर चढाई के लिए भी कोई राजनैतिक कारण न दिखलाकर एक स्त्री को ही कारण बताया गया है और लिखा है कि शहाबुद्दीन किसी सुन्दरी को चाहता था, परन्तु वह अपने प्रेमी हुसेनशाह के साथ पृथ्वीराज के यहाँ आ पहुँची । शहाबुद्दीन के माँगने पर पृथ्वीराज ने शरणागत की रक्षा के विचार से उन्हे वापस नही लौटाया । फलत शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज पर चढाई कर दी ।

रासो की भाषा—पृथ्वीराजरासो की भाषा प्राय राजस्थानी ही है अत इसे भी 'डिंगल' भाषा का महाकाव्य कहा जा सकता है । इसमे बोल-चाल की अपेक्षा साहित्यिक राजस्थानी व ब्रजभाषा का पर्याप्त पुट मिलता है । पृथ्वीराजरासो जिस भाषा मे लिखा गया है वह अपने समय की सुन्दर, सुव्यवस्थित साहित्यिक भाषा का उत्कृष्ट उदाहरण है । यह बात दूसरी है कि समय-समय पर होने वाले प्रक्षेपो के कारण इसकी भाषा मे अनेकरूपता आ गई हो, पर उसे मूलरूप मे डिगल भाषा ही कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

शैली—शैली की दृष्टि से विचार करने पर पृथ्वीराजरासो को हम एक 'प्रबन्ध महाकाव्य' के रूप मे रख सकते है । इसमे अपने समय मे प्रचलित कवित्त, छप्पय, दूहा, तोमर, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, त्रोटक, गाहा और आर्या आदि अनेको मात्रिक व वार्णिक छदो का प्रयोग किया गया है । प्रधान रस वीर और श्रृङ्गार हैं, तथा बीच-बीच मे अन्य रसो का समावेश भी हुआ है । मुख्य कथानक के साथ-साथ अनेको उपकथाए भी प्राय चलती है । इसका नायक भी प्रख्यात है । इस प्रकार महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण घटित हो जाने के कारण 'पृथ्वीराजरासो' अवश्य ही हिन्दी का एक सुन्दर और उपादेय प्रथम महाकाव्य कहलाने का अधिकारी है ।

संदिग्ध रचना—इसके रचनाकाल के सम्बन्ध मे वर्तमान मे विभिन्न मत-भेद प्रकट किये जा रहे है, जिन पर यहा सक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है ।

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक यह ग्रन्थ सर्वथा प्रामाणिक ऐतिहासिक रचना के रूप मे स्वीकार किया जाता रहा, किन्तु इधर कुछ समय से इसकी प्रामाणिकता व ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवाद उठ खडा हुआ है ।

श्रीयुत महामहोपाध्याय श्यामलदास व श्रीयुत रायबहादुर महामहोपाध्याय प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा सरीखे विख्यात ऐतिहासिक विद्वानो ने कई एक अकाट्य प्रमाणो द्वारा इसे अप्रामाणिक या सदिग्ध सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । जैसे कि :—

(१) इसमे दिये गये सवत् सर्वथा असत्य है, क्योकि इसमे पृथ्वीराज का जन्म ११**१५** मे, दिल्ली मे गोद आना ११२२ मे और कन्नौज पर आक्रमण ११५१ में तथा शहाबुद्दीन के साथ युद्ध ११५८ मे बताया गया है, किन्तु पृथ्वीराज के चार, जयचन्द के बारह और परमर्दी देव के छ प्राप्त शिलालेखो मे पृथ्वीराज का समय सवत् १२२४ से १२५८ तक का दिया हुआ है, फारसी की तवारीखो (इतिहासो) मे भी शहाबुद्दीन का पृथ्वीराज पर आक्रमण सवत् १२४८ मे ही लिखा ह । ऐसी अवस्था मे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराजरासो में दिये गये सवत् सर्वथा असत्य है । ऐसा असत्य समय लिखने से सौ वर्ष पहले ही भारत मे मुसलमानो के राज्य की स्थापना सिद्ध हो जाती है—या यो कहे कि भारत की पराधीनता सौ वर्ष पूर्व ही आरभ हो जाती है ।

(२) पृथ्वीराजरासो मे दी गई घटनाएँ भी सर्वथा कपोलकल्पित तथा असत्य हैं, क्योकि हाँसी के शिलालेख और काश्मीरी कवि जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' नामक सस्कृत महाकाव्य के आधार पर कहा जा सकता है कि न तो सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के राजा अनगपाल की लडकी से हुआ था और न जयचन्द ही पृथ्वीराज का मौसेरा भाई था । इनका आपस में किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न था । साथ ही पृथ्वीराज का अपने नाना के गोद जाना भी कल्पनामात्र है । इसके अतिरिक्त आबू के अग्निकुण्ड से चार क्षत्रिय कुलो की उत्पत्ति की कथा भी ऐतिहासिक नही कही जा सकती, क्योकि चौहान, सोलकी आदि राजपूत अपने आप को सूर्य या चन्द्रवशी ही कहते हैं न कि अग्निवशी । शहाबुद्दीन भी पृथ्वीराज के हाथो शब्दवेधी बाण से नही मारा गया था । इसी प्रकार और भी कई अनैतिहासिक घटनाएँ इस ग्रन्थ मे भरी पडी हैं ।

(३) इसमें दिये गये व्यक्तियो के नाम भी ठीक नही है, क्योकि पृथ्वीराज-रासो में पृथ्वीराज की माता का नाम 'कमला देवी' दिया गया है, किन्तु "पृथ्वीराज विजय" काव्य तथा शिलालेखो में उसका नाम 'कर्पूर देवी' मिलता है ।

(४) पृथ्वीराज से बहुत समय पश्चात् होने वाले चगेजखाँ, तैमूरलग आदि अनेको व्यक्तियो के नाम भी इसमे पाये जाते हैं ।

(५) भाषा की दृष्टि से भी प्रस्तुत पुस्तक का पुरानापन प्रमाणित नही होता, क्योकि अनेक स्थानो पर भाषा नये साचे मे ढली हुई दिखाई देती है और शब्दो के अनुस्वारात रूपो की भरमार कर उनका रूप ऐसा विकृत किया गया है कि भाषा का वास्तविक प्राचीन रूप कही-कही दिखाई देता है ।

(६) पृथ्वीराज के दरबार में रहने वाले काश्मीरी कवि जयानक ने अपने "पृथ्वीराज विजय" काव्य मे पृथ्वीराज के दरबारी कवियो की गणना करते हुए चन्दवरदाई का कही नाम नही लिखा । यदि चन्द उसका राजकवि होता तो जयानक उसका नाम भी अवश्य लिखता ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ओझाजी ने 'पृथ्वीराजरासो' को एक सर्वथा अप्रामाणिक सोलहवी शताब्दी मे रचा हुआ 'भाट भणन्त' मात्र सिद्ध किया है ।

ओझाजी के सिद्धांतो का खडन—इसके विपरीत अनेक विद्वानो ने उक्त युक्तियो का खडन कर 'पृथ्वीराजरासो' को प्रामाणिक ठहराने का प्रयत्न किया । इन विद्वानो मे उदयपुर के मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या, काशी के श्री डा० श्यामसुन्दरदास जी बी ए और सोलन के महामहोपाध्याय राजगुरु श्री प० मथुरा-प्रसाद जी दीक्षित विशेष उल्लेखनीय है ।

मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने सवतो के सबध मे बतलाया कि पृथ्वीराज-रासो मे दिये गये सवतो मे सच्चे सवतो से लगभग ९०-९१ वर्षों का अन्तर पडता है, सो ऐसा जान-बूझ कर हुआ है, क्योकि—

'एकादस सै पचदह, विक्रम साक अनद ।
तिहि रिपुजय पुरहरन को भए पृथिराज नरिन्द' ॥

उक्त दोहे मे 'अनद' शब्द का अर्थ—अ=शून्य, नन्द=नौ अर्थात् नव्वे (वर्ष कम) किया गया है । किंतु इस सबध मे विचारणीय बात यह है कि—प्रथम तो 'अनद' का अर्थ ९० हो नही सकता, फिर भी यदि 'वादीतोष न्याय' से यह अर्थ मान भी लिया जाय तो भी 'वर्ष' और 'कम' किन शब्दो के अर्थ है ? केवल 'नव्वे' कहने से ही तो कुछ काम नही चल सकता और दूसरी बात यह है कि किसी प्रच-लित सवत् मे से नव्वे वर्ष कम क्यो किये जायँ ? 'नन्दो' के शूद्र राज्य के नव्वे वर्षों को भाटो ने द्वेषवश अपने सवत् मे से निकाल दिया, यह कहना तो बडा ही हास्या-स्पद है । क्योकि एक तो आज तक ऐसा कभी हुआ नही, और दूसरे नन्दो का राज्य विक्रम से पूर्व ही समाप्त हो चुका था, इसलिए उनके नव्वे वर्षों की विक्रम सवत् में से निकालने की कल्पना सर्वथा अमान्य ही है । साथ ही सवतो के अतिरिक्त

अधिकाश घटनाएँ जो इतिहास-विरुद्ध भरी पडी है, उनका कुछ भी सतोषजनक समाधान नही किया जा सकता। इसी प्रकार डा० श्यामसुन्दरदास जी ने भी कोई बुद्धिग्राह्य अकाट्य तर्क रासो के पक्ष मे उपस्थित नही किया। उनके कथन का सार भी यही है कि महाभारत और पुराणो की भाँति पृथ्वीराजरासो मे भी समय-समय पर बहुत कुछ प्रक्षेप होता रहा अत उसमे नवीन नाम व अनैतिहासिक घटनाए आ गई। असली व प्राचीन पृथ्वीराजरासो अवश्य पृथ्वीराज के समय मे बना होगा।

रासो के विभिन्न चार रूपान्तर—इधर कुछ दिनो से पृथ्वीराजरासो के चार विभिन्न निम्न रूपो की चर्चा चल रही है—

१ **बृहत् रूपान्तर**—इसकी प्रतिया उदयपुर मे है। नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सस्करण भी इसी रूपान्तर का है। इसमे कथा-प्रसग और वर्णन-विस्तार सबसे अधिक है। इसकी उपलब्ध सबसे प्राचीन प्रति सवत् १७६० की है। श्री प० मोतीलाल जी मनोरिया इसी प्रति को सबसे प्राचीन मानते है।

२ **मध्यम रूपान्तर**—अबोहर और पजाब यूनिवर्सिटी के औरियन्टल कालेज लाहौर-पुस्तकालय मे सुरक्षित प्रतियाँ इस मध्यम रूपान्तर की है। सोलन के श्री महामहोपाध्याय प० मथुरा प्रसादजी दीक्षित ने इसके कुछ अश का सम्यक् सपादन व भाष्य कर प्रकाशित भी करवाया। आपके कथनानुसार इसमें सात हजार ('आर्या' छन्द के हिसाब से) पाठ है। इसकी प्राचीनतम प्रति के लिए कहा जाता है कि वह सवत १६७३ की लिखी हुई है।

३ **लघुरूपान्तर**—इसकी प्रतिलिपियाँ बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में है। श्री नरोत्तम स्वामी आदि विद्वानो ने इसकी पर्याप्त चर्चा की है।

४ **लघुतम रूपान्तर**—इसकी केवल एक प्रति गुजरात के धारणोज गाव से श्री मुनिजिनविजयजी सूरी को प्राप्त हुई।

पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता का निर्णय करने के लिए मै दोनो पक्षो के प्रमुख विद्वानो—श्री महामहोपाध्याय प० गौरीशकर हीराचन्द जी ओझा और श्री महामहोपाध्याय राजगुरु प० मथुराप्रसाद जी दीक्षित से मिलता और प्रयत्न करता रहा कि दोनो पक्षो को भली भाति सुनकर किसी एक सत्य निर्णय पर पहुँचा जाय। ओझा जी ने अपनी पूर्वोक्त तथा कुछ एक अन्य युक्तिया देकर इसे पूरी तरह अप्रामाणिक ही ठहराया। किन्तु श्री दीक्षित जी ने बताया कि औरियटल कालेज लाहौर का पृथ्वीराजरासो का मध्यम रूपान्तर अवश्य ही चन्दवरदाई का बना हुआ प्रतीत होता है और चन्दवरदाई निश्चित रूप से महाराज

पृथ्वीराज के राजकवि इत्यादि थे। दीक्षित जी ने मुझे उक्त सम्पूर्ण प्रति की फोटो-पुस्तक भी दिखाई। उक्त फोटो-पृष्ठो को देखने से उसकी लिपि व कागज पर्याप्त पुराने प्रतीत होते थे। उसमे न तो कही कोई सवत् ही दिया गया है और न तैमूर, चगेज इत्यादि पृथ्वीराज के परवर्ती व्यक्तियो के नाम ही। साथ ही इसकी पाठ-सख्या भी पूरी ७,००० है। इस सम्बन्ध मे चन्दवरदाई ने पृथ्वीराजरासो में स्पष्ट रूप से लिखा भी है कि—

सत्तसहस नष शिष सरिस, सकल आदि शुभ दिष्ष।
घटि बढि मत्तह कोह पढै, मुहि दूसन न विसिष्ष ॥

अर्थात् पृथ्वीराजरासो की पाठ सख्या ७,००० श्लोक है, इसे कोई न्यूनाधिक न पढे और मुझे दोष न दे।

सवतो के सम्बन्ध मे दीक्षित जी का कथन है कि रामायण, महाभारत, रघुवश आदि किसी भी प्राचीन महाकाव्य मे किसी घटना के साथ सवतो का उल्लेख नही किया गया। महाकाव्यो मे सवतो के उल्लेख की प्रथा ही नही है। फिर भला चन्दवरदाई महाकवि होकर भी इस कवि-परम्परा का उल्लघन क्यो करने लगा था? इसलिए उसने अपनी मूल-पुस्तक मे कही सवत् नही दिये थे। सवतो, अनैतिहासिक घटनाओ या बाद मे होने वाले व्यक्तियो का उल्लेख पृथ्वीराजरासो मे प्रक्षिप्त ही है। 'कमला देवी' और 'कर्पूर देवी' पृथ्वीराज की माता के दो नाम हो सकते हैं। जयानक ने अपने सस्कृत काव्य "पृथ्वीराज विजय" मे कही चन्दवरदाई का नाम नही लिखा, इसके लिए दीक्षित जी का कथन है कि वस्तुत जयानक कभी पृथ्वीराज के दरबार मे उपस्थित हुआ ही नही था। उसने काश्मीर मे बैठे-बैठे ही अपना काव्य लिखा है। इन कारणो से वे कहते है कि पृथ्वीराजरासो का मध्यम रूपान्तर ही चन्दवरदाई का स्वनिर्मित ग्रन्थ है, और चन्दवरदाई पृथ्वीराज के समकालीन ही थे।

इस सम्बन्ध मे यह भी कहा जाता है कि पृथ्वीराजरासो का अन्तिम अश या उत्तरार्ध चन्दवरदाई के पुत्र जल्हण ने पूरा किया था क्योकि वे इसे अधूरा ही छोड कर पृथ्वीराज के पास गजनी चले गये थे।

इन सब मतमतान्तरो के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि—

१ चूकि पृथ्वीराजरासो मे पजाबी भाषा का प्रभाव नही के बराबर है, राजस्थानी मुहावरो, लोकोक्तियो तथा केवल उसी प्रान्त मे प्रयुक्त होने वाले

पारिभाषिक शब्दो का इतने प्रचुर परिमाण मे प्रयोग हुआ है कि चन्द पजाबी और लाहौर के रहने वाले प्रतीत नही होते इसलिए वे जन्म-जात राजस्थानी ही अधिक जचते हैं ।

२ चूकि रासो के पूर्वोक्त चार रूपान्तर प्राप्त हुए है, अनेक विद्वान् लघु-रूपान्तर को ही मूल-रासो मानते हैं, उधर श्री दीक्षित जी अपने उक्त मध्यम रूपान्तर को मूल और प्रामाणिक रासो बतलाते हैं । इस सम्बन्ध मे वे एक विशेष रचना भी लिखने वाले है । जब तक इनमे से कोई भी पक्ष विज्ञ विवेचको के द्वारा प्रामाणित नही किया जाता तब तक पृथ्वीराजरासो की किसी भी प्रति या रूपान्तर को हम प्रामाणिक या असदिग्ध नही कह सकते । इसलिए इस विषय के विशेषज्ञो को शीघ्र सुनिश्चित परिणामो पर पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए ।

३ चाहे इसे प्रामाणिक माने या अप्रामाणिक, तेरहवी शताब्दी का माने या सोलहवी का, कुछ भी हो इन सब मत-भेदो के रहते हुए भी यह तो सर्वसम्मति से स्वीकृत सत्य सिद्धान्त है कि हिन्दी के सर्व प्रथम महाकाव्य के पद पर प्रतिष्ठित होने का सौभाग्य केवलमात्र पृथ्वीराजरासो को ही प्राप्त है । चन्दवरदाई हिन्दी के सर्वप्रथम महाकवि हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही उसका महत्त्व उपेक्षणीय हो, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से वह हमारी सरस्वती के भडार मे सर्वश्रेष्ठ रत्नो मे से है, इसमें कुछ सदेह नही । पृथ्वीराजरासो के कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं—

१. अति ढक्यो न उघार सलिल जिमि जामि सिवालह ।
वरन वरन सुवृत्त हार चतुरग विसालह ।
विमल अमल बानी विलास नयन वर ब्रन्नन ।
वक्तिणि बानि विनोद मोद श्रोतणि मन हुन्नन ।
जुत अजुत अज्ञि विचार बहु वयन छद छुट्टयो न कहि ।
घटि बढि कोइ मत्तह् पढइ चद दोस दिज्यौ न यहि ।

२. कुट्टिल केस सुदेस, पोहपरिचियत पिक्क सद ।
कमल-गध बयसंध हसगति चलत मद मद ।
सेत बस्त्र सोहइ सरीर नष स्वाति-बूद जस ।
भमर भवहि भुल्लहि सुभाव मकरन्द वास रस ।

३ बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौ दिस ।
सकल सूर सामत समरि बल जन्त्र मन्त्र तिस ।

उट्ठि राज प्रिथिराज बाग लग मनो वीर नट ।
कढत तेग मनो वेग लगत मनो बीज झट्ट घट ।
थकि रहे सूर कौतिग गगन, रगन मगन भइ शोन धर ।
हृदि हरषि वीर जग्गे हुलास हुरेउ रग नव रत्त वर ।।

४. खुरासान मुलतान खधार मीर ।
बलक्ख सोबल तेग अच्चूक तीर ।।
रुहगी, फिरङ्गी हलब्बी समानी ।
ठटी ठट्ट बल्लोच ढाल निसानी ।।
मजारीचषी मुक्खजम्बुक लारी ।
हजारी हजारी हुँकै जोध भारी ।।

जगनिक का आल्हाखण्ड—कहा जाता है कि कालिजर के महाराज परमर्दी देव के दरबार मे जगनिक राजकवि थे । उन्होने 'आल्हाखण्ड' नामक वीर-काव्य लिखा था । इसमे बताया गया है कि कालिजर के परमर्दीदेव के आल्हा और ऊदल नामक दो सामन्तो के घोडे पृथ्वीराज ने माग लिए और उनके इनकार कर देने पर पृथ्वीराज ने महोबे पर चढाई कर दी जिसमे आल्हा और ऊदल ने अपूर्व वीरता दिखाई । एक ओर भारत-सम्राट पृथ्वीराज की सेनाएँ डटी थी तो दूसरी ओर परमर्दीदेव और जयचन्द की । भाई-भाई का यह युद्ध 'महोबे का महाभारत' के नाम से प्रसिद्ध है । आल्हाखण्ड मे वीरो की शौर्य-गाथा बडे ही ओजपूर्ण और उत्साहजनक शब्दो मे गाई गई है । आज भी पूर्वी प्रातो मे वर्षा-ऋतु में ढोल की गर्जना के साथ ग्राम्य जनो द्वारा गाए जा रहे इन गीतो की गूज मानव हृदय मे एक अपूर्व उत्साह का सचार कर देती है ।

यह रचना गीतकाव्य होने के कारण मुख परम्परा पर ही रही है, अत इसकी भाषा अपने मूलरूप से सर्वथा परिवर्तित हो गई, यहा तक कि कई नवीन शस्त्रास्त्रो (बन्दूक, किरच, पिस्तौल आदि) के नाम भी आ गये । इसकी मूल लिखित प्रति प्राप्त नही हो सकी थी, अत सर चार्ल्स इलियट ने स० १९३७ मे अनेक भाटो से इसके गीतो को लिखवा कर उनका सकलन किया । जार्ज ग्रीयर्सन ने भी इसी प्रकार का एक सग्रह तैयार करवाया था ।

आल्हाखण्ड का एक गीत यहा दिया जाता है—

इतनी सुनि के राय वगरी नैना अग्नि ज्वाल हुई जाय ।
ऐसो देखौ ना काहू को डोला लै दिल्ली को जाय ।।

बातन-बातन बतबढ हुइ गइ औ बातन मे बाढी रार ।
दूनौ दल मे हल्ला हुइ गौ क्षत्रिन खीच लई तलवार ।।
पैदल के सग पैदल अभिरे और असवारन से असवार ।
परो गडाका दूनौ दल मे जहँ मुँहतोर चलै तलवार ।।
अपनो परायौ ना पहिचाने सब के मारि मारि रह लाग ।
आठ हजार छोड सब जूझे दिल्ली बाटन दए गिराय ।।

परमालरासो—डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने नागरी-प्रचारिणी-सभा के द्वारा दो ग्रथ प्रकाशित करवाये । उन्होने इनकी भूमिका मे लिखा है कि इन पुस्तको का नाम इन पर 'पृथ्वीराजरासो' अकित है पर वास्तव मे ये ग्रथ पृथ्वीराजरासो के अश नही क्योकि इनमे पृथ्वीराज की अपेक्षा परमर्दिदेव और जयचन्द की वीरता की विशेष बडाई की गई है । इसलिए उन्होने इस पुस्तक को 'परमालरासो' का नाम दिया । इसे १ 'महोबा खण्ड' और २ 'कनवज खण्ड' नामक दो भागो मे प्रकाशित किया गया है । यह रचना आल्हाखण्ड से सर्वथा भिन्न है क्योकि इसमे तोटक, सवैया आदि अनेक छदो का प्रयोग हुआ है । भाषा पश्चिमीपन लिए हुए है, किंतु आल्हा-खण्ड मे केवल आल्हा छन्द और पूर्वी भाषा का प्रयोग हुआ है ।

भट्ट केदार और मधुकर कवि—इन्होने क्रमश १ 'जयचन्द प्रकाश' और २ 'जयमयकजसचन्द्रिका' नामक दो ग्रन्थ जयचन्द की प्रशसा मे बनाए थे । ये ग्रन्थ अभी तक कही पर उपलब्ध नही हुए, केवल ग्रन्थो मे उनका उल्लेख-मात्र है । पुस्तक के नामो से अनुमान किया जाता है कि ये कवि राजा जयचन्द के समकालीन थे ।

नल्लसिह भट्ट का विजयपालरासो—इसमे करोली-नरेश विजयपाल की वीरता का वर्णन है । नल्लसिह का समय स० १३५५ माना गया है ।

जज्जल—ये रणथम्भोर के महाराज हम्मीरदेव के मत्री, सेनापति और राज-कवि थे । इन्होने अपने आश्रय-दाता महाराज हम्मीरदेव की प्रशसा मे स० १३५५ के लगभग 'हम्मीररासो' नामक महाकाव्य लिखा, जिसमें महाराणा हम्मीर और अलाउद्दीन के विकट युद्ध का बडी ही ओजस्विनी भाषा में वर्णन किया गया है । बडे खेद के साथ कहना पडता है कि यह पुस्तक नष्ट हो गई । 'प्राकृत-पिगल सूत्र' नामक पुस्तक मे इस ग्रथ की बहुत-सी कविताए उद्धृत है, जिनसे इनकी भाषा व रचना-शैली का आभास मिल सकता है । आचार्य शुक्ल जी आदि अनेक इतिहास-कारो ने भ्रम से 'हम्मीररासो' तथा उसकी 'प्राकृत-पिगल-सूत्र' मे उद्धृत कविताओ को शार्ङ्गधर-रचित मान लिया पर अनेक विद्वान प्राचीन 'हम्मीररासो' तथा

उक्त कविताओ का रचयिता जज्जल को बतलाते है। यह जज्जल उस विकट रण-क्षेत्र मे स्वय उपस्थित थे और इन्होने उस महान् ऐतिहासिक 'साके' या उत्सर्ग का अपनी आँखो-देखा वर्णन किया था। शार्ङ्गधर हम्मीर की तीसरी पीढी मे हुए है, उन्होने हम्मीररासो की रचना नही की। हाँ शार्ङ्गधर पद्धति मे कुछ एक देश-भाषा मिश्रित सस्कृत के पद्य अवश्य लिखे थे। जज्जल के हम्मीररासो की एक कविता नीचे दी जाती है --

ढोला मारिय ढिल्लि महँ मुच्छिउ मेच्छ-सरीर।
पुर जज्जल्ला मतिवर चलिअ बीर हम्मीर ।।
चलिअ बीर हम्मीर पाअभर मेइणि कपइ।
दिगमग णह अधार धूलि सुररह आच्छाइहि ।।
दिगमग णह अधार आण खुरसाणुक उल्ला।
दरमरि दमसि विपक्ख मारु ढिल्ली मह ढोल्ला ।।

वीरगाथाकाल का विविध साहित्य

इस काल के वीरतात्मक साहित्य का परिचय पहले दे दिया गया है। उनमे से खुमानरासो, बीसलदेवरासो और पृथ्वीराजरासो डिगल भाषा अर्थात् राजस्थानी की रचनाएँ है। आल्हाखण्ड की भाषा पूर्वीपन लिए हुए है, और जज्जल का हम्मीररासो अपभ्रश भाषा मे लिखा गया था। अब यहाँ इस काल की अन्य विविध विषयो की रचनाओ का परिचय दिया जाता है।

अमीर खुसरो--इनका वास्तविक नाम अबुलहसन था। ये एटा ज़िले के पटियाली ग्राम मे स० १३१० मे उत्पन्न हुए थे। अत इनका रचनाकाल स० १३४० है। ये बादशाह बलबन के शाहजादे मुहम्मद के शिक्षक और राजकवि थे। यह गयासुद्दीन बलबन से लेकर अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन मुबारकशाह तक ग्यारह पठान शासको के समय तक बने रहे थे। गुलाम वश का अन्त और तुगलक वश का आरम्भ इनके सामने ही हुआ था। यह अरबी फारसी के विशिष्ट विद्वान् और कुशल कवि तो थे ही, साथ हिदी के भी प्रमुखतम लेखको मे से एक थे। कहा जाता है कि खुसरो ने निनानवे पुस्तके लिखी थी, जिनमे कई लाख शेर थे और जिनमे से केवल बाईस ग्रथ ही मिलते है। ये ग्रथ इतिहास आदि विविध विषयो के है। अनेक

कारणो से हिंदी साहित्य मे इनका एक विशेष स्थान बन गया है।

जिस युग के कविगण या चारण केवल वीर-प्रशस्तियाँ गाकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठते और समाज के चित्तरजन के लिए कुछ भी लिखने का प्रयत्न नही करते थे, उस समय मे हमे केवल एक खुसरो ही सर्व-प्रथम ऐसा कवि दिखाई देता है जिसने सुकोमल व्रज-भाषा और खडी बोली दोनो मे लोक-हृदय को आकृष्ट करने वाली सरल, सरस रचनाएँ लिखी। खडी बोली के प्रथम कवि का प्रतिष्ठित पद प्राप्त करके तो इन्होने अपना महत्त्व बहुत ही अधिक बढा लिया और साथ ही 'खालिक बारी' नामक अरबी, फारसी और हिंदी का एक कोष लिख कर हिंदी से फारसी और फारसी से हिंदी पढने वालो का मार्ग अत्यन्त प्रशस्त कर दिया। इनकी यह रचना फारसी के प्रारभिक छात्रो में अत्यन्त ही लोकप्रिय है। इस विदेशी विधर्मी लेखक की हिंदी भाषा की पवित्रता और श्रेष्ठता पर अगाध श्रद्धा देखकर हमे आज के 'हिंदुस्तानी' भाषा के उपासको पर दया-सी आती है। यह मुस्लिम लेखक हिंदी की इसलिए महत्ता व श्रेष्ठता स्वीकार करता है कि उस पर विदेशी प्रभाव नही है। वह सर्वथा स्वतत्र, शुद्ध और सुसस्कृत भाषा है। अमीर खुसरो लिखते है कि—

"मै भूल में था पर अच्छी तरह सोचने पर हिंदी भाषा फारसी से कम नही ज्ञात हुई। सिवाय अरबी के जो प्रत्येक भाषा की मीर और सबो मे मुख्य है, रई और रूम की प्रचलित भाषाएँ समझने पर हिंदी से कम मालूम हुई। अरबी अपनी बोली मे दूसरी भाषा को नही मिलने देती पर फारसी मे यह एक कमी है वह बिना मेल के काम आने योग्य नही हैं। . सब से अच्छा धन वह जो अपने कोष मे बिना मिलावट के हो, परन्तु न रहने पर माँग कर पूजी बनाना भी अच्छा है। हिंदी भाषा भी अरबी के समान है, क्योकि उसमें भी मिलावट को स्थान नही है। यदि अरबी का व्याकरण नियमबद्ध है तो हिंदी मे भी उससे एक अक्षर कम नही है। जो इन तीनो भाषाओ का ज्ञान रखता है वह जानता है कि मैं न भूल कर रहा हूँ न बढा कर लिख रहा हूँ। यदि मै सचाई के और न्याय के साथ हिंदी की प्रशसा करूँ तब तुम शका करोगे और यदि मै सौगध खाऊँ तब कौन जानता है कि तुम विश्वास करोगे या नही ? ठीक है कि मै इतना कम जानता हूँ कि वह नदी की एक बूँद के समान है। पर उसे चखने से मालूम हुआ कि जगली पक्षी को दलज (टाईग्रीस) नदी का जल अप्राप्य है। जो हिंदोस्तान की गगा से दूर है वह नील और दलजः के बारे मे बहकता है। जिसने बाग के बुलबुल को चीन में देखा है वह हिंदुस्तानी बुलबुल को क्या जानेगा।"

दूसरी ओर आधुनिक 'हिंदुस्तानी' के भक्त हमारी इस शुद्ध हिंदी को विदेशी तत्त्वो से लादकर इसे 'वर्णसकर' बना देने के लिए कमर कसे बैठे है।

उक्त कोष के अतिरिक्त खुसरो अपनी पहेलियो और 'कह मुकरियो' के कारण भी अत्यन्त लोकप्रिय है। शायद ही कोई ऐसा हिंदी-भाषा-भाषी व्यक्ति हो जिसके मुख पर खुसरो की कोई न कोई पहेली न विराजती हो। इतना होने पर भी यह सत्य है कि खुसरो के नाम पर प्रचलित सभी पहेलिया उसकी अपनी बनाई हुई नही है और जो उनकी स्वरचित है उनमे भी भाषा परिवर्तित हो गई है। उनकी रचना की सबसे बडी और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनकी भाषा प्राचीन परिपाटी की अपभ्रंश की पुट लिए हुए न होकर तात्कालिक समाज की शुद्ध सरल बोल-चाल की भाषा है। हिदी के निखरे हुए रूप का सर्वप्रथम दर्शन हमे खुसरो की रचनाओ मे ही मिलता है। इन्होने ब्रज और खडी बोली दोनो भाषाओ मे रचनाएँ लिखी। उनकी कविताओ के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है —

खालिकबारी

बया बिरादर आवरे भाई।
बनशान मादर बैठ री माई।
मुश्क काफूर अस्त कस्तूरी कपूर।
हिन्दवी आनन्द शादा और सरूर।
मूश चूहा गुर्ब बिल्ली मार नाग।
सोजनो रिश्त. बहिन्दी सुई ताग॥

आँखों का एक नुस्खा

लोध फिटकरी मुर्दासङ्ग। हल्दी, जीरा एक-एक टङ्ग॥
अफीम चनाभर मिर्च चार। उरद बराबर थोथा डार।
पोस्त के पानी पोटली करे। तुरत पीर नैनो की हरे॥

पहेलियाँ

तरवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी।
"अमीर खुसरो" यो कहे अपने नाम "न बोली"॥
"निबोरी"।

फारसी बोले आईना । तुरकी सोचे पाईना ।
हिन्दी बोलते आरसी आये । मुह देखे जो इसे बताये ।।
"आईना" ।

बीसो का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ।।
"नाखून" ।

जलकर उपजे जल मे रहे । आँखो देखा "खुसरो" कहे ।।
"काजल" ।

आदि कटे ते सब को पारै । मध्य कटे ते सब को मारै ।
अन्त कटे ते सब को मीठा । सो "खुसरो" मै आखो दीठा ।
"काजल" ।

पहेलियो के सिवा खुसरो ने स्त्रियो के गाने के लिए बहुत से गीत भी लिखे थे । उनका एक गीत यहाँ दिया जाता है —

अम्मा, मेरे बाबा को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया ।।
अम्मा, मेरे भाई को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा भाई तो बाला री, कि सावन आया ।।
अम्मा, मेरे मामू को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी तेरा मामू तो बाका री, कि सावन आया ।।

खुसरो की "मुकरनिया" भी बहुत प्रसिद्ध है —

मुकरनी

सिगरी रैन मोहि संग जागा ।
भोर भई तब बिछुडन लागा ।।
उसके बिछुडे फाटत हिया ।
क्यो सखि, साजन ? ना सखि, "दिया" ।। १ ।।

सरब सलोना सब गुन नीका ।
वा बिन सब जग लागे फीका ।
वाके सर पर होवे कौन ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि "लौन" ।। २ ।।

वह आवे तब शादी होय ।
उस बिन दूजा और न कोय ।
मीठे लागे वाके बोल ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, "ढोल" ।। ३ ।।

खुसरो ने "दो सखुने" भी बहुत से कहे है । कुछ ये है—

जूता क्यों न पहना—समोसा क्यो न खाया ? तला न था ।
अनार क्यो न चखा—वजीर क्यो न रखा ? दाना न था ।
पण्डित क्यो पियासा—गदहा क्यो उदासा ? लोटा न था ।
पण्डित क्यो न नहाया—धोबिन क्यो मारी गई ? धोती न थी ।

खुसरो ने फारसी और हिंदी की मिलावट के छन्द भी लिखे है । उन में एक यह है—

जे हाल मिसकी मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाय बतियां ।।
कि ताबे हिजरा न दामे ऐ जा ! न लेहु काहे लगाय छतियां ।।
शबाने हिजरा दराज चू जुल्फ व रोजे वसलत चु उम्र कोतह ।
सखी पिया को जो मै न देखू तो कैसे काटू अधेरी रतिया ।।

खुसरो ने एक अवसर पर यह दोहा कितना सुन्दर कहा है—

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस ।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहु देश ।।

शार्ङ्गधर—ये रणथम्भोर के महाराज के प्रधान सभासद् राघवदेव के पौत्र थे । हम्मीरदेव स० १३९० मे अलाउद्दीन के साथ लडते-लडते युद्ध में काम आए थे, अत शार्ङ्गधर का रचनाकाल स० १४८० के लगभग मानना चाहिए । इनके 'शार्ङ्गधर सहिता' नामक आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रथ तथा 'शार्ङ्गधर पद्धति' सुभाषित ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है । शुक्ल जी आदि विद्वान् हम्मीररासो का रचयिता भी इन्हे ही मानते है । इन्होने अपने अनेक सुभाषित पद्यो में सस्कृत के साथ-साथ तात्कालिक देशभाषा को भी बडे ही आकर्षक रूप मे प्रतिष्ठित किया है । इनका ऐसा एक पद्य देखिए—

नून बादल छाइ खेह पसरी, नि.श्राण शब्दः खरः ।
शत्रु पाड़ि लुटालि तोड हनिसौ एव भणन्त्युद्भटाः ।।

झूठे गर्वभरा मघालि सहसा रे कन्त मेरे कहे ।
कठे पाग निवेश जाह शरण श्री मल्लदेव विभुम् ॥

उक्त पद्य मे रेखाकित पद तात्कालिक देशभाषा के स्वरूप को प्रकट करते है ।

डिगल भाषा मे भी वीर गीतो के साथ-साथ लोक-साहित्य का सृजन होता रहा । इसका परिचय आगे वीरगाथा के द्वितीय उत्थान शीर्षक अध्याय मे यथास्थान दिया जायगा ।

अभ्यास

१. दलपतविजय, और शार्ङ्गधर की रचनाओ का सक्षिप्त समालोचनात्मक परिचय दें।
२ क्या बीसलदेवरासो बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के समय का ही बना हुआ है ?
३ पृथ्वीराजरासो के कथानक और भाषा पर प्रकाश डालते हुए इसकी प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता पर परिपुष्ट विचार प्रकट करें ।
४ यदि पृथ्वीराजरासो अप्रामाणिक या सदिग्ध है तो आप हिन्दी का सर्वप्रथम महाकाव्य किसे मानेंगे ?
५. हम्मीररासो, आल्हाखण्ड, व खुसरो की रचनाओं का सक्षिप्त परिचय दें ।

पूर्व-मध्य-काल—भक्तिकाल

(सवत् १३७५ से १७०० तक)

पाँचवाँ अध्याय

भक्ति-काल की सामयिक परिस्थितियाँ

विक्रम की १४ वी शताब्दी के अन्त होते-होते हिंदी साहित्य की धारा अपने पुराने उद्दाम और ओजस्वी वीरगाथात्मक रूप को त्यागकर भक्ति की प्रशान्त कलित कविता के नवीन रूप मे प्रवाहित होने लगी। कारण यह था कि इस समय तक भारत में मुसलमानो का आधिपत्य एक प्रकार से पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो गया था। बाबर के पश्चात् भारतवर्ष पर किसी यवन आक्रमणकारी ने चढाई करने का साहस नही किया। अत बाह्यशत्रु से लोहा लेने की भावनाएँ जनता के हृदयो से लुप्त-सी हो गईं। जब युद्ध और सघर्ष ही नही रहे तो वीरता कैसी ? और वीरता की रचनाएँ कैसी ? दूसरी बात यह कि बाबर से पूर्व ही अनेक मुस्लिम आक्राता भारत के सम्राट् के रूप मे दिल्ली के तख्त पर बैठ चुके थे। वे लोग भारतीय जनता पर मनमाने अत्याचार करते रहते। हिदुओ के अथक प्रयत्न करने पर भी विदेशियो की विपत्ति देश से दूर न हुई। देखते ही देखते वे यहाँ जम ही तो गये। अब निरन्तर मन्दिर गिराए जाने लगे, वेद जलाए जाने लगे और निरीह साधु-ब्राह्मण और बौद्ध भिक्षु तलवार के घाट उतारे जा रहे थे। इन सब अत्याचारो को देखते हुए भी हिंदू जनता मे इनके प्रतिकार का न साहस था न शौर्य। उसके पास चुपचाप मन मारकर सब कुछ सहन करने के सिवा और कोई चारा ही न था। निरन्तर ३०० वर्षों तक लडने के पश्चात् अब जनता थक कर हताश हो गई थी। मनोविज्ञान का सामान्य सिद्धात है कि जब मनुष्य पर कोई विपत्ति आती है तो पहले वह उसे अपने पुरुषार्थ से हटाना चाहता है। किंतु लाख प्रयत्न करने पर भी जब वह नही टलती तो वह प्रभु से प्रार्थना करने लगता है। इसी नियम के अनुसार हम देखते है कि अथक सघर्ष करने पर भी जब विदेशी शासन की बला हमारे सर से न टली तो भारतीय जनता ने भगवद्भक्ति को ही अपना एक-मात्र अवलम्बन मान लिया। और समाज के पथ-प्रदर्शक कवियो ने भी प्रभु-प्रेम का पीयूष-प्रवाह बहाकर समाज मे सरसता का सचार कर दिया।

इसके अतिरिक्त दूसरा बडा कारण यह भी था कि अब तक भारत में मुसलमान पर्याप्त सख्या मे बस चुके थे। उनके यहाँ से वापस चले जाने की अब कोई सभावना न रह गई थी। अतएव ऐसा कोई मार्ग या उपाय खोज

निकालने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जिस के आधार पर हिंदुओ और मुसलमानो का अजनबीपन मिट जाय और पारस्परिक प्रेम बढने लगे। राजनैतिक क्षेत्र मे हिंदू और मुसलमान अभी एक न हो पाये थे। शासक और शासितो की भावना इस कार्य मे एक प्रकार से बाधा-सी उत्पन्न कर रही थी। किंतु प्रभु के दर्बार मे तो दोनो समान रूप से एक साथ बैठ सकते थे। भक्ति का द्वार सब के लिए खुला था। फलत समाज के सचालक साहित्यिको ने भक्ति का एक ऐसा सरल राज-मार्ग प्रशस्त कर दिया, जिस पर दोनो ही कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ-साथ चलने लगे। कुछ मुसलमान ऊपर उठे और कुछ हिंदू नीचे उतरे । हिंदुओ ने मुसलमानो की निर्गुण उपासना को निस्सकोच भाव से अपना लिया। उधर मुसलमानो ने भी हिंदुओ के अनेक सिद्धात नतमस्तक हो स्वीकार कर लिये। इस प्रकार साहित्य की श्रीवृद्धि करने मे हिंदुओ और मुसलमानो की एक होड-सी लग गई। परिणामस्वरूप हम देखते है कि जहाँ सूर, तुलसी और नानक, सरीखे हिदू कवियो ने अपनी रचनाओ द्वारा हिंदी साहित्य के भडार को भरपूर किया, वहाँ कबीर, जायसी, रहीम, रसखान आदि मुस्लिम कलाकारो ने भी अपने अमूल्य रचना-रत्नो से उसके वैभव को कई गुना बढा दिया।

तीसरा कारण यह है कि एक ओर तो उत्तर भारत के योगी या नाथ-पन्थी साधु निराकार की उपासना का प्रचार कर 'अलख' जगा रहे थे, दूसरी ओर दक्षिण भारत मे रामानुज, निम्बार्क, मध्व आदि आचार्य राम, कृष्ण और नारायण की साकारोपासना का प्रचार कर रहे थे। इस समय तक उत्तर भारत का वातावरण सघर्ष और युद्धमय-सा था, अत उक्त धार्मिक भावनाओ को अभी तक पूरी तरह पनपने का अवसर प्राप्त न हो सका। पश्चात् थोडी-सी शान्ति के होते ही ये सब धार्मिक सप्रदाय व्यापक प्रचार-क्षेत्र मे उतर आए। योगियो के सिद्धातो के आधार पर कबीर ने निर्गुणोपासना का उपदेश देकर हिदुओ और मुसलमानो को समीप लाने का प्रयत्न किया उधर गोस्वामीजी ने राम का रूप दिखाकर जनता मे, कर्मण्यता, साहस और सदाचार की भावनाएँ भरी । अब तक के सघर्षो से समाज का जीवन शुष्क-सा हो गया था। सूरदास आदि कृष्ण-भक्तो ने अपने प्रेमप्लावित सरस साहित्य के द्वारा उस नीरसता का निराकरण कर सच्ची सरसता का सचार किया और जन-जीवन को आल्हादित कर दिया।

परिचय और सिद्धांत—भक्ति काल का साहित्य विविध दार्शनिक सिद्धातो पर आधारित है। इसलिए सर्वप्रथम प्रमुख दार्शनिक विचारधाराओ का यहा सक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

१ **ज्ञान-प्रधान अद्वैतवाद**—विश्वविदित वेदान्त-सिद्धात भारत का सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक वाद है। इसके व्यापक प्रचार का श्रेय श्री स्वामी शकराचार्य को है। दार्शनिक दृष्टि से इसे 'विवर्तवाद' भी कहा जाता है। अद्वैत सिद्धात मे जीव और ब्रह्म की एकता व जगत् का मिथ्यात्व स्वीकार किया गया है। जड चेतन, साकार निराकार, प्रत्येक पदार्थ-मात्र वस्तुत उसी परब्रह्म के—नाम रूप के कारण—परिवर्नित स्वरूप है। यह नदी-नाले, यह पर्वत, यह पशु-पक्षी और यह मनुष्य आदि प्राणी सभी के सभी ब्रह्मस्वरूप ही हैं। ब्रह्म के सिवा अन्य किसी वस्तु की सत्ता सत्य नही है। ब्रह्म और जीव की यह जो भेद-प्रतीति होती है वह केवल नामरूप के कारण ही है। इस नामरूपात्मक 'माया' को यदि ज्ञान के द्वारा मिटा दिया जाय तो वह केवल ब्रह्म ही सर्वत्र सर्वरूपो मे व्याप्त प्रतीत होगा। इसे निम्न उदाहरण के द्वारा भली-भाँति समझाया जा सकता है—

दीवाली के दिनो मे हलवाई की दूकान पर जाकर हमने चीनी के ताजमहल, मोटर, सिपाही, शेर, घोडा आदि खरीदे। घर पर आने पर उन्हे देख बालक आपस मे लडने लगे—एक कहता है 'मै ताजमहल नही, घोडा लूँगा' तो दूसरा कहता 'मैं मोटर लूँगा।' इस प्रकार उनके लिए बालको मे बडा भारी वाद-विवाद भी हो जाता है। किंतु ज्ञानी पुरुष भली-भाँति समझता है कि यह झगडा सर्वथा व्यर्थ है, क्योकि इन सब पदार्थों मे मूल वस्तु तो पहले भी 'खाड' थी अब भी खाड है और फिर भी खाड ही रहेगी। केवल उस खाड के रूप और नाम-मात्र परिवर्तित हुए है। इसीलिए 'ताजमहल' और 'घोडा'—जड और चेतन—का भेदमूलक ज्ञान हो रहा है। यदि उन खिलौनो को तोड दिया जाय—या यो कहे कि उनके नाम-रूप मिटा दिये जायँ—तो केवल शुद्ध खाँड ही अवशिष्ट रहेगी। इसी प्रकार शुद्ध, निर्गुण, निरुपाधि, ब्रह्म 'एकोऽह बहु स्याम्' (मै एक अनेक हो जाऊँ) का सकल्प करते ही विश्व-प्रपच का रूप धारण कर लेता है—ब्रह्म ही ब्रह्माड रूप में परिवर्तित हो जाना है। इसीलिए वेदान्त सिद्धात कहता है कि आत्मा परमात्मा एक ही है। उसके सिवा दूसरी कोई वस्तु नही है। इसी भावना को प्रकट करने के उद्देश्य से ही 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' 'अह ब्रह्मास्मि' 'जीवो ब्रह्मैव नापर' 'तत्त्वमसि' आदि वेदान्त के महावाक्य व्यवहृत होते है। किंतु माया के पर्दे के कारण मनुष्य उस सत्य आत्म रूप का दर्शन नही कर सकता। उस माया के आवरण को दूर करने का एक-मात्र साधन है—ज्ञान। ज्ञान के बिना आत्म-साक्षात्कार या मुक्ति प्राप्त हो नही सकती। जैसा कि कहा है 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' (ज्ञान के बिना मुक्ति नही हो सकती) इसीलिए श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि—

'तू ज्ञान हिंदुओ मे'। वास्तव मे हिंदू धर्म ज्ञान-प्रधान ही है।

इस ज्ञान मूलक अद्वैतवाद को अपना लेने से विश्व की विषमताएँ स्वत समाप्त हो जाती हैं। क्योकि राग, द्वेष, क्रोध, हिंसा, अपकार आदि की भावनाएँ परायो के प्रति ही होती हैं, अपनो के लिए नही। अद्वैतवाद के अपना लेने पर जब कोई भी पराया रह नही जाता, सर्वत्र केवल आत्मरूप ही आत्मरूप प्रतीत होता है तो कोई किसी का अपकार करेगा ही क्यो ? भेद-भावना ही तो सब अनर्थो का मूल है। इसलिए विश्वशान्ति की प्राप्ति के लिए वेदान्त के उक्त तत्त्व को अपना लेने से प्राणिमात्र के प्रति प्रेम का प्रवाह उमड सकता है।

२ **रहस्यवाद**—उक्त अद्वैतवाद ही अपने दार्शनिक रूप को त्याग कर जब साहित्य के सरस सुन्दर रूप मे प्रकट होता है तो उसे 'रहस्यवाद' कहते है। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है कि 'चिन्तन के क्षेत्र मे जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, भावना के क्षेत्र मे उसे ही रहस्यवाद कहा जाता है।' कबीर की रचनाओ मे इसी प्रकार का रहस्यवाद लक्षित होता है।

'लाली मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल'॥

कबीर की उक्त रचना मे रहस्यवाद की सुन्दर अवतारणा हुई है।

उस प्रियतम के प्रति जिज्ञासा, उत्सुकता व प्राप्ति के लिए प्रयत्न और प्राप्ति आदि इस रहस्यवाद की अवस्थाएँ मानी जाती है।

३ **सूफी सिद्धांत**—भारतीय अद्वैत मूलक धर्म के सिवा विश्व के बाकी सभी—ईसाई, इस्लाम, यहूदी आदि सम्प्रदाय द्वैतवादी ही है। ये एकेश्वरवाद या कट्टर पैग़बरी खुदावाद के अनुयायी है। इस्लाम आदि सप्रदायो के सिद्धातो मे ईश्वर एक है और जीव उससे सर्वथा भिन्न है। ईसा, मुहम्मद आदि पैगम्बर भी स्वय ईश्वर या उसके अश नही प्रत्युत उसके पुत्र या सदेशवाहक दूत है। यह बात दूसरी है कि वे इस रूप मे रहते हुए भी ईश्वर से भी बडे माने जाते है, क्योकि जिन के लिए यह पैगम्बर सिफारिश कर देगे कयामत के दिन खुदा उनके सब गुनाह बख्श देगा। पैगम्बरो की पूजा इसी प्रकार की प्रेरणा का परिणाम है। ये लोग पुनर्जन्म को नही मानते। अद्वैतवाद का खडन करते हुए ये कहते है कि बन्दा (जीव) कभी खुदा (ब्रह्म) नही हो सकता। जो कहता है कि बन्दा ही खुदा है या जीव और ब्रह्म एक है वह काफिर है।

किंतु मुसलमानो आदि का उक्त भेदमूलक द्वैतवाद वस्तुत सत्य सिद्धात नही है। सत्य तो अद्वैत सिद्धात ही है। इसीलिए फारस के कुछ सन्तो ने निर्भीक

और निष्पक्ष होकर इस भारतीय अद्वैतवाद को अपना लिया। ये सन्त बडे सात्विक, सदाचारी व सतोषी थे। ये लोग केवल एक ऊन का सफेद चोगा पहना करते थे, चूँकि फारसी मे ऊन को 'सूफ' कहते है इसलिए सूफ के वस्त्र धारण करनेवाले सत 'सूफी' कहलाए। कुछ लोगो का कहना है कि यूनानी सूफी शब्द 'ज्ञानी' के अर्थ मे चलता है, और चूँकि ये सन्त भी ज्ञानी थे इसीलिए इनको सूफी कहा गया है।

इन सूफियो ने अद्वैतवाद को अपना तो लिया और 'अन्अलहक'—जिसका अर्थ 'तत्त्वमसि' से मिलता-जुलता 'ओ तू मैं' है—की रट लगाने लगे। किंतु भारतीय अद्वैतवाद से इन्होने अपने सिद्धातो मे कुछ अन्तर भी रखा। इन्होने ज्ञान के स्थान पर प्रेम को प्रधानता दे दी। उस आत्मरूप प्रियतम की प्राप्ति प्रेम के द्वारा ही इन्होने मानी है। दूसरी बात यह है कि प्रियविरह को उनके यहाँ अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। जो आत्मा जितनी प्रिय-विरह मे तडपेगी वह उतनी ही शीघ्र उसे प्राप्त करने की अधिकारी हो जायगी। साथ ही इन्होने परमात्मा को प्रेयसी और आत्मा को उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करने वाले प्रियतम के रूप में अकित किया है। इन लोगो ने कल्पित या ऐतिहासिक शाहजादा और शाहजादियो—राजकुमारो और राजकुँमारियो—की प्रेमकथाओ के रूपको के द्वारा अलौकिक ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है।

फारस मे हल्लाज या मन्सूर एक प्रसिद्ध सूफी सन्त हो गये है। अद्वैतवाद को मानने व 'अनलहक' की रट लगाने के कारण ये काफिर करार दे दिये गये और फाँसी पर लटका दिये गये। ऐसे ही अन्य सैकडो सन्तो को भी इस सत्य सिद्धात को स्वीकार करने के कारण ही इस ससार से सदा के लिए विदा हो जाना पडा। भारत मे भी कबीर को अनेक यातनाएँ सहनी पडी और 'शेख सरमद' नामक सूफी सन्त को औरगज़ेब ने बडी क्रूरता के साथ कत्ल करवा दिया। उसकी कब्र या मज़ार दिल्ली मे जामा-मस्जिद के सामने अब भी 'अनलहक' या 'तत्त्वमसि' के अमर वाक्यो को प्रतिध्वनित कर रही है। मलिक मुहम्मद जायसी आदि अनेको सूफी सन्तो ने हिंदी साहित्य को भी अपनी अनेक अमर रचनाएँ प्रदान की हैं। जिनका परिचय आगामी पृष्ठो मे यथास्थान दिया जायगा।

रामानुज का विशिष्टाद्वैत—शकर के उक्त ज्ञान और साधना-मूलक अद्वैतवाद को रामानुज ने अस्वीकार करते हुए अपना 'विशिष्टाद्वैतवाद' चलाया। उनके मत में जीव ब्रह्म नही, प्रत्युत ब्रह्म से निर्मित है। ब्रह्म से जीव का प्रादुर्भाव हुआ है, इसीलिए इनकी एकरूपता नही प्रत्युत समानरूपता या सामीप्यता ही मानी

४ शुद्धाद्वैतवादी या पुष्टिमार्गी सूरदास आदि का कृष्ण-भक्त सम्बन्धी गीतात्मक साहित्य ।

इनमे से पहले दो निर्गुणोपासक तथा अन्तिम दोनो सगुणोपासक हैं । अत इस काल के साहित्य को पहले १ निगुर्ण और २ सगुण इन दो मुख्य विभागो में विभक्त किया गया है । आगे फिर मुस्लिम भावनाओ से प्रभावित निर्गुण के १ ज्ञानमार्गी २ प्रेममार्गी तथा प्राचीन हिंदू उपासना पद्धति पर आधारित सगुण के राम-भक्त और कृष्ण-भक्त यह दो उपविभाग किये गये है ।
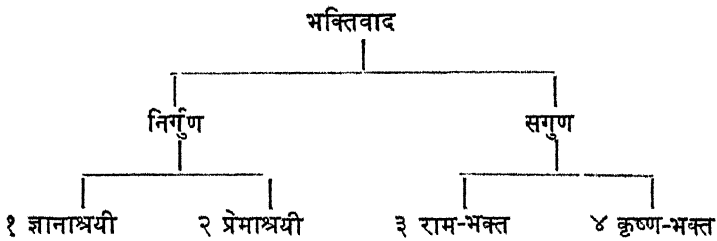
अभ्यास

१ साहित्य की वीर-गाथात्मक धारा भक्ति के रूप में क्यो प्रवाहित होने लगी? सयुक्तिक विवेचन करे।

२. भक्ति सम्बन्धी साहित्य मुख्य कितने और कौन २ से उपविभागों में विभक्त किया गया है ?

३ अद्वैतवाद, रहस्यवाद, सूफी सम्प्रदाय, विशिष्टाद्वैत, एकेश्वरवाद व पुष्टि-मार्ग—इनसे आप क्या समझते है, सविस्तर सोदाहरण स्पष्ट करे ।

४ भक्ति साहित्य के आरम्भ-काल की देश की सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियो का परिचय देकर साहित्य के साथ उनका सामञ्जस्य दिखाएँ ।

५ 'दार्शनिक दृष्टि से जिसे अद्वैतवाद कहते है साहित्य ससार मे वही 'रहस्यवाद' का रूप ग्रहण कर लेता है' इस उक्ति की सयुक्तिक व्याख्या करते हुए अद्वैतवाद या रहस्यवाद की महत्ता पर प्रकाश डालें ।

छठा अध्याय

ज्ञान-मार्गी—सन्तकाव्य

जैसा कि पहले कहा गया है चौदहवी शताब्दी के अन्तिम चरण म सामयिक परिस्थितियो ने हिंदू और मुसलमान दोनो को समीप आने के लिए बाध्य कर दिया था। इस कार्य के लिए सर्वप्रथम प्रयत्न ज्ञान-मार्गी सन्त कवियो के द्वारा हुआ। उन्होने अपने साहित्य मे दोनो के सिद्धातो का सामजस्य व समन्वय कर दिया। यद्यपि इस सप्रदाय के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि महात्मा कबीर ही हुए है, फिर भी उन से पूर्व कुछ अन्य प्रसिद्ध सन्तो ने भी इस विषय की अनेक रचनाएँ लिखी थी। अब पहले यहाँ उन मे से एक का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

नामदेव—इनका जन्म स० १३२७ मे दक्षिण मे सतारा जिले के 'नरसीबमनी' नामक स्थान मे हुआ था। और मृत्यु स० १४०७ मे पण्ढारपुर मे हुई। आरम्भ में यह साकार के उपासक थे किंतु बाद मे उनकी प्रवृत्ति निर्गुण की ओर भी झुकती हुई सी दिखाई देती है। कहा जाता है कि यह प्रसिद्ध गीता की 'ज्ञानेश्वरी' टीका के लेखक सन्त ज्ञानेश्वर के शिष्य थे। इन्होने मराठी भाषा के अभगो के अतिरिक्त हिंदी मे भी पर्याप्त परिमाण मे रचनाएँ लिखी है जिन मे निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार की उपासना के पद है। इनकी रचना के दो नमूने लीजिये।

१. अम्बरीष को दियो अभय पद,
राज विभीषण अधिक कर्यो।
नवनिधि ठाकुर दई सुदामहि,
ध्रुव जो अटल अजहुँ न टर्यो ॥
भगत् हेत मार्यो हरिनाकुस,
नृसिह रूप वै देह धर्यो।
'नामा' कहई भगति बस,
केसव अजहुँ बलि के द्वार खरो ॥

२ निर्गुणोपासना का पद—

पाण्डे तुम्हारा रामचन्द, सो भी आवत देखा था।
रावण सेति सर्वर हुई, घर जोय गवाई थी ॥
हिन्दू अन्धा तुर्कौ काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना।

हिन्दू पूजै देहरा, मुस्लमान मस्जीद ।
नामा सोई सेविया, जह देहरा न मसीत ।।

महात्मा कबीर—इनका जन्मकाल अनिश्चित-सा है । कबीर पन्थी लोग तो इन्हे अजन्मा तक कहते और सब युगो मे वर्तमान बतलाते है। कबीर और गोरखनाथ का सवाद हुआ था ऐसा भी कहा जाता है। किंतु इनमे ऐतिहासिक तथ्य कुछ भी नही । श्रीयुत डा० रामकुमार वर्मा ने कबीर पथियो मे प्रचलित—

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठये ।
जेठ सुदी वर्सायत को, पूर्णमासी प्रगट भये ।।

इस दोहे मे दिये गये तिथि और सवत् को ही अनेक परिपुष्ट प्रमाणो से सत्य सिद्ध किया है। अत उनका जन्म निश्चित रूप से स० १४५५ ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को ही मानना चाहिए। उन्होंने कबीर की मृत्यु भी स० १५५१ मे बडे परिश्रम के पशचात् खोज निकाली है। यद्यपि जनश्रुति के अनुसार कबीर की मृत्यु १५७५ मे मानी गई है।

कबीर के गुरु रामानन्द ही थे इसके लिए भी डा० साहिब ने अपने 'सन्त कबीर' नामक ग्रथ में पर्याप्त प्रमाण उपस्थित किये है। मुसलमान 'शेख तकी' को भी उनका गुरु बताते है। किंतु शेख तकी को उनका गुरु कदापि नही माना जा सकता। क्योंकि—

घट घट है अविनासी, सुनहु तकी तुम शेख् ।

आदि पदो मे कबीर ने तकी को अपने गुरु के रूप में नही, प्रत्युत उपदेश-पात्र के रूप में ही सम्बोधित किया है। यह बात दूसरी है कि वे सदा सूफी सन्तो के सत्सग से भी सत्य तत्त्व ग्रहण करने के लिए उत्सुक रहते थे। किंतु शुक्ल जी के शब्दों मे वे सब की बातो का सचय करके भी अपने स्वभावानुसार किसी को भी ज्ञानी या अपने से बडा मानने के लिए तैयार नही थे। सब को अपना ही वचन मानने को कहते थे ।

कबीर के जन्म समय, और गुरु की भाँति उनकी जाति व जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी मतभेद पाये जाते है। यद्यपि वे नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पती के पुत्र प्रसिद्ध हैं, तथापि कुछ लोगो ने सभवत उनकी महत्ता बढ़ाने के विचार से ही—उन्हे विधवा ब्राह्मणी की सन्तान बताकर ब्राह्मण बनाने का प्रयत्न किया और कहा कि वह विधवा काशी में लहरताला तालाब के निकट इन्हे जन्मते ही फेंक गई थी। जिसे उक्त जुलाहा दम्पती ने उठाकर पाला पोसा। किंतु इस किंवदन्ती में कुछ

भी तथ्य नही है, यह अनेक प्रमाणो से सिद्ध हो चुका है। यहाँ तक कि कुछ विद्वान् उनका जन्म-स्थान भी काशी नही प्रत्युत मगहर ही मानते है, उनकी अपनी रचना मे भी इसका सकेत मिलता है—

तोरे भरोसे मगहर बसिओ, मेरे तन की तपति बुझाई।
पहिले दरसुन मगहर पाइयो, पुनि कासी बसे आई॥

इससे ज्ञात होता है कि कबीर पहले मगहर मे रहते थे काशी मे बाद मे आये। इसी प्रकार वे जन्म-जात मुसलमान जुलाहा थे इस सम्बन्ध मे भी भक्त रविदास स्पष्ट लिखते हैं कि—

जाकै ईद बकरीद कुल गऊ रे बधु करहि,
मानी अहि सेख सईद पीरा,
जाके बाप वैसी करी पूत अैसी सरी,
तिहुँरे लोक परसिध कबीरा।

अर्थात् जिनके माँ-बाप बकरीद के दिन गौ का वध करते है और शेख, सैयद, और पीरो को मानते है उन्ही का पुत्र तीनो लोको मे प्रसिद्ध ऐसा (परम वैष्णव) कबीर है।

दूसरी बात यह है कि यदि सचमुच इन्हे कोई विधवा ब्राह्मणी फेंक गई थी तो लोगो को उसका पता कैसे चला। कुछ लोग तो उन्हे रामानन्द के वरदान से उत्पन्न होने की अस्वाभाविक कल्पना भी करते हैं, किंतु यह सब अनैतिहासिक किंवदन्तियाँ मात्र है। श्रीयुत डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बडे परिश्रम से यह सिद्ध कर दिया है कि कुछ हिन्दू वैरागी गृहस्थी साधु मुसलमान बन गये थे। कबीर नीरू और नीमा नामक ऐसे ही मुस्लिम दम्पति के और स सन्तान थे। इस प्रकार कबीर के सम्बन्ध में निम्न ऐतिहासिक तथ्य ही प्रामाणिक सिद्ध होते है—

१ कबीर का जन्म स० १४५५ तथा मृत्यु भी मगहर में स० १५५१ में हुई।

२ वे जन्म-जात जुलाहे और रामानन्द के शिष्य थे।

३ काशी मे रहकर उन्होने अनेक विद्वानो से बहुत कुछ सुना-सुनाया, इसलिए वे निरक्षर होते हुए भी 'बहुश्रुत' अथच 'एकश्रुत' भी थे। यही कारण है कि वे अपनी रचनाओ मे सम्पूर्ण दर्शनो, उपनिषदो और अन्यान्य शास्त्रो का सार सचित करने मे समर्थ हो सके।

४. अपने सिद्धातो का प्रचार करने के लिए तथा निम्न कोटि की जनता को प्रभावित करने के लिए उन्होने आत्मप्रशसा भी पर्याप्त की है।

५ कबीरजी अत्यन्त सतोषी, स्पष्टवक्ता व सात्विक प्रकृति के पुरुष थे। उन्होने 'सत्यब्रूयात्' (सच बोलो) ही को अपना मुख्य सिद्धात माना न कि 'प्रिय ब्रूयात्' (मीठा) बोलो को।

६ वे बडे परिश्रमी और स्वावलम्बी व्यक्ति थे। एक महान् सप्रदाय के प्रवर्तक और सुधारक साधु होते हुए भी उन्होने कभी पराये अन्न से अपना पेट पालने का विचार तक नही किया। वे सदा ताना-बाना बुनकर अपने परिश्रम से कमाए हुए द्रव्य से जीवन-निर्वाह करते रहे।

१. साई एता दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मै भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय॥
२. साधू सग्रह न करे, उदर समाता लेय।
आगे पीछे हरि खड़े, जब माँगू तब देय॥

इत्यादि पदो मे कबीर की सतोष-शीलता स्पष्ट लक्षित हो रही है।

कबीर विवाहित भी अवश्य थे। उनकी पत्नी का नाम 'लोई' था। कहा जाता है कि इनके 'कमाल' नामक पुत्र और 'कमाली' नामक एक कन्या भी थी। इनकी मृत्यु के पश्चात् हिंदू और मुसलमान अनुयायियो मे इनके शव को जलाने अथवा दफनाने के सम्बन्ध मे बडा भारी वाद-विवाद हो गया। कहा जाता है कि शव की चादर हटाने पर केवल पुष्प ही मिले। सभवत उनके शव पर पडे हुए पुष्पो को लेकर हिंदुओ ने काशी मे लाकर उनका दाह-सस्कार किया और उस स्थान पर समाधि बनादी। उधर मुसलमानो ने मगहर मे दफना कर वही 'मजार' बनाई।

कबीर के सिद्धान्त आदि—

'रस-सचार नही प्रत्युत अपने सिद्धात-विशेषो का प्रतिपादन ही कबीर की रचनाओ का मुख्य उद्देश्य था, यह तो सत्य है किंतु इसके साथ ही यह भी एक बडी विचित्र बात है कि दार्शनिक या तात्त्विक दृष्टि से उनका कोई एक अपना सुनिश्चित सिद्धात भी नही था। वे कभी मुसलमानो की भाँति एकेश्वरवादी बनकर कट्टर पैगम्बरी खुदावाद का प्रचार करते हुए गोविन्द से भी गुरु को बडा बताते है। यथा—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागौ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥

साथ ही—

"पात झरता यूँ कहे, सुनु तरुवर बनराय।
अबके बिछुरे ना मिले, परिहै दूर हि जाय॥"

आदि पद में पुनर्जन्म को भी अस्वीकार करते-से दिखाई देते हैं—तथा कभी वेदान्त के अद्वैत सिद्धात के सब से बडे समर्थक बने बैठे हैं। कही वे हठयोग

गियो के षट्चक्रो और इडा, पिंगला, सुषुम्णा आदि नाडियो का वर्णन कर उन्ही में ध्यान लगा रहे है और कही वे—

"ढाई अच्छर प्रेम का पढै तो पडित होय"

कह कर प्रेम-मार्ग का प्रचार कर रहे है। अन्यत्र वैष्णवो और जैनो की अहिंसा का उपदेश दे रहे है। अत उन्हे तत्त्वत किसी भी एक सिद्धात का पक्का प्रचारक या अनुयायी नही कह सकते। उन्होने अपनी मधुकरी वृत्ति से सब सिद्धात-सुमनो का सार ले लिया और जनता के लिए दिव्य उपदेश-रूपी मधु प्रस्तुत कर दिया।

इतना होने पर भी उनके उपदेशो मे दो बाते प्रधान रूप से स्पष्ट लक्षित होती है—१ ज्ञान मूलक वेदान्त के अद्वैत सिद्धात ही सर्वत्र प्रधान है, दूसरे मत गौण और प्रसग वश आगये है। २ हिंदू और मुसलमान दोनो धर्मो के समन्वय करने मे सहायक, सभी विचार ग्रहण कर लिए गये है, चाहे वे किसी भी वाद या सप्रदाय के क्यो न हो।

रचना व भाषा शैली—कबीर की भाषा में पजाबी, राजस्थानी, खडी बोली, पूर्वी हिंदी, व्रज तथा फारसी आदि विविध भाषाओ के दर्शन होते हैं। सिद्धातो के समान उनकी भाषा भी कोई एक रूप लिए हुए या साहित्यिक सौंदर्य समन्वित नही है, इसीलिए उसे 'खिचडी' या 'सधुक्कडी' भाषा भी कहते है। उन्होने अपने 'श्लोक' या साखी दोहा छद मे और पद विविध रागो मे कहे है। उनके पदो की भाषा अपेक्षाकृत सुव्यवस्थित एव व्रजभाषा का साहित्यिक माधुर्य लिए हुए है। उनकी रचनाओ का सग्रह 'बीजक' कहलाता है। इस बीजक को १-साखी २-शब्द और ३-रमैनी नामक तीन भागो मे विभक्त किया गया है।

साहित्य व समाज पर प्रभाव—साहित्य की अपेक्षा सामाज ही को अधिक प्रभावित करने के लिए कबीर ने अपनी रचनाएँ लिखी थी। वे समाज सुधारक पहले और कवि उसके बाद मे है। उन्होने देखा कि धर्म के बाह्य विधि-विधानो के कारण ही हिंदू और मुसलमान आपस में लडते-भिडते है। हिंदू पूर्व की ओर मुख करके ईश्वरोपासना करता है, तो मुसलमान पश्चिम मे उसे पुकारता है। एक घटे और शख बजाकर उसे रिझाता है तो दूसरा उसे अपनी उपासना में बाधा समझता है, क्योकि वह उस प्रभु को ज़ोर-ज़ोर से पुकार कर क्यो बुलाता है। कबीर ने दोनो धर्मोंके इन बाहरी रूपो का बडे ज़ोर-शोर से खडन आरम्भ कर दिया, एक स्थान पर उन्होने—

पत्थर पूजै हरि मिलै, तो मै पूजूँ पहार ।
ताते तो चक्की भली, पीस खाय संसार ।।

कहकर हिदुओ की मूर्ति-पूजा का खडन किया । क्योकि हिन्दुओ की मूर्ति-पूजा एक ऐसी धार्मिक बाह्यविधि है जिससे मुसलमानो को बहुत ही अधिक चिढ है । विपरीत इसके हिन्दू-धर्म तो इतना उदार और सहनशील है कि उसमे विभिन्न विरुद्ध प्रवृत्तियाँ व सभी साम्प्रदायिक सिद्धात सरलतापूर्वक समा सकते है । अत मूर्तिपूजा न कर अपने घट और घर ही मे प्रभु की उपासना कर लेने से भी हिन्दूधर्म का कुछ बनता बिगडता नही । यह धर्म मुसलमानो की भाँति ऐसा कट्टर और सकीर्ण नही है, कि जिसमे थोडे-से साम्प्रदायिक सिद्धान्तो का उल्लघन होते ही न केवल 'कुफ्र' का फतवा ही मिल जाय प्रत्युत प्राणो तक से हाथ धोना पडे । बेचारे मन्सूर ने ऐसा कौन-सा अनर्थ कर डाला था, जो उसे फाँसी पर लटकना पडा । यही न कि उसने भारतीय अद्वैतवाद के विचारो को अपना लिया था । इटली मे 'गेलोलियो' नामक बडे भारी विचारक को केवल इसी अपराध से कि उसने पृथ्वी को गोल कह दिया था (जो कि 'बाईबल' के कथन के विरुद्ध है क्योकि उसमे पृथ्वी को सपाट चौरस लिखा है ।) प्राणदण्ड दिया गया था । यह है भारत से भिन्न सभ्यताओ की सकीर्णता और क्रूरताओ का एक नमूना । कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर भली-भाँति समझते थे कि हिन्दुओ के उदार और विश्वजनीनधर्म के किसी एक बाह्य विधि-विधान की उपादेयता का समर्थन न करने से वह किंचिन्मात्र भी विकल न होगा । वह—

'पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' ।।

के अनुसार सदा पूर्ण ही रहेगा । उनका यह भी विचार था कि यदि मुसलमानो आदि के निस्तत्त्व बाह्य विधि-विधानो का खण्डन कर उनके हृदयो पर उनके धार्मिक बाह्य-विधि-विधानो की निस्सारता का भाव बैठा दूगा तो वे अवश्य ही कालान्तर मे मुसलमान रहते हुए भी सच्चे भारतीय बन जायँगे । इसीलिए उन्होने हिन्दुओ की तो केवल मूर्तिपूजा आदि एकाध बात का ही उक्त कडे शब्दो मे खडन किया । किन्तु मुसलमानो के तो प्रत्येक विधि-विधान को चुन-चुनकर काटा और बार-बार उनकी निस्सारता और कुत्सितता दिखाई । नमाज, रोजा, पीर, पैगम्बर, ईद, बकरीद, बाँग, सुन्नत आदि मुसलमानो का ऐसा कोई भी धार्मिक अग नही जिसे कबीर ने अपनी तर्कपूर्ण कविता की कैंची से काट कर टुकडे-टुकडे न कर डाला हो । नमाज के विषय मे वे कितना कटु सत्य कहते हैं—

कङ्कर पाथर जोडिकै, मस्जिद लइ चुनाय ।
ता चढि मुल्ला बॉगदे, बहरा हुआ खुदाय ।।

रोजा की बीभत्सता दिखाते हुए वे कहते है कि—

रोजा तुर्क नमाज गुज़ारे, बिसमिल बॉग पुकारै ।
ताके भिसत कहाँ ते होई, साझे मुर्गी मारै ।।

मुसलमान 'भिसति' (बहिश्त—स्वर्ग) के लिए 'रोजा' रखते हैं, किन्तु उन्हे स्वर्ग भला कैसे मिल सकता है जबकि वे दिन भर रोजा रखके भी सन्ध्या समय मुर्गी मारते है । अर्थात् दिनभर रखे हुए रोज़े 'व्रत' के पुण्य की अपेक्षा जीव-हत्या का करोडो गुणा अधिक पाप कर डालते है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर ने जो बाह्य विधि-विधानो का खडन किया है उसका एक-मात्र उद्देश्य हिन्दू और मुसलमान दोनो मे शुद्ध सात्विक भारतीय धर्म का प्रचार था । उन्होने हिन्दुओ को मुसलमान नही प्रत्युत मुसलमानो को शुद्ध भारतीय बनाने के लिए ही यह सब कुछ किया । यहाँ तक कि आरम्भ मे वे सगुण साकार तथा नृसिह आदि अवतार धारी प्रभु की उपासना के पद भी गाते रहे । किंतु जब उन्होने अपने जीवन का उद्देश्य कोरी प्रभु-भक्ति को नही प्रत्युत समाज-सुधार या हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को बना लिया, तब ईश्वर के ऐसे रूप को अपनाना आवश्यक समझा जिससे कि मुसलमान सहसा चौक न पडे । उन्होने अपने पुराने दशरथी राम को नवीन-निर्गुण-निर्विकार रूप दे दिया । किन्तु उसके नाम राम, गोविन्द, हरि आदि सगुण के पर्यायवाचक ही रहने दिये । कबीर की सरल किन्तु अटपटी वाणी मे पडितो के लिए कुछ भी नवीनता न थी—उन्ही की बाते तो कबीर ने लोक-वाणी मे कही थी—अत विद्वत्-समाज पर उनका कोई विशेष प्रभाव नही पडा । निम्नवर्ग की जनता को सत्य, अहिंसा, सदाचार, सतोष आदि का पाठ पढा कर उन्हे उन्नत बनाने का अत्यन्त ही स्तुत्य प्रयत्न उन्होने किया । मुस्लिमवर्ग पर उनका तात्कालिक प्रभाव तो कुछ विशेष नही दिखाई देता—वह उसी समय सहसा भारतीय रग में नही रगा जा सका—पर शनै -शनै उनका प्रभाव मुसलमानो पर भी उत्तरोत्तर बढता गया । जायसी, रहीम, रसखान, आदि परवर्ती मुस्लिम कवियो को भारतीय भाव अपनाने के लिए कबीर से ही प्रेरणा प्राप्त हुई और वे ऐसे पक्के भारतीय बन गये कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ऐसे एक-एक मुस्लिम कवि पर करोडो हिन्दुओ को न्योछावर कर देने को प्रस्तुत हो गये । इस प्रकार हम देखते है कि कबीर का बोया हुआ मधुर बीज अकुरित एव यथा-समय पुष्पित और पल्लवित होकर अत्यन्त ही मनोहर उपादेय फल लाया ।

साहित्य पर भी इनका पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। सिक्खो के आदि गुरु श्री नानकदेव जी तथा परवर्ती सब गुरु तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी न किसी प्रकार अशत इनसे प्रभावित है ही, साथ ही दादू पन्थ के प्रवर्तक दादूदयाल, रामसनेही सम्प्रदाय के आचार्य श्री रामचरण जी आदि अनेक निगुर्णोपासक सम्प्रदायाचार्यों का साहित्य कबीर जी से पूर्णरूपेण प्रभावित है। इसके अतिरिक्त जायसी आदि प्रेम-पन्थी साहित्यकार भी कबीर से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त करते प्रतीत होते हैं।

उक्त सुप्रभावो के साथ-ही-साथ समाज व साहित्य पर कबीर की रचनाओ का कुछ अवाछनीय प्रभाव भी अवश्य पडा है। जैसा कि—

कबीर ने बडे ही विचित्र, सहसा समझ मे न आने वाले रूपक बाधे और उलटबासिया कही जिनके दुर्बोध और बेठिकाने के अर्थों को लेकर साम्प्रदायिक साधु जनता को बहकाने और शास्त्रपारगत पडितो को भी नीचा दिखाने मे समर्थ और सफल हो जाते रहे है। श्री रामकुमार वर्मा ने अपने 'कबीर के रहस्यवाद' में गूढ़ रहस्यो को बतलाने के लिए इन रूपको और उलटबासियो की उपयोगिता का समर्थन किया है। किन्तु हम इससे सहमत नही है क्योकि उपनिषदो मे भी तो ऐसा ही गूढ रहस्य का प्रतिपादन है। उनमे कही ऐसी जटिलताएँ नही हैं। इन बासियो से जनता अपनी प्राचीन पद्धति से विमुख हो वर्णाश्रम व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण मर्यादा से मुख मोड बैठी। सिर मुडाकार सन्यासी बनने, भगवे वस्त्र पहनकर साधु कहलाते—आदि जिन बाह्याडम्बरो का उन्होने घोर विरोध किया, उन्ही बाह्याडम्बरो के सहारे गेरुवे रग मे रगे साधु नामधारी भिखमगों ने कबीर की वाणी का आधार लेकर जनता को लूटना व पथ-भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया। कबीर के वास्तविक उद्देश्य को न समझकर वे लोग सनातन मर्यादाओ पर कुल्हाडा चलाने लग पडे। कबीर ने एक सर्जन की भाँति अपनी कलम की कैंची से समाज के दूषित अँगो की काँट-छाँट की थी किन्तु परवर्ती साधु कबीर की उक्त कैंची को करोत बनाकर समाज के दो टुकडे कर उसका सर्वनाश करने पर उतारू हो गये। बात तो यह है कि कबीर के द्वारा किये गये, समाज की विचार-धारा रूपी सागर के मन्थन से विष, वारुणी, और अमृत तीनो का निकलना स्वाभाविक था। अमृत का सुप्रभाव तो अब तक कार्य कर रहा है। और विष के दुष्प्रभाव को आगे चलकर तुलसीदास ने शिवरूप बनकर समाप्त कर दिया। फिर भी आज के ढोगी भिखमगो मे उसकी वारुणी की मादकता स्पष्ट लक्षित होती है।

साराश यह है कि सूफियो के सरस प्रेमपूर्ण रहस्यवाद तथा वेदान्त के दिव्यज्ञान व हठयोगियो की अलख-निरजन निराकार की उपासना के संगम के कारण

कबीर की सरस्वती-सुरसरी तीर्थराज का अत्यन्त ही पवित्र रूप धारण कर रही है। इन्ही गुणो से प्रभावित होकर विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मुक्तकण्ठ से Kabir's poems (कबीर की कविताएँ) शीर्षक निबन्ध मे इस कलाकार की कला-कुशलता की कीर्ति का कथन किया है। इस दृष्टि से कबीर का हिन्दी साहित्य मे बहुत ही ऊँचा स्थान है। विश्वकवि रवीन्द्रबाबू को केवल इसी हिन्दी कवि की कृतियो ने अपनी ओर आकृष्ट किया। अत यदि हिन्दी मे कबीर की रचनाएँ न होती तो हिन्दी साहित्य को रवीन्द्रबाबू से प्रशसा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त न हो सकता। कबीर की कुछ कविताएँ नीचे दी जाती है।—

१. घूघट का पट खोल रे, तोहे पीव मिलेगे।
घट घट मे वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीज, झूठा पचरङ्ग चोल रे।
सुन्न महल मे दियना बारि लै, आसन सो मत डोल रे॥
जोग जुगत सो रङ्ग महल मे, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

२. झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इगला पिगला ताना भरनी, सुखमन तारस बीनी चदरिया॥
आठ कवल दल चरखा डोलै, पाच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँईको सियत मास दस लागै, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ै, ओढि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतनसे ओढ़ी, ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया॥

श्री गुरु नानकदेव जी—लाहौर ज़िले मे तलवडी नगर के कारिन्दा कालूचद खत्री के घर स० १५२६ मे इनका जन्म हुआ। इनकी माता का नाम तृप्ता था। नानक जी बचपन से ही साधु स्वभाव के विरक्त पुरुष थे। पिता ने इन्हे व्यवसाय के लिए कुछ धन दिया जिसको इन्होने साधुओ और गरीबो को बाँट दिया। इनका सुलक्षणी नाम की कन्या से विवाह हुआ और श्रीचन्द्र तथा लक्ष्मीचन्द नामक दो पुत्र हुए। इन्होने घर बार छोडकर बहुत दूर-दूर देशो का भ्रमण किया, जिससे हिन्दू मुसलमान दोनो के लिए उपासना का एक सामान्य स्वरूप स्थिर करने में इन्हे बडी सहायता मिली। अन्त मे कबीरदास की निर्गुण उपासना का प्रचार इन्होने पजाब मे आरम्भ किया और सिक्ख सम्प्रदाय के आदि-गुरु हुए। कबीर की

ही भाति ये भी कुछ विशेष पढे-लिखे न थे। भक्ति-भाव से पूर्ण होकर नानक जी जो भजन गाया करते थे, उनका सग्रह (स० १६६१) मे ग्रन्थ साहिब मे किया गया है। ये भजन कुछ पजाबी मे है और कुछ देश की सामान्य काव्य-भाषा हिन्दी मे। इनका सत्यलोकवास स० १५९६ मे हुआ।

ये कबीर की भाँति खण्डन-मण्डन के झगडे मे नही पडे। कबीर तो स्वय मुसलमान थे अत उनके द्वारा की गई इस्लाम की आलोचना मुसलमानो के लिए किसी सीमा तक सह्य अथच ग्राह्य भी हो सकती थी, किन्तु उस समय यदि एक हिन्दू इस्लाम के विरुद्ध कुछ कह देता तो उसका मगल न था। फलत कबीर के बाद मे होनेवाले नानक, दादू आदि सभी सन्तो को खण्डन-मण्डन से परे रह कर अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने मे ही औचित्य प्रतीत हुआ। ये मुस्लिम भावनाओ से भी पर्याप्त प्रभावित प्रतीत होते है। इस सम्बन्ध मे श्री डा०सूर्यकान्त जी एम०ए०डी० लिट् अपने हिन्दी साहित्य के विवेचनात्मक इतिहास मे लिखते है कि—

'पजाब मे मुसलमान बहुत दिनो से अधिक सख्या मे बसते आ रहे थे। फलत वहा एकेश्वरवाद के भाव धीरे-धीरे प्रबल हो रहे थे। लोग अनेक देवी-देवताओ के बजाय एक परमात्मा की पूजा करना महत्त्व और सभ्यता का चिह्न समझने लगे थे। अत जहाँ लोगो को बलात् मुसलमान बनाया जा रहा था वहाँ कुछ लोग शौक से भी मुसलमान बन रहे थे। ऐसी दशा मे कबीर के सन्त मत का प्रचार होना सुतरा स्वाभाविक था।'

गुरु नानक बचपन ही से भक्त थे, उनका ऐसे मत की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था जिसकी उपासना का स्वरूप हिन्दू और मुसलमान दोनो के लिए समान रूप मे ग्राह्य हो। उन्होने घर-बार छोड दूर-दूर के देशो मे भ्रमण किया जिससे उपासना का सामान्य स्वरूप स्थिर करने मे उन्हे भारी सहायता मिली। अन्त मे उन्होने कबीर के विचारो को अपनाया और समन्वयात्मक सिक्ख धर्म की आधार-शिला रक्खी। कबीर की अपेक्षा नानक का मुसलमानो की ओर अधिक झुकाव है।' *

---

* 'यद्यपि नानक के ग्रथ मे हिन्दुओ की बातें भरी पडी है तथापि कबीर की अपेक्षा उसकी टोन मे इस्लाम का प्रतिफलन अधिक है। सिक्खो के मदिर की पूजा-प्रक्रिया हिन्दुओ की अपेक्षा, मुसलमानो से अधिक मिलती है। 'जपजी' का आरम्भिक वाक्य इस प्रकार है—'ईश्वर एक ही है, उसी का नाम सत्य है, वही संसार का विधाता है।' परमात्मा को ससार का नियामक माना जाता है न कि एक ऐसा तत्त्व जो ससार के द्वारा अपने आपको विकसित करता है। उसी की

नानक जी के कुछ पद नीचे दिये जाते है—

१ इस दम का मैनू की वे भरोसा,
आया आया न आया न आया।
या ससार रैन दा सुपना,
कहि दीखा कहि नाहि दिखाया॥
सोच विचार करे मत मन मे,
जिसने ढूढा उसने पाया।
"नानक" भक्तन के पद परसे,
निस दिन राम चरण चित लाया॥

२. मन की मनही माहि रही॥
ना हरि भजे न तीरथ सेवे चोटी काल गही॥
दारा मीत पूत रथ सम्पति धन जन पूर्न मही॥
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही॥
फिरत फिरत बहुते जग हार्यो मानस देह लही॥
"नानक" कहत मिलन की बिरिया सुमिरत कहा नही॥

३ सुमरन कर ले मेरे मना।
तेरि बीति जात उमर हरि नाम बिना॥
कूप नीर बिनु धेनु छीर बिन मन्दिर दीप बिना।
जैसे तरुवर फल बिन हीना तैसे प्राणी हरिनाम बिना॥
देह नैन बिन रैन चद बिन धरती मेह बिना।
जैसे पण्डित वेद विहीना तैसे प्राणी हरिनाम बिना॥
काम क्रोध मद लोभ निहारो छाड दे अब सतजना।
कहे"नानकशा"सुन भगवता या जग मे नही कोइ अपना॥

४ साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध सगति दुर्जन की ताते अहनिस भागो॥

आज्ञा से वस्तुजात प्रकट होते है। ऐसी बातो मे इस्लाम की गन्ध आती है। कही-कही तो नानक कुरान ही के शब्दो का उपयोग कर बैठते है जैसे परमात्मा का दूसरा साथी नही इत्यादि।

सुख दुःख दोनो सम कर जाने और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहै अतीता तिन जग तत्व पिछाना ॥
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागै खोजै पद निरवाना ।
जन "नानक" यह खेल कठिन है किनहूँ गुरुमुख जाना ॥

रविदास या रैदास—ये रामानन्द जी के प्रमुख बारह शिष्यो मे से एक और जाति के चमार थे। इनका आविर्भावकाल स० १४४५ और १५७५ के मध्य माना जाता है। कहा जाता है कि ये काशी के रहने वाले थे। मीराबाई को कई लोग इनका शिष्य मानते हैं। रैदास का सम्प्रदाय रैदासी-पथ के नाम से प्रसिद्ध है। 'रविदास की वाणी' और 'रविदास के पद' नामक सकलनो मे इनकी रचनाएँ सगृहीत की गई हैं। चमार जैसी नीच जाति मे उत्पन्न एक सन्त को इतना महत्त्व-पूर्ण स्थान देना वैष्णव धर्म की उदारता व सारग्राहिता का परिचायक है। भक्ति के मार्ग मे—

जात पात पूछे नही कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

के सिद्धान्त को भारतीयो ने क्रियात्मक रूप मे स्वीकार किया है।

इनकी कविता का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमरिये, छॉडि सकल प्रतिवाद ॥
अब कैसे छूटै नाम रट लागी ॥टेक॥

प्रभु जी तुम चदन हम पानी। जाकी अग अग बास समानी ॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चद चकोरा ॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोत बरै दिन राती ॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहि मिलत सोहागा ॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

धर्मदास—यह बान्धव गढ के रहने वाले बनिये थे। इनका जन्म स० १४७५ और १५०० के बीच तथा मृत्यु स० १६०० के लगभग मानी जाती है। कबीर की मृत्यु के पश्चात् यह उनकी गद्दी पर बैठे थे। आरम्भ मे ये साकारोपासक तथा तीर्थ, व्रत, पूजा आदि मे बडी श्रद्धा रखते थे, किंतु कबीर के प्रभाव मे आकर अपना सर्वस्व त्यागकर यह उनके अनुयायी शिष्य बन गये। इनकी प्रधान रचना 'सुख निधान' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओ में सरलता बहुत अधिक है और खडन-मडन बिल्कुल नही है। इनका एक पद नीचे दिया जाता है—

मोरा पिया बसै कौने देस हो ।
अपने पिया के ढूढन हम निकसी कोई न कहत सनेस हो ।।
पिय कारन हम भई है बावरी धर्यो जोगिनिया कै भैस हो ।
ब्रह्मा विष्णु महेस न जाने का जानै सारद सेस हो ।।
धनि जो अगम अगोचर पइलन हम सब सहत कलेस हो ।
उहा के हाल कबीर गुरु जानै आवत जात हमेस हो ।।

दादूदयाल—इनका जन्म स० १६०१ में अहमदाबाद मे हुआ। ये बच्चे के रूप मे साबरमती नदी मे बहते हुए लोदीराम नामक एक ब्राह्मण को मिले थे। ये जाति के मोची या धुनिया या ब्राह्मण भी माने जाते है। इनका गुरु कौन था यह ज्ञात नही। कबीर की वाणी मे इनका नाम बहुत आया है जिससे ये उन्ही के मतानुयायी सिद्ध होते है , पर इन्होने दादूपन्थ नाम से अपना पृथक् मत चलाया। दादूदयाल आमेर (जयपुर), बीकानेर तथा भराने आदि स्थानो मे रहे और १६६० मे उक्त भराना नामक स्थान पर इन्होने शरीर छोडा। दादूपन्थी लोग हाथ मे एक सुमरनी रखते है और सत्तराम कहकर अभिवादन करते है। दादू की वाणी कबीर की साखी से मिलते-जुलते दोहो मे है। कही-कही गाने के पद भी है। भाषा मिली-जुली पश्चिमी हिन्दी है, जिसमे राजस्थानी का मेल भी है। ये कबीर के समान खडन-मडन मे नही पडे और इनकी रचना मे प्रेम की पीर कबीर से कही अधिक सरस एव गम्भीर है। इन्होने लगभग ५००० पद्य लिखे थे जिनमे से अधिकाश केवल मुख-परम्परा से प्राप्त होते है और शेष 'दादू की वानी' नामक सग्रह मे उनके ५२ शिष्यो द्वारा स्थापित ५२ दादूद्वारो (दादूपन्थीमठो) मे सुरक्षित है। इनका एक पद नीचे दिया जाता है —

घीव दूध मे रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर ।
दादू बकता बहुत है, मथि काढै ते और ।।३।।

कहि कहि मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुरु बपुरा क्या करै, जो चेला मूढ अजान ।।४।।

आव रे सजणॉ आव, सिर पर धरि पॉव ।
जानी मैडा जिद असाड़े ।
तू रावै दा राव वे सजणाँ आव ।।

इत्था उत्थां जित्था कित्था, हौ जीवा तो नाल वे ।
मीया मैडा आव असाडे ।
तू लालो सिर लाल वे सजणाॅ आव ।।

तन भी देवा मन भी देवा, देवा पिण्ड प्राण वे ।
सच्चा साॅई मिलि इत्थाई ।
जिन्दा करॉ कुरवाण वे सजणाॅ आव ।।

तू पावे सिर पाव वे सजणा तूॅ खोवौ सिर खोव ।
दादू भॉवै सजणाॅ आवै ।
तू मीठा महबूब वे सजणाॅ आव ।।

जागि रे सब रैणि बिहाणी । जाइ जनम अगुली कौ पाणी ।।
घडी घडी घडियाल बजावै । जे दिन जाइ से बहुरि न आवै ।।
सूरज चन्द कहै समझाइ । दिन दिन आयू घटती जाइ ।।
सरवर पाणी तरुवर छाया । निसदिन काल गरासै काया ।।
हस बटाऊ प्राण पयाना । दादू आतमराम न जाना ।।

मलूकदास—इनका जन्म स० १६३१ मे ला० सुन्दरदास खत्री के घर मे कडा ज़िला इलाहाबाद मे और देहान्त स० १७३९ मे हुआ । निर्गुण मत के नामी सन्तो में इनकी गिनती है । इनकी गद्दिया कडा, जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नैपाल और कावुल तक मे कायम हुईं । इनके बहुत से चमत्कार प्रसिद्ध हैं । 'अजगर करे न चाकरी, पछी करे न काम । दास मलूका कह गए सब के दाता राम' यह पद इन्ही का है । इनकी लिखी 'रत्न-खान' और 'ज्ञानबोध' नाम की दो पुस्तके मिलती हैं, जिनमे भाषा सुव्यवस्थित और सुन्दर है । कही-कही अच्छे कवियो के से कवित्तादि छन्द भी पाये जाते हैं । इनका एक पद यहाॅ उद्धृत किया जाता है—

लोयन जाहि कटाच्छ सर, मारि प्रान हर लीन्ह ।
अधर बचन ततखिन दोऊ, अमिय सीचि जिव दीन्ह ।।१।।

दीनदयाल सुनी जब ते तब ते हिय मे कुछ ऐसी बसी है ।
तेरो कहाय के जाऊ कहा मै तेरे हित की पट खैच कसी हैं ।।
तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी है ।
एहो मुरारि पुकारि कहौ अब मेरी हसी नहि तेरी हसी है।।२।।

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहा तहा फिरै गाय ।
कहे मलूक जहँ सतजन, तहा रमैया जाय ॥३॥

सुन्दरदास—आपका जन्म स० १६५३ मे द्यौसा मे और मृत्यु स० १७४६ मे साँगानेर में हुई। ये परमानद के पुत्र, दादूदयाल के शिष्य और निर्गुण-शाखा के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। स० १६६३ से लेकर ३० वर्ष तक काशी मे रहकर इन्होने वेद, पुराण, शास्त्र आदि का अध्ययन किया। ये बाल-ब्रह्मचारी अत्यन्त कोमल स्वभाव के महात्मा थे। निर्गुण शाखा मे केवल यही ऐसे महात्मा हुए है जिन्होने शास्त्र आदि का अध्ययन किया। अत इनकी रचना सरस साहित्यिक है। भाषा भी परिमार्जित व्रजभाषा है। इन्होने अन्य ज्ञानमार्गी कवियो की भाँति लोक और समाज से दूर रहकर केवल निर्गुण की उपासना का प्रचार करने वाली कविताएँ नही लिखी और इस प्रकार लोक-धर्म की उपेक्षा नही की। युद्ध-क्षेत्र मे मर मिटने वाले वीरो, पति-व्रता स्त्रियो आदि की इन्होने भूरि-भूरि प्रशसा की है। व्यर्थ की तुकबदी और ऊट-पटाग वाणी इनको रुचिकर न थी, इसलिए ये कहते है—

"बोलिए तो तब जब बोलिवै की बुद्धि होय ।
ना तो मुख मौन गहि चुप होय रहिए" ॥

इन्होने कवित्त और सवैये बहुत सुन्दर लिखे है। इनका 'सुन्दरविलास' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। सक्षेप मे कह सकते है कि निर्गुणशाखा मे एक-मात्र यही साहि-त्य-मर्मज्ञ कवि थे। इन्होने केवल दोहो मे साखी या गीतात्मक पद ही न लिखकर दुर्मिल, मनहरण आदि कवित्त सवैयो मे भी बडी ही सरल अनेक रसो से युक्त रचनाएँ लिखी है। शृगार को छोडकर शेष सभी रसो पर वीर और हास्य पर भी, इनकी सुललित सूक्तियाँ प्राप्त है। 'दशो दिशाओ के सवैयो' मे इन्होने अपने भारत-भ्रमण से प्राप्त अनुभव का पूर्ण परिचय दिया है। इनकी रचनाओ मे 'ज्ञान समुद्र' (पाच उल्लासो मे) 'सुन्दर-विलास' और 'सुन्दरदास के पद' प्रसिद्ध है। इनकी कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत की जाती है।

सुनत नगारे चोट बिकसै कमल मुख अधिक उछाह भूल्यो मायहू न तन मे । फेरे जब साग तब कोई नही धीर धरे कायरपन होत देखि मन मे ॥ कूदि के पतग जैसे परत पावक माहि ऐसे टूटि परे बहु सावत के घन मे । मरि घमासान करि सुन्दर जुहारे स्याम सोई सूरबीर रोपि रहै जाइ रन मे ॥

सुन्दर जो गाफिल हुआ, तौ वह साईं दूर ।
जो बन्दा हाजिर हुआ, तौ हाजरा हजूर ।।
लौन पूतरि उदधि मे, थाह लेन को जाइ ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिचही गई बिलाइ ।।

अक्षर अनन्य—श्री रामकुमार वर्मा ने इनका समय स० १७६७ माना है किन्तु रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि स० १७१० मे इनके वर्तमान रहने का पता लगता है। अत कह सकते है कि इनका समय स० १७०१ से स० १७६७ तक है।

ये दतिया रियासत के अन्तर्गत सेनुहारा के कायस्थ थे और कुछ दिनो तक दतिया के राजा पृथ्वीचन्द के दीवान रहे थे। पीछे ये विरक्त होकर पन्ना में रहने लगे। प्रसिद्ध छत्रसाल इनके शिष्य हुए। एक बार ये छत्रसाल से किसी बात पर अप्रसन्न होकर जगल मे चले गये। पता लगने पर जब महाराज छत्रसाल क्षमा-प्रार्थना के लिए इनके पास गये तब इन्हे एक झाडी के पास खूब पैर फैला कर लेटे हुए पाया। महाराज ने पूछा—"पाँव पसारा कब से ?" चट उत्तर मिला—"हाथ समेटा जब से"।

ये विद्वान् थे और वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होने योग और वेदात पर कई ग्रथ—राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यानयोग, सिद्धातबोध, विवेकदीपिका ब्रह्मज्ञान, अनन्य-प्रकाश आदि लिखे और दुर्गा सप्तशती का भी हिन्दी पद्यो में अनुवाद किया। इन्होने पद्धरी छद का प्रयोग विशेष रूप से किया है।

रामचरण—इनका जन्म स० १७७६ मे जयपुर के समीपवर्ती सोडाग्राम मे और निधन स० १८५५ मे शाहपुरा मे हुआ। इनके सुख विलास, अमृत उपदेश, जिज्ञासा बोध, विश्वास बोध, विश्राम बोध, समता निवास, राम रसायण बोध, अनुभव विलास, ये आठ बडे तथा शब्द प्रकाश आदि बारह छोटे ग्रन्थ हैं। इनके दृष्टान्त सागर मे कबीर के जैसे अटपटे रूपक और उलटबासियो का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। जैसे—

सात हाथ की काकडी बीज बध्यो नव हाथ।
आठ फाड अरु तीन रस माली सग सनाथ ।।

ये हिन्दी, सस्कृत आदि अनेक भाषाओ के ज्ञाता थे और इनकी वाणी मे सभी प्रकार की भाषाएँ मिलती है। इनकी सम्पूर्ण रचनाएँ एक बृहद् ग्रन्थ के रूप में शाहपुरे में सग्रहीत है। इन्होने निर्गुण और सगुण धारा के भेद को मिटा कर उनके एकीकरण का प्रयत्न किया। जैसेकि—

कोई सेवे आकार कोई निराकार का भाव ।
रामचरण वे सन्त जन मध का करे उपाय ।।

श्री डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि 'राम सनेही मत मुसलमानी मत से बहुत कुछ मिलता है, उसमे मूर्तिपूजा के लिए स्थान नही, दिन में नमाज़ की तरह पाँच बार निराकार ईश्वर की आराधना होती है, इसमें जातिबन्धन भी नही हैं'। यह कथन सर्वथा निराधार है क्योकि राम सनेही मत पर न तो मुसलमानो का कुछ प्रभाव है न केवल प्रात कालीन तथा सध्याकालीन उपासना को छोड कर नमाज़ की तरह पॉच बार आराधना ही होती है। हॉ वाणि मे हिन्दू-मुस्लिम एकता पर अवश्य बल दिया है। ये मूर्तिपूजा के भी सर्वं शत विरोधी नही और नि श्रेयस प्राप्ति मे उसे प्रथम सोपान मानते है। यथा-'पहिली पहडी प्रतिमा, प्रतिमा मे हरि सेव' राम सनेही मत में वर्ण-व्यवस्था भी यथावत् मानी गई है।

अन्य सन्त

उपर्युक्त प्रमुख सतो के अतिरिक्त अन्य भी अनेक सत हो गये हैं, जिन्होने अपनी-अपनी वाणी कही है। इन सबका पूर्ण परिचय न देकर उनका उल्लेख-मात्र नीचे किया जाता है—

१. **त्रिलोचन**—दक्षिण भारत के पण्ढारपुर में स० १३२४ मे उत्पन्न हुए थे। यह ज्ञानदेव के शिष्य और नामदेव के साथी थे।

२ **सदना**—यह सिध के रहने वाले कसाई और नामदेव के समकालीन थे।

३ **धन्ना**—यह जाति के जाट थे और दुहवान (देवली, अजमेर मेरवाडा) मे सवत् १४७२ में उत्पन्न हुए थे। एक ब्राह्मण को भगवान् की पूजा करते देख यह प्रभु की पूजा इतनी तन्मयता से करने लगे कि बिना पूजा किये पानी भी नही पीते थे। भक्तमाल मे कृष्णरूप के दर्शन आदि इनकी अनेक अलौकिक कथाऐ लिखी हैं। अतिम दिनो मे ये काशी जाकर रामानन्द जी के शिष्य हो गये थे।

४ **पीपा**—इनका जन्म सवत् १४८२ मे गगनौरगढ मे हुआ। रामानन्द के शिष्य बनकर इन्होने पर्याप्त पर्यटन किया था।

५ **सेन**—यह जाति के नाई व रामानन्द के शिष्य थे।

६ **सुथरादास**—यह सुथरा सम्प्रदाय के प्रवर्तक और मलूकदास के शिष्य थे।

७ **हरिदास**—यह नारायणी पथ के प्रवर्तक थे।

८ **स्वामी प्राणनाथ** —इनका जन्म सवत् १७१० और मृत्यु स० १७७१ मे हुई। इन्होने प्राणनाथी सम्प्रदाय चलाया जिसकी 'प्रनामी' और 'धामी' नामक दो शाखाएं है। ये वेद और कुरान दोनो को मानते है और औरगजेब तक की अवतारो मे गणना करते है। दूसरे सम्प्रदाय वालो को यह अपने ग्रथ और उद्देश्य कभी नही बताते।

९ **चरणदास**—जन्म सवत् १७६० मे अलवर स्टेट मे हुआ था। इनकी 'अमर-लोक', 'अखण्ड धाम' आदि पॉच रचनाए है।

१० **भीखा साहिब**—इनका जन्म सवत् १७७० मे और मृत्यु १८२० मे हुई थी। इनकी रचनाओ मे पाप और पुण्य का अच्छा विवेचन हुआ है। इनके अनेक ग्रथो मे से 'रामजहाज' नामक ग्रथ बहुत बडा है।

११ **गरीबदास**—इनका जन्म सवत् १७७४ मे रोहतक जिले मे हुआ था। कहा जाता है कि इन्होने ७००० पद्य लिखे थे जिनमे से केवल अब १८०० ही मिलते है। पजाब मे गरीबद्दास के अनुयायी अब भी कही-कही पाए जाते है।

१२ शेख फरींद, १३ शेख फिरदसानी, १४ सत्तनामी पथ के प्रवर्तक वीर-भान[1], १५ भोजपुरी भाषा मे लिखित प्रेम-प्रकाश और सत्य-प्रकाश के रचयिता धरनीदास। १६ लालदासी पथ के प्रवर्तक अलवर निवासी लालदास। १७. दारा-शिकोह के गुरु बाबालाल। १८ रज्जब, १९ बीरू साहब, २० यारी साहब २१ बुल्ला साहब, २२ दरिया सागर, ज्ञान दीपक आदि अनेक पुस्तको के रचयिता तथा दरिया पथ के प्रवर्तक, धरकधा (आरा) निवासी मुसलमान दरिया साहब, २३ मारवाड के दरिया पथ के प्रवर्तक धुनिया दरिया साहब। २४ बुल्ला साहब उपनाम बुलाकी राम, २५ गुलाब साहब उपनाम गोविन्द साहब, २६ यारी साहब के शिष्य तथा अमरघूट के रचयिता केशवदास, २७ 'ध्यानमजरी' 'नेह प्रकाश' आदि ग्रन्थो के रचयिता बालकृष्ण, २८ सत्तनामी पथ को फिर से सगठित और जागृत करने वाले 'ज्ञान प्रकाश' 'महा प्रलय' और प्रथम ग्रन्थ के निर्माता जगजीवन दास, २९ लखनऊ निवासी कृष्णोपासक सन्त दूलनदास शिवनारायणी पथ के प्रवर्तक स्वामी नारायण सिंह, ३०-३१ स्वामी चरणदास की शिष्या मेवात निवासिनी सहजोबाई और दया बाई, (जिन्होने दयाबोध और विनयमालिका नामक ग्रन्थो की रचना की थी)। ३२ रामरूप, ३३ स्वामी नारायणी पथ के प्रवर्तक स्वामी सहजानन्द, ३४

---

१ औरङ्गजेब ने दो हजार सतनामियो को एक साथ मरवा डाला था।

'घट रामायण' 'शब्दावली'और 'रत्न सागर' के रचयिता तुलसी साहब, ३५ गाजी-दास आदि। अन्यान्य अनेक सन्तो ने भी निर्गुण भक्ति सम्बन्धी वाणियाँ और दूसरी पुस्तके लिखी है। इन सन्तो की वाणियो के सग्रह बैलवेडियर प्रैस इलाहाबाद से प्रकाशित हुए है। स्थानाभाव के कारण इन सबका यहाँ विस्तृत परिचय नही दिया जा सका।

अभ्यास

१ निर्गुण साहित्य की परम्परा का परिचय दें।

२ निर्गुणोपासक सन्तो ने भाषा, विषय, शैली मे सिद्धान्त कहाँ से प्राप्त किये ?

३. कबीर ने साम्प्रदायिक सिद्धान्तो का इतना कडा खण्डन किस उद्देश्य से किया ? वे अपने उद्देश्य मे कहाँ तक सफल हुए ?

४ कबीर के जन्म-स्थान, समय, जाति, माता-पिता, गुरु व स्वभाव आदि के आधार पर उनके जीवन का पूर्ण परिचय दे।

५ कबीर की रचनाओ की सक्षिप्त समालोचना करते हुए सिद्ध करे कि भारत की सात्विक सच्ची सस्कृति का प्रचार ही उनका मुख्य ध्येय है।

६ गुरु नानकदेव, दादूदयाल व सुन्दरदास का परिचय देकर इनके साहित्य की सक्षिप्त समीक्षा करें।

सातवाँ अध्याय

प्रेम प्रबन्ध-काव्य

चौदहवी शताब्दी के लगभग हिन्दी मे प्रेमात्मक आख्यान-काव्यो का आरम्भ हुआ। उनमे भारतीय और विदेशी तत्त्व इस प्रकार एकाकार हो गये कि चतुर समीक्षक के सिवा साधारण समाज उनमे कोई विदेशी रग देख ही नही सकता। पद्मावत के प्रारम्भिक मगलाचरण प्रकरण को (जिसमे मुहम्मद साहब की स्तुति है) न पढा जाय तो आगे सारे महाकाव्य का स्वरूप भारतीय ही है। यह बात दूसरी है कि सर्गों के स्थान पर मसनवी शैली के अनुसार खण्डो मे यह ग्रन्थ विभाजित किया गया है। प्राचीन सस्कृत साहित्य मे भी कादम्बरी, दशकुमारचरित, नलोपाख्यान या नैषधीयचरित आदि प्रेमकाव्य प्राप्त होते है, किन्तु जिस प्रकार सस्कृत नाटको के रहते हुए भी आधुनिक हिन्दी नाटक सस्कृत नाटको की शैली से सर्वथा स्वतन्त्र और विदेशी प्रभाव से प्रभावित है, उसी प्रकार सूफी सन्तो द्वारा रचित प्रेमकाव्य भी सस्कृत साहित्य से स्पष्टत कोई सम्बन्ध नही रखते, प्रत्युत पारसीक (फारसी) प्रेम-प्रबन्धो की परम्परा पर ही चलते है। साथ ही यह भी सत्य है कि भारत में इस प्रकार के प्रेमकाव्य हिन्दी मे भी मुसलमानो के द्वारा नही प्रत्युत सर्वप्रथम हिन्दुओ के द्वारा ही लिखे गये थे। जनता में इस प्रकार के काव्यो के प्रति पहले से ही रुचि चली आ रही थी और लोक-साहित्य के निर्माता हिन्दू-लेखक ऐसे काव्य प्राय लिखते रहते थे। हाँ उस साहित्य की परम्परा को पल्लवित और पुष्पित अवश्य ही मुस्लिम कवियो ने किया। इन आख्यान-काव्यो मे अनेक परस्पर-विरोधी तत्त्वो का बडा ही सुन्दर सामजस्य हुआ है। ये प्राचीन पद्धति के विकसित स्वरूप होते हुए भी अपने रूप मे सर्वथा मौलिक और नवीन तथा आर्यों की दोनो शाखाओ (ईरानी और भारतीय) के सिद्धान्तो के समन्वयात्मक स्वरूप में रहते हुए भी सर्वथा स्वतन्त्र है।

सिद्धान्त व परिचय—सूफी सिद्धान्तो का सक्षिप्त सार पहले दिया जा चुका है। यहाँ कुछ अन्य अपेक्षित बातो पर प्रकाश डाला जाता है। ये लोग आत्मा और परमात्मा की एकरूपता स्वीकार करते हुए प्रेम के द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते व लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम तक पहुँचते हैं।

विश्व का यह एक सामान्य नियम है कि प्रेमी पुरुष ही अपनी प्रेमास्पद प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता है, उसके लिए अनेक कष्ट

सहता है—विपत्तियाँ झेलता है। विपरीत इसके प्रेयसी तो कभी किसी की प्राप्ति के लिए अपनी ओर से प्रथम उपक्रम नही करती। इधर अध्यात्म पक्ष मे भी आत्मा ही परमात्मा को पाने के लिए सचेष्ट रहता है न कि परमात्मा आत्मा को पाने के लिए। इसी सिद्धान्त को समक्ष रखते हुए सूफी सन्तो ने आत्मा को 'नायक' या प्रिय तथा परमात्मा को प्रेयसी या 'नायिका' माना है। और इसके लिए लौकिक प्रेम-कथाएँ कहकर—किसी राजकुमार को किसी राजकुमारी के विरह मे तडपा कर—उसकी प्राप्ति के लिए अनेको कष्ट सहकर—अन्त मे उनका पारस्परिक मिलन दिखलाया है और समझा दिया गया है कि यह तो केवल प्रतीक स्वरूप या दृष्टान्त है। वास्तव मे न कोई राजकुमार है न कोई राजकुमारी, प्रत्युत आत्मा परमात्मा की क्रीडा है।

इस साहित्य की विशेषताएँ

१ **रहस्यवाद**—इन काव्यो मे यत्र-तत्र उस अज्ञात प्रियतम की अस्पष्ट-सी झलक दिखाई दे जाती है। कवि आत्म-तत्त्व का (या परमात्म-तत्त्व का, कुछ भी कहो बात एक ही है) सकेत-सा करता हुआ प्रतीत होता है। ऐसे स्थल रहस्यवादात्मक काव्य कहलाते है। जायसी के पद्मावत मे रहस्यवाद की बडी सुन्दर अवतारणा हुई है।

२ **विरह-वर्णन**—इन प्रेमकाव्यो मे विरह को बहुत ही अधिक महत्त्व-पूर्ण स्थान दिया गया है। जो आत्मा जितना ही अधिक विरह की आँच मे तपता है, वह उतना ही अधिक सोने के समान निखरकर परमात्मतत्त्व को पाने का अधिकारी हो जाता है। यहाँ तक कि उसके विरह मे तडपते-तडपते अपनी सब कुछ सुध-बुध खो बैठता है—सज्ञाशून्य-सा हो जाता है। साधक रत्नसेन पद्मिनी को प्राप्त करने से पूर्व उक्त अवस्था मे पहुँचा हुआ प्रतीत होता है, वह पद्मावती से साक्षात्कार होते ही मूर्च्छित हो जाता है।

यही कारण है कि सूफी सिद्धान्तो पर आधारित समग्र प्रेम-पूर्ण-प्रबन्ध काव्यो मे विरह का अत्यन्त विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रत्येक कवि ने विविध रूपो मे विरह के गीत गाए है। विरहाग्नि मे तपता हुआ नायक अनेक कष्टो का सामना करके ही प्रियतम को प्राप्त कर सकता है। इस विरह के बिना कोई भी सच्चे साधक के पद पर नही पहुँच सकता। जैसे कि कहा है—

विरह अवधि अवगाह अपारा। कोटि माहि एक परैत पारा॥
विरह कि जगत अविरथा जाही। विरह रूप यह सृष्टि सबाही॥

नैन विरह अजन जिन सारा। विरह रूप दरपन ससारा ।।
कोटि माहि बिरला जग कोई। जाहि सरीर विरह दुख होई ।।
रतन कि सागर सागरहि ? गज मोति गज कोई ।
चन्दन कि बन-बन उपजै, विरह कि तन-तन होई ।।

शुक्लजी ने सूफियो के इस विरह के सम्बन्ध मे लिखा है कि 'जिसके हृदय मे यह विरह होता है उसके लिए यह ससार स्वच्छ दर्पण हो जाता है और इसमें परमात्मा के आभास अनेक रूपो मे पडते है। तब वह देखता है कि इस सृष्टि के सारे रूप, सारे व्यापार उसी का विरह प्रकट कर रहे है'। इस प्रकार विरह-वर्णन सूफी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। इसीलिए मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत मे नागमती का बडा ही सुन्दर और हृदय-ग्राही विरह वर्णन किया है। नागमती के विरह मे सारा ससार ही विरहाकुल हो रहा है। विरह की आच मे जलकर ही कोयल, भ्रमर आदि भी काले हो गये। नागमती के विरह का बारहमासा सचमुच हिन्दी साहित्य की एक निधि है।

३ **सामयिक शासक आदि की स्तुतियां**—मसनवी पद्धति पर निर्मित होने के कारण ही इन काव्यो के आरम्भ मे ईश्वर, पैगम्बर, गुरु और सामयिक शासक आदि की स्तुतियाँ भी विस्तृत रूप मे रहती है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने तात्कालिक शासक शेरशाह सूरी तथा अपने गुरु सय्यद अशरफ जहाँगीर आदि की प्रशसा तथा स्तुतियां बडे ही विस्तार के साथ की है।

४ **योगियो का प्रभाव**—भारतीय मुसलमान सत, सदा से योगियों और नाथो के सम्पर्क मे रहते आए है। अत उक्त सूफी साहित्य पर नाथों का प्रभाव पर्याप्त रूप मे लक्षित होता है। इन्होने सिहल द्वीप और उसमे पद्मिनी स्त्रियो का वर्णन, अनेक सिद्धियो का सकेत, इडा, पिंगला, सुषुम्णा आदि नाडियो और 'षट् चक्रों' का उल्लेख आदि अनेक विषय नाथो या योगियो से ही लिए है।

५ **हिन्दुत्व का आदर्श**—इस साहित्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसके लेखक तो प्राय मुसलमान है किन्तु उन्होने भारतीय हिन्दू रूप को अपना लिया है। ये लोग ईरान और ईराक के शाहज़ादा और शाहज़ादियो की प्रेम-कथा न कहकर 'राजकुमार' और 'राजकुमारियो' की कथा कहते हैं और उन्हे पूरे भारतीय सस्कृति के प्रतीक के रूप मे अकित करते है। बीच-बीचमें पीर-पैगम्बरो की अवतारणा न कर साधु, सन्तो व शिव रूप की अवतारणा करते हैं। इसी प्रकार इन पर

निर्गुण पथियो का प्रभाव भी प्रचुर परिमाण मे पडा है। इसके अतिरिक्त इस्लाम के प्रति आस्था भी इन सभी सूफियो में समान रूप से पाई जाती है। इसे यू कह सकते है कि ये लोग 'इस्लाम सम्प्रदाय के अनुयायी हिन्दू' या भारतीय थे। हम चाहते हैं कि वर्तमान के मुसलमान भी रहीम, रसखान और जायसी की भाति 'भारतीय मुसलमान' बन जायँ न कि 'अरबी मुसलमान'। ऐसा करने पर इस्लाम भारत के अन्यान्य सैकडो सम्प्रदायो के साथ सन्निविष्ट होकर भारतीयो से स्थायी भाईचारा स्थापित कर सकता है।

समाज व साहित्य पर प्रभाव—भारतीय समाज व साहित्य पर भी इनका अत्यन्त हितकर प्रभाव पडा। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को दूर करने का जो प्रयत्न निर्गुणपथियो ने प्रारम्भ किया था उसका परिणाम तत्काल फलीभूत नही हो सकता था। एक तो उनकी खण्डन-मण्डनात्मक प्रवृत्तियो से दोनो धर्मों के अनुयायो उनसे कुछ चिढ से गये और दूसरे उनके उपदेशात्मक साहित्य मे सरसता रसार्द्रता के स्थान पर नीरसता और शुष्कता मुख्य रूप से लक्षित होती थी, किन्तु सूफियो का साहित्य समाज मे सरसता का सचारक सिद्ध हुआ। उसने हिन्दुओ के घरों की कहानियो को अपना कर उनके प्रति मुस्लिम हृदयो को आकृष्ट कर इन दोनो के अजनबीपन को मिटाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। इनकी साहित्यिक अवधी भाषा तथा दोहा, चौपाइयो की शैली ने परवर्ती साहित्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया। हम देखते है कि आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महा-काव्य 'रामचरितमानस' की रचना इसी भाषा व शैली में की थी।

लेखकगण—

ईश्वरदास—इनका रचनाकाल स० १५४६ से १५७४ तक माना जाता है। इन्होने सत्यवती की कथा नामक एक प्रेमकाव्य दोहा-चौपाइयो की शैली मे लिखा था। आचार्य शुक्ल जी ने इसे ही सर्वप्रथम प्रेम-प्रबन्ध काव्य माना है।

कुतबन—ये चिश्ती वश के शेख़ बुरहान के शिष्य थे और जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के आश्रय मे रहते थे। इन्होने 'मृगावती' नाम की एक प्रेम-कहानी दोहे-चौपाई के रूप मे स० १५५८ मे लिखी। इसमे रूपक द्वारा प्रेममार्ग के त्याग और उसकी कठिनाइयो का वर्णन किया गया है। इसकी कथा इस प्रकार है—

चन्द्रगिरि का राजकुमार कचनपुर की राजकुमारी मृगावती पर आसक्त हो गया। राजकुमारी उडने की विद्या जानती थी। वह एक दिन राजकुमार को धोखा देकर उड गई। राजकुमार योगी बनकर उसे खोजने के लिए निकल पडा। रास्ते मे उसने रुक्मणी नाम की एक सुन्दरी को एक राक्षस से बचाया। इस पर

रुक्मणी के पिता ने राजकुमार से उसका विवाह कर दिया। अन्त मे वह राजकुमारी मृगावती को प्राप्त कर उसके साथ बारह वर्ष रहता है। बाद मे राजकुमार पिता का सन्देश पाकर मृगावती सहित वहाँ से चल कर मार्ग मे रुक्मणी को भी लेकर घर पहुँचा। वहा बहुत दिनो तक आनन्दपूर्वक सुखोपभोग करने के पश्चात् अन्त में हाथी से गिर कर मर गया। दोनो रानिया उसके साथ सती हो गईं।

दामौ कवि रचित लक्ष्मणसेन पद्मावती—दामौ नामक कवि का विशेष परिचय प्राप्त नही हुआ। इन्होने स० १५१६ मे 'लक्ष्मणसेन-पद्मावती' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा था। इसकी कथा भी चित्तौड की रानी पद्मिनी और लक्ष्मणसेन से सम्बद्ध है और भाषा राजस्थानी। बीच-बीच मे प्राकृत व सस्कृत के श्लोक भी है। इसमे प्रेम की अपेक्षा वीररस ही प्रधान है।

मझन—इनका विस्तृत परिचय अभी तक कही प्राप्त नही हुआ। इनकी स० १६०२ मे लिखी रचना 'मधुमालती' की प्रति भी अधूरी ही मिली है। मृगावती की अपेक्षा यह रचना प्रौढ, सरस व विस्तृत है। कहानी का साराश यह है—मनोहर नामक राजकुमार को सोते हुए को उठाकर अप्सराएँ महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आईं। जागने पर दोनो एक-दूसरे पर मोहित होकर बातचीत करते-करते सो गये। तब अप्सरा मनोहर को उठाकर फिर उसके घर पहुँचा गई। जागने पर प्रेम से व्याकुल मनोहर मधुमालती को खोजने के लिए समुद्रमार्ग से चल पडा। रास्ते मे जहाज के डूबने से एक तख्ते पर तैरता हुआ मनोहर किसी जगल मे जा लगा। वहाँ उसने एक राक्षस को मारकर उसके फदे से प्रेमा नामा चित्तविसरामपुर की राजकुमारी को बचाया। प्रेमा ने उसे बताया कि मैं तुम्हे मधुमालती से मिला दूगी। वह मेरी सहेली है। मनोहर उसे लेकर जब उसके घर पहुँचा तब प्रेमा के पिता ने उसका विवाह प्रेमा से करना चाहा, परन्तु प्रेमा ने अस्वीकार करते हुए कहा कि यह मेरा भाई है। मै इसे इसकी प्रेमिका से मिलाऊँगी। दूसरे दिन जब मधुमालती अपनी माता के साथ थी तब प्रेमा ने मनोहर को उससे मिलाया। सवेरे चित्रसारी मे जब माता ने मधुमालती को मनोहर के साथ देखा तब उसने अपनी कन्या से मनोहर का प्रेम छोडने के लिए कहा। उसके न मानने पर माता ने उसे पक्षी बनाकर उडा दिया। एक दिन पक्षी बनी हुई मधुमालती को राजकुमार ताराचन्द्र ने पकड लिया। तब उसने अपनी सारी प्रेम-कहानी ताराचन्द्र को सुनाई जिसे सुनकर वह उसे मनोहर से मिलाने का वचन देकर उसकी माँ के पास ले गया। माँ पुत्री को पाकर बडी प्रसन्न हुई और

उसे फिर से कन्या बना दिया और ताराचन्द्र से विवाह का विचार प्रकट किया। उसने बताया कि यह मेरी बहन है, मै इसे मनोहर से मिलाने के लिए वचन दे चुका हूँ। तब माता-पुत्री दोनो प्रेमा को पत्र लिखती है। पत्र मिलने पर प्रेमा विचार मे बैठी ही थी कि इतने मे योगी-वेश मे मनोहर पहुँच गया। अन्त मे मनोहर मधुमालती का विवाह हो गया। वहाँ प्रेमा को देखकर ताराचन्द्र मूर्छित हो गया। आगे प्रति खण्डित है। कविता का एक नमूना देखिए—

देखत ही पहिचानेउ तोही। एक रूप जेहि छँरयो मोही ॥
एही रूप बुत अहै छिपाना। एही रूप सब सृष्टि समाना ॥
एही रूप सकती औ सीऊ। एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ ॥
एही रूप प्रकटे बहु भेसा। एही रूप जग रक नरेसा ॥

मलिक मुहम्मद जायसी—आपका जन्म स० १५५० मे जायस में और मृत्यु स० १६०० मे अमेठी में हुई। ये प्रेममार्गी शाखा के प्रतिनिधि एव सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनका अमेठी के राजघराने मे पर्याप्त सम्मान था। यह काने और कुरूप थे। एक बार शेरशाह इन्हे देखकर हँस पडा। इस पर इन्होने कहा—"मोहि का हँससि कि कोहरहि" (मेरे रूप पर क्यो हँसता है, मेरे बनानेवाले कुम्हार—ईश्वर पर क्यो नही हँसता)। यद्यपि ये जन्म से मुसलमान थे तथापि हृदय से इन्हे हिन्दू कहा जा सकता है। मुसलमान होते हुए भी इन्होने हिन्दू वीर-शिरोमणि मेवाड के महाराणा की प्रशसा मे अपना प्रसिद्ध महाकाव्य "पद्मावत" लिखा। पद्मावत प्रेम-प्रधान महाकाव्य है। पहले इसके पूर्वार्ध की कथा कवि की अपनी कल्पना कही जाती थी किन्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् और रिसर्चस्कालर श्री प० भगवद्दत्त बी० ए० ने 'श्री स्वाध्याय' पत्र के साहित्याक मे एक लेख द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि पद्मावत के पूर्वार्ध से मिलती जुलती कथा एक दूसरे रूप में कल्किपुराण मे भी मिलती है। इसका उत्तरार्ध ऐतिहासिक है। यद्यपि जायसी प्रेममार्गी शाखा के कवि थे, तथापि इसमे स्थान-स्थान पर वीर रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। इनका यह महाकाव्य प्रेम-प्रधान ही है। इस काव्य की भाषा अवधी है और यह दोहा, चौपाई, छन्द मे फारसी की 'मसनवी' पद्धति पर लिखा गया है। रहस्यवाद की जैसी सुन्दर अवतारणा इस काव्य में हुई है, वैसी अन्य किसी भी प्राचीन महाकाव्य मे नही हो पाई। पुराने हिन्दी महाकाव्यो मे 'रामचरितमानस' के पश्चात् पद्मावत का ही स्थान है। हिन्दू-मुस्लिम हृदय के अजनबीपन को मिटाकर एक-दूसरे को निकट लाने के लिए जायसी ने राष्ट्र-सेवा का अत्यन्त स्तुत्य कार्य किया, इसमे कुछ सन्देह नही।

उक्त कल्किपुराण की कथा के अतिरिक्त पद्मावत के तोते और पद्मिनी की कथा हिन्दू घरो मे पर्याप्त, प्राचीन समय से प्रचलित रही है और दामो कवि ने लक्ष्मणसेन-पद्मावती की कथा जायसी से ५० वर्ष पूर्व लिख डाली थी। हमारा अनुमान है कि सम्भवत जायसी ने अपने पद्मावत के लिए इसी पुस्तक से प्रेरणा प्राप्त की हो।

फिर भी अपने प्रस्तुत रूप मे पद्मावत का पूर्वार्ध कवि की मौलिक व कुशल कल्पना ही कही जायगी क्योकि कल्किपुराण की पद्मा, सिंहलद्वीप और शुक के नाम-साम्य के अतिरिक्त इन दोनो कथानको मे कुछ भी समता नही। और 'लक्ष्मण सेन पद्मावती की कथा' सर्वांशत 'पद्मावत' से मिलने पर भी इसके पूर्वार्ध की कथा व सम्पूर्ण पुस्तक की भाषा व शैली तथा विषय-निरूपण का ढग आदि जायसी के सर्वथा अपने है। इस प्रकार इस काव्य के पूर्वार्ध मे केवल वैयक्तिक पक्ष प्रधान है और उत्तरार्ध मे राष्ट्रीय या समाज-पक्ष प्रधान हो गया है।

जायसी की विशेषताएँ—अन्य प्रेममार्गी कवियो की अपेक्षा जायसी मे अनेक विशेषताएँ है।

१ सर्वप्रथम तो इन्होने अपने काव्य के लिए कथानक कल्पित न रख कर ऐतिहासिक रखा। अतएव वह एक कोरा प्रेमकाव्य न होकर राष्ट्रीय गौरव की वस्तु बन गया।

२ अन्य प्रेमकाव्यो मे रति, शोक, स्नेह आदि हृदय की कोमल प्रवृत्तियो का ही समावेश हो पाया है, किन्तु पद्मावत का एक बहुत बडा अश क्रोध, उत्साह, भय, स्वाभिमान आदि हृदय की उद्दाम प्रवृत्तियो से भी परिपूर्ण है, इसलिए पद्मावत जहा एक ओर प्रेम-प्रबन्ध है वहा वह अशत 'वीरकाव्य' भी कहा जा सकता है।

३ अन्य प्रेमकाव्य के नायक और नायिकाएँ कल्पित होने के कारण जन-सामान्य के लिए अपरिचित या अज्ञात रहती थी, इसीलिए साधारण समाज का उनकी ओर विशेष आकृष्ट न होना स्वाभाविक ही है, किन्तु पद्मावत के नायक-नायिकाएँ प्रात स्मरणीय लोकविश्रुत वन्दनीय वीर पुरुष हैं। नायिका पद्मिनी तो इने-गिने भारतीय नारी रत्नो में से एक मानी गई है। ऐसे नायक-नायिकाओ को पाकर जायसी की प्रतिभा परम पुनीत हो गई है।

४ वर्णनो की स्वाभाविकता, सरसता और व्यापकता भी अन्य प्रेम-काव्यों की अपेक्षा इनमे विशेष महत्त्व रखती है। इसका सौन्दर्य-वर्णन तो विश्व-साहित्य में अपनी समता नही रखता।

५ नागमती के विरह-वर्णन का बारहमासा तथा स्थान-स्थान पर रहस्यवाद की अवतारणा भी जायसी की अपनी विशेषता है ।

६ सबसे बडी बात यह है कि मुस्लिम शासको और जनता या मौलवियों के द्वारा दिये जाने वाले 'कुफ्र' के फतवे की कुछ भी परवाह न कर इस कवि ने मुसलमानो के साथ निरन्तर लोहा लेने वाले शीशोदिया वश के एक ऐसे महाराणा—जिसने अलाउद्दीन के सब सुख-स्वप्नो को मिट्टी मे मिला दिया था—की कीर्ति-कथा कहकर अपने गुण-ग्राहक, पक्षपात रहित, निर्भय और साहसी स्वभाव का परिचय दिया ।

७ ऐसा प्रतीत होता है कि पद्मिनी और रत्नसेन की पावन गाथा कहते-कहते उसके प्रवाह मे बहकर लेखक अपने आपको व अपने काव्य के लक्ष्य को भी भूल बैठता है, इसीलिए युद्धवर्णन आदि अनेक ऐसी घटनाओ का विस्तृत वर्णन करने के मोह को वह सवरण नही कर पाता जिनका सम्बन्ध अध्यात्म-पक्ष में किसी प्रकार घट ही नही सकता । पुन स्मरण आने पर कवि उनमे से बहुत-सी घटनाओ का तो ठोक-पीटकर अध्यात्म मे भी सम्बन्ध बैठाने का प्रयत्न करता है किन्तु फिर भी अनेको घटनाएँ इस सम्बन्ध से सर्वथा अछूती ही रह जाती हैं। इन सब बातो को देखते हुए ऐसा भी कह सकते है कि अपने सहधर्मियो की आखे पोछने के लिए ही जायसी ने अन्त मे स्पष्ट शब्दो मे अध्यात्म-पक्ष का उल्लेख कर दिया हो, क्योकि अभी तक मुस्लिम समाज व शासकवर्ग अकबर के समय के समान साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध मे सहिष्णु या उदार नही बन पाये थे ।

जायसी की रचनाएँ—अब तक जायसी की य तीन रचनाएँ प्राप्त हो चुकी है—१ पद्मावत, २ अखरावट, ३ आखिरीकलाम । ये तीनो की तीनो रचनाएँ मूलत फारसी लिपि मे ही लिखी गई थी और उन्ही से देवनागरी लिपि मे रूपान्तरित की गई है । फारसी लिपि मे लिखे जाने के कारण इनके मूल रूप प्राय विशेष परिवर्तित नही हो पाये । यह बात दूसरी है कि लिपि की दुर्बोधता के कारण कही-कही पाठ-भेद या पाठ-भ्रम अवश्य हो गया है ।

अखरावट मे 'ककहरे' के क्रम से दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन किया गया है । आखिरी कलाम मे मुसलमानी सिद्धान्तो के आधार पर कयामत तथा उसके बाद होने वाले अल्लाहताला के इन्साफ का उल्लेख है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन तीनो ग्रथो का बहुत ही सुन्दर सम्पादन कर उसे 'जायसी ग्रन्थावली' के नाम से काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित करवाया । श्रीयुत डा० सूर्यकान्त ने पद्मावत का कुछ अश अत्यन्त ही सुन्दर और

प्रामाणिक रूप मे सम्पादित कर शब्दार्थ सहित प्रकाशित करवाया था।

'पद्मावत' की कथा का सक्षेप इस प्रकार है—

सिहल द्वीप के राजा गन्धर्वसेन की कन्या पद्मावती अद्वितीय सुन्दरी थी। उसके पास हीरामन नाम का एक बडा विद्वान् तोता था। एक दिन वह पद्मावती से उसे योग्य वर न मिलने के सम्बन्ध मे कुछ कह रहा था कि राजा ने सुन लिया और बहुत कोप किया। तोता राजा के डर से एक दिन उड गया। जगल मे वह एक बहेलिये के हाथ पकडा जाकर चित्तौड के ब्राह्मण के हाथो बेच दिया गया। ब्राह्मण ने उसे चित्तौड के राजा रत्नसेन के पास पहुँचा दिया। एक दिन राजा जब शिकार के लिए गये तब रानी नागमति ने तोते से पूछा कि क्या कही मेरे जैसी दूसरी सुन्दरी भी है? तोते ने पद्मावती का वर्णन किया। रानी ने इस डर से कि कही यह राजा से भी न कह दे उसे मारने की आज्ञा दे दी। परन्तु दासी ने उस पर राजा का प्रेम जानकर उसे मारा नही। लौटने पर तोते के बिना राजा व्याकुल हुआ तब तोता लाया गया और उसने सारी कथा कह सुनाई। पद्मिनी के रूप का वर्णन सुनकर राजा तोते को साथ लेकर उसकी खोज मे जोगी बनकर घर से निकल सिहल-द्वीप की ओर चल पडा। वहा अनेक कष्टो और बाधाओ के बाद शिवजी की तपस्या के परिणामस्वरूप पद्मावती से उसका विवाह हो गया और कुछ दिनो के बाद दोनो चित्तौड आ गये।

एक दिन राजा ने राघवचेतन नामक एक पडित को जिसने अपने योग-बल से 'प्रतिपदा' के दिन 'द्वितीया' का चाँद दिखाया था, अपने देश से निकाल दिया। वह दिल्ली गया और अलाउद्दीन से पद्मावती के रूप की प्रशसा कर उसे चित्तौड पर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित किया। सुलतान १२ वर्ष तक चित्तौड को घेरे रहा पर उसे तोड न सका। अन्त में उसने रत्नसेन को सन्धि के लिए बुलाकर छल से पकड लिया और दिल्ली ले आया। रानी को जब यह पता लगा तब वह अपने चातुर्य और गोरा-बादल की वीरता से राजा को कैद से छुडा लाई। लौटने पर राजा ने सुना कि उसकी बन्दी अवस्था मे कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती को फुसलानेके लिए दूती भेजी थी तब वह देवपाल के साथ युद्ध करने गया। वहाँ देवपाल को मारते हुए राजा स्वय मर गया। राजा का शव चित्तौड लाया गया और दोनो रानिया उसके साथ सती हो गईं। इधर अलाउद्दीन भी पद्मावती की इच्छा से चढकर वहाँ आया परन्तु उसे वहा भस्म के अतिरिक्त कुछ भी न मिला।

इस कथा के वर्णनो से भी साधना के मार्ग, उसकी कठिनाइयो और सिद्धि के स्वरूप आदि की पूरी व्यजना होती है। जैसा कि कवि ने स्वय कहा है—

तन, चितउर, मन राजा कीन्हा ।
हिय सिहंल बुधि पदिमनि चीन्हा ॥
गुरु सुआ जेहि पन्थ देखावा ।
बिन गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धन्धा ।
बाचा सोइ न एहि चित बन्धा ॥
राघव दूत सोई सैतानू ।
माया अलाउदी सुलतानू ॥

जायसी की रचनाओ के कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते है —

१. गढ सौपा तेहि बादल, गये टेकत बसुदेव ।
छोडी राम अयोध्या, जो भावै से लेव ॥
पद्मावति पुनि पहरि पटोरा । चली साथ पिय के ह्वै जोरा ॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई । पूनो शशि सो अमावस भई ॥
छोरे केश मोति लट छूटी । जानो रयनि नखत सब छूटी ॥
सेंदुर परा जो शीस उघारी । आग लाग चहि जग अँधियारी ॥
यही दिवस हो चाहत नाही । चली साथ पिय दै गलबाही ॥
सारस पखि नहि जिये निरारे । हौ तुम बिन का जियो पियारे॥
न्योछावर कै तन छहराऊँ । छार होऊँ सग बहुर न आऊँ ॥
दीपक प्रीति पतग ज्यो, जन्म निबाहु करेउ ।
न्योछावर चहुँ पास ह्वै, कठ लाग जिय देउं ॥

२. ठा ठाकुर बड आप गोसाई । जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं॥
आपुहि आप जो देखइ चहा । आपन प्रभुता आपसे कहा ॥
सबइ जगत दर्पन कै लेखा । आपुहि दर्पन आपुहि देखा ॥
आपुहि बन औ आप पखेरू । आपुहि सउजा आपु अहेरू ॥
आपुहि पुहुप फूल वन फूले । आपुहि भवर बासरस भूले ॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखन हारा॥

उसमान—ये गाजीपुर निवासी शेख हुसैन के पुत्र और चिश्ती की परम्परा में हाजीबाबा के शिष्य थे । इन्होने जहाँगीर के राज्यकाल मे स० १६७० मे 'चित्रावली' नाम की रचना लिखी । अपनी रचना मे इन्होने जायसी का अनुकरण किया था ।

एक काल्पनिक कहानी के द्वारा प्रेम मार्ग के सकटो का वर्णन किया है। यह कहानी कवि-कल्पित है, जैसा कि कवि ने स्वय कहा है –

कथा एक मै हिय उपजाई। कहत मीठ और सुनत सुहाई ॥

जायसी की भाँति इसमे भी चौपाइयो के बाद दोहे का क्रम रखा गया है। इसका कथानक इस प्रकार है –

नैपाल के राजा धरनीधर का पुत्र सुजानकुमार एक दिन शिकार मे मार्ग भूल कर देव (प्रेत) की मढी मे जा सोया। एक दिन वह देव रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्षगाँठ का उत्सव देखने के लिए उसे साथ ले गया। उसे राजकुमारी की चित्रसारी मे रख स्वय उत्सव देखने लगा। सुजान राजकुमारी के टगे चित्र को देख आसक्त हो गया और अपना भी एक चित्र बनाकर वहा टागकर सो गया। देव उसे सोते को उठा लाया। जागने पर वह चित्रावलीके प्रेम मे व्याकुल हो उठा। उस मढी मे उसने पिता के घर से बहुत-सा सामान लाकर 'अन्नसत्र' खोल दिया। चित्रा-वली भी उस चित्र को देख प्रेम-विह्वल हो उठी और उसने अपने कई नौकरो को कुमार का पता लगाने के लिए भेजा। एक कुटीचर ने कुमारी की माँ से चुगली की और चित्र धो डाला। इस पर कुमारी ने उसे सिर मुडा कर निकाल दिया। कुटीचर ने शिव-मन्दिर मे कुमारी से मिलते देख राजकुमार को अन्धा करके एक गुफा में डाल दिया जहाँ उसे अजगर निगल गया। उसकी विरह की अग्नि से डर कर साँप ने उसे उगल दिया। वहाँ एक बनमानुस से अजन पाकर उसने फिर दृष्टि पाई। एक दिन बन मे एक हाथी ने उसे पकड लिया। इतने मे उस हाथी को एक पक्षी ले उडा, तब हाथी ने घबराकर कुमार को फेक दिया। वहा से वह एक दिन सागरगढ़ की राजकुमारी कँवलावती की फुलवारी मे जा पहुँचा। उस पर मोहित होकर कुमारी ने उसे चोरी का झूठा अपराध लगाकर पकडवा दिया। इसी बीच सोहिल नाम का राजा कँवलावती को पाने की इच्छा से चढ आया। सुजान ने उसे मार भगाया। अत मे कँवलावती से विवाह कर उसे लेकर गिरनार की यात्रा के लिए निकला। वहा से चित्रावली के दूत के साथ रूपनगर आया। राजा को जब यह पता मिला कि सोहिल को सुजान ने मारा था तो उसने अपनी कन्या चित्रावली के साथ उसका विवाह कर दिया। अन्त मे चित्रावली को लेकर सुजान स्वदेश की ओर चल पडा और मार्ग मे कँवलावति को भी साथ ले लिया और स्वदेश पहुँचकर दोनों रानियो के साथ बहुत दिनो तक राज्य किया।

इनके अतिरिक्त जौनपुर ज़िले के निवासी शेख़ नबी की स० १६७६ मे लिखी हुई ज्ञानदीप नामक प्रेमकथा, बारहबाँकी ज़िले के रहने वाले कासिम शाह की

स० १७८८ में रचित 'हस जवाहर' नामक प्रेम-कहानी, और नूरमुहम्मद की इन्दरावती मिलती है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक मुस्लिम तथा हिन्दू कवियो ने भी 'माधवानल-काम-कदला', 'ढोला मारूरा दोहा' आदि प्रेम-कथाएँ लिखी। इनमे अध्यात्म-तत्त्व आदि कुछ भी नही। साहित्य की दृष्टि से भी यह रचनाएँ सामान्य सी है। अत इनका यहाँ विस्तृत विवेचन नही किया गया।

अभ्यास

१ प्रेम-प्रबन्ध परम्परा का प्रारम्भ कब, कहाँ और किस रूप मे हुआ ?

२ सूफी सिद्धान्तो व साहित्य का सक्षिप्त परिचय दें और बतायँ कि उस पर भारतीय और विदेशी प्रभाव किस रूप व परिमाण मे पडा है ?

३ मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत का पूर्ण परिचय दें।

४. जायसी की साहित्य व समाज-सेवाओ पर प्रकाश डालें।

५ मञ्झन, कुतबन, उसमान तथा ईश्वरदास के काव्यो का परिचय देकर किसी एक की कथा का सार लिखें।

६ भाषा, विषय, शैली वा सिद्धान्तो के आधार पर सूफी साहित्य की समालोचना करें।

आठवाँ अध्याय

राम-भक्ति-साहित्य

राम-भक्ति का आरभ कब हुआ—राम को ईश्वरावतार के रूप मे कब से माना जाने लगा—इस सबध मे विभिन्न मतभेद है। कोई भगवान् राम के समय से, कोई महाभारत-काल से, अनेक ईसा की प्रथम शताब्दी से, बहुत से छठी सदी से तथा एक लेखक बारहवी शताब्दी से रामोपासना का आरभ मानते है। अत इस सबध मे यहा पर ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ विचार करना उपयुक्त होगा। श्रीयुत जयचन्द्र जी विद्यालकार ने अपनी 'भारतीय वाड्मय के अमर रत्न' नामक ऐतिहासिक पुस्तिका की भूमिका मे राम-भक्ति के सबध मे लिखा है कि—

"बचपन मे जब मैने अमरकोष पढा, उसके देवकाड के विषय मे मुझे यह बात खटकती कि वहाँ विष्णु के नामो मे केवल कृष्णावतार के नाम क्यो गिनाये है, मै सोचता, या तो सब अवतारो के नाम होते या किसी का न होता, वैसा सोचकर मै अमरसिह की विषय-विभाग-शैली को दोष दिया करता। अब इतिहास पढने पर यह बात समझ मे आई कि अमरसिह के समय तक रामावतार का विचार उठा ही न था।"

इसका आशय यह है कि राम को ईश्वरावतार अमरसिंह या कालीदास के समय (ई० पू० पहली शताब्दी से ई० छठी शताब्दी तक) के बाद माना जाने लगा। इधर देहली के पुरातन वैद्य और सुप्रसिद्ध हिंदी-कहानीकार श्री चतुरसेन शास्त्री अपने साहित्य के इतिहास मे राम-भक्ति शाखा का इतिहास बताते हुए, लिखते है कि—'इन बातो को ध्यान मे रखते हुए उन्होने (रामानन्द जी ने) विष्णु के स्थान में वाल्मीकि वर्णित और देश-पूजित राम को इष्ट देवता का स्थान दिया। पूर्व-पूजित देवता विष्णु का उन्हे मनुष्यावतार कहा।'

इसी प्रकार कृष्ण-भक्ति के सबध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए वे लिखते है कि—'यह बात विचारने योग्य है कि श्रीकृष्ण, कालीदास (५ वी शताब्दी) भारवि (छठी शताब्दी) बाणभट्ट (७ वी शताब्दी) और भवभूति (८ वी शताब्दी) से अधिक परिचित नही है। उनसे ग्यारहवी और बारहवी शताब्दी मे भास[1] और जयदेव का परिचय हुआ है। वे हिंदुओ के सर्वाधिक पूज्य देवता हो गये है।'

---

१ चतुरसेन जी ने अपने इतिहास मे पहले स्वय भास को पाणिनि से भी पूर्ववर्त्ती लिखा है।

इस सबध मे हमारा निवेदन यह है कि चतुरसेन जी का तो यह अपना विषय नही इसलिए उन्होने यदि राम और कृष्ण का अवतार रूप मे प्रचलित होना या प्रसिद्ध होना १५ वी शताब्दी मे माना और भास (जो निश्चित रूप से कालीदास से पूर्ववर्ती है) को जयदेव के साथ ११ वी शताब्दी का लिख दिया तो कोई आश्चर्य की बात नही। वे अपनी कल्पना से भास को ग्यारहवी शताब्दी छोड इक्कीसवी शताब्दी मे भी ला बैठा सकते है। किंतु श्री जयचन्द्र जी विद्यालकार जैसे प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता का यह कथन कि 'अमरसिंह के समय तक रामावतार का विचार उठा ही न था', विशेष आश्चर्यजनक है। क्योकि अमरसिंह कालीदास के समकालीन है और भास कालीदास से पूर्ववर्ती। भास के अभिषेक आदि नाटको में राम को केवल ईश्वरावतार ही नही प्रत्युत प्रत्यक्ष परब्रह्म भी कहा गया है। अत स्पष्ट सिद्ध होता है कि अमरसिह (या कालीदास) और भास से भी बहुत समय पूर्व ही राम और कृष्ण को ईश्वरावतार के रूप मे माना जाने लग पडा था।

श्रीयुत भाण्डारकर महोदय ने वैष्णवधर्म का जन्म ईसा से ५०० वर्ष पूर्व माना है। अवतारवाद की प्रतिष्ठा महाभारत से कितने समय पश्चात् हो गई थी। इस सबध मे हम अपनी ओर से सुनिश्चित कुछ कहने का साहस न करते हुए भाडारकर जी के उक्त मत तथा अन्य कई एक प्रमाणो के आधार पर कह सकते है कि ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ही अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी अर्थात् राम और कृष्ण ईश्वरावतार के रूप मे स्वीकार किये जा चुके थे। अत राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति का प्रचार ईसा से ५ वी शताब्दी पूर्व ही से मानना इतिहासानुकूल प्रतीत होता है।

यह सब कुछ होते हुए भी इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि राम और कृष्ण-भक्ति के अनेक वर्तमान रूप पर्याप्त प्राचीन नही है। वे अपने इस रूप मे १३ वी १४ वी शताब्दी में ही आये है।

रामानुजाचार्य ने ११ वी शताब्दी मे लक्ष्मीनारायण की उपासना पर बल दिया। ये नारायण सगुण साकार होते हुए भी अमानवीय और अलौकिक है। वे चतुर्भुजधारी और मनुष्यलोक से ऊपर वैकुण्ठ के विहारी है। किंतु मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह अपने ही समान स्वरूप के प्रति विशेष आकृष्ट होता है। उसे प्रभु का वह रूप अधिक प्रिय प्रतीत होता है जो हर्ष, शोक, विपत्ति, सपत्ति, दु ख, दैन्य आदि प्रत्येक अवस्था मे उसके साथ रहता और समय-समय पर दुष्टदलन के लिए समाज मे प्रकट होता है। नारायण रूप की उक्त विलक्षणता उसके लिए

इतनी हृदयहारी नही हो सकती थी, इसलिए आगे चलकर रामानन्द स्वामी ने चतुर्भुज नारायण के स्थान पर द्विभुजधारी मानवलीलाकारी रामरूप की उपासना का प्रचार प्रारभ कर दिया। रामानन्द का यह रामनाम वास्तव मे ही भारत के लिए 'तारकमन्त्र' प्रमाणित हुआ। इसी नाम के सहारे एक ओर तो निर्गुण-पथियो ने अपने सात्विक सदाचार-प्रधान सम्प्रदायो का सूत्रपात किया, दूसरी ओर राम-भक्ति शाखा का सुधास्रोत बह निकला। आगे चलकर इसी राम-भक्ति शाखा मे हिंदी साहित्याकाश के सूर्य श्री गोस्वामी तुलसीदास का उदय हुआ।

लेखक तथा उनकी रचनाएँ

रामानन्द—अनेक प्रमाणो के आधार पर इनका समय विक्रम की १५ वी शती के मध्य भाग से १६ वी शताब्दी के चतुर्थ चरण तक (स० १४४६ से १५८० तक) सिद्ध किया गया है। इनके पिता का नाम पुष्पसदन शर्मा और माता का नाम सुशीला था। काशी मे श्री स्वामी राघवानन्द जी से विद्याध्ययन कर इन्होने अपनी योग्यता से उनके उत्तराधिकारी का पद प्राप्त कर लिया। यद्यपि सिद्धान्त की दृष्टि से ये रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थे तथापि इन्होने अपना मार्ग बहुत कुछ किसी सम्प्रदाय विशेष की सकीर्णता से स्वतन्त्र कर लिया था जैसे कि—१ नारायण के स्थान पर राम की उपासना के प्रचार को परिपुष्ट किया। २ जटिल कर्मकाण्डो की अपेक्षा सरल भक्ति की साधना को प्रधानता दी। ३ व्यावहारिक क्षेत्र मे वर्णाश्रम-व्यवस्था की मर्यादा के महत्त्व को मानते हुए भी भक्ति के क्षेत्र में मनुष्यमात्र की समानता के सत्य सिद्धान्त को स्वीकार किया। ४ अपने उपदेश केवल पडितो मे प्रचलित सस्कृत भाषा मे न देकर जनसाधारण की हिन्दी भाषा मे भी दिये। इस प्रकार धर्म के स्वरूप को अत्यन्त व्यापक और लोकप्रिय बना दिया। रामानन्दजी के बनाये हुए १ वैष्णवमताब्ज-भास्कर और २ 'श्री रामार्चन पद्धति' नामक दो सस्कृत ग्रन्थ प्राप्त होते है। इनके अतिरिक्त 'योग चिन्तामणि' और 'रामरक्षा स्तोत्र' आदि अन्य कई पुस्तके भी इनके नाम पर प्रचलित हैं किन्तु प्रामाणिक इतिहासकार इन्हे इनकी बनाई हुई नही मानते हैं। इनके लिखे हुए कुछ पद हिन्दी मे भी प्राप्त हुए है। निम्नलिखित पद इनका स्वरचित माना जाता है—

आरति कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ-कला की॥
जाके बल-भर ते महि कॉपै। रोग सोग जाकी सिमा न चॉपै॥
अजनी-सुत महाबल-दायक। साधु संत पर सदा सहायक॥

बाएँ भुजा सब असुर सँहारी । दहिन भुजा सब संत उबारी ।।
लछिमन धरति में मूर्छि परयो । पैठि पताल जमकातर तर्यो ।।
आनि सजीवन प्रान उबारयो । मही सबन कै भुजा उपार्यो ।।
गाढि परे कपि सुमिरौ तोही । होहु दयाल देहु जस मोही ।।
इत्यादि ।।

गोस्वामी तुलसीदासजी—इनका जन्म स० १५५४ राजापुर मे और साकेतवास स० १६८० मे काशी मे हुआ था । इनके जन्म-स्थान, समय आदि के सम्बन्ध मे अनेक मतभेद प्रचलित हैं । कुछ विद्वान् १५८३ तो दूसरे १५८९ और अनेक समालोचक १५५४ मे इनका जन्म स्वीकार करते हैं । मृत्यु तो इनकी निश्चित रूप से स० १६८० श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार को ही हुई थी, जैसा कि बाबा बेनीमाधवदास के 'गोसाई चरित'[1] के निम्न दोहे से स्पष्ट है —

सवत सोलह सो असी, असी गग के तीर ।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर ।।

तुलसीदास के अनन्य मित्र 'भदैनी' गाव के ठाकुर टोडर के वशज अब भी श्रावण कृष्णा तृतीया ही को गोस्वामीजी के नाम पर सीधा दिया करते हैं । अत गोस्वामीजी की पुण्यतिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी नही प्रत्युत श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार ही है । अब शेष रहा प्रश्न जन्म-सवत् का । बाबा बेनीमाधवदास-कृत 'गोसाईं चरित' और बाबा रघुवरदास-कृत 'तुलसी चरित' में वर्णित स० १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी ही प्रमाणित जन्म-तिथि और सवत् है, जैसा कि निम्न दोहे से स्पष्ट है —

पद्रह सो चव्वन विषे, तरणि तनूजा-तीर ।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्‍यो शरीर ।।

पर्याप्त ऊहापोह और आलोचना-प्रत्यालोचना करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि गोस्वामीजी का जन्म अवश्य ही उक्त सवत् और तिथि को हुआ था । केवलमात्र इसलिए कि १५५४ मे जन्म मान लेने पर गोस्वामीजी की आयु १२६ वर्ष हो जाती है, बिना किसी अन्य कारण, प्रमाण या ऐतिहासिक साक्ष्य के किंवदन्ती के आधार पर १५८३ या ८९ मे उनका जन्म मानना उचित नही,

१. यद्यपि मूल गोसाईं चरित के वर्तमान रूप की प्रामाणिकता भी सदिग्ध है, तथापि उसकी सभी बातें असत्य नही कही जा सकती ।

क्योकि गोस्वामीजी सरीखे वीतराग पवित्र आचरण वाले महापुरुष की इतनी दीर्घ आयु होना कोई बडी बात नही है।

इसके अतिरिक्त इनका जन्म १५८९ मे मान लेने पर मीराबाई का इन्हे पत्र लिखना असभव-सा जान पडता है क्योकि मीराबाई की मृत्यु स० १६२० के लगभग मानी जाती है। यदि गोस्वामीजी का जन्म १५८९ माना जाय तो उक्त पत्र-लेखन के समय इनकी अवस्था अधिक-से-अधिक ३० वर्ष की ठहरती है। इस छोटी आयु मे यह इतने विख्यात नही हो सकते थे कि मीराबाई इनसे सम्मति माँगती। १५५४ मे जन्म मान लेने पर ही यह घटना सर्वथा स्वाभाविक और सत्य सिद्ध होती है। आचार्य शुक्लजी तथा डा० श्यामसुन्दरदास आदि समालोचको ने भी उक्त तथ्य को स्वीकार किया है। मीराबाई का उक्त प्रसिद्ध पत्र और उसका उत्तर आगे मीराबाई के जीवन-चरित्र मे दिया गया है।

गोस्वामीजी का जन्म-स्थान—गुसाईजी के जन्म-समय के समान इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे भी कुछ समय से मतभेद उपस्थित हो गया है। यद्यपि 'गुसाईं चरित' मे राजापुर ही उनका जन्म-स्थान लिखा है फिर भी रामनरेश त्रिपाठी आदि कुछ-एक आलोचको ने रामचरितमानस की 'मै पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत' इस पक्ति के आधार पर 'सूकर खेत' आधुनिक 'सोरो' नाम से प्रसिद्ध तीर्थ को गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सिद्ध किया है। किन्तु शुक्लजी ने उक्त कथन को बडी दूर की कल्पना मानकर बडी दृढता के साथ राजापुर को गोस्वामीजी का जन्म-स्थान प्रमाणित किया और बताया कि उक्त 'सूकर खेत' एटा जिले का 'सोरो' नही प्रत्युत गोडा जिले का 'शूकर क्षेत्र' है। माताप्रसाद जी गुप्त ने भी दोनो पक्षो पर पर्याप्त विचार करने के पश्चात् लिखा है कि 'यह अवश्य निश्चित जान पडता है कि गोस्वामीजी बहुत समय तक राजापुर रहे थे और उन्होने उस सूकर क्षेत्र की यात्रा की थी जो "सोरो" कहलाता है।' हमारा विचार है कि गोस्वामीजी का राजापुर और शूकर क्षेत्र (सोरो) इन दोनो स्थानो से सम्बन्ध था। उनका जन्म राजापुर मे हुआ और वे कुछ समय शूकर खेत मे भी रहे।

कहा जाता है कि गडमूल नक्षत्रो मे उत्पन्न होने के कारण माता-पिता ने इन्हे जन्मते ही त्याग दिया था। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। महात्मा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया। तत्पश्चात् ये काशी चले गये और २५-३० वर्ष तक सभी शास्त्रो का व्यापक अध्ययन किया। तदनन्तर ये गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए और अपनी पत्नी के प्रति इतने आसक्त रहने लगे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर ये भी पीछे हो लिये। इस पर उसने

सच्चे अर्थो मे प्रकट करता ह वही वास्तविक भारतीय साहित्य कहलाने का अधिकारी है।

तुलसी से पूर्व के हिन्दी साहित्य मे उदारता के दर्शन नही होते। सूरदास तो कृष्ण को छोडकर अन्य किसी की उपासना को कामधेनु को छोड बकरी को दुहने के समान तुच्छ समझते है। वे कहते है कि –

मेरो मन अनत कहाँ, सचु पावे।

....

सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावे।

कबीर ने दूसरे सम्प्रदायो का जो खडन किया वह प्रसिद्ध ही है। ये थे तात्कालिक साहित्य के सकीर्णता के सस्कार। तुलसी ने इस सकीर्णता को त्याग कर परम उदारता का पाठ पढाया। उन्होने राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, गणेश आदि प्रभु के नाना रूपो पर समान आस्था प्रकट कर तात्त्विक दृष्टि से शकराचार्य के अद्वैत के महत्त्व को मानते हुए व्यावहारिक रूप मे विशिष्टाद्वैत को स्वीकार किया। इस प्रकार उन्होने अपने दार्शनिक विचारो मे भी उदारता प्रकट की।

निष्काम कर्म की ओर हमारी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही थी। यहाँ तक कि केवल पूजा-पाठ या जपादि से ही हम बडे-बडे असाध्य कार्य सिद्ध कर लेने की सोचने लगे। दूसरी ओर समाज में—

अजगर करे न चाकरी, पछी करे न काम।
दास मलूका कहि गये, सबके दाता राम॥

के अकर्मण्यता और आलस्य-भरे सिद्धातो का प्रचार हो रहा था।

तुलसी न अपने साहित्य के द्वारा घर-बार व काम-धधो को छोड केवल भक्ति में लगे रहने या राम की रट लगाने की भावनाओ के विरुद्ध युद्ध और सघर्ष तथा कर्म के साहित्य का सृजन किया।

तप और त्याग के स्थान पर उस समय भारतीय समाज विलासिता का उपासक बन गया था। कृष्ण-भक्त कवियो द्वारा इस विलासिता की प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। योगिराज कृष्ण एक छैल-छबीला विलासी रूप धारण कर बैठ थे। तुलसी को उक्त विलासिता किसी प्रकार सह्य नही हो सकती थी। कहा जाता है कि एक बार नन्ददासजी तुलसीदासजी को श्रीनाथजी के दर्शन कराने के लिए ले गये। तुलसीदास जी ने श्रीनाथ जी की उस छबीली झाँकी के

आगे अपना सिर नही झुकाया और निम्न पद पढा—

'कहा कहौ छवि आज की, भले विराजे नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण लेहु हाथ' ।।

कुछ लोग तुलसी की उदारता को देखते हुए इस घटना के प्रति आशका प्रकट करते है, और सोचते हैं कि कीट-पतगो और दुष्ट प्राणियो तक को प्रणाम करने वाला तुलसीदास भगवान् कृष्ण के आगे सिर न झुकाये यह कैसे सम्भव हो सकता है। किंतु यहाँ राम और कृष्ण का तो कोई प्रश्न ही नही, यहाँ तो विलासी छैल-छबीले रूप और धनुर्धर वीर रूप का प्रश्न है । तुलसीदासजी ने यह नही कहा कि तुम रामरूप बन जाओ प्रत्युत यह कहा कि धनुष-बाण हाथ मे लेकर कर्मवीर बन जाओ—विलासिता को छोड तपस्वी और युद्धवीर बन जाओ, तभी मै तुम्हारे सामने नत-मस्तक हो सकता हूँ ।

"हिन्दी साहित्य के इतिहास पर सरसरी दृष्टि डालते हुए हम यह कह सकते हैं कि कबीर ने समय की आवश्यकताओ को देखते हुए मानव-जीवन की धार्मिक भावयोग के रूप मे व्याख्या की और हिन्दू तथा मुसलमानो के आरोपित प्रकारवाद का खडन करके एक विश्व-जनीन धर्म की स्थापना की। जायसी ने जीवन के आध्यात्मिक और ऐन्द्रिय दोनो पहलुओ की व्याख्या कर कबीर के 'नीरस' उपदेशो से उत्पन्न हुई शुष्कता का परिहार किया। परन्तु जायसी के व्याख्यान मे सरलता तथा भावसघर्ष का अभाव है। बिहारी ऐन्द्रिय है, उसके प्रेम मे धार्मिकता तथा उत्पतन और पतन के आभास का अभाव है। उसे इन्द्रिय-मलिनतावादी कहना अनुचित न होगा। देव की ऐन्द्रियता मे धर्म की आभा है, वह इस बात को समझता है कि सौदर्य तथा सत्य दो वस्तु नही प्रत्युत एक ही वस्तु के दो रूप हैं। परन्तु उसमे भी भाव-सकलन का अभाव है। केशवदास बिहारी की श्रेणी मे है। उसमें यथार्थ कविता की न्यूनता है। भूषण मे रौद्ररस की पराकाष्ठा है। उसमे प्रकृति की गभीर और घोर गर्जना है। उसके वातावरण मे सुकुमारता को स्थान नही है। उसकी कविता मे प्रेम का विकास नही है।

तुलसीदास सरलता, भावमयता और ऐन्द्रियता के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कबीर के विश्व-जनीन धर्म को जनता नही समझ सकी थी। ससार-बन्धनो का परित्याग मनुष्य के लिए असम्भव था। हाँ, कबीर के अक्षरो पर जन-समाज की मूढ श्रेणी ने धर्म की ध्वजा उठा ली थी। समाज मे शैथिल्य आ गया था और हिंदू धर्म की आधारशिला—वर्णव्यवस्था डोलने लगी थी। इसमे कबीर का अपराध

नही । हिन्दू और मुसलमानो के प्रकारवादजन्य भेदो के कारण भारत रक्त की होली खेल रहा था । कबीर ने प्रकारवाद का खडन कर हिन्दू और मुसलमान दोनो को धर्म के यथार्थ स्वरूप का आभास दिया । इसमे कबीर को लेनिन कहकर फटकारना अन्याय है । याद रहे कि यदि ससार सैकडो जार पैदा करता है तो वह एक लेनिन को भी अवश्यमेव जन्म देगा ।

यदि ससार मे ज़ारशाही न हुई होती तो लेनिनशाही का जन्म भी न हुआ होता । यदि भारत "पशुरिव यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्" जैसे विकट और निराधार वाक्यो की घोषणा करने वाले आचार्यो को जन्म दे सकता है, तो उसके लिए कबीर और नानक जैसे सुधारकोका उत्पन्न हो जाना नितान्त सम्भव है । ससार की इस स्वाभाविक उथल-पुथल में न लेनिन को दोष देना चाहिए न कबीर को । ये दोनो ससार के सार्वजनिक भ्रातृत्व के लिए दिव्य सम्पत्ति छोड गये । क्राति के यह पुच्छल तारे कभी-कभी उदय होते है । क्राति-चडी के ये अवतार सदा नही होते, इनका उद्देश्य होता है क्रूरो का दमन और पतितो का उद्धार । इनके जीवन का मन्त्र होता है—"वसुधैव कुटुम्बकम्" । "परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ।"

परन्तु सुधारको के पुनीत आदर्शों को किस देश के समाज ने सदा याद रक्खा है । हिंसा का प्रत्युत्तर अहिंसा मे किस जाति या देश ने दिया है । ऐश्वर्य की सनक मे ससार बौरा हो जाता है । निदान कबीर-प्रवर्तित क्राति का मुख्य उद्देश्य भुला दिया गया और उसके अक्षरो का पालन होने लगा । उसके विधेयात्मक कार्यक्रम को छोड कर निषेधात्मक कार्यक्रम का पालन किया जाने लगा । लोकसग्रह के स्थान में लोक-विग्रह का भय हो गया । कबीर के प्रयत्नो से हिन्दू और मुसलमानो के भेद नष्ट हो उनमे ऐक्य का प्रादुर्भाव तो हुआ परन्तु विशीर्ण हुए भारतीय समाज को उससे सामाजिक व्यवस्था के नियमो की शिक्षा न प्राप्त हो सकी । भारत मे अत्यन्त प्राचीन काल से चली आने वाली, सकोचात्मक और विकासात्मक दोनो शक्तियो में से (जिनका समय-समय पर ब्राह्मणो तथा क्षत्रियों के पारस्परिक सघर्ष द्वारा प्रकाशन होता आया है) पिछली शक्ति कबीर मे पूर्ण रूप से थी । परन्तु पहली का उसमें नितान्त अभाव था । तुलसी ने इस अभाव को पूरा किया और हिन्दू तथा मुसलमानो के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुए विमनस्क जनसमाज को फिर से वर्णाश्रम धर्म की दीक्षा देते हुए उसे ऐक्य के उस आदर्श की ओर चलाया जिसकी प्राप्ति के लिए सकोचात्मक तथा विकासात्मक दोनो शक्तियो की समानरूपेण आवश्यकता है । दोनो शक्तियो के इस अद्वितीय सकलन मे ही तुलसी की अनुपम विशेषता है और यही

कारण है कि उसकी रामायण, ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी की दृष्टि मे समान रूप से पूजनीय है ।

राम मे सकोचात्मक और विकासात्मक दोनो शक्तियो का अभिराम संकलन था । इन दोनो शक्तियो का तुलसी मे पेशल समन्वय हुआ । रामायण में दोनो शक्तियो का अनुपम व्याख्यान है । फलत तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और ससार के गिने-चुने कवियो मे उनका स्थान ऊँचा है ।

तुलसीदास की कविता में आत्मा का स्वच्छ प्रवाह है । मानसिक वृत्तियो का विषय है । उसमें आत्मा और विश्वात्मा के ऐक्य का आदर्श प्रतिफलन है । उसकी कविता में भाव और भाषा दोनो साथ चलते है । भावो के अन्तस्तल मे पहुँच तुलसी कभी-कभी भाषा के धरातल को भूल जाता है । वह केवल स्वप्न-साम्राज्य में ही नही विचरता, उसका हृदय विश्व की विविध भावनाओ की वीणा है । उसके गीतो मे ससार का प्रमोद खिल रहा है, उसके शोकोच्छ्वासो मे ससार का चिन्तानल दहक रहा है । सक्षेप मे तुलसीदास अनन्त ब्रह्माण्ड के अनन्त भावो का यथार्थ ग्रामोफोन है ।"

इस प्रकार तुलसी को भारतीयता का प्रतिनिधि कह सकते है । इन्ही सब बातो को देखते हुए हम कह सकते है कि वाल्मीकि और व्यास की भाँति तुलसी की रचनाओ में भी रचयिता के अपने व्यक्तित्त्व की अपेक्षा भारत ही प्रमुख रूप से झलक रहा है । समाज की उक्त दूषित प्रवृत्तियो को दूर कर राष्ट्र मे पुन प्राचीन समन्वय-मूलक श्रौत-स्मार्त धर्म का प्रचार करने का बहुत-कुछ श्रेय गोस्वामी जी को है । तात्कालिक शैवो और वैष्णवो के भयकर विरोध को गोस्वामीजी जैसे साहसी और स्पष्टवादी सत्यवक्ता दूर कर सके थे । उत्तर भारत मे शैवो और वैष्णवो में जिस पारस्परिक प्रेम का प्रदर्शन हो रहा है, वह तुलसी के प्रयत्नो का ही परिणाम है । दक्षिण भारत मे जहाँ तुलसी की रचनाएँ पूरी तरह प्रचलित न हो पाईं, वहाँ शैवो और वैष्णवो मे अब तक भयकर विद्वेष बना हुआ है ।

इन्ही सब बातो को देखते हुए मिश्रबन्धु आदि विवेचको ने ठीक ही कहा है कि भारत के वर्तमान हिन्दू धर्म को 'तुलसी धर्म' कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी ।

इस प्रकार गोस्वामीजी भक्तशिरोमणि महाकवि तो थे ही साथ ही सब से बडे सुधारक थे । उन्होने शैवो और वैष्णवो का विरोध दूर किया, निर्गुण-पथी

---

१ श्री डा० सूर्यकान्त का हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास ।

कबीर आदि के द्वारा प्रचारित वेद-शास्त्रो की निंदा और प्राचीन भारतीय सस्कृति के खडनात्मक विषैले प्रभाव को अपनी अमृतमयी वाणी से दूर कर भारतीय जनता को फिर से वास्तविक धर्म का स्वरूप दिखाया और वेद-शास्त्रो के प्रति श्रद्धा जागृत की। कृष्ण-भक्तो द्वारा प्रचारित विलासिता की बाढ को रोक कर कर्मयोग का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा सस्कृत, अवधी तथा व्रज तीनो भाषाओ मे प्रबन्ध, मुक्तक, गीत, कवित्त, सवैये आदि सभी शैलियो मे भक्ति, वात्सल्य, करुण, वीर, शृगार आदि विविध रसो और विषयो पर मनोहारिणी रचनाएँ लिखकर साहित्य और समाज की जो सेवा गोस्वामीजी ने की है वह भारतीय साहित्य मे चिरस्मरणीय रहेगी। गोस्वामीजी वस्तुत हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य ही थे। उन्होने लगभग २० पुस्तके लिखी जिनमे से ये अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रामाणिक है—१. रामचरितमानस। २ कवितावली। ३. गीतावली। ४ विनयपत्रिका। ५ कृष्ण-गीतावली। ६ दोहावली। ७ पार्वती मगल। ८ जानकी मगल। ९ रामललानहछू। १० वैराग्य सदीपिनी। ११ बरवै रामायण। १२ रामाज्ञा प्रश्न। शेष ग्रथ सदिग्ध है।

शुक्लजी ने 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ मे गोस्वामी जी की विशेषताओ का अत्यन्त गम्भीर, व्यापक और पाडित्यपूर्ण विवेचन किया है। यहा गोस्वामीजी की कुछ कविताए उद्धृत की जाती है—

१. जन्म सिधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलङ्क।
सियमुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क॥

२. का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने।

३. दुइ कि होइ इक सग भुवाला। हसब ठठाइ फुलाउब गाला॥

४. जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

५. कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

६. पुर ते निकसी रघुवीर बधू
धीर धरि दये मग में डग द्वै।

झलकी भरि भाल कनी जल की
पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिर बूझति है चलनोऽब केतिक
पिय पर्नकुटी करि हौ कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता पिय की
अखिया अति चारु चली जलच्वै ॥
७ सीस जटा उर बाहु विशाल विलोचन लाल तिरछी सी भौहै ।
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग मे सुठि सोहै ॥
सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यो हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्रामबधू सिय सो कहो साँवरो सो सखि रावरो को हैं॥

अग्रदास—ये तुलसीदासजी के समकालीन और नाभादासजी के गुरु थे। यद्यपि ये 'अष्टछाप' के कवि कृष्णदास पटवारी के शिष्य थे फिर भी इन्होने रामभक्ति के ही पद बनाए । इसलिए रामभक्त कहलाए । ये जयपुर के गलता नामक स्थान के रहने वाले थे । इनकी बनाई हितोपदेश, उपखाणाबावनी, ध्यान-मजरी, रामध्यान मजरी, कुडलिया ये ४ पुस्तके है । इनका रचनाकाल स० १६३२ के लगभग माना जाता है । पद्य का नमूना देखिए—

कुडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेशा ।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा ॥
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाए ।
मुख पंकज के निकट मनो अलि-दौना आए ॥

नाभादास—ये अग्रदास के शिष्य थे। स० १६५७ के लगभग वर्तमान थे । इनकी रचना 'भक्तमाल' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इसमे २०० भक्तो के चमत्कार-पूर्ण चरित्र ३०० छप्पयो मे लिखे हुए है। राम-भक्ति के भी अनेक पद रचे हैं। इनके अतिरिक्त उन्होने दो 'अष्टयाम' भी बनाये है । एक ब्रज भाषा गद्य मे दूसरा रामचरितमानस की शैली पर दोहा-चौपाइयो मे । ये जाति के डोम बताए जाते है । तुलसीदासजी का भी इनसे साक्षात्कार हुआ था । श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की प्रशसा में लिखा इनका निम्नलिखित पद्य दर्शनीय है—

त्रेता काव्य निबध करी सतकोटि रमायन ।
इक अक्षर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि-परायन ।।
अब भक्तन सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी ।
राम चरन रसमत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी ।।
ससार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियौ ।
कलि कुटिल जीव निस्तार-हित बालमीकि तुलसी भयो ।।

हृदयराम—ये पजाब के रहने वाले थे। स० १६८० मे इन्होंने सस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर भाषा हनुमन्नाटक की रचना की। तुलसीदासजी ने स्वय रूपक या नाटक के ढग पर कोई रचना नही की थी पर उनसे प्रभावित दूसरे रामोपासक लेखको ने उस काल मे कई नाटक लिखे, जिनमे इनका हनुमन्नाटक बहुत प्रसिद्ध है। उसमे कवित्त सवैयो की बहुत सुन्दर रचना है। इनका एक सवैया देखिए—

एहो हनू ! कह्यौ श्री रघुवीर कछु सुधि है सिय की छिति माँही ।
हे प्रभु लक कलक बिना सु बसै तहँ रावन बाग की छाँही ।।
जीवित है ? कहिबेइ को नाथ, सु क्यो न मरी हमते बिछुराही?
प्रान बसै पदपकज मे जम आवत है पर पावत नाही ।।

प्राणचन्द्र चौहान—ये स० १६६७ मे जहाँगीर के समय मे विद्यमान थे। इन्होने 'रामायण महानाटक' लिखा। रचना पद्यो मे है परन्तु सवाद के रूप में होने के कारण नाटक कहलाई।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक कवियो ने भी राम-भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ लिखी थी। उनका परिचय आगे यथास्थान दिया जायगा।

अभ्यास

१ राम-भक्ति का प्रारम्भ कब से मानना चाहिए ?

२ रामानुजाचार्य और रामानन्द के सिद्धान्तो में साम्य वैषम्य दिखाइए और बताइए कि इन दोनो आचार्यों में से समाज का हित किसने अधिक किया ?

३ गोस्वामी जी के जन्म व निधन के समय और स्थान का सप्रमाण निर्धारण करें।

४ राम-भक्ति के क्षेत्र मे अन्य राम-भक्त साहित्यकार क्यो न चमक पाये ?

५. गोस्वामी तुलसीदास जी ही वर्तमान धार्मिक भारत के निर्माता है, इस उक्ति की समालोचना करे।

६ गोस्वामी जी की साहित्य व समाज-सेवाओ पर समालोचनात्मक प्रकाश डालते हुए सिद्ध करें कि तुलसीदास वास्तव मे हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य हैं।

७ गोस्वामी जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देकर उनका साहित्य में स्थान निर्धारित करें।

●

नवाँ अध्याय

कृष्ण-भक्ति-साहित्य

यह पहले सिद्ध किया जा चुका है कि राम और कृष्ण को ईश्वरावतार के रूप मे आज से कम-से-कम २५ सौ वर्ष पूर्व अवश्य स्वीकार किया जाने लग पडा था। तभी से यह कृष्णोपासना अनेक रूपो मे परिवर्तित होती हुई उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर बढती चली आ रही है। विक्रम की १५ वी १६ वी शताब्दि मे जब हिन्दी-साहित्य अपनी करवट बदल रहा था, वीरवेश के बानक को उतार कर अपने मे भक्ति की भव्य व भद्र भावनाओ को भर रहा था—तो हमने देखा कि समय व समाज की परिस्थितियोके प्रभावसे भक्ति-साहित्य की एक ही मूल धारा चार भागो मे विभक्त होकर बहने लगी थी। हिन्दू-मुस्लिम-समन्वय की भावनाओ ने ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी धाराओ को प्रकट किया। राष्ट्र मे पुन स्वधर्म की प्रतिष्ठा के उत्साह तथा कर्मण्यता की प्रवृत्तियो को प्रेरित करने के लिए राम-भक्ति की धारा बह निकली। किन्तु अभी जनजीवन मे सरसता का सचार करना शेष था। उक्त तीनो धाराएँ समाज के शुष्क प्राणो में सरसता और रसार्द्रता का सचार करने मे पूरी तरह समथ न हो पाई थी।

हम देखते है कि ११ वी सदी से १४ वी सदी तक लडाई-भिडाई, मार-काट और सघष के कारण राष्ट्र के प्राण कठोर और रूक्ष से हो रहे थे। काट-छाँट और खण्डन-मण्डन से भरी 'अलख' को निरखने का उपदेश देने वाली निर्गुण पथ की वाणिया भी उस शुष्कता में किसी प्रकार से कोमल वृतियो का समावेश करने में समर्थ न हो सकी। इसलिए समाज सरस साहित्य की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था। कृष्ण-भक्त कवियो ने उक्त महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त उपयोगी समयोचित साहित्यिक कार्य सम्पादित कर दिखाया।

इस साहित्य की विशेषताएँ—१ किसी एकाध कवि की रचना को छोड कर शेष सम्पूर्ण कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी हिन्दी-साहित्य कृष्ण की जन्मभूमि की भाषा (व्रजभाषा) ही मे लिखा गया है। इसमे कुछ सन्देह नही कि ससार भर की भाषाओ मे सरसता और कोमलता की दृष्टि से सस्कृत के पश्चात् व्रजभाषा का ही स्थान है। इसलिए भावनाओ के साथ भाषा के कारण कृष्ण साहित्य मे विशेष सरसता का आ जाना सर्वथा स्वाभाविक था।

२ यह साहित्य अधिकाश मुक्तक रूप मे ही लिखा गया है। उसमे भी गीतो की पहले प्राय प्रधानता रही। परवर्ती कवियो ने कवित्त, सवैया छप्पय, दोहा आदि को भी अपना लिया था। कृष्ण-साहित्य में गुमान मिश्र की 'कृष्ण-चन्द्रिका' एक ही सफल प्रबन्ध-काव्य लिखा गया। इसका कारण यह था कि कृष्ण-भक्तो ने कृष्ण के बालरूप को ही अपने काव्य के लिए अपनाया था। उसमे प्रबन्ध-काव्य के लिए आवश्यक जीवन की अनेकरूपता तथा विभिन्न प्रवृत्तियो और भावनाओ के दर्शन नही होते। जीवन की जितनी विविधरूपता अथच सर्वाङ्गीणता कृष्ण के जीवन में विद्यमान थी उतनी सभवत विश्व के अन्य किसी महापुरुष मे न होगी। हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियो ने ऐसे महान् अनेक-गुण-सम्पन्न महापुरु को अपना चरित-नायक बनाकर भी उसकी व्यापकता से कुछ लाभ न उठाया। प्रत्युत उसी को अपनी रुचि के अनुसार सकीर्ण व सीमित बना डाला। अन कह सकते है कि कृष्ण के बालरूप मे यथेष्ट व्यापक सामग्री न मिलने के कारण इस शाखा मे प्रबन्ध-काव्यो की रचना न हो पाई।

३ बाललीला, विनय, रूपमाधुरी, शृगार के सयोग-वियोग दोनो पक्ष तथा गोपी-उद्धव-सवाद इस साहित्य की विषयगत विशेषताएँ है। क्योकि गोपिया उद्धव को प्राय 'अलि' 'षट्पद' आदि भ्रमर के नामो से सम्बोधित करती है, इसलिए गोपी-उद्धव-सवादो को 'भ्रमर-गीत' के नाम से भी पुकारा जाता है।

४ वर्ण्यवि यो की सख्या सीमित होने के कारण एक ही कवि की अनेक रचनाओ मे या अनेक कवियो की कविताओ मे भाव-साम्य या अर्थ की पुनरुक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गई है। बात यह है कि कृष्ण-कीर्तन के समय मन्दिरो में गाने के लिए भावुक भक्त नित्य नये गीत बना लिया करते थे। काव्य के सगीत का रूप ग्रहण करते ही उनमे भावो की अपेक्षा लय या स्वरो के आरोहावरोह की प्रधानता हो जाती है। अर्थ की अपेक्षा नाद-सौन्दर्य मुख्य बन बैठता है। यही कारण है कि इस साहित्य में इतनी अधिक एकरूपता पाई जाती है।

५ इस साहित्य पर सूफ़ियो का भी कही-कही कुछ प्रभाव लक्षित होता है। मतवाली मीरा तथा चैतन्य महाप्रभु आदि प्रेम मे तन्मय होकर बेसुध हो जाया करते थे, यह सूफियो की 'हाल' से मिलती-जुलती दशा ही है।

समाज व साहित्य पर प्रभाव—समाज व साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव कृष्ण-भक्तो का ही पडा। समाज की अपेक्षा साहित्य को तो इन्होंने बहुत ही

अधिक प्रभावित किया। भक्तिकाल तथा रीतिकाल के प्राय सभी कवि किसी-न-किसी रूप मे इस साहित्य से अवश्य प्रभावित हुए हैं। सूरदास से लेकर आधुनिक युग के प्रवर्त्तक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तक प्रत्येक कवि ने इस साहित्य से कुछ-न-कुछ अवश्य ग्रहण किया। आगे चल कर हिन्दी मे जो श्रृङ्गारिक कविताओ का प्रवाह उमडा वह भी कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी-साहित्य का ही परिवर्तित रूप कहा जा सकता है। व्रज भाषा के कृष्ण-भक्ति-साहित्य की जो स्वच्छ और सरस सुरसरी सूरदास के महान् व्यक्तित्व रूपी गगोत्तरी से अत्यन्त पवित्र रूप मे प्रवाहित हुई थी वही अनेक रूपो मे बहती हुई रीतिकाल मे जाकर श्रृगारिक काव्य रूपी 'हुगली' का रूप धारण कर बैठी और अन्त मे आधुनिक युग के साहित्य-सागर मे समाकर वह नाम-शेष रह गई।

समाज पर इस साहित्य का प्रभाव भले-बुरे दोनो रूपो मे लक्षित होता है।जहा तक समाज मे सरसता-सचार का सम्बन्ध है, वहा तक तो इसे शुभ ही कहा जायगा, किंतु जब इसका प्रभाव जनता में विलासिता की प्रवृत्ति को विकसित करता प्रतीत होता है, तो इस प्रभाव को हम अवाछनीय ही कहेगे।

कृष्णोपासक सम्प्रदायाचार्य

अब यहा पर पहले कृष्ण-भक्ति के प्रचार करने वाले सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्यों का सक्षिप्त परिचय देकर तत्पश्चात् इस शाखा के कवियो का विवेचन किया जायगा।

१ **रामानुजाचार्य**—आपका जन्म स० १०७४ में परम विट्ठूरग्राम मे हुआ था। यमुनाचार्य के पश्चात् यह अपने सम्प्रदाय के आचार्य प्रतिष्ठित हुए। इन्होने दो बार सम्पूर्ण भारत की यात्रा की थी और अत में श्रीरगपुरम् (त्रिचनापल्ली-मद्रास) मे अपना शेष जीवन व्यतीत किया। इनका वैकुण्ठवास स० ११९४ मे हुआ था। कहने को तो ये विशिष्टाद्वैतवादी हैं किन्तु वस्तुत इन्हे 'त्रैतवादी' ही कहना चाहिए। क्योकि ये १ ब्रह्म (विष्णु), २ चित् अर्थात् चैतन्य जीव और ३ अचित्—दृश्य जगत्—तीनो को ही नित्य मानते हैं। जीव और जगत् ब्रह्म के अश अवश्य हैं किंतु ब्रह्म नही। इसीलिए मुक्ति में जीव ब्रह्म का सामीप्य लाभ कर सकता है सारूप्य नही। अर्थात् वह ब्रह्म के समीप तो अवश्य पहुँच जाता है पर उसी का स्वरूप नही बन सकता।

२ **निम्बार्काचार्य**—इनका समय स० ११७० और १२५० के बीच मे माना जाता है। इनके सिद्धान्तो मे कृष्ण ही परब्रह्म हैं। राधा और गोपिकाएँ भी उन्ही का रूप हैं। उनके मत से भक्ति के द्वारा पृथक् सत्ता वाला जीव भी ब्रह्मरूप हो सकता

है । इसे सायुज्य मुक्ति कहा जाता है। प्रसिद्ध 'गीत-गोविन्द' के रचयिता जयदेव इन्ही के शिष्य थे।

३ **मध्वाचार्य**–इनका जन्म स० १२१४ में मगलौर के समीप उदीपी में हुआ था। ये स्पष्टत द्वैतवादी और भागवत के सिद्धातो के समर्थक हैं।

४ **विष्णुस्वामी**–इनका समय स० १३०० से १३७५ के लगभग माना जाता है। मध्वाचार्य के शिष्य होते हुए भी शुद्धाद्वैतवाद के मूल प्रवर्त्तक ये ही कहे जाते है। आगे चलकर इन्ही के सिद्धातो को चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य जी आदि ने स्वीकार किया था।

५ **चतन्य महाप्रभु**–इनका जन्म स० १५४२ मे बगाल के प्रसिद्ध न्यायशास्त्र के केन्द्र नदिया मे हुआ था। पहले इन्होने मध्व सम्प्रदाय के सिद्धातो को अपनाया, किंतु बाद मे निम्बार्क और विष्णुस्वामी के सिद्धातो को स्वीकार कर लिया। ये प्रथम सकीर्तनाचार्य कहे जा सकते है। जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति के गीतो को गाते-गाते और कीर्तन करते-करते ये आत्मविभोर हो सज्ञाशून्य हो जाते थे। बगाल मे और आजकल उत्तर भारत के अन्य प्रान्तो मे भी इनके कीर्तनो का पर्याप्त प्रचार हो रहा है। स० १५९० मे ये गोलोक सिधारे थे।

६. **वल्लभाचार्य**–इनका जन्म स० १५३५ मे उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर ज़िले में अरेल नामक ग्राम मे और गोलोकवास १५८७ मे हुआ था। ये तत्त्वत. विष्णुस्वामी और निम्बार्क के अनुयायी होते हुए भी अपने स्वतन्त्र 'वल्लभ सम्प्रदाय' या 'पुष्टि-मार्ग' के प्रवर्तक है। इनके मतानुसार कृष्ण ही परब्रह्म है। वह अपनी आविर्भाव तिरोभाव शक्ति से जगत् के रूप मे परिणत होता हुआ भी उससे निर्लिप्त या दूर रहता है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। किन्तु जड जगत् मे केवल इसका सत् स्वरूप, जीवो में सत् और चित् स्वरूप तथा ब्रह्म में सत्-चित् और आनन्द तीनो रूप प्रकट रहते है। इसलिए जीव और जगत् भी मायात्मक या मिथ्या नही है। यही कारण है कि उनके शुद्धाद्वैत मे माया को कही स्थान नही। और माया से रहित या शुद्ध होने से ही उसे शुद्धाद्वैत कहते हैं। इनके ब्रह्म (श्रीकृष्ण) विष्णु के वैकुण्ठ से भी ऊपर 'व्यापी वैकुण्ठ' के एक खण्ड 'गोलोक' मे नित्य लीला किया करते है। यमुना, वृन्दावन आदि इसी गोलोक की वस्तुए है, जो पृथ्वी पर भी प्रतिबिम्बित हो रही हैं। ईश्वर के अनुग्रह-स्वरूप-प्राप्त भक्ति से ही जीव मुक्त हो सकता है। इस भक्ति को ही 'पुष्टि' कहा जाता है। यू तो यह पुष्टि ईश्वर की कृपा द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तु है, पर उस ईश्वर का अनुग्रह आचार्य जी की कृपा होने पर विशेष आत्माओ

को ही प्राप्त होता है, और आचार्य जी स्वय भी अग्नि के अवतार या साक्षात् कृष्ण कहे जाते है। अत आचार्यो का महत्त्व ईश्वर से बढकर नही तो ईश्वर के समान तो अवश्य है।

प्रमुख लेखक—

जयदेव—इनके समय के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद है। अनेक विद्वानो ने इनका समय १३ वी शताब्दी का प्रारम्भिक भाग माना है, क्योकि ये बगाल के राजा लक्ष्मणसेन से सम्मानित थे, और लक्ष्मणसेन का समय स० १२२७ निश्चित हो चुका है। इनका जन्म वीरभूम जिले के 'किंदुविल्व' नामक ग्राम मे बगाल मे हुआ था। इनकी सस्कृत रचना 'गीत-गोविन्द' भारतीय साहित्य मे अपना अनुपम स्थान रखती है। आगामी सम्पूर्ण कृष्ण-साहित्य जयदेव के गीत-गोविन्द से प्रेरणा प्राप्त करता प्रतीत होता है। भाषा का लालित्य, सौन्दर्य, मार्दव और माधुर्य गीत-गोविन्द जैसा अन्यत्र कही भी लक्षित नही होता। यह सरस शृगारिक गीत-काव्य है। सस्कृत के अतिरिक्त हिंदी मे भी जयदेव के लिखे हुए दो एक पद गुरुग्रन्थ साहिब मे मिलते है। किंतु सौन्दर्य की दृष्टि से सस्कृत रचना के समक्ष वे अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होते है। इनका एक गीत देखिए—

ललितलवगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुजकुटीरे॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते।
नृत्यति युवतिजनेन सम सखि विरहिजनस्य दुरन्ते॥
उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे।
अलिकुलसकुल कुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे॥

विद्यापति—बगाल मे विद्यापति की पदावली का प्रचार प्रचुर परिमाण मे रहा है। चैतन्य महाप्रभु से लेकर आज तक के सभी कृष्ण-कीर्तन करने वाले कलाकार और भक्त विद्यापति के पदो को गाते-गाते एक अलौकिक तन्मयता प्राप्त कर लेते है। गेय गीतो के रूप में होने के कारण इनकी रचना की भाषा का परिवर्तित हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक विद्यापति बगाल के और बग भाषा के ही कवि माने जाते रहे, किन्तु अब यह निश्चित हो चुका है कि विद्यापति का जन्म सं० १४२५ के लगभग बिहार के दरभगा जिले के विसपी नामक ग्राम में हुआ था। और वे तिरहुत के महाराज शिवसिंह के आश्रय

मे रहते थे। अत विद्यापति को किसी भी अवस्था मे बगाली कवि नही कहा जा सकता। यह बात दूसरी है कि मुख परम्परा मे रहने के कारण अन्यान्य गीत-काव्यो की भाति बगाल मे प्रचलित इन गीतो का स्वरूप भी प्राय बगलामय हो गया, किन्तु बिहार आदि प्रान्तो मे ये गीत अपने मूल रूप मे ही पाये जाते है।

इतना होने पर भी जार्ज ग्रियर्सन आदि पश्चिमी विद्वानो ने बिहारी भाषा को हिन्दी से स्वतन्त्र भाषा मानकर विद्यापति को हिन्दी कवियो की पक्ति से निकालने का प्रयत्न किया, किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि बिहारी भाषा भी व्रज, अवधी या राजस्थानी की भाति हिन्दी की एक उपभाषा है। बिहारी या मैथिली को किसी भी अवस्था मे हिन्दी से स्वतन्त्र भाषा नही कह सकते। अत जिस प्रकार राजस्थानी के बीसलदेवरासो, पजाबी के श्री गुरु नानक के पदो, अवधी के पद्मावत व व्रजभाषा के सूरसागर पर हिन्दी-साहित्य का अधिकार है और इन सब भाषाओ के कवि हिन्दी के कवि कहलाते है, उसी प्रकार विद्यापति की रचनाओ पर हिन्दी का अधिकार है और वे हिन्दी ही के कवि माने जायेगे।

विद्यापति ने सस्कृत, अपभ्र श तथा देशभाषा आदि मे रचनाए लिखी है। १ 'शैव सर्वस्वसार' २ शैव सर्वस्वसार प्रमाण-भूत-पुराण-सग्रह ३ 'भूपरिक्रमा' ४ 'पुरुष-परीक्षा' ५ 'लिखनावली' ६ 'गगा-वाक्यावली' ७. 'दान-वाक्यावली' ८ 'विभाग-सार' ९ 'गया पत्तलक' १० 'वर्ण कृत्य' ११ 'दुर्गा भक्ति तरगिणी' ग्यारह सस्कृत पुस्तके है। इनके अतिरिक्त कीर्तिलता और कीर्तिपताका नामक दो अपभ्रश-काव्य और पदावली देशभाषा का काव्य है। विषय की दृष्टि से ये रचनाएँ १ भक्ति २. सामयिक समाज और ३ शृगार सम्बन्धी इन तीन भागो मे विभक्त की गई है।

वस्तुतः विद्यापति कृष्ण-भक्त नही प्रत्युत शिव-भक्त थे। अत भक्तिभाव से प्रेरित होकर उन्होने केवल शिव सम्बन्धी रचनाएँ लिखी। शैव-धर्म के योग-प्रधान होने के कारण उसमे विलासिता या प्रेम की प्रवृत्तियो को कही स्थान नही है, अपने प्रेमोद्गार प्रकट करने के लिए उन्होने जयदेव के गीत-गोविन्द के आधार पर राधा-कृष्ण को नायक-नायिका मानकर अपने पदो या गीतो की रचना की। इस दृष्टि से इनकी पदावली को भक्ति-काव्य की अपेक्षा शृगार-काव्य कहना ही अधिक उपयुक्त है

विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका मे उनके आश्रयदाता शिवसिह की वीरता का बडे ही प्रभावपूर्ण और ओजस्वी शब्दो में वर्णन है। जयदेव के

गीत-गोविन्द के अनुकरण पर लिखे जाने के कारण इनके गीत भी अत्यन्त कोमल-कान्त पदावली से परिपूर्ण है। इन्होने शिवसिह और उनकी रानी लखिमा देवी की प्रणय-लीलाओ का बडा ही सजीव व मार्मिक चित्रण किया है। नख-शिख का वर्णन और कवियो ने भी किया है, परन्तु विद्यापति ने सब का सार निचोड कर एक जगह रख दिया। सौन्दर्य के इस समुद्र मे स्वय नख-शिख भी डूबे जा रहे है। राधा का शरीर क्या है सौन्दर्य की एक वल्लरी है जिस पर नाना प्रकार के रुचिर पुष्प फूल रहे है। उसके प्रत्येक अग से मजुलता टपक रही है। प्रत्येक श्वास से सौरभ उमड रहा है, प्रत्येक क्रिया से सौन्दर्य का रुचिर नृत्य व्यक्त हो रहा है। सुधा के इस कासार में राधारूपी कमल को खिलाकर विद्यापति ने सचमुच कमाल की बाजीगरी खेली है। इसीलिए उन्हे 'अभिनव जयदेव' और 'मैथिल कोकिल' आदि उपाधियो से विभूषित किया गया है। विद्यापति अपनी अलौकिक कविता की कीर्ति-कौमुदी फैलाकर स० १५३२ के लगभग स्वर्ग सिधारे। इनका एक गीत देखिए—

सरस बसत समय भल पावलि, दछिन पवन बह धीरे।
सपनहु रूप बचन इक भाषिय, मुख से दूरि करु चीरे॥
तोहर बदन सम चाद हो अथि नाहि, कैयो जतन बिह केला।
कै बेरि काटि बनावल नव कै, तैयो तुलित नही भेला॥
लोचन तुअ कमल नहि भै सक, से जग के नहि जानै।
से फिरि जाइ लुकैलन्ह जल महँ, पकज निज अपमाने॥
भन विद्यापति सुन बर जोवित, ई सब लछमि समाने।
राजा 'सिवसिह' रूप नरायन, 'लखिमा देई' प्रति भाने॥

सूरदास—आपका जन्म स० १५४० में रुणकता में और गोलोकवास स० १६२० मे पारसोली में हुआ। महात्मा सूरदास कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रतिनिधि एव सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे मतभेद हैं। रुणकता (रेणुका क्षेत्र) अथवा सिही नामक ग्राम मे इनका जन्म माना गया है। ये मथुरा और आगरा के मध्य मे गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते और भगवद्भक्ति के गीत गाया करते थे। इनके अन्धे होने के सम्बन्ध मे भी बहुत से मत है। चाहे ये किसी रोग से अन्धे हुए हो, अथवा अन्य किसी कारण से, यह तो निश्चित है कि यह जन्मान्ध नही थे। एक बार गऊ-घाट पर महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी महाराज ने इनके

पद सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और इन्हे श्रीनाथ जी के मन्दिर मे लाकर कीर्तन का मुखिया बना दिया। ये तभी से भगवान् कृष्ण की भक्ति मे तन्मय होकर नित्य नये पद बनाकर अपने प्रभु को रिझाने लगे। इन्हे 'अष्टछाप' के आठ कवियो मे प्रधान स्थान दिया गया।

इनकी जाति सारस्वत ब्राह्मण थी या ब्रह्मभट्ट, इनके माता-पिता कौन थे, वे कहा और किससे पढते थे, उनके विवाह और सन्तान आदि हुए थे या नही, ये सब विषय अनिश्चित और सदिग्ध है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि बिल्वमगल की कथा का सूरदास तथा इलाहाबाद मे अकबर से निमन्त्रित सूरदास इस महाकवि से सर्वथा भिन्न है। ये कभी अकबर के दरबार मे न रहे और न उनसे मिलने ही गये, यह अनेक प्रमाणो से सिद्ध हो चुका है।

सूरदास सो कहा निठुरई, नैननि हू की हानि।

इस पद्याश मे सूरदास अपने प्रभु को उलाहना दे रहे है कि हे प्रभो, तुम मेरे लिए इतने कठोर क्यो हो गये हो जो मेरी आँखे भी जाती रही ? इन शब्दो से ध्वनि निकलती है कि उन्होने अपनी आँखे अपने हाथो से स्वय नही फोडी थी, अत बिल्वमगल वाले सूरदास कदापि नही हो सकते।

इन्होने विभिन्न रगो का जितना स्वाभाविक और वास्तविक वर्णन किया है उसको देखते हुए यह निश्चित होता है कि ये जन्मान्ध नही थे कुछेक आलोचक ऐसा कहते है कि सूरदास वृद्धावस्था मे अन्धे हुए थे, किन्तु हम इससे सहमत नही। वे निश्चित रूप से तीस वर्ष की अवस्था मे चक्षुहीन हो चुके थे। वल्लभाचार्य जी के मिलने के समय और 'सूरसागर' की रचना के समय वे अवश्य अन्धे थे। और वल्लभाचार्य जी तथा सूरदास का प्रथम साक्षात्कार स० १५६७ के लगभग माना जाता है। इससे पूर्व ही वे "प्रज्ञाचक्षु" के नाम को क्रियात्मक रूप मे चरितार्थ कर चुके थे।

यह निश्चित है कि भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से सूर के गीत हिन्दी साहित्य के शृगार है। वे किसी भाषा या शैली के आरम्भिक स्वरूप के नही प्रत्युत विकसित और प्रौढ रूप के परिणाम दिखाई देते है। इस दृष्टि से विचार करने पर सूर की गीत-शैली की परम्परा तो प्रत्यक्ष ही पूर्व-प्रचलित है। जयदेव और विद्यापति उनसे बहुत पूर्व राधाकृष्ण के प्रेमगीत लिख चुके थे। सूरदास ने अनेक स्थानो पर विद्यापति को केवल भाषान्तरित मात्र कर दिया है। इस से सिद्ध होता है कि विषय और शैली तो सूर को अपने पूर्ववर्ती कवियो से

विरासत मे प्राप्त हो गई थी। किन्तु व्रज-भाषा मे वे कृष्ण-काव्य कहने वाले प्रथम कवि ही है। कबीर के पद भी यद्यपि शुद्ध साहित्यिक ब्रज-भाषा मे प्राप्त होते है, तथापि एक तो कबीर की भाषा सूर से पर्याप्त पुरानी है और दूसरे उसका विषय भी सर्वथा पृथक। इसलिए ब्रज-भाषा मे कबीर से भिन्न कोई ऐसी गीतो की पूर्व परम्परा अवश्य होनी चाहिए जिसका निखरा हुआ और विकसित रूप हमें सूर के साहित्य मे प्राप्त होता है। केवल सूर ही क्यो तुलसी और नन्ददास आदि अन्य सम-सामयिक लेखको ने भी व्रज-भाषा मे वैसे ही अत्यन्त समुन्नत गीत लिखे हैं। वे सूर के अनुकरण पर कदापि नही लिखे गये होगे। इन सूर, तुलसी आदि सभी कवियो ने व्रज-भाषा में गीत लिखने के लिए किसी समान स्रोत से प्रेरणा प्राप्त की होगी। भले ही वे गीत मुख परम्परा मे क्यो न रहे हो। ऐतिहासिको ने 'बैजू बावरे' के गीतो को सूर से पूर्ववर्ती स्वीकार किया है। सूरदास आदि कृष्ण-काव्यकारो ने उसी पुरानी परम्परा से प्रचलित विषय व शैली को अत्यन्त ही सुललित साहित्यिक रूप प्रदान कर अपने चरमोत्कर्ष पर पहुचा दिया। साथ ही यहा यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सूरदास पूर्व परम्परा के विकसित रूप होते हुए भी अपने आप मे सर्वथा मौलिक और नित्य नवीन है, क्योकि विद्यापति के राधाकृष्ण के प्रेम-सम्बन्धी गीतो मे नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, दूतीशिक्षा, अभिसार आदि प्रधान वर्ण्य-विषय है। इसलिए वे भक्ति-काव्य की अपेक्षा शृगार काव्य कहलाने के ही अधिक अधिकारी हैं। सूर के गीत प्रेमपूर्ण होते हुए भी भक्ति की भव्य भावनाओ से भूषित है। पुराने व्रज गीतो की भाषा सामान्य लोक-भाषा-मात्र थी। जैसे जायसी की लौकिक अवधी भाषा को तुलसीदास ने सुसस्कृत साहित्यिक रूप प्रदान किया वैसे ही सूर ने व्रज-भाषा को। १ 'सूरसागर' २ 'साहित्य लहरी', ३ "सूरसारावली' इनके बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सूरसागर में श्रीमद्भागवत का हिन्दी गीतो मे स्वतन्त्र भावानुवाद किया गया है। इस अनुवाद के लिए वल्लभाचार्यजी ने आदेश दिया था। पहले नौ स्कन्धो का सक्षिप्त चलता-सा वर्णनमात्र कर दिया गया है, किन्तु दशम स्कन्ध का बडा विस्तृत वर्णन है। उसमे भी भगवान् कृष्ण की बाललीला, रूपमाधुरी, प्रणय, विरह-वर्णन, विनय, शृगार, गोपी-उद्धव-सवाद अथवा भ्रमरगीत बडे विस्तृत रूप से कहे गये है। क्योकि यह मुक्तक गीतकाव्य है अत इसमे एक ही भाव के अनेको पद बन गये।

सूरदास वस्तुत वात्सल्य रस की मूर्ति ही है। इन्होने बालकृष्ण का बडा ही स्वाभाविक सरस, सुन्दर चित्र चित्रित किया, इसलिए 'सूर' का दूसरा नाम 'वत्सल-रस' कहा गया है। केवल वत्सलरस ही नही, रूपमाधुरी, गोपी-उद्धव-सवाद आदि

अन्य विषयो मे भी सूरदास अपने उपमान आप ही है। भाषा की कोमलता का तो कहना ही क्या ? एक तो यूही व्रज-भाषा सस्कृत के पश्चात् सर्वाधिक कोमल है, और फिर वह सूर-सरीखे महाकवि की वाणी से निकल कर सुगन्धि और मृदुलता से युक्त स्वर्ण बन गई है। इन सब बातो के आधार पर ही सूरदास और तुलसीदास को सर्वश्रेष्ठ कवि का प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया है। जैसी तन्मयता, सरसता और निश्चल सात्विक भक्ति सूर और तुलसी में पाई जाती है वैसी अन्य किसी कवि मे नही। अत ये दोनो ही कवि सचमुच साहित्याकाश के सूर्य और चन्द्र है। और इनके सम्बन्ध मे कहा गया निम्न पद—

किधौ सूर को सर लग्यो किधौ सूर की पीर।
किधौ सूर को पद लग्यो,बेध्यो सकल शरीर।।

अक्षरश सत्य सिद्ध होता है। इनके दो सरस पद यहा दिये जाते है—

१. खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहि मोहि देखत लरिकन सग तबहि खिझत बल भैया।।
मोसो कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि जतन बटैया।।
अब बाबा कहि कहत नन्द को यसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलौ खिसैया।।
पाछे नद सुनत है ठाढे हसत हसत उर लैया।
"सूर" नद बलरामहि धिरचो सुनि मन हरख कन्हैया।।

२ प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतग करी दीपक सो आपै प्राण दह्यो।।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सो सम्पुट माँझ गह्यो।
सारग प्रीति करी जो नाद सो सन्मुख बाण सह्यो।।
हम जो प्रीति करी माधव सो चलत न कछू कह्यो।
"सूरदास" प्रभु दरसन कारन ऐसी भाति बिचारै।।

नन्ददास—इनका रचनाकाल स० १६२५ के लगभग माना जाता है। यद्यपि "दो सौ बावन वैष्णवो की वार्त्ता" मे नन्ददास जी को तुलसीदास का भाई

लिखा है, तथापि यह सिद्ध हो चका है कि तुलसीदास जी और नन्ददास जी का आपस मे कोई सम्बन्ध न था। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। अष्टछाप मे सूरदास जी के पश्चात् इन्ही का स्थान है। सूर की भाषा स्वाभाविक और चलती है किन्तु नन्ददास जी की भाषा मे अनुप्रास और सस्कृत-पदविन्यास की पर्याप्त पुट है। नन्ददास जी का "भ्रमरगीत" बहुत से समालोचको की दृष्टि मे सूरदास जी के भ्रमर गीत से भी उत्कृष्ट है। इस भ्रमर-गीत की सबसे बडी विशेषता यह है कि नन्ददास के उद्धव, सूर के उद्धव की भाँति मूक और अप्रतिभ से नही हैं, वे समय-समय पर गोपियो के तर्कों का बडे सुन्दर ढग से खडन करते है। साथ ही एक नवीन छन्द के सौन्दर्य से भी इनके भ्रमर-गीत मे बहुत उत्कृष्टता और सरसता आ गई है। सभवत इसी कारण ही—"और कवि घडिया नन्ददास जडिया" की उक्ति प्रचलित हुई हो।

वस्तुत इनकी रचना इतनी रोचक और भावपूर्ण है कि उसकी टक्कर लेने वाली हिन्दी मे बहुत कम रचनाएँ मिलेगी।

नाभादास जी ने इनके विषय मे सत्य ही कहा है—

लीलापद रस रीति, ग्रन्थ रचना मे नागर।
सरस उक्ति युक्त युक्ति, भक्ति रसगान उजगार।।
प्रचुर पद्य लौ सुयसु रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकल सवलित, भक्तपद रेनु उपासी।।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पथ मे पगे।
श्री नन्ददास आनन्द निधि, रसिक सुप्रभु हित रगमगे।।

इनके लिखे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ है—१ रास पचाध्यायी, २. भ्रमर-गीत, ३ भागवत दशम स्कध, ४ रुक्मणी मगल, ५ सिद्धान्त पचाध्यायी, ६ रूप मजरी, ७ मान मजरी, ८ विरह मजरी, ९ नाम चिन्तामणि माला, १० अनेकार्थ नाम माला, ११ दानलीला, १२. मानलीला, १३ अनेकार्थ मजरी, १४ ज्ञान मजरी, १५ सुदामा चरित, १६ श्याम सगाई, १७. नासिकेतोपाख्यान (गद्य मे)। इनके रास पचाध्यायी और भ्रमर-गीत के कुछ पद नीचे दिये जाते हैं—

१. तह राजत ब्रजराज कुअर वर रसिक पुरन्दर।।
निकर विभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नन्द कुअर उर पर सोइ लागत उडु जस।।

मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छबि ताकी।
अखिल खण्ड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी ।।

२. सुनत श्याम को नाम, ग्राम गृह की सुधि भूली।
भरि आनन्द रस हृदय, प्रेम बेली द्रुम फूली ।।
पुलकि रोम सब अङ्ग भये, भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन ।।
व्यवस्था प्रेम की ।।

सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस रही नाही सुधि कोऊ ।।
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही सावरे गात।
कल्प तरोरुह सावरो, ब्रजवनिता भई पात ।।
उलहि अग अग तें ।।

कृष्णदास—ये भी वल्लभाचार्य जी के शिष्य और अष्टछाप मे थे। ये शूद्र थे फिर भी आचार्य जी के कृपापात्र होने के कारण मन्दिर के प्रधान मुखिया बन गये थे। इन्होने भी अन्य कृष्ण-भक्तो की तरह राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर शृगार के ही पद बनाए। फुटकर पदो की इनकी 'जुगलमान चरित्र', 'भ्रमर-गीत', 'प्रेमतत्त्व निरूपण' पुस्तके मिलती है। इनकी रचना साधारण कोटि की है। एक पद देखिए—

कचन मनि मरकत रस ओपी।
नद सुवन के सगम सुखकर अधिक विराजति गोपी ।।
मनहुँ विधाता गिरिधर पिय हित सुरत-धुजा सुख रोपी।
बदन काति कै सुनु री भामिनि ! सघन चद-श्री लोपी ।।
प्राणनाथ के चित चोरन को भौह भुजगम कोपी।
कृष्णदास स्वामी बस कीन्हे, प्रेम पुज की चोपी ।।

परमानन्ददास—ये स० १६०६ के आस-पास वर्तमान थे और वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। वल्लभाचार्य जी से हरि-कथा सुनकर उसे इन्होने जन्म से प्रवास

तक शृंखला-बद्ध लिखा। इनकी कविता बडी सरस, सरल और भावपूर्ण है। इनके एक पद को सुनकर आचार्य जी कई दिन तक सुधबुध भूले रहे थे। 'परमानन्द सागर' मे ८३५ पद है। नमूना देखिए—

राधे जू हारावलि टूटी।
उरज कमलदल-माल मरगजी, बाम कपोल अलक लट छूटी।
वर उर उरज करज बिच अकित, बाहु जुगल बलयावलि फूटी॥
कचुकि चीर विविध रँग रजित गिरधर-अधर माधुरी घूटी।
आलस-वलित नैन अनियारे, अरुन उनीदे रजनी खूटी।
परमानन्द प्रभु सुरति समय रस मदन नृपति की सेना लूटी॥

कुम्भनदास—ये बडे विरक्त पुरुष थे। अकबर के बुलाने पर सीकरी गये। वहा इनका बडा सम्मान हुआ। इस पर इन्होने कहा कि—

'सतन को कहा सीकरी से काम।
आवत जात पनहिया टूटी विसरि गयो हरिनाम॥

इनके फुटकर पद मिलते है जिनमे कृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला का वर्णन है। ये भी परमानन्द के समकालीन थे।

चतुर्भुजदास—ये कुम्भनदास जी के पुत्र और विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। इनकी भाषा चलती और व्यवस्थित है। इनके बनाए द्वादश यश, भक्तिप्रताप, हितजू को मगल, ये तीन ग्रन्थ और फुटकर पद भी मिलते है।

छीतस्वामी—पहले ये मथुरा के पण्डा थे और राजा बीरबल जैसे लोग इनके यजमान थे। इनकी रचनाओ का समय स० १६१२ के लगभग है। इनके फुटकर पद ही इधर-उधर सुने जाते है। इनके पदो मे शृगार के अतिरिक्त व्रजभूमि के प्रति प्रेमनिरूपण भी पाया जाता है। इनके पद भी सरस और मधुर है।

गोविन्दस्वामी—इनका रचनाकाल स० १६०० और १६२५ के भीतर माना जाता है। इनके पदो से प्रसन्न होकर विट्ठल नाथ जी ने इन्हे अष्टछाप में लिया। गोवर्धन पर्वत पर 'गोविन्दस्वामी की कदमखण्डी" प्रसिद्ध है। ये बडे अच्छे गवैये थे। तानसेन भी कभी-कभी इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे।

सूरदास से लेकर गोविन्दस्वामी तक ये आठो कवि अष्टछाप के कवि कहे जाते है। इनमे से प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य जी के तथा बाद के चार वल्लभाचार्य

जी के सुपुत्र श्री गो० विट्ठलनाथ जी के शिष्य है। विठठलनाथ जी ने ही उक्त आठो कवियो को लेकर 'अष्टछाप' नामक अपने एक कवि समाज की स्थापना की थी।

रसखान—इनका जन्म स० १६१७ दिल्ली मे और मृत्यु स० १६९० मे हुई। अनन्य कृष्ण-भक्त मुस्लिम कवि रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। ये शाही खानदान के थे जैसा कि प्रेमवाटिका मे लिखा है—

देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादशाह वश की ठसक छांड़ि रसखान॥

ये बडे भारी कृष्ण-भक्त और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के अत्यन्त कृपापात्र शिष्य व आरम्भ से ही प्रेमी जीव थे। कहा जाता है कि ये पहले किसी पर आसक्त थे और वही मानवीय प्रेम अलौकिक प्रेम मे परिणत हो गया। इनकी भाषा बडी ही सरल, सरस और शब्दाडबर से रहित है। इनके सवैयो में प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुचा हुआ प्रतीत होता है। इसीलिए जन-साधारण प्रेम-सम्बन्धी कवित्त सवैयो को ही 'रसखान' कहने लगे। यद्यपि इनकी रचना परिमाण मे स्वल्प ही है तथापि कृष्ण-भक्त-प्रेमियो के मर्म को स्पर्श करने वाली है। अन्यान्य कृष्ण-भक्त कवियो ने गीत लिखे है परन्तु इन्होने अपनी कविता के लिए कवित्त सवैयो का आश्रय लिया है। अनुप्रास की सुन्दर लय से युक्त चुस्त और मनोहर भाषा मे प्रेम व भक्ति का सजीव चित्र खीचने मे तो रसखान अपने उपमान आप ही है।

इनकी दो रचनाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी है। १ सुजानरसखान, २ प्रेमवाटिका। सुजानरसखान मे १२० पद्य सवैया, घनाक्षरी छन्दो मे है तथा कुछ-एक दोहे-सोरठे भी है। प्रेमवाटिका मे ५२ दोहे है। इनकी कुछ सरस रचनाएँ यहा दी जाती है—

मानस हौ तौ वही रसखानि बसो ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन।
जौ पसु हौ तौ कहा बस मेरो चरौ नित नद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौ तो वही गिरि को जो धरचो कर छत्र पुरदर धारन।
जौ खग हौ तौ बसेरो करौ मिलि कालिदी कूल कदबकी डारन॥
कानन दै अँगुरी रहियौ, जबही मुरली धुनि मद बजै है।
सोहनी तानन सो रसखानि, अटा चढि गोधन गैहै तो गैहै॥

टेरि कहौ सिगरे ब्रज लोगनि, काल्हि कोऊ कितनौ समुझै है।
माई री वा मुख की मुसकान, सह्मारि न जैहै न जैहै न जैहै ।।

ध्रुवदास—इनकी रचनाओ मे दिये गये सवतो के आधार पर इनका रचनाकाल स० १६५० से १७०० तक माना जाता है। ये प्राय वृन्दावन मे रहते थे। इनकी रचनाएँ परिमाण, गुण और विषय सभी दृष्टियो से अत्यन्त व्यापक हैं। सिंगार सत, रस रत्नावली आदि इनके ४० ग्रन्थो मे अनेक छन्दो, रसो तथा विषयो का उपयोग हुआ है, जिनमें प्रेम की प्रमुखता है। नाभादास की 'भक्तमाल' के अनुकरण पर लिखी गई इनकी 'भक्त नामावली' मे उस समय तक के प्राय सभी भक्तो का जीवन-परिचय दिया गया है ।

मीराबाई—आपका जन्म स० १५५५ मेडता मे और मृत्यु सवत् १६२० के लगभग द्वारका मे हुई। सर्वश्रेष्ठ कृष्ण-भक्त स्त्री-कवयित्री मीराबाई मेडता के राव रत्नसिह की पुत्री व मेवाड के महाराणा सागा के सुपुत्र भोजराज की पत्नी थी। विवाह के सात वर्ष पश्चात् ही वे विधवा हो गईं। आरम्भ ही से वे भगवान्-श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त थी। विधवा होने पर उनकी यह भक्ति पराकाष्ठा पर पहुच गई। अब वे श्रीकृष्ण की पति-रूप मे उपासना करने लगी। साधु-सगति, श्रीकृष्णलीला चर्चा, पूजा-अर्चा को छोड अब उन्हे दूसरा काम नही रह गया। इस पर इनका देवर विक्रमादित्य बहुत रुष्ट रहने लगा और विरोध करने लगा। यहा तक कि एक बार तो उसने विषमिश्रित दूध भी पीने के लिए भेजा जिसे वे सहर्ष पी गईं किन्तु उस हलाहल विष का कुछ भी प्रभाव न हुआ। अन्त मे रात-दिन के विरोध को न सहकर वे चित्तौड को छोडकर वृन्दावन की यात्रा को चली गईं। इससे पूर्व उन्होने गोस्वामी तुलसीदास जी से निम्नलिखित पत्र लिखकर पूछा था कि ऐसी परिस्थिति मे मेरा क्या कर्त्तव्य है—

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषन हरन गोसाईं।
बारहि बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन्ह उपाधि बढाई।
साधु सग अरु भॅजन करत, मोहि देत कलेस महाई।
मेरे मात-पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समुझाई।

इस पर गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका का यह पद लिखकर भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो नर तजिये कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
नाते सबै राम के मानियत सुखद सुसेव्य जहा लौं।
अँजन कहॉ ऑखि जो फूटै बहुतक कहौ कहा लौं॥

वृन्दावन से वे द्वारका चली गईं। आदि

मीरा की भक्ति माधुर्य-भाव से परिपूर्ण है। इनकी कविता की उत्कृष्टता को देखते हुए समालोचक जगत् ने उन्हे हिन्दी-कवियो मे बहुत उच्च स्थान दिया है। कृष्ण-भक्त स्त्री-कवयित्रियो में तो उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है ही। वे अपने इष्टदेव कृष्ण की उपासना प्रियतम या पति के रूप मे करती थी। इस प्रकार की उपासना मे रहस्य का समावेश अनिवार्य है। सूफियो की 'हाल' की-सी अवस्था में तन्मय होकर उन्होने माधुर्य-भाव से अपने भक्तिभाव का स्वरूप निर्धारित किया और स्वय विरहिणी बनकर अपने प्राणप्रिय से प्रणय की भिक्षा मागी। इसीलिए मीरा के काव्य मे गीत-काव्य अपने परमोत्कृष्ट रूप मे प्रकट हुआ है।'

इतना होने पर भी मीरा की भक्ति-भावना अन्य कृष्ण-भक्तो से सर्वथा नवीन रूप लिए हुए है। उन्होने अन्य कवियो की भाति कृष्ण की विभिन्न बाल-लीलाओ या नखशिख-वर्णन आदि की कही चर्चा नही की। वे तो उस पूर्ण परब्रह्म के पूरे स्वरूप का चित्र खीचने में तल्लीन दिखलाई देती है। वे स्वय अपने आपको एक गोपी के रूप मे परिणत पाती है, इसलिए उन्होन राधाकृष्ण की नही प्रत्युत केवल कृष्ण की ही उपासना के पद गाये है। उन्होने बहुत से पद निर्गुण सन्तो की परम्परा पर भी कहे। मीरा की कविताओ मे हमे उस काल मे प्रवाहित भक्ति की त्रिधारा के दर्शन होते है। वे साकार कृष्ण के गुण गाती हुई भी—

'नयनन वनज बसाऊँ री जो मैं साहब पाऊँरी।
इन नयनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँरी।
त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा तहॉ से झॉकी लगाऊँरी।
सुन्न महल मे सुरत जमाऊँ सुख की सेज बिछाऊँरी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊँरी।

इत्यादि पदो मे सन्तो के निर्गुण भक्ति-भाव का वर्णन कर जाती है। सक्षेप मे कह सकते है कि अपने अन्तर्तम की वेदना या हृदय के उद्गारो की अभिव्यक्ति ही

मीरा की कविता के रूप मे फूट निकली है। उसमे न साहित्यिक बाह्य सौन्दर्य है न शब्दो की सजावट। मीरा ने अपने आपको एक भावुक-हृदया-प्रोषितपतिका के रूप मे अकित किया है, कुशल कवि के रूप मे नही। इसीलिए किसी सिद्धान्त या सम्प्रदाय के बन्धन मे न बँधकर उन्होने अपने व्यवहार मे आने वाली (१) राजस्थानी (२) व्रज (३) गुजराती इन तीनो भाषाओ तथा कृष्ण के साम्प्रदायिक प्रभाव से रहित शुद्ध सात्त्विक कृष्ण रूप परब्रह्म को ही नाना प्रकार से रिझाने के लिए अपने आपको कविता के रूप मे प्रकट किया है। इनकी नरसी जी का मायरा, गीत गोविन्द की टीका, राग गोविन्द, राग सोरठ के पद ये चार रचनाएँ प्रसिद्ध है। इनका एक गीत ऊपर दे दिया गया है।

हितहरिवश—इनका जन्म स० १५५९ मे बाद गाव जिला मथुरा मे हुआ। इनके पिता का नाम प० केशवदास और माता का नाम तारावती था। ये पहले मध्वानुयायी थे। पीछे इन्हे स्वप्न मे राधाजी ने मन्त्र दिया तब से इन्होने राधावल्लभ के नाम से अपना अलग सम्प्रदाय चलाया। ये सस्कृत और हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान् थे। ओरछा नरेश मधुकरशाह के राजगुरु हरिराम जी व्यास इनके शिष्य थे। 'राधासुधानिधि' आप ही का लिखा हुआ है। आपके पदो का सग्रह 'हित चौरासी' नाम से प्रसद्ध है। इनकी रचना यद्यपि थोडी है तथापि बहुत सरस और हृदयग्राहिणी है। इसी सरसता के कारण आप 'वशी के अवतार' कहे जाते है।

गदाधर भट्ट—ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। इनका रचनाकाल स० १५०० से १६०० तक माना जाता है। कहा जाता है कि ये चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। ये सस्कृत के प्रकाड पण्डित थे अत इनकी रचनाएँ सस्कृतनिष्ठ सरस साहित्यिक भाषा मे है। इनकी कोई विशेष रचना नही प्राप्त हो सकी, केवल फुटकर कविताएँ ही मिली है।

स्वामी हरिदास—ये निम्बार्क शाखा के अन्दर टट्टी सम्प्रदाय के सस्थापक थे। इनके जन्म-मरण के विषय मे कुछ ज्ञात नही। तानसेन इन्हे अपना गुरु मानते थे। स्वय अकबर वेश बदल कर इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे। ये परम भक्त सुकवि और सगीत-कला के विशेषज्ञ थे। इनका कविता काल स० १६०० से १६१७ तक ठहरता है।

सूरदास मदनमोहन—ये सडीले के रहने वाले ब्राह्मण, अमीन थे। ये इतने उदार थे कि एक बार सरकारी खजाने के लाखो रुपये साधुओ को लुटा बैठे और शाही खजाने मे ककर-पत्थरो से भरे सन्दूक भेज दिये। इनके स्वभाव से परिचित होन के कारण अकबर ने इन्हे क्षमा कर दिया। इनकी रचना भी सूरदास के समान

ही सरस होने के कारण उनसे भिन्न नही प्रतीत होती। इनकी कोई पुस्तक नही मिली।

श्रीभट्ट—इनका जन्म स० १५९५ के लगभग माना जाता है। 'युगलशतक' नामक इनकी रचना बडी सरल और सरस है। 'आदिबानी' भी इनकी लिखी हुई एक और पुस्तक कही जाती है।

हरिराम व्यास—इनका रचनाकाल स० १६२० के लगभग माना गया है। ये ओरछा-नरेश मधुकरशाह के गुरु थे। पहले ये शास्त्रार्थी पण्डित थे। एक बार हितहरिवश जी से शास्त्रार्थ करने गये और उल्टे उन्ही के शिष्य बनकर राधावल्लभी हो गये। इनकी रचना परिमाण तथा विषयो की दृष्टि से बहुत व्यापक है। बाललीला और शृगारलीला मे लीन रहते हुए भी लोकपक्ष की इनहोने कभी उपेक्षा नही की। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सभी विषय इनकी रचनाओ मे प्राप्त है। इनकी 'रासपचाध्यायी' सूर के सागर मे समा गई थी पर आलोचको के प्रयत्नो से पुन अपने पृथक् रूप मे प्रकट हो गई है।

अभ्यास

१ कृष्णोपासना का प्रारम्भ कब हुआ और उसे वर्तमान रूप किस समय प्राप्त हुआ ?

२ निम्बार्काचार्य चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्यजी के जीवन व सिद्धान्तो का सक्षिप्त परिचय दे।

३ जयदेव और विद्यापति के साहित्य पर प्रकाश डालते हुए सिद्ध करें कि विद्यापति हिन्दी के ही कवि है।

४ कृष्ण-भक्ति-साहित्य की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए बताय कि इस साहित्य मे प्रबन्ध काव्यो का निर्माण क्यो न हो पाया ?

५ कृष्ण-साहित्य का आगामी समाज व साहित्य पर क्या प्रभाव पडा ?

६ सूरदासजी का जीवन-वृत्त लिखकर उनकी साहित्य-सेवाओ पर विस्तृत प्रकाश डालें।

७ 'भ्रमर-गीत' व 'अष्टछाप' से क्या प्रयोजन है, अष्टछाप के कवियो का परिचय देकर लिखे कि भ्रमर-गीतो की रचना किन-किन कवियो ने की है, और आप किसकी रचना को सर्वोत्कृष्ट मानते है ?

८. नन्ददास, रसखान व मीराबाई का परिचय देकर इनके साहित्य की समालोचना करे।

●

दसवाँ अध्याय

भक्तिकाल की फुटकर रचनाएँ अथवा मुगल दर्बार से प्रभावित साहित्य

भक्तिकाल मे अनेक कवि ऐसे हुए है जिनकी गणना पूर्वोक्त भक्ति की चारों शाखाओ मे से किसी मे भी नही की जा सकती। ये साम्प्रदायिक सिद्धान्तो से परे रहकर निर्गुण, सगुण, राम, कृष्ण सभी रूपो की उपासना करते थे। ये लोग भक्त की अपेक्षा शृगारिक कवि, आचार्य अथच लोकसाहित्य-स्रष्टा के रूप मे आविर्भूत हुए है। इनमे से अधिकाश अकबरी दर्बार से भी प्रेरणा प्राप्त करते रहते थे। रहीम, केशव आदि हिन्दी के उत्कृष्ट कविगण भी इसी श्रेणी के है। इसी कारण इन्हे साहित्य के इतिहास मे एक पृथक् अध्याय प्राप्त हो गया।

अकबर के शान्तिमय, सुव्यवस्थित और कलापूर्ण शासन-काल की महत्ता को बढाते हुए कुछ आलोचक यहाँ तक कहने का साहस कर गये है कि हिन्दी-साहित्य मे सूर और तुलसी-सरीखे उत्कृष्ट कवियो के प्रादुर्भाव मे भी अकबर के शासन-काल की शान्तिमय परिस्थितियाँ ही मुख्य कारण है। किन्तु उनका यह कथन किसी प्रकार सत्य और उचित नही प्रतीत होता, क्योकि सूर और तुलसी का साहित्य समाज की स्वाभाविक प्रवृत्तियो का परिणाम है। उस पर किसी शासन-काल का कुछ भी प्रभाव नही। इसे एक आकस्मिक घटना समझना चाहिए कि राजनैतिक दृष्टि से मुस्लिम शासन-काल का जो भाग 'स्वर्णयुग' कहलाया, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भी वही समय 'स्वर्णयुग' बना। अत अकबर के शासन-काल का यह सौभाग्य ही समझना चाहिए कि सूर और तुलसी-सरीखे साहित्य-स्रष्टा उस समय को सुशोभित कर रहे थे।

नि स्सन्देह अकबर आदि मुगल शासको ने साहित्य की श्रीवृद्धि मे पर्याप्त सहयोग दिया। ये सम्राट् स्वय भी साहित्य-रचना करते रहे। अकबर ने अपने सुपुत्र जहाँगीर को हिन्दी सिखाई और अपने पौत्र खुसरो को तो छ वर्ष की अवस्था ही मे हिन्दी सीखने के लिए भूदत्त भट्टाचार्य के सुपुर्द कर दिया था। शाहजहाँ का भी हिन्दी पर अच्छा प्रभाव था। उसने हिन्दी-कवियो का खूब सम्मान किया। शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा ने इस विषय मे सबसे अधिक उन्नति की। उसने उपनिषदो का फारसी में अनुवाद भी किया था। औरगज़ेब हिन्दुओ का तो शत्रु था

पर हिन्दी के प्रति उसने भी अपने प्रेम का परिचय दिया। उसने अपने पुत्र मुहम्मद आज़िम की कुछ नवीन जाति के आमो के कुछ नये नाम रखने की प्रार्थना पर लिखा था कि—"तुम स्वय विद्वान् होकर अपने बूढे बाप को क्यो कष्ट देते हो ? ख़ैर, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए आमो के नाम मैने 'सुधारस' और 'रसना-विलास' रक्खे है"। ये कितने सुन्दर नाम है। अस्तु।

यह साहित्य पूर्वोक्त भक्ति-सम्बन्धी साहित्य से सर्वथा भिन्न है। इसमें उपर्युक्त विशेषताएँ व नवीनताएँ लक्षित होती है इसीलिए उन्हे किसी भक्ति-शाखा की विशेष परम्परा मे नही बैठाया जा सकता। यहा यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब उन्हे भक्ति-परम्परा में स्थान प्राप्त नही हो सकता तो 'रीतिकाल' में क्यो न रख दिया जाय—उनके लिए पृथक अध्याय की क्या आवश्यकता ? इसके सम्बन्ध मे हम कह सकते है कि यद्यपि कृपाराम और केशव ने रीति-ग्रन्थो का निर्माण आरम्भ कर दिया था और रहीम ने भी 'बरवै नायिका भेद' लिख कर उस परिपाटी के प्रारम्भ का परिचय दे दिया था, तथापि रीति-ग्रन्थो की परिपुष्ट परम्परा इससे ५० वर्ष पश्चात् ही प्रारम्भ हुई और वह भी एक नवीन रूप और सिद्धान्तो को लेकर। क्योकि केशव, कृपाराम आदि आचार्य अलकार-चमत्कार को प्रधानता देने वाले थे। और रीति-काल के मतिराम, दास आदि परवर्ती आचार्यों ने भावो और विभावो की या यू कहे कि रस की प्रधानता स्वीकार की। अत. केशव आदि आचार्य अलकारवादी दण्डी के मतानुयायी और दास आदि रसवादी मम्मट और विश्वनाथ की परम्परा पर चलने वाले कहे जाते है। इन्ही सब बातो को देखते हुए आचार्य शुक्ल जी ने रीति-काल का आरम्भ केशव और कृपाराम से न मानकर चिन्तामणि से माना और इसे सभी परवर्ती विज्ञ साहित्यिक इतिहासकारो ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है। तभी केशव, बीरबल आदि कविगण रीतिकाल मे न जाकर भक्तिकाल मे अपना एक स्वतन्त्र स्थान और अध्याय बनाए बैठे हैं।

प्रमुख लेखक गण—

अब यहा इस काल के प्रमुख लेखको का परिचय दिया जाता है—

सम्राट् अकबर—इनका जन्म स० १५९९ मे अमरकोट में हुआ था। इन्होने स० १६६२ तक राज्य किया। इस काल के प्रथम व प्रमख लेखको मे सर्वप्रथम स्वय सम्राट् अकबर का नाम लिया जाना उचित प्रतीत होता है। अकबर काव्य-रसिक और कला-प्रेमी तो थे ही—उनके नवरत्न—रहीम, बीरबल और तानसेन आदि ने साहित्य और सगीत को अनपम सुषमा प्रदान की। साथ ही इस सम्राट् ने स्वय भी हिन्दी में सुन्दर रचनाएँ की हैं। यद्यपि ये कुछ विशेष पढे-लिखे न थे

फिर भी कबीर की भॉति बहुश्रुत होने के कारण अनेक विषयो के ज्ञाता थे । इनकी रचनाएँ परिमाण मे बहुत स्वल्प प्राप्त हुई है । इन्होने जो कुछ लिखा वह है एकदम अनूठा । देखिए, बीरबल की मृत्यु के समय इनके अन्तस्तल से निकले हुए शोकोद्‌गार निम्न सोरठे मे कितने मार्मिक रूप मे प्रकट हो रहे है—

दीन जानि सब दीन्ह, एक न दीनो दुसह दुख ।
सो अब हम कहँ दीन्ह, कछु नही राख्यो बीरबल ।।

इनका एक और पद्य देखिए—

शाह अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद विलोकन बालहि ।
आहटते अबला निरख्यौ चकि चौकि चली करि आतुर चालहि ।
त्यो बलि वेनी सुधारिधरी सुभई छबि यो ललना अरुलालहि ।
चपक चारु कमान चढावत काम ज्यो हाथ लिये अहि बालहि ।

तानसेन—विश्वविख्यात तानसेन केवल गायक या सगीताचार्य ही न थे, वे हिन्दी के एक अच्छे कवि भी थे । उनकी रचना देखिए—

चढो चिरजीव साह अकबर साहनसाह,
बादशाह तखत बैठो छत्र फिरे निशान ।
दिल्लीपति तुम नवीजी को नायब अति सुन्दर सुलतान,
चारो देश लिये कर जोर कमान ।
राजा राव उमराव सब मानत तोरी आन,
कहे 'मिया तानसेन' सुनिये महाजान ।
तुमसे तुमही और नाही दूजो-गुणी जनन के राखत मान

बीरबल—ये अकबर के नवरत्नो मे बडे ही वाक्-चतुर और प्रत्युत्पन्नमति थे । स्वय ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे और दूसरे कवियो का भी आदर करते थे । एक बार केशवदास जी की कविता से प्रसन्न होकर इन्होनें उन्हे ६ लाख रु० दिये थे और उनके ही कहने से अकबर द्वारा ओरछा-नरेश पर किया हुआ एक करोड रुपये का जुर्माना मुआफ करा दिया था । इनका जन्म-स्थान तिकवॉपुर और उपनाम 'ब्रह्म' था । इनकी फुटकर रचनाओ का सग्रह भरतपुर से प्राप्त हुआ है ।

टोडरमल—ये अकबर के भूमि-कर-विभाग के मन्त्री थे । इनका जन्म स० १५८० मे और मृत्यु स० १६४६ मे हुई । इन्होने शाही दफ्तरो में हिन्दी के स्थान

में फारसी का प्रचार किया। ये प्राय नीति-सम्बन्धी पद्य कहते थे। इनके फुटकर कवित्त इधर-उधर मिलते है ।

महापात्र नरहरि बन्दीजन—इनका जन्म स० १५६२ और मृत्यु स० १६६७ मे कही जाती है। अकबर ने इन्हे महापात्र की उपाधि दी थी। इनके निम्न छप्पय को सुनकर अकबर ने गोवध बन्द करा दिया था। इनके 'रुक्मणी-मगल' और 'छप्पय-नीति' दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं ।

१ अरिहु दन्त तृन धरै, ताहि मारत न न सबल कोइ।
हम सतत तृन चरहि, बचन उच्चरहि दीन होइ ॥
अमृत पय नित स्रवहि, बच्छ महि थभन जावहि ।
हिन्दुहि मधुर न देहि, कटुक तुरुकहि न पियावहि ॥
कह कवि "नरहरि" अकबर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन ।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन ॥

२ ज्ञानवान हट करै, निधन परिवार बढावै ।
बधुआ करै गुमान, धनी सेवक व्है धावै ॥
पण्डित किरिया हीन, राड दुरबुद्धि प्रमाने ।
धनी न समझे धर्म, नारि मरजाद न माने ॥
कुलवत पुरुष कुलविधि तजै, बन्धु न मानै बन्धुहित ।
सन्यास धारि धन सग्रहै, ये जग मे मूरख विदित ।

होलराय—ये भी कभी-कभी अकबरी दरबार में आया करते थे। रचना इनकी पुष्ट होती थी। ये राजा-रईसो की विरुदावली वर्णन किया करते थे। इन्होने अकबर बादशाह की प्रशसा मे भी पद्य-रचना की है ।

कृपाराम—इनके जीवन के विषय मे कुछ ज्ञात नही। इन्होने स० १५९८ में रस-रीति पर 'हित तरगिणी' नामक ग्रन्थ दोहो मे बनाया। हिन्दी मे प्राप्त रीति-ग्रन्थो मे ये सबसे पुराना है। इसके दोहे बहुत ही सरस, भावपूर्ण तथा परिमार्जित हैं। यहा तक कि इनके अनेक दोहे बिहारी की सम्पत्ति समझे जाने लग पडे। इनका एक दोहा देखिए—

लोचन चपल कटाच्छ सर अनियारे विषपूरि ।
मन-मृग बेधै मुनिन के जगजन सहत बिसूरि ॥

बलभद्र मिश्र—इनका जन्मकाल स० १६०० और रचनाकाल स० १६४० के लगभग माना जाता है। ये आचार्य केशव के बडे भाई थे। इन्होने रस रीति के अनुसार नायिकाओ के अगो का वर्णन कर अपने 'नखशिख' नामक ग्रन्थ की रचना की। काव्य-दोष-विवेचनात्मक 'दूषण विचार' ग्रन्थ भी इन्ही का कहा जाता है।

रहीम—इनका जन्म स० १६१० दिल्ली मे और मृत्यु स० १६८२ चित्रकूट म हुई। अब्दुल-रहीम खानखाना सम्राट् अकबर के अभिभावक बैरमखा के सुपुत्र थे। ये अकबर के नवरत्नो मे से एक, और सेनापति थे। पश्चात् प्रधानमत्री पद पर प्रतिष्ठित हुए। ये जितने बडे विद्वान् कवि थे, उतने ही बडे शूरवीर तथा उदार व दानी भी थे। विद्वत्ता, वीरता और उदारता इन तीनो गुणो का एकत्र समावेश रहीम को छोड कर हमे अन्य किसी भी हिन्दी-कवि मे नही मिलता। ये अरबी, फारसी, तुर्की, सस्कृत, व्रज, अवधी और खडी बोली आदि अनेक भाषाओ के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होने सभी भाषाओ मे अत्यन्त मार्मिक और सरस रचनाएँ लिखी है। इनकी उदारता का परिचय—

तब ही लग जीवो भलो, दीवो परै न धीम।
बिन दीवो जीवो जगत, हमहि न रुचै रहीम॥

आदि पदो से मिलता है। साथ ही इसका क्रियात्मक प्रमाण यह भी है कि केवल दो छन्द सुनकर इन्होने गग कवि को छत्तीस लाख रुपया पारितोषिक दे डाला था। इतने पर भी दान देते समय ये अपनी आखे सदा नीची रखा करते थ। इसलिए गग ने इनसे पूछा कि—

सीखे कहा नवाब जू, ऐसी देनी दैन।
ज्यो-ज्यो कर ऊँचो करो, त्यो-त्यो नीचे नैन॥

इस पर रहीम ने उत्तर दिया कि—

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरै, याते नीचे नैन॥

अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर ने राज-विद्रोह के अभियोग मे इन्हे कैद कर लिया और सम्पत्ति भी छीन ली। कैद से छूट कर ये एक दरिद्र की भाँति चित्रकूट पर दिन बिताने लगे। अपनी इस दरिद्रावस्था का इन्होने बहुत सुन्दर और करुण वर्णन किया है।

अब रहीम घर-घर फिरे, माँगि मधुकरी खाँहि।
यारो यारी छोडि दो, अब रहीम वह नाँहि॥

ये महाराणा प्रताप के पूरे प्रशसक थे। एक बार अकबर की आज्ञा से इन्हे प्रताप से भी लडने जाना पडा। प्रताप के सैनिको ने इनके परिवार को पकड लिया, पर महाराणा ने छोडने की आज्ञा दे दी। इससे प्रभावित होकर ये प्रताप का बिना पीछा किये ही लौट आए। इस पर अकबर बहुत क्रुद्ध हुआ।

रहीम मुसलमान होते हुए भी हृदय से सच्चे हिन्दू और अनन्य भक्त थ।

धूर धरत निज शीश पै कहु रहीम केहि काज।
जिहि रज मुनि पतनी तरी सो ढूढत गजराज॥

यह दोहा इनकी रामभक्ति का अत्युत्कृष्ट उदाहरण है। इनकी कविता की सबसे बडी विशेषता यह है कि इन्होने जो कुछ लिखा है वह सुना-सुनाया न होकर अपने जीवन के अनुभव के आधार पर लिखा है। इसीलिए इनका प्रत्येक दोहा या पद अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली बन पडा है। शायद ही कोई हिन्दी-भाषी हो जिसकी जिह्वा पर कोई न कोई रहीम का दोहा विराजमान न हो।

ये गोस्वामी तुलसीदास जी के अनन्य मित्र व भक्त भी थे। इस प्रकार अनेक भाषाओ मे और अनेक विषयो पर लिखने वाले ये हिन्दी के एकमात्र कवि है। इनकी (१) रहीम सतसई (२) मदनाष्टक (३) बरवैनायिका-भेद (४) आखेट कौतुकम् (सस्कृत) (५) श्रृगार सोरठा आदि पुस्तके प्रसिद्ध है। कविता का नमूना देखिए—

मालिनीछद—कलित ललित माला वा जवाहिर जडा था।
चपल-चखन-वाला चाँदनी मे खडा था॥
कटितट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि, बन अलबेला यार मेरा अकेला॥

दोहा—नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यो न चचला होय॥
रहिमन मन महाराज के, दृग सो नही दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन, मन तेहि हाथ बिकान॥

गग—इनकी जन्म-मरण की तिथि निश्चित नही है। अनुमानत. इनका जन्म स० १६१० और देहान्त १७०० के लगभग हुआ होगा। ये अकबर के दरबारी कवि माने जाते है। कहा जाता है कि औरगजेब ने भी इन्हे एक बूढी हथिनी पुरस्कार मे दी थी जिसका वर्णन एक कवित्त मे बडा ही सुन्दर हुआ है।

तिमिरलङ्ग लई मोल चली बब्बर के हल के।
रही हुमायूँ साथ गई अकबर के दल के।
जहाँगीर जस लियो पीठि को भार छुडायो।
शाहजहाँ करि न्याय ताहि को माँड चटायो।
बल रहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करिनी सोई, लै दीन्ही कवि गग घर।

इस कवित मे बूढी हथिनी का वर्णन सुन्दर है पर ऐतिहासिक दृष्टि से इसका गग से कोई सम्बन्ध नही।

ये बडे अच्छे 'नरकाव्य' लेखक थे। इन्होने रहीम के सम्बन्ध मे इतने अच्छे कवित्त कहे कि उन्होने निम्नलिखित एक छप्पय पर ही इन्हे ३६ लाख रुपया इनाम दे दिया।

चकित भवर रहि गयौ गमन नही करत कमल बन।
अहि फनि मनि नहि लेत तेज नही गहत पवन घन॥
हस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चहै न करै रति॥
खलभलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो
खानानखान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तुग कस्यो॥

कहते है किसी कारण ये किसी राजा या नवाब द्वारा हाथी से चिरवा दिये गये थे।

आलम—ये भी अकबर के समकालीन मुस्लिम कवि है। इन्होने स० १६४० में 'माधवानल-काम-कदला' नामक प्रेम-प्रबन्धकाव्य लिखा। यह रचना साधारण है। श्री प्रो० सरनदास जी भनोत ने अनेक प्रमाणो के द्वारा यह सिद्ध किया है कि 'आलमकेलि' का लेखक भी यही आलम है और शेखरगरेजिन की कथा और किसी ब्राह्मण का मुसलमान होकर 'आलम' नाम से प्रसिद्ध होने की घटना कपोल-कल्पित है।

प्रोफेसर साहब ने इनकी 'स्यामसनेही' नामक एक अज्ञात रचना का सुन्दर सम्पादन कर इस विषय पर उसकी भूमिका मे पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मुबारक—इनका जन्म बिलग्राम मे स० १६४० में हुआ था। इनके 'अलक शतक' और 'तिलक शतक' अच्छे शृगारी काव्य है। इन्होने नायिका के दसो अगो पर सौ-सौ दोहे बनाये थे पर अब उक्त दो रचनाएँ ही प्राप्त है।

बनारसीदास—ये आमेर (जयपुर) के निवासी जैन जौहरी थे। इनका जन्म स० १६४३ मे हुआ था। 'अधकथानक' नामक इन्होने अपना जीवन-चरित्र लिखा जो कि हिन्दी का सर्वप्रथम स्वरचित जीवन-चरित्र है। इसके अतिरिक्त १ बनारसी-विलास, २ नाटक-समयसार, ३ नाममालाकोश, ४. बनारसी-पद्धति, ५ मोक्षपदी, ६ ध्रुव-वन्दना, ७ कल्याण-मन्दिर भाषा, ८. वेदनिर्णयपचाशिका, ९ मारगन-विद्या ये ९ पुस्तके इनकी और भी कही जाती है। इनकी कविता का उदाहरण—

काया सो विचार प्रीति, माया ही मे हार जीति,
लिए हठ रीति जैसे हारिल की लकरी।
चगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्योही पायँ गाड़े पै न छाडै टेक पकरी॥
मोह की मरोर सो मरम को न ठौर पावै,
धावै चहुँ ओर ज्यों बढावै जाल माकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि, झूठ के झरोखे भूलि,
फूलि फिरै ममता जजीरन सों जकरी॥

नरोत्तमदास—इनका रचना-काल स० १६०२ के लगभग है। वे सीतापुर ज़िले के बाडी नामक कस्बे के निवासी थे। इनकी जाति तथा जन्म और मृत्यु-तिथि का उल्लेख नही मिला। शिवसिंह-सरोज मे इनका स० १६०२ में वर्तमान रहना लिखा है। यही इनका रचना-काल है।

इनकी केवल एक छोटी-सी रचना 'सुदामा-चरित' उपलब्ध है। पर ये इसी एक रचना ही से अमर और हिन्दी के बडे-बडे कवियो की कोटि मे विराजमान हो गये है। यद्यपि सुदामा-चरित छोटा-सा काव्य है किन्तु इसकी रचना बहुत ही सरस, प्रौढ तथा हृदयग्राहिणी है और कवि की भावुकता का परिचय देती है। दरिद्रता-गरीबी का जैसा सुन्दर सजीव चित्र नरोत्तमदास ने इस काव्य में अकित किया है वैसा अन्य कोई

भी कवि नही कर पाया। वर्णन की विशदता और भावो की उत्कृष्टता के साथ ही साथ भाषा भी अत्यन्त परिमार्जित, प्राजल एव सुव्यवस्थित है। इस प्रकार भव्य भावो के साथ-साथ कोमल-कान्त-पदावली सोने मे सुगन्धि का काम कर रही है। इनकी कविताओ मे शब्दाडम्बर या अनावश्यक भरती का एक भी शब्द नही है। भाषा और भावो की ऐसी उत्कृष्टता इनके परवर्ती रीतिकालीन अन्य कवियो मे बहुत ही कम देखने मे आती है। इन्ही गुणो के कारण पाठक सुदामा-चरित पढते-पढते आत्म-विभोर-सा हो जाता है। 'ध्रुव-चरित' भी इनकी ही रचना कही जाती है। इनकी रचना का नमूना देखिए —

सीस पगा न झगा तन पै प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु पाय उपानह की नहि सामा ॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल के धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ॥
ऐसे बेहाल बेवाइन सौ पग कटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये न इतै न कितै दिन खोये।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयौ नहि नैनन के जल सो पग धोये ॥

केशव—इनका जन्म स० १६१२ और मृत्यु स० १६७३ मे हुई। ये शीघ्रबोध (सस्कृत) नामक परम प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ के रचयिता प काशीनाथ के पुत्र थे तथा ओरछा-नरेश महाराजा रामसिह के भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रय मे रहते और उनके मन्त्र-गुरु एव मन्त्री भी थे। इन्होने इन्द्रजीतसिह पर अकबर द्वारा किये हुए एक करोड रु० जुर्माने को माफ करा दिया था। ये काव्य मे अलकार का स्थान मुख्य मानने वाले चमत्कारवादी कवि थे। जैसा कि इन्होने स्वय कहा है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई कविता, बनिता, मित्त ॥

केशव कवि तथा आचार्य भी थे। इन्होने सस्कृत-साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाडित्य व रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है। इनके सवादो मे पात्रो के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यजना बडी प्रभावपूर्ण और हृदयहारिणी हुई है। वाक्पटुता और राजनैतिक दावपेच का आभास भी प्रभावोत्पादक है। इनके रावण-अगद-सवाद, लव-कुश-सवाद तथा युद्ध-वर्णन एक दृष्टि से तो तुलसी से भी बढकर

है। इनकी अनेक कविताएँ तत्काल समझ मे नही आती उनके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पडती है। किन्तु जितना ही अधिक विचार किया जाता है उतनी ही मिठास बढती जाती है, इसमे कुछ सन्देह नही। इनकी रामचन्द्रिका एक कलात्मक प्रबन्ध-काव्य है जिसमे विभिन्न छन्दो मे रामकथा कही गई है। जनसामान्य मे इसका प्रचार भले ही 'मानस' के समान नही हो पाया तथापि विद्वत्ता व पाडित्य की दृष्टि से इसका पर्याप्त आदर हुआ है ।

'मनुष्य-जीवन के अन्दर तो केशव की अन्तर्दृष्टि कुछ दिखाई भी देती है पर प्रकृति के जितने वर्णन उन्होने किये है वे प्रकृति-निरीक्षण का नाममात्र को परिचय नही देते। क्लिष्टता की दृष्टि से केशव की कविवर मिल्टन के साथ तुलना की जाती है परन्तु यह मिल्टन पर सरासर अन्याय है। मिल्टन के साथ केशव की इतनी ही समानता है कि उन्होन भी प्रकृति का परिचय कवि-परम्परा से पाया है। मिल्टन लावा पक्षी को खिडकी पर ला बैठाते है तो ये कही बिहार की तरफ विश्वामित्र के तपोवन मे—

एला ललित लवग सग पुगी फल सोहैं ।

का वर्णन कर डालते है। प्रकृति के सौदर्य से उनका हृदय द्रवीभूत नही होता। उनके हृदय का वह विस्तार नही जो प्रकृति मे भी मनुष्य के सुख-दु ख के लिए सहानुभूति ढूढ सकता है, जीवन का स्पन्दन देख सकता है, परमात्मा के अन्तर्हित स्वरूप का आभास पा सकता है। इनके लिए फूल निरुद्देश्य फूलते है, नदिया नि स्वार्थ बहती है, वायु निरर्थक चलती है। केशव की पुस्तके पढते चले जाइए सारा वर्णन चमत्कार से परिपूर्ण मिलेगा। इनकी कल्पना मस्तिष्क की उपज-मात्र है हृदय-जात नही।

हा, केशवदास कला मे प्रवीण है। इनकी बुद्धि प्रखर है और दरबारी होने के कारण उनका वाग्वैदग्ध्य ऊचे दर्जे का है। रामचन्द्रिका सुन्दर सजीव वार्तालापो से भरी पडी है। व्यजनाएँ कई स्थानो पर खरी है पर वे वस्तु या अलकार की है भाव की नही।[1]

भाषा इनकी काव्योपयोगी नही है। प्रसाद-गुण का इनमे अभाव है। परन्तु इनके नाम और करामात का ऐसा जादू है कि इन्हे महाकवि केशवदास कहे बिना जी नही मानता ।

---

[1] हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास

केशव बडे रसिक और प्रेमी प्राणी थे। इन्द्रजीतसिंह की सभा की पातुर 'प्रवीणराय' के प्रति इनका प्रेम प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक बार पनघट पर पानी भरने आई हुईं कुछ युवतियो ने बूढा होने के कारण इन्हे 'बाबाजी' कहकर सम्बोधित कर दिया। इस पर इनके हृदय से निम्न निराशा-भरे उद्‌गार निकल पडे—

केसव केसनि अस करी बैरिहु जस न कराहि।
चंद्रवदनि मृगलोचनी 'बाबा' कहि कहि जाहि ॥

यह भी प्रसिद्ध है कि बीरबल ने इन्हे निम्नलिखित एक कवित्त पर ही छ लाख रुपया दे दिया था।

पावक पछि पसू नग नाग, नदी नद लोग रच्यो दसचारी,
केशव देव अदेव रच्यो, नर देव रच्यो रचना न निवारी।
रचिकै नरनाह बली बलवीर, भयो कृतकृत्य महाव्रतधारी,
दै करतापन आपन ताहि, दियो करतार दुहुँ करतारी ॥

केशवदास को किसी ने 'प्रकृत कवि' भी कहा है किन्तु प्रमुख समालोचको की सम्मति मे वे प्रकृत नही प्रत्युत श्रमसाध्य कवि है। उन्होने अपने आपको आचार्य और कवि इन दोनो रूपो मे प्रकट कर दोनो मे से किसी एक के भी पूर्णरूप को प्राप्त न किया। हाँ, यदि वे हमारे समुख सर्वथा आचार्य के रूप मे ही उपस्थित होते तो सम्भवत अधिक सफलता प्राप्त कर पाते। रामचन्द्रिका को प्रबन्ध काव्य के रूप मे लिखते हुए भी ये उसमे प्रबन्ध-काव्योचित गुणो का समावेश न कर पाये। उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष आदि चमत्कारक अनेक अलकारो, छोटे से लेकर बडे से बडे तक नानाविध छन्दो के पाण्डित्यपूर्ण प्रयोगो या वर्णनो अथवा तार्किक अथच मार्मिक सवादो के सिवा 'रामचद्रिका' मे अन्य किसी वस्तु के दर्शन नही होते। रसार्द्रता, भावपक्ष या अतर्वृत्तियो का वहाँ चिन्ह भी नही है। इसलिए कह सकते है कि केशव ने कवि हृदय की अपेक्षा अपने पण्डिताऊपन को प्राय प्रकट किया है। वे कवि की अपेक्षा पण्डित ही प्रमुख रूप से कहे जाते है। रामचद्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञान-गीता, वीरसिहदेव-चरित, रतनबावनी, जहागीर-जस-चद्रिका ये इनकी सात रचनाएँ है। कविप्रिया और रसिकप्रिया मे अलकारो व रसो का विवेचन है, जिनके उदाहरण सुन्दर है। कविताओ के नमूने देखिए—

पडित पुत्र, सुधि पतिनी नु पतिव्रत प्रेम परायन भारी।
जानै सबै गुण, माने सबै जग, दान विधान दया उर धारी ॥

भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरे दानपाठ परवार है ।
सेनापति बचन की रचना बिचारि देखो,
दाता और सूम दोऊ कीन्हे एकसार है ॥

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो,
आई ऋतु पावस न पाई प्रेम-पतियाँ ॥
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी औ,
दरकी सुहागिन की छोह-भरी छतियाँ ॥
आई सुधि बर की, हिये मे अनि खरकी,
सुमिरि प्रान प्यारी वह प्रीतम की बतियाँ ।
बीती औधि आवन की लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ ॥

पुहकर कवि—इनका रचनाकाल स० १६७३ के लगभग माना जाता है। इनकी जन्मभूमि तो जिला मैनपुरी थी किन्तु बाद मे ये गुजरात मे जा रहे। किसी कारणवश जहाँगीर ने इन्हे आगरे मे कैद कर दिया जहाँ इन्होने 'रसरत्न' नामक ग्रथ में रम्भावती और सूरसेन की कल्पित प्रेमकथा लिखी। इस पर प्रसन्न होकर जहाँगीर ने इन्हे छोड दिया। शुक्लजी ने इसे शुद्ध भारतीय परम्परा पर लिखित एक-मात्र प्रेम-प्रबन्ध काव्य माना है।

सुन्दर—ये ग्वालियर निवासी पडित और शाहजहाँ के दरबारी कवि थे। इन्होने स० १६८८ मे 'सुन्दर शृगार' नामक नायिका-भेद का ग्रन्थ और 'सिंहासन-बत्तीसी' व 'बारहमासा' नामक दो अन्य ग्रन्थ लिखे थे।

इनके अतिरिक्त १ 'पचसहेली' नामक आख्यान के रचयिता राजस्थानी कवि छीहल (स० १५७५) २ 'हरि चरित्र' और 'भागवत-दशम-स्कन्ध-भाषा' के लेखक लालचदास (स० १५८५) ३. शत-प्रश्नोत्तरी के रचयिता अकबर के दरबारी शृगारिक कवि मनोहर (स० १६२०) ४ 'पद्मिनी-चरित्र' के लेखक मेवाडी कवि लालचन्द या लक्षोदय (स० १६८५) आदि अन्य कवि भी इसी काल के अन्तर्गत माने गये है।

अभ्यास

१. अकबरी दर्बार या मुगल शासनकाल का हिन्दी साहित्य पर किस रूप मे प्रभाव पडा और उसने साहित्य की श्रीवृद्धि मे कहॉ तक योग दिया ?

२. अकबर व जहाँगीर के शान्तिमय कलात्मक शासन-काल ही के कारण सूर और तुलसी सरीखे महाकवि प्रकट हुए, यह कथन कहॉ तक सत्य है ?

३. केशव को आप क्या मानते है कवि या आचार्य, उन्हे आप प्रकृत कवियो की कोटि मे गिनेगे या श्रमसाध्य कवियो की कोटि मे ?

४. सेनापति, बीरबल, कृपाराम, गग और नरोत्तमदास के साहित्य का सक्षिप्त परिचय दे।

५ भक्ति-काल मे किन-किन कवियो ने लक्षण-ग्रन्थ लिखे । इस काल ही मे रीति-परम्परा के प्रारम्भ हो जाने पर भी केशव या कृपाराम को भक्ति-काल मे क्यों रखा गया, उन्ही से रीतिकाल आरम्भ क्यो नही माना जाता ?

६. रहीम का जीवन-परिचय लिखकर उनके साहित्य का समालोचनात्मक विवरण दे।

ग्यारहवाँ अध्याय

भक्ति-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

निर्गुण और सगुण धारा

समता—निर्गुण और सगुण दोनो धाराओ मे पर्याप्त साम्य है। दोनों ही के प्रवर्तक भारतीय समाज मे भक्ति की भावनाएँ भरनेवाले है। दोनो ही ईश्वरोपासना को प्रमुखता देते है। दोनो ने ही अपना अधिकाश साहित्य जनसाधारण मे प्रचलित देशभाषाओ मे लिखा है। दोनो ही के प्रमुख साहित्यकार किसी-न-किसी सम्प्रदाय के प्रवर्तक या सत रहे है। दोनो ही ने तात्कालिक समाज को अपने साहित्य-सुधारस से पर्याप्त आप्लावित किया। इन दोनो प्रकार के साहित्य से जनता ने नवजीवन, नवीनोत्साह और अपूर्व स्फूर्ति प्राप्त की। इस प्रकार निर्गुण और सगुण साहित्य मे अनेक प्रकार की समता दिखाई जा सकती है।

विषमता—उक्त समताओ के साथ-साथ इनमे पारस्परिक विषमताएँ भी कम नही। एक कवि निर्गुण निराकार की महिमा का बखान करते है तो दूसरे सगुण साकार के सौदर्य सम्बन्धी साहित्य से रस का सचार कर रहे है। निर्गुण साहित्य कई अशो में विदेशी मुस्लिम और सूफी भावनाओ से प्रभावित है। सगण साहित्य शुद्ध भारतीय तत्वो पर आधारित है। निर्गुण साहित्य तीर्थ-व्रत-पूजा आदि क्रिया-कलापो का या तो खण्डन करता है या उनके प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करता है, किन्तु दूसरी ओर सगुण साहित्य एक प्रकार से इन्ही सब बातो पर आश्रित है। निर्गुण साहित्य का प्रधान लक्ष्य हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायो का समन्वय रहा है। किन्तु सगण साहित्य का मुख्य उद्देश्य भारतीय सस्कृति का पुन प्रचार है। सगुण-साहित्य की भाषा सस्कृतनिष्ठ शुद्ध हिन्दी (व्रज या अवधी) है, किन्तु निर्गुण साहित्य की भाषा आम बोलचाल की अवधी या खिचडी है। निर्गुण साहित्य दार्शनिक सिद्धान्तो, हठयोग की प्रक्रियाओ या प्रेमाख्यानो से परिपूर्ण है, तो इधर सगुण-साहित्य मानव जीवन की प्रेम, दया, वीरता, वात्सल्य आदि अनेक चित्तवृत्तियो का परिचायक व प्रवर्तक है। इसीलिए इसमे सरसता या कोमलता बहुत अधिक है। ज्ञानमार्गी साहित्य अपनी उपदेशात्मक शुष्कता के कारण, तथा प्रेममार्गी साहित्य एक अजनबी फारसी लिपी में लिखित होने के कारण, तथा भाषा मे प्रातीयता की पुट के होने से सामान्य भारतीय जनता के लिए वैसा परिचित और प्रीतिपात्र न बन पाया। वह केवल सतो, विशेषज्ञो

या परीक्षार्थियो तक ही सीमित रह गया। विपरीत इसके रहीम, रसखान, तुलसीदास आदि सगुणोपासक कवियो के रचनारत्न तो प्रत्येक हिन्दी प्रेमी के कण्ठहार बने हुए है। वे तो आबाल-वृद्ध साक्षर-निरक्षर सभी हिन्दी-भाषियो मे पर्याप्त प्रतिष्ठा पाये हुए है। इनमे सबसे बडा अन्तर यह है कि निर्गुणमार्गी दोनो शाखाएँ अद्वैत सिद्धान्तो की समर्थक है पर सगुण साहित्य शकराचार्य के अद्वैत के विरोध मे है। शुद्धाद्वैत हो या विशिष्टाद्वैत सभी के सभी ये सम्प्रदाय अद्वैत की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप ही प्रचलित प्रतीत होते है। इस प्रकार सगुण व निर्गुण दोनो साहित्यो मे भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से विषमताएँ स्पष्ट लक्षित होती है।

ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी साहित्य—इन दोनो साहित्यो मे भी समता और विषमता समान रूप से प्रतीत होती है। निर्गुणोपासक साहित्य की समताओ का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब इनकी पारस्परिक विषमताओ पर प्रकाश डाला जाता है।

ज्ञानमार्गी साहित्य अशत विदेशी सिद्धान्तो से समन्वित या सूफियो से प्रेरणा प्राप्त करते हुए भी मूलत भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से भारतीय रगरूप लिए हुए है। किन्तु प्रेममार्गी साहित्य मे भारतीय प्रभाव के रहते हुए भी मसनवी शैली और विदेशी सूफी तत्त्वो की प्रधानता है। ज्ञानमार्गियो ने अपने साहित्य मे वैष्णवो के अहिंसावाद, नाथो के योग के अगो (षट्चक्र, कुण्डलिनी, इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाडियो) तथा वज्रयानी सिद्धो के अलख को निरखने सम्बन्धी सिद्धान्तो का समन्वय करते हुए भी सर्वत्र स्पष्टत भारतीय ज्ञानमूलक अद्वैतवाद या वेदान्त को ही प्रधानता दी है। किन्तु सूफियो ने उक्त सभी मतो के तथ्यो को अपनाते हुए भी प्रेममूलक अद्वैत ही का प्रचार किया है। ज्ञानमार्गियो ने अपनी रचनाएँ 'सधुक्कडी' भाषा व उपदेशात्मक रूप मे लिखी है, और बीच-बीच मे 'उलटबासिया' जैसी अस्त-व्यस्त तथा व्यर्थ पाण्डिय को प्रकट करने वाली पहेलिया लिखकर अपनी बहुज्ञता और प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रेममार्गी कवियो ने अपने सरस साहित्य को प्रबन्धात्मक स्वरूप प्रदान कर वास्तविक अर्थो मे लोकोपकारक काव्यो की रचना की है। ज्ञानमार्गी साहित्य का सकलन प्राय भारतीय लिपियो मे ही हुआ, किन्तु प्रेममार्गी साहित्य प्रथम फारसी लिपि मे अकित किया गया था। प्रम को समान रूप से प्रधानता देते हुए भी ज्ञानमार्गियो ने ईश्वर को प्रीतम के रूप मे अपनाया। प्रेममार्गियो ने उसे प्रियतमा के रूप मे रिझाया। उनकी भाषा व्रज, खडी बोली, अवधी और पजाबी का विचित्र सम्मिश्रण-सा है। प्रेममार्गियो की भाषा निश्चित, सुसस्कृत प्रचलित व साहित्यिक अवधी है। ज्ञानमार्गी साहित्य ने अपने विभिन्न सम्प्रदायो के

रूप मे भारतीय समाज को प्रभावित किया, तो प्रेममार्गी साहित्य ने आरम्भ मे मुस्लिम जनता को और बाद मे साहित्यिक या समालोचक वर्ग को ही विशेष प्रभावित किया। इसीलिए साहित्य पर प्रेममार्गियो का और समाज पर ज्ञानमार्गियो का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। ज्ञानमार्गियो ने जहा अपने सत्य उपदेशो से समाज को सुसस्कृत करने का प्रयत्न किया वहाँ समाज उनकी कटुतथ्य-निरूपक खण्डन-मण्डनात्मक वाणियो से कुछ चिढ भी गया, किन्तु खण्डनादि की प्रवृत्तियो से परे रहने के कारण प्रेममार्गी साहित्य या तो जनता का प्रीतिपात्र या उपेक्षापात्र रहा। वह कभी समाज को चिढाने वाला प्रमाणित नही हुआ। प्रेममार्गी और ज्ञानमार्गी साहित्य की ये विषमताएँ है

राम-साहित्य और कृष्ण-साहित्य की तुलना—इनकी समताएँ पहले प्रदर्शित की जा चुकी है अत यहाँ केवल विषमताओ पर ही प्रकाश डाला जाता है। इन दोनो साहित्यो मे सर्वप्रथम व प्रमुख अन्तर यह है कि राम-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट स्रष्टाओ की पक्ति मे केवल एक तुलसीदास ही प्रतीत होते है किन्तु कृष्ण-भक्त कलाकारो मे सूरदास,नन्ददास,रसखान,मीराबाई आदि अनेक अपनी विशेष सत्ता व स्थिति वाले कवि लक्षित हो रहे है, जो अपने उपमान आप ही है। बात तो यह है कि राम-साहित्य मे हिन्दी-साहित्य का सूर्य (तुलसीदास) जगमगा रहा है। उसकी उपस्थिति मे और कोई ज्योति प्रकाशमान हो नही सकी। यू उसकी आरती के लिए भले ही कोई कितने दीप क्यो न जलाया करे, किन्तु इसके सिवा उनकी और आवश्यकता या उपयोगिता स्वीकार नही की जा सकती। इसीलिए राम-साहित्य मे प्राणचन्द, हृदयराम, केशव आदि दीपक की भाँति टिमटिमाते हुए इस साहित्यिक सूर्य (तुलसीदास) की मानो पूजा के लिए ही प्रस्तुत हो रहे है। उनकी उपस्थिति की अन्य कोई उपयोगिता प्रतीत नही होती। चूकि सूर्य दो हो नही सकते। और वह राम-साहित्य मे उदित हो रहा है, अत इधर कृष्ण-साहित्य के सौध मे चन्द्रमा, तारे, दीपक, आदि अनिवार्य अथच वाञ्छनीय तथा प्रिय प्रतीत होते है। अपने-अपने स्थान पर इन सभी की महत्ता स्पष्ट सिद्ध है। अस्तु।

रामभक्ति-साहित्य प्रबन्धात्मक रूप मे है, और कृष्णभक्ति-साहित्य मुक्तक गीतो के रूप मे। एक व्रज की कोमलकान्त पदावली से पूरित है, तो दूसरा अवधी भाषा की विशदता को प्रदर्शित कर रहा है। एक मे समाज-कल्याण या लोकसग्रह की भावनाएँ मुख्य है तो दूसरे साहित्य का परम लक्ष्य समाज मे सरसता का सचार करना है। राम-साहित्य दोहा, चौपाई, कवित, छप्पय, हरिगीतिका आदि विविध छन्दो मे निर्मित हुआ है, कृष्ण-साहित्य विविध रागो, गीतो और सवैयो मे ही

लिखा गया है। राम-साहित्य ने समाज को अत्यधिक प्रभावित, पुनर्जीवित, जागृत, अथच सगठित किया, कृष्ण-साहित्य ने आगामी साहित्य को नवीन प्रेरणाएँ, अलौकिक रूप व दिव्य रसात्मकता प्रदान कर उसे पर्याप्त प्रभावित किया। राम-साहित्य से समाज प्रबुद्ध व हिताहित की विवेक-भावनाओ से युक्त हो अपने प्राचीन हितपथ का पथिक बन गया, कृष्ण-साहित्य से उसने उल्लास व अन्तश्चेतना प्राप्त की। इस प्रकार राम व कृष्णभक्ति सम्बन्धी साहित्य मे साम्यमूलक विभिन्नताए भी अनेक है।

सूरदास और तुलसीदास

सूरदास कविता के सरलता तथा ऐन्द्रियता इन दोनो लक्षणो का तादात्म्य कर सयोगात्मक शृगार द्वारा मनुष्य की सरल, स्वाभाविक तथा रुचिर वृत्तियो के विकास और वियोगात्मक शृगार द्वारा उन वृत्तियो के सामयिक मलो का निरास करते हुए मनुष्य को प्रेम के सुरभित मार्ग मे चला मौलिक रूपेण तद्भिन्न श्याम मे विलीन करना चाहते थे। इसलिए उनकी कविता मे शृगार की सुषमा है और माधुर्य गुण की पराकाष्ठा है। उनके प्रत्येक शब्द मे प्रेम का पराग है, चाह की चमक है और उत्सुकता का सीत्कार है। सूर की कविता को पढकर पाठक लोकोत्तर प्रेम मे,आनन्द मे, आनन्दमयी वेदना मे मस्त हो जाता है।

दूसरी ओर तुलसीदास कविता को सरलता तथा ऐद्रियता मे ही न समाप्त कर उसका कविता के तृतीय लक्षण अर्थात् भावमयता मे पर्यवसान करते है। फलत जिस प्रकार उपवन मे फूले व फले पुष्पो तथा फलो को एक साथ देख गृध्नु बालक सुरभित पुष्पो को जल्दी-जल्दी समेट उत्सुकता के साथ फलो पर जा पहुँचता है और उनके आस्वादन मे मस्त हो जाता है उसी प्रकार भक्तप्रवर तुलसीदास परस्पर विरोधी भावो से उत्पन्न हुए जीवन-सघर्ष से प्रकट होने वाले जीवन-विकास को कविता का आदर्श ध्येय समझ उसकी ऐन्द्रियता पर रास्ते चलते थाडा-सा परन्तु अनोखा और अपूर्व-सा लिख जाते है। तुलसी आत्मा को तडपाते है,विषाद के प्रोन्नत तुग पर खडा कर नगा नचा देते है, परन्तु यह विषाद, यह वेदना प्रत्यक्षत प्रेम से नही प्रत्युत नियति के कुचित नर्त्तन से, दुर्दान्त दैव की वज्रमयी चपेटो से उत्पन्न होती है। तुलसी की शान्ति का प्रत्यक्ष मूल है—कैकयी की ईर्ष्या, दशरथ का क्रन्दन, भरत का विलाप, राम का वनवास, रावण का उन्माद, विभीषण का आत्मसघर्ष आदि आदि। रामायण आत्मा को प्रतीपी भावो की भट्टी मे गला उसके मल को स्वच्छ करती है, उसके प्रत्येक शब्द मे जीवन के अन्धड का भयकर कपन है। उसमे कैकयी और दशरथ का श्मशान-नृत्य है, शूर्पणखा का प्रेम-सग्राम है, राम-रावण का युद्ध है, विभीषण का

भ्रातृप्रेम तथा कर्त्तव्य की चक्की मे पिसना है। रामायण मे जीवन के अन्दर होने वाले भावो के क्रूर सघर्ष द्वारा परिपक्व हो कर यह आत्मा राम के प्रेम का अधिकारी होता है, सूरसागर मे वह अपनी रुचिर वृत्तियो के अनवरत उत्थान और पतन से इस ध्येय को प्राप्त करता है। तुलसी की कविता मे भावमयता अधिक है और सूर की कविता मे ऐन्द्रियता का प्राधान्य है।

वैयक्तिक विकास की दृष्टि से भावमयता तथा ऐन्द्रियता दोनो समान है। चैतन्य और चण्डीदास ने स्थूल ऐन्द्रियता को सूक्ष्म ऐन्द्रियता में परिणत कर आत्मिक विकास पाया था। शैक्सपीयर (Shakespeare) ने भाव-सघर्ष के द्वारा अपने आत्मा को विकसित किया था। 'भिन्नरुचिर्हि लोक' जैसी जिसकी बन आई वैसा ही उसने साध लिया। परन्तु लोकहित की दृष्टि से देखने पर ऐन्द्रियता की अपेक्षा भावमयता को ऊँचा स्थान देना होगा। भावसघर्ष मे ही धर्म का क्रियात्मक रूप विकास को प्राप्त होता है। जिस मनुष्य मे भावो का सघर्ष नही वह आत्मिक रुदन को भले ही प्राप्त कर ले, उससे आत्मिक बल कोसो दूर रहता है। जो आत्मा भाव-सघर्ष पर विजय प्राप्त करके आगे बढ जाता है उसके लिए विरति तथा तज्जन्य राम-भक्ति सुलभ हो जाती है। वेद कहता है 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा' श्रान्ति के बिना परमात्मदेव जीव का हाथ नही उभारते। परन्तु जो लोग भाव-सघर्ष के जाल मे फस सत्ता के चरम ध्येय को भुला देते है उनका हेमलेट (Hamlet) ब्रूटस (Brutus) तथा मेक्बेथ (Macbeth) की भाँति सहार हो जाता है।

भाव-सघर्ष के द्वारा आत्म-विकास कैसे सम्भव है, इस बात को तुलसी ने केकैयी-दशरथ, लक्ष्मण-शूर्पणखा, रावण-विभीषण, सीता और रावण आदि के चरित्र-चित्रण द्वारा खूब समझाया है। तुलसी के मत मे कोई जीव निष्कलक नही, कोई प्रतिमा पूर्ण नही, क्योकि सूक्ष्मतया देखने पर पूर्णता ही अपूर्णता का रूपान्तर ठहरती है। इसी तत्त्व को मन मे रख कर तुलसी ने राम के हाथो बालि को ताड की आड मे मरवाया है, सीता के मन मे हठ का बीज बो उसके द्वारा लक्ष्मण को राम की खोज मे भिजवाया है। दूसरी ओर सुग्रीव की वधू पर आसक्त हुआ बालि राम के हाथो युद्धक्षेत्र में मारा जाकर भाव-सघर्ष के द्वारा पूतात्मा बन जाता है और सीधा स्वर्गलोक को पहुँच जाता है। इस प्रकार पाप और पुण्य का, भलाई और बुराई का रामायण में अपूर्व समन्वय है।

अभ्यास

१. निर्गुण और सगुण साहित्य की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए स्पष्ट कीजिए कि इनमे से किसने समाज को अधिक उपकृत किया ?

२. भाषा, विषय, शैली व सिद्धान्तो के आधार पर प्रेममार्गी व ज्ञान-मार्गी साहित्य की तुलनात्मक समालोचना करते हुए बतायँ कि परवर्त्ती साहित्य पर किसका प्रभाव अधिक पडा ?

३. राम-साहित्य और कृष्ण-साहित्य का पारस्परिक साम्य और वैषम्य दिखाकर उनकी गुण-दोष-विवेचनात्मक तुलना करे ।

४. भक्ति-साहित्य की चारो शाखाओ मे से आप किसके साहित्य को सर्व-श्रेष्ठ समझते है, व्यापक विचार प्रकट करे ।

५. धार्मिक साहित्य की चारो शाखाओ ने समाज को किस रूप में लाभ या हानि पहुँचाई । और इनकी प्रतिक्रियाएँ किस रूप में प्रकट हुईं, सप्रमाण सिद्ध करे ।

६. भक्ति-साहित्य की चारो शाखाओ के प्रतिनिधि-कवियो का परिचय दें ।

७. कबीर और जायसी तथा सूर और तुलसी के साहित्य की तुलनात्मक समीक्षा करे ।

उत्तर-मध्यकाल—रीतिकाल

(सवत् १७००—१९०० तक)

बारहवाँ अध्याय

रीति-काल की सामयिक परिस्थितियाँ

हिन्दी मे अब तक कबीर की 'पदावली', तुलसी का 'मानस', सूर का 'सागर', आदि सहस्रो साहित्य-ग्रन्थ या लक्ष्यग्रन्थ निर्मित हो चुके थे। अनेको कुशल कलाकारो ने काव्य-कानन को स्वकीय कविता-कुसुमो से अतिकलित और कुसुमित बना दिया था। किन्तु अभी तक हिन्दी मे लक्षण-ग्रन्थो का जन्म नही हो पाया था। लक्ष्यग्रन्थो के निर्मित हो जाने के पश्चात् ही लक्षण-ग्रन्थो के निर्माण का समय आता है। पहले वस्तु या रचना बन जाती है तदनन्तर उसके गुण-दोषो, विशेषताओ, विभागो, उपविभागो का विश्लेषण या वर्गीकरण किया जाता है। तदनुसार अब हिन्दी मे लक्षण-ग्रन्थो के निर्माण का आरम्भ होना सर्वथा स्वाभाविक था।

काव्य के कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, प्रबन्ध या खण्ड-काव्य आदि सभी भेदो को सस्कृत मे साहित्य या काव्य कहते है और साहित्य के विवेचन करने वाले लक्षण-ग्रन्थो या शास्त्रो को 'साहित्य-शास्त्र' कहा जाता है। इन साहित्य-शास्त्रो मे अभिधा, लक्षणा, व्यजना आदि शब्द-शक्तियो तथा गुण, दोष, रस, अलकार आदि अन्यान्य काव्य के अगोपागो का विवेचन रहता है। इसलिए इन साहित्य-शास्त्रो या लक्षण-ग्रन्थो को 'काव्याग-निरूपक' ग्रन्थ या 'रीतिग्रन्थ' भी कहा जाता है। इस काल मे इन्ही रीति-ग्रन्थो की प्राय प्रधानता रही। प्रत्येक लेखक ने किसी न किसी रीति-ग्रन्थ की रचना अवश्य की। यदि बिहारी सरीखे किसी एक-आध कवि ने प्रत्यक्षतया किसी रीति-ग्रन्थ का निर्माण न किया हो—कोई लक्षण-ग्रन्थ न बनाया हो—तो भी किसी न किसी अलकार, रस या भाव आदि का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करना ही उनकी रचना का एक-मात्र उद्देश्य था। जैसे कि—

> कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
> उहि खाये बौराय जग, वा पाये बौराय॥
> दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
> गाँठ परति दुर्जन हिये, नई दई यह रीति॥

बिहारी के उक्त पद्यो मे ऐश्वर्य की मादकता और प्रेम की विलक्षणता का भाव गौण तथा 'यमक' और 'असगति' अलकारो का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करने का भाव मुख्य लक्षित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के अधिकाश कवि लोग पहले यह सोच लेते थे कि मुझे अमुक काव्याग का एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित करना है, और फिर उसके लिए अपनी कल्पना की कुलाचे भरते हुए कमनीय कलात्मक कविता लिखने बैठते थे ।

भाव और कला ये काव्य के दो पक्ष माने गये है । किसी कविता मे भावपक्ष तो किसी मे कलापक्ष प्रधान रहता है। रति, हास्य, शोक आदि मनोवेगो को तरगित करने वाली तथा मनोभावो के उद्दीप्त होने पर कवि के अन्तस्तल से स्वत प्रकट होने वाली रचना भाव-प्रधान कहलाती है । ऐसे काव्य का कलाकार किन्ही अलकारादिको के लिए नही प्रत्युत अपने अन्तर् के उद्गार प्रकट करने के लिए ही कुछ लिखता या कहता है । उसमे अपने आप स्वाभाविक रूप से अलकार आदि भी झलकने लग पडते है । उनके लिए वह श्रम नही करता ।

जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलक ।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क ।।

तुलसी की उक्त कविता मे अनुप्रास, व्यतिरेक आदि अनेक अलकार स्वत भासित हो रहे है । किन्तु उसका उद्देश्य इन अलकारो का उदाहरण उपस्थित करना नही प्रत्युत सीता के सौन्दर्य को स्पष्ट करना है । इस प्रकार सक्षेप मे कह सकते है कि उत्तर-मध्यकाल के आरम्भ होने से पूर्व जितनी भी कविताएँ हिन्दी में लिखी गईं, वे सब भाव-प्रधान रचनाएँ थी और इस रीतिकाल की रचनाएँ कला-प्रधान है । यह तो हुआ कलापक्ष और भावपक्ष का अन्तर । अब रस या विषय पर भी विचार कर लिया जाय । इस दृष्टि से देखने पर हमे पता चलता है कि इस समय का समाज प्रभु-प्रेम की पवित्र अक से निकल कर सुखोपभोग व विलासिता तथा प्रणय के प्रागण मे कलित-केलियाँ करने लग पडा था । मिर्ज़ा राजा जयशाह की विलासिता का एक नमूना पहले दिखाया जा चुका है । केशव के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह का सभा-भवन सर्वदा 'पातुरो' से अलकृत रहता था । यही स्थिति अन्य राजाओ की थी । महाराज शिवाजी, छत्रसाल तथा मेवाड के महाराणा आदि को छोडकर शेष सभी सामत-सर्दार तथा शासकवुन्द विलासिता या शृगार की शृखलाओ मे बुरी तरह से जकडे पडे थे । इस समय का मुगल दरबार भी विलासिता का आगार बना हुआ था। राजाओ के समान प्रजा भी पूरी तरह प्रणय के पक

मे फस रही थी। यहाँ तक कि पडितराज जगन्नाथ और आलम सरीखे विद्वान् कवि और ब्राह्मण अपनी मुस्लिम प्रेमिकाओ के लिए जाति व कुल की मर्यादा तक को तिलाजलि देते दिखाई देते है।

उधर कृष्ण-भक्त साहित्यकारो ने राधा-कृष्ण के जो प्रेम-गीत गाये वे क्रमश लौकिक प्रेमी-प्रेमिकाओ की प्रणय-लीलाओ के रूप मे परिणत होने लगे। कृष्ण-प्रेम का उक्त पावन प्रवाह इस काल मे आकर पकिलरूप मे परिवर्तित हो गया। स० १७०० से समाज व साहित्य की ऐसी ही स्थिति हो रही थी। तदनुसार ही इस काल का साहित्य भी रस या विषय की दृष्टि से शृगार और वीर-प्रधान, तथा रचना-शैली की दृष्टि से कला या रीति-परम्परा की प्रधानता लिए हुए निर्मित होने लगा। इसी कारण इस काल को 'रीति-काल' या 'कला-काल' का नाम दिया गया है।

इस साहित्य की विशेषताएँ

शृगार-काल का साहित्य भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से अपने पूर्ववर्ती साहित्य से सर्वथा विशिष्ट व विभिन्न दिखाई देता है। सस्कृत मे लक्षण-ग्रन्थो के निर्माता 'आचार्य' तथा काव्य या लक्ष्य-ग्रन्थो के निर्माता 'कवि' यह दोनो विभिन्न श्रेणियो के व्यक्ति थे। इन कवि और आचार्यों के कार्यक्षेत्र सर्वथा पृथक थे। आचार्य अपने लक्षण-ग्रन्थो मे अलकारादिको के लक्षण तो अपने देते थे किन्तु उनके उदाहरण अन्य कवियो की रचनाओ से उपस्थित करते थे। आचार्य स्वय कविता बना कर उदाहरण देने का कभी प्रयत्न नही करता। ऐसा करने से काव्यागो का विवेचन नित्य नवीन रूप से होता रहा। सदा नई-नई उद्भावनाएँ और नये-नये सिद्धान्त प्रकट किये जाने लगे। एक ही 'ध्वनि' विषय को लेकर बहुत कुछ विचार किया गया। अनेक ग्रन्थ और निबन्ध लिख डाले गये। अलकारो आदि की सख्या में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। इस प्रकार सस्कृत के काव्य और काव्याग-निरूपक ग्रन्थ दोनो ही अपने-अपने रूप मे परिपूर्ण अथच परिपुष्ट होते गये। किन्तु इस काल के हिन्दी-साहित्य की दशा बडी विलक्षण दिखाई देती है। यहाँ प्राय सभी आचार्य और सभी कवि है। इसका यह अर्थ है कि न कोई पूरा कवि है और न कोई पूर्ण आचार्य। प्रत्येक कलाकार ने कोई-न-कोई अलकारादि सम्बन्धी ग्रन्थ अवश्य बनाया और विशेषता यह है कि उनके उदाहरण भी स्वनिर्मित ही दिये। यहाँ तक कि भूषण सरीखा, राष्ट्रीय और वीर कवि भी अपने समय की परिस्थितियो के प्रभाव में पडकर अपनी प्रतिभा का पूर्ण उपयोग न कर पाया। यदि उनका 'शिवराजभूषण' ग्रन्थ अलकारो के लक्षणोदाहरणो के रूप मे न लिखा जाकर प्रबन्ध-

काव्य के रूप मे लिखा जाता तो वह आज अवश्य ही अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर लेता। अत कह सकते है कि आचार्य और कवि के इस सामजस्य का साहित्य पर कोई सुप्रभाव नही हुआ। काव्यागो का सम्यक् विवेचन बिल्कुल ही न हो पाया सभी लोग पद्यो मे अलकारो के अधूरे और टूटे-फूटे लक्षण देकर कविकर्म या उदाहरण देने के लिए प्रस्तुत हो जाते। गद्य मे लिखने की परिपाटी न होने के कारण पद्य मे काव्य के विभिन्न अगो पर सम्यक् विचार प्राय असभव हो गया। इसलिए रीतिकाल के साहित्य से शब्द-शक्तियो की सागोपाग समीक्षा की आशा जाती रही। ऐसी स्थिति मे दृश्यकाव्यो का विकास तो भला हो ही कैसे सकता था। रसो मे भी केवल शृगार और वीर प्रमुखता ले बैठे। वत्सल, हास्य, करुण और शान्त के तो क्वचित् ही दर्शन होते है। प्रबन्धकाव्य और मुक्तक-काव्यो मे से मुक्तक ही मुख्य थे। प्रबन्ध तो बडी कठिनता से दो-चार ही लिखे गये होगे। उनमे से उत्कृष्ट तो सभवत एक-आध ही होगा। विषयो का पिष्ट-पेषण इस साहित्य की एक विशेषता है। मौलिक भावनाएँ नाम-मात्र को रह गई थी। इस काल की भाषा भी अव्यवस्थित हो गई। सुसस्कृत, नियमित और व्यवस्थित हो जाने के स्थान पर वह अस्त-व्यस्त और अनिश्चित-सी थी। उसमें अरबी, फारसी और तुर्की शब्द भी यथेष्ट रूप मे प्रयुक्त होने लगे। व्रज, अवधी और खडी बोली का समिश्रण साधारण-सी बात थी। अत कह सकते है कि व्रजभाषा का साहित्य सूर के साथ अपने प्रकर्ष पर पहुँच कर प्राकृतिक नियम के अनुसार शृगार का बाना धार एक प्रकार से पतनोन्मुख-सा हो चला था।

इधर औरगजेब के क्रूर व आतंकमय शासन ने सम्राट् अकबर से चले आ रहे भारतीय प्रशान्त वातावरण को विक्षुब्ध कर दिया। औरग रूपी धूमकेतु ने उदित होकर भारत की शान्त परिस्थितियो में अकथनीय उथल-पुथल, उपद्रव और उत्पात उत्पन्न कर दिये। फलत कई सौ वर्षों से सुप्त वीरतात्मक प्रवृत्तियाँ पुन जागृत हो उठी। दक्षिण मे महाराज शिवाजी, पश्चिमोत्तर मे गुरु गोविन्दसिंह, राजस्थान मे महाराणा राजसिह और जसवन्तसिंह का सेनापति दुर्गादास तथा मध्यप्रदेश मे छत्रसाल आदि वीर औरगज़ेब से लोहा लेकर स्वदेश तथा स्वधर्म-रक्षा के लिए उठ खडे हुए। इस प्रकार एक ओर ये वीर अपने शिष्यो, सैनिको व प्रजा-जनो मे अपूर्व पराक्रम का सचार कर रहे थे, दूसरी ओर मुस्लिमोपाधि-लोलुप कुछ हिन्दू राजा शिवाजी जैसे हिन्दू शासको को मुगलो का गुलाम बनाने के लिए अग्रसर थे। इस प्रकार इस कला-काल में दो विरुद्ध प्रवृत्तियाँ साथ-साथ चलती दिखाई देती है। अत इस काल का साहित्य भी १ रीति परम्परा पर आधारित

श्रृगारिक साहित्य और २ राष्ट्र रक्षण की प्रवृत्तियो का परिचायक वीर-साहित्य इन दो मुख्य भागो में विभक्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नीति, हास्य और भक्ति आदि विविध विषयो का साहित्य भी इस काल मे निर्मित होता रहा। श्रृगारिक साहित्य १ रीति परम्परा पर आधारित तथा २ रीति परम्परा से मुक्त इन दो भागो मे बॉटा जा सकता है। और वीर-साहित्य भी उक्त रूढि पर आधारित तथा प्रबन्ध-काव्य इन दो रूपो मे प्राप्त होता है। नीचे के चित्र से उपर्युक्त विभाजन स्पष्ट हो जाता है—
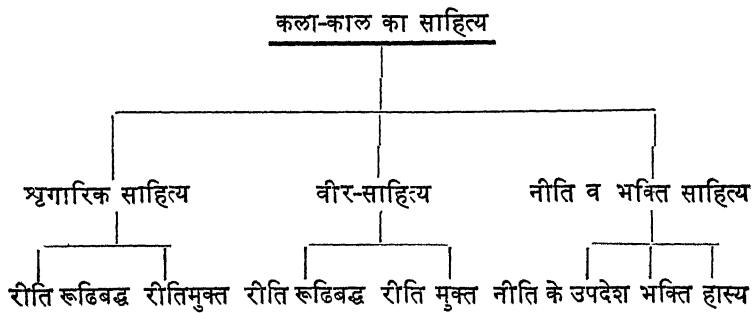
श्रृङ्गारिक कवि और आचार्य

चिन्तामणि त्रिपाठी—ये तिकवाँपुर के निवासी थे। इनका जन्म स० १६६६ के लगभग तथा मृत्युकाल अनिश्चित है। कहा जाता है कि यह भूषण और मतिराम के सगे भाई थे। और जटाशकर नामक इनका चौथा भाई और था। किन्तु यह विषय अभी विवादास्पद है।

इन्हे तात्कालिक मुगल सम्राट् शाहजहा और बाबू रुद्रसिह सोलकी ने पर्याप्त पुरस्कार दिये थे। इनकी भाषा सुन्दर और अलकृत है और वर्णन-शैली भी उत्कृष्ट है। इनके कवि-कल्पतरु, काव्य-विवेक, काव्य-प्रकाश, छन्द-विचार और रामायण नामक पाच ग्रन्थ प्राप्त हो चुके है। इनकी रचना का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

ऑखिन मूँदिबे के मिस आनि अचानक पीठ उरोज लगावै।
कैहूँ कैहूँ मुसकाय चितै ॲगराय अनूपम अग दिखावै॥
नाह छुई छल सों छतियाँ, हॅसि भौह चढाय अनद बढावै।
जोबन के मद मत्त तिया हित सो पति को नित चित्त चुरावै॥

जसवन्तसिह—ये जोधपुर के अत्यन्त पराक्रमी, देश-भक्त विद्वान् और साहित्य-रसिक शासक थे। इनका जन्म स० १६८३ मे और मृत्यु स० १७३५ मे काबुल मे अफगानो से लडते-लडते हुई थी। बात यह थी कि औरगजेब ने इन्हे हृदय से शिवाजी के साथ मिला हुआ जान कर काबुल-विजय के लिए भेज दिया, किन्तु पीछे से सहायता नही भेजी। जब औरगज़ेब ने इन्हे शाइस्ताखॉ के साथ शिवाजी से लडने के लिए भेजा था तब शिवाजी के सकेत से ये तो उनसे बिना लडे ही वापिस लौट आए और शिवाजी को समझा आए कि अभी पूना खाली कर दो और फिर अवसर पाते ही शाइस्ताखॉ को दबोच लिया जाय। इससे पूर्व भी जसवन्तसिह शाहजहॉ व दारा के पक्ष मे अनेक लडाइयॉ लड चुके थे। इसके पश्चात् इनकी पत्नी तथा सेनापति दुर्गादास ने अनेक बार औरगजेब के दात खट्टे किये। इन्होने स्वय अनेक ग्रन्थ लिखे और दूसरे विद्वानो से भी लिखवाये। हिन्दी-साहित्य मे केवल शुद्ध आचार्य के रूप मे प्रकट होने वाले ये एक ही व्यक्ति है। इनका 'भाषाभूषण' नामक अलकार-ग्रन्थ अत्युत्कृष्ट कहा जाता है। इसमे सस्कृत के ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' के आधार पर एक ही पद्य मे अलकार के लक्षण और उदाहरण दिये गये है। आधुनिक समालोचनात्मक युग से पूर्व छात्रो के लिए हिन्दी मे इससे श्रेष्ठ अन्य कोई अलकार-ग्रन्थ नही था। इनके निम्न ग्रन्थ प्राप्त हो चुके है—१ अपरोक्ष सिद्धान्त, २ अनुभव प्रकाश, ३ आनन्दविलास, ४ सिद्धान्त बोध, ५ सिद्धान्त सार, ६ प्रबोध चन्द्रोदय नाटक। ये सभी ग्रन्थ तत्त्वज्ञान सम्बन्धी है। इनके भाषा-भूषण की तीन टीकाएँ भी थोडे दिनो पीछे हो गई थी। इनकी रचना का एक उद्धरण नीचे दिया जाता है—

अत्युक्ति—अलकार अत्युक्ति यह बरनत अतिसय रूप।
जाचक तेरै दान ते भए कल्पतरु भूप॥
पर्य्यस्तापह्नुति—पर्यस्त जुगुन एक को और विषय आरोप।
होइ सुधाधर नाहि यह बदन सुधाधर ओप॥

बिहारी—इनका जन्म स० १६६० बसुआ गोविन्दपुर में और मृत्यु स० १७२० मथुरा मे हुई। सर्वोत्कृष्ट शृगारी कवि बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखड मे बीती। युवावस्था मे कुछ वर्षो तक ये जयपुर के राजा मिर्जा जयशाह के आश्रय मे रहते रहे। तदनन्तर अपने ससुराल मथुरा मे जा बसे। आचार्य केशव इनके कविता-गुरु थे। इनकी रचना परिमाण मे अत्यन्त ही स्वल्प—सात सौ दोहे-मात्र है। फिर भी जितनी अधिक ख्याति इनकी हुई है उतनी

अन्य किसी श्रृगारी कवि की नही । इनकी रचना की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि बिहारी-सतसई की अब तक बीसियो टीकाएँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ आदि हो चुकी है । तुलसी को छोड कर अन्य किसी भी कवि पर इतना अधिक साहित्य निर्मित नही हुआ । एक दृष्टि से यह तुलसी से भी बढ जाते है । तुलसी का स्वनिर्मित साहित्य ही इतना विशाल है कि उससे किसी पुस्तकालय का एक पूरा विभाग विभूषित हो सकता है किन्तु जैसा कि पहले कहा गया है बिहारी का स्वनिर्मित साहित्य केवल पचास पृष्ठ से अधिक नही है। अत यह मानना ही होगा कि इन्होने जो कुछ लिखा वह अत्यन्त चमत्कारपूर्ण, सरस और मार्मिक है ।

श्रृगार के अतिरिक्त नीति, भक्ति आदि अन्यान्य विषयो पर भी इन्होने बहुत सुन्दर लिखा है । वाग्वैदग्ध्य तो इनका अपना विशेष गुण है । मुक्तक रचना प्रबन्ध-काव्य की अपेक्षा क्लिष्ट मानी गई है । मुक्तक काव्य के लिए आवश्यक सभी गुण बिहारी की रचना मे चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हैं । सक्षेप मे कह सकते है कि किसी कवि का यश उसकी रचनाओ के परिमाण से नही प्रत्युत गुणो के हिसाब से होता है । बिहारी की रचना इस तथ्य का ज्वलन्त और सजीव प्रमाण है ।

इतना सब कुछ होने पर भी यह तो मानना ही होगा कि बिहारी ने अपनी रचनाओ के लिए अधिकाश विचार सस्कृत कविताओ से लिए है और उनकी व्यजना-शैली पर फारसी साहित्य का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है ।

आडे दै आले बसन जाडे हूँ की राति ।
साहस कै कै नेहबस सखी सबै ढिग जाति ।।

अर्थात् उस विरहिणी नायिका का विरह-ताप इतना तीव्र है कि जाडे की रातो में भी सखिया स्नेह के वश होकर ही अपने आगे गीले कपडे लगा-लगा कर उसके शरीर के समीप तक पहुँच पाती है । देखा ! कितनी भयकर विरह की लपटें निकल रही है । बिना गीले कपडे लगाए तो सखियाँ उस तक पहुँच भी न पाती और देखिए—

सीरे जतननि सिसिर ऋतु सहि बिरहिनि तन ताप ।
बसिबे को ग्रीषम दिननि पर्यो परोसिनि पाप ।।

यहाँ तो विरह-ताप के सम्बन्ध मे कवि की कल्पना की उडान या अत्युक्ति अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँच कर एक अस्वाभाविक और उपहासास्पद रूप ग्रहण कर बैठी हैं । इसका आशय यह है कि इस विरह-ताप मे झुलसती हुई नायिका के पास के घरों मे रहने वाले पडोसियो ने सर्दियो की राते तो अपने घरो

मे खस की टट्टिया और बरफ के ढेर आदि लगा कर अनेक शीतल उपचारो से उसके तन के ताप को किसी-न-किसी प्रकार सह लिया, किन्तु ग्रीष्म ऋतु के दिनो को तो वहाँ बिताना सर्वथा असभव हो गया।

बिहारी ने इस प्रकार विरह के साथ जो खिलवाड की है या और भी अनेक अत्युक्तिपूर्ण मज़मून बाधे हैं, कल्पना की इन अस्वाभाविक और अलौकिक उडानो के लिए इन्हे फारसी-साहित्य से ही प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। आर्या-सप्तशती और गाथा-सप्तशती नामक जिन सस्कृत और प्राकृत ग्रन्थो से इन्होने अधिकाश साहित्यिक सामग्री सग्रहीत की, इसमे कुछ सदेह नही कि उस सामग्री मे कही-कही ये अपनी उक्त उपजीव्य रचनाओ से भी बढ जाते है, किन्तु सर्वत्र ऐसा नही। अत श्रीयुत पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा की बिहारी की तुलनात्मक समालोचना को प्राय पक्षपात-पूर्ण ही मानना होगा फिर भी उसका अपना एक विशेष साहित्यिक मूल्य व स्थान है।

हमे तो बिहारी मे मानव-जीवन के साधारण और स्वाभाविक प्रणय-व्यापारो का सूक्ष्मतम निरीक्षण, कला-कुशलता और वाग्वैदग्ध्य ये तीन विशेष गुण लक्षित होते है, जिनके कारण वे अपने काल के अन्य कवियो की अपेक्षा असामान्य स्थिति पर पहुँच कर प्रतिनिधि-कवि के प्रतिष्ठित पद को प्राप्त कर सके। इनके लिए शुक्लजी ने स्पष्ट सुन्दर विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं.—"बिहारी की कृति का मूल्य जो बहुत अधिक आँका गया है उसे अधिकतर रचना की बारीकी या काव्यागो के सूक्ष्म विन्यास की निपुणता की ओर ही मुख्यत दृष्टि रखने वाले पारखियो के पक्ष से समझना चाहिए—उनके पक्ष से समझना चाहिए जो किसी हाथी-दात के टुकडे पर महीन बेल-बूटे देख घटो वाह-वाह किया करते हैं। पर जो हृदय के अन्तस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते है, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा मे कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते है उनका सतोष बिहारी से नही होता।" बिहारी के ये छोटे-छोटे से दोहे रस के छीटे नही प्रत्युत गागर मे भरे हुए रस के सागर है, जो कमनीय कामिनियो के कलित हावभावो और अनुभावो की लहरियो से निरन्तर तरगायित रहते है। इस दृष्टि से देखने पर बिहारी का अपने सम्बन्ध मे कहा गया निम्न दोहा—

सतसइया के दोहरे ज्यो नावक के तीर।
देखन मे छोटे लगे घाव करे गम्भीर॥

अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है।

बिहारी सतसई की अनेक टीकाएँ तथा आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है । उन सब मे जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की 'बिहारी रत्नाकर' नामक टीका अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण व सज-धज के साथ प्रकाशित हुई, जिसमे बिहारी की बारीकियो को खूब समझा तथा समझाया गया है ।

देखिए निम्न दोहो मे प्रणय-व्यापारो और विविध वृत्तियो की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

बतरस-लालच लाल कै मुरली धरी लुकाइ ।
सौह करै, भौहनि हँसै, देन कहै, नटि जाइ ।।

नासा मोरि, नचाइ दृग, करि कका की सौह ।
कॉटे सी कसकै हिए, गडी कॅटीली भौह ।।

ललन-चलन सुनि पलन मे अँसुवा झलके आइ ।
भई लखाइ न सखिन्ह हू झूठै ही जमुहाइ ।।

पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यो ई रहै आनन-ओप-उजास ।।

छाले परिबे के डरन सकै न हाथ छुवाइ ।
झिझिकति हियै गुलाब कै झवा झवावति पाइ ।।

इत आवति, चलि जात उत, चली छ सातिक हाथ ।
चढी हिडोरे सो रहै लगी उसासन साथ ।।

मतिराम—इनका जन्म स० १६७४ तिकवॉपुर मे और मृत्यु स० १७७३ मे हुई ।

मतिराम की गणना रीतिकाल के प्रमुख कवियो मे है । ये चिन्तामणि और भूषण के भाई कहे जाते है । ये बूँदी के महारावभावसिंह के आश्रय मे रहते रहे । मतिराम की रचना की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त स्वाभाविक है, न उसमे भावो की और न भाषा की ही कृत्रिमता है । जितने शब्द और वाक्य है वे सब भावव्यजना ही मे प्रयुक्त हुए है। ऐसी भाषा रीतिकालिक इने-गिने ही कवियो मे मिलती है ।

भावो को आकाश पर चढाने और दूर की कल्पना के फेर मे ये नही पडे। इनका सच्चा कवि-हृदय था। यदि ये रीतिकालीन परम्परा पर न चल कर अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार चल पाते तो और भी स्वाभाविक और सच्ची भाव विभूति दिखाते, इसमे कुछ सदेह नही। भारतीय जीवन से छाट कर लिए गये इनके मर्मस्पर्शी चित्रो मे जो भाव भरे है वे समान रूप से सबकी अनुभूति के अग है। इनका 'रसराज' परम मनोहर तथा अत्यन्त सरस ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनके ये ५ ग्रन्थ और है—ललित-ललाम, छन्दसार, साहित्यसार, लक्षणसार और मतिराम-सतसई। इनकी कविता का नमूना यहाँ दिया जाता है—

केलि कै राति अघाने नही दिन ही मे लला पुनि घात लगाई।
'प्यास लगी,कोउ पानी दै जाइयो',भीतर बैठि कै बात सुनाई॥
जेठी पठाई गई दुलही, हँसि हेरि हरै मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्ही, सुगेह की देहरि पै धरि आई॥
दोऊ अनद सो आँगन माँझ बिराजै असाढ की साँझ सुहाई।
प्यारी के बूझत और तिया को अचानक नाम लियो रसिकाई॥
आई उनै मुँह मे हँसी,कोहि तिया पुनि चाप सी भौह चढाई।
आँखिन ते गिरे आँसू के बूँद,सुहास गयो उडि हँस की नाई॥

देव—इनका जन्म स० १७३० इटावा मे और मृत्यु स० १८२० मे (सदिग्ध) हुई।

महाकवि देवदत्त, उपनाम, देव, इटावा के रहने वाले थे। इन्होने सबसे पहले १६ वें वर्ष के आरम्भ मे 'भावविलास' बना कर औरगजेब के बडे पुत्र, काव्यरसिक आज़मशाह को सुनाया। इसके बाद अष्टयाम की रचना की। ये दोनो ग्रथ शृगार रस मे अनूठे है। देवजी भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिह, राजा उदोतसिह आदि के आश्रय मे रहे, पर इन्हे भोगीलाल के अतिरिक्त इच्छानुकूल अन्य कोई आश्रयदाता न मिला। भारत के कई प्रान्तो मे घूमने से इन्हे बडा अनुभव हो गया था। इसी अनुभव के फलस्वरूप इन्होने 'जाति-विलास' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना की। आश्रयदाताओ के प्रति असतुष्ट रहने के कारण अन्त मे इन्हे कुछ विरक्ति-सी हो गई और यह शान्तरस मे उतर आये। इन्होने शान्तरस मे भी कमाल कर दिखाया। 'देव-माया-प्रपच नाटक' * 'वैराग्य-शतक' आदि ग्रन्थो को लिख कर यह सिद्ध कर

* देव-माया-प्रपच-नाटक को शुक्ल जी ने किसी अन्य 'देव' कवि का माना है।

दिया कि विशुद्ध शृङ्गार के उपासक शान्तरस को भी सफलता से अकित कर सकते है ।

देव की कविता शुद्ध व्रजभाषा मे है, पर कही-कही इन्होने शब्दो का तोड-मरोड बुरी तरह से किया है । इनकी कविता मे ओज, प्रसाद और माधुर्य खूब पाये जाते है । उक्तियाँ तो बडी ही अनूठी हैं । इनके लिखे हुए निम्न २७ ग्रन्थो का पता चला है—१ भावविलास, २ भवानीविलास, ३ जातिविलास, ४ रस विलास, ५ अष्टयाम, ६ नीतिशतक, ७ सुजानविनोद, ८ प्रेमतरग, ९ रागरत्नाकर, १० देवचरित्र, ११ प्रेमचन्द्रिका, १२ काव्य रसायन, १३ वृक्षविलास, १४ ब्रह्मदर्शन पच्चीसी, १५ तत्त्वदर्शन पच्चीसी, १६ रसानन्दलहरी, १७ जगद्दर्शन पच्चीसी, १८ आत्मदर्शन पच्चीसी, १९ पावस-विलास, २० प्रेमदीपिका, २१. राधिकाविलास, २२ नखशिख-प्रेमदर्पण, २३ सुमिल विनोद, २४ कुशलविलास, २५ सुखसागर-तरग, २६ देव-माया-प्रपच-नाटक, और २७ वैराग्यशतक ।

इनमे से अधिकाश ग्रन्थो मे एक-दूसरे ग्रन्थो से कविताएँ सकलित कर एक नये ग्रन्थ का नाम दे दिया गया है । इनकी कविता का नमूना देखिए—

सखी के सकोच, गुरु-सोच मृगलोचनि,
रिसानी पिय सो जो उन नेकु हँसि छुयो गात ।
देव वै सुभाय मुसकाय उठि गए, यहाँ,
सिसकि सिसकि निसि खोई, रोय पायो प्रात ।।
को जानै, री बीर ! बिनु बिरही बिरह-बिथा,
हाय हाय करि पछिताय न कछु सुहात ।
बड़े-बडे नैनन सो आँसू भरि-भरि ढारि,
गोरो-गोरो मुख ओरो सो बिलानो जात ।।

झहरि झहरि झीनी बूँद है परति मानो,
घहरि घहरि घटा घेरि है गगन में ।
आनि कह्यो स्याम मो सौ ‘चलौ झूलिबे को आज’,
फूली ना समानी भई ऐसी हौ मगन मे ।।
चाहत उठयोई, उठि गई सो निगोडी नीद,
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन में ।

आँख खोलि देखौ तौ न वन है, न घनस्याम,
वेई छाई बूदै मेरे आँसु ह्वै दृगन मे ॥

कुलपति मिश्र—ये आगरा निवासी माथुर चौबे और महाकवि बिहारी के भानजे थे। ये जयपुर-नरेश रामसिह के आश्रय मे रहते थे। इन्होने स० १७२७ मे रसरहस्य नामक लक्षण-ग्रन्थ लिखा जो प्रकाशित हो चुका है। इसमे कही-कही पर गद्य मे भी विवेचन किया गया है। इसके अधिकाश लक्षणोदाहरण काव्य-प्रकाश के आधार पर दिये गये है। उदाहरणो मे रामसिंह की प्रशसा भी यत्र-तत्र पाई जाती है। रसरहस्य के अतिरिक्त द्रोणपर्व, युक्ति तरगिणी, नखशिख व सगामसार ये चार पुस्तके और भी है।

सुखदेव मिश्र—ये कम्पिला के रहने वाले थे। असोरथ के राजा भगवन्तराय खीची और औरगजेब के मत्री फाजिलअलीशाह के आश्रय मे भी रहते थे। अन्तिम दिनो ये दौलतपुर (जिला रायबरेली) मे जा बसे थे। इनके कवित्व और आचार्यत्व दोनो ही से प्रौढ़ता प्रकट होती है। छन्दो का भी इन्होने अनुपम वर्णन किया है। वृत्तविचार, छन्दविचार, फाजिलअलीप्रकाश, रसार्णव, शृगारलता, अध्यात्मप्रकाश, दशरथराय ये इनकी सात रचनाएँ मिली है। इनका कविता-काल १७२० से १७६० तक है। कविता का एक नमूना देखिए—

ननद निनारी, सासु मायके सिधारी,
अहै रैनि अँधियारी भरी, सूझत न करु है।
पीतम को गौन कविराज न सोहात भौन,
दारुन बहत पौन, लाग्यो मेघ झरु है ॥
सग ना सहेली, बैस नवल अकेली,
तन परी तलबेली-महा, लाग्यो मैन-सरु है।
भई अधिरात, मेरो जियरा डरत,
जागु जागु रे बटोही ! यहाँ चोरन को डरु है ॥

कालीदास त्रिवेदी—ये अन्तर्वेद के रहने वाले थे और जम्मू के महाराजा जोगजीतसिंह के आश्रय मे भी कुछ दिन रहे थे। इनका रचनाकाल स० १७४५ से स० १७७६ तक है। कविता से ये एक अच्छे सहृदय रसिक कवि प्रतीत होते है। इनके पुत्र कवीन्द्र और पौत्र दूलह भी अच्छे कवि थे। वारवधूविनोद, जजीराबन्द,

राधा-माधव, बुध-मिलन-विनोद, इन तीन छोटी रचनाओ के अतिरिक्त इनका कालीदासहजारा नामक बहुत बडा सग्रह-ग्रन्थ पर्याप्त प्रसिद्ध है । इसमे २१२ कवियो के १००० पद्य सग्रहीत है । इस सग्रह से प्राचीन कवि तथा उनकी कविताओ के सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रकाश पडता है । इनकी एक कविता आगे दी जाती है—

चूमौ करकज मजु अमल अनूप तेरो,
रूप के निधान, कान्ह ! मो तन निहारि दै ।
कालिदास कहै मेरे पास हरै हेरि हेरि,
माथे धरि मुकुट, लकुट कर डारि दै ॥
कुँवर कन्हैया मुखचद की जुन्हैया, चारु,
लोचन-चकोरन की प्यासन निवारि दै ।
मेरे कर मेहँदी लगी है नदलाल प्यारे,
लट उरझी है नेकु बेसर सँभारि दै ॥

राम—इनका विशेष परिचय प्राप्त नही हो सका । इनका स० १७३० के लगभग लिखा हुआ 'हनुमान नाटक' प्राप्त हुआ है । 'कालीदासहजारा' में भी इनके कुछ कवित्त सग्रहीत है ।

नेवाज—ये अन्तर्वेद के रहने वाले थे । इन्होने स० १७३७ मे शकुन्तला नाटक का आख्यान दोहा, चौपाई, छप्पय, सवैया आदि छन्दो मे लिखा । इनकी भाषा प्राजल और भावानुसारिणी है । ये सयोग-शृगार का वर्णन करने वाले एक कुशल कवि माने जाते है । औरगज़ेब के पुत्र आजमशाह के यहाँ भी ये कुछ समय तक रहे थे । इनकी एक कविता देखिए—

आगे तौ कीन्ही लगालगी लोयन,कैसे छिपै अजहूँ जौ छिपावति
तू अनुराग को सोध कियो,ब्रज की बनिता सब यो ठहरावति ॥
कौन सँकोच रह्यो है नेवाज, जो तू तरसै, उनहू तरसावति ।
बावरी ! जोपै कलक लग्यो तौ निसक ह्वै क्यो नहि अक लगावति॥

अलीमुहिबखां (प्रीतम)—ये आगरे के रहने वाले सहृदय मुस्लिम कवि थे । इन्होने खटमल-बाईसी नामक पुस्तक मे खटमल को लेकर बडी ही मार्मिक हास्यपूर्ण कविताएँ लिखी, जिनका मूल आधार सस्कृत का यह श्लोक है—

कमला कमले शेते हरश्शेते हिमालये ।
क्षीराब्धौ च हरिश्शेते मन्ये मत्कुण-शकया ।।

प्राचीन हिन्दी-काव्य मे हास्य रस के ये एक ही लेखक है। इनकी उक्त रचना मे केवल २२ सवैये ही है पर अपनी विषयगत विचित्रता के कारण इनका भी हिन्दी-कवियो म अच्छा स्थान बन गया। एक कवित्त देखिए—

जगत के कारन करन चारौ वेदन के,
कमल मे बसे वै सुजान ज्ञान धरिकै ।।
पोषन अवनि, दुख-सोषन तिलोकन के,
सागर मे जाय सोए सेस सेज करिकै ।।
मदन जरायो जो, सँहारै दृष्टि ही मे सृष्टि,
बसे है पहार वेऊ भाजि हरवरिकै ।।
बिधि हरि हर, और इनते न कोऊ तेऊ,
खाट पै न सोवै खटमलन को डरिकै ।।

आलम और शेख—कहा जाता है कि आलम जाति के ब्राह्मण थे और औरगज़ेब के पुत्र मुअज्जम (सम्राट् बहादुरशाह) के आश्रय मे रहते थे। इनका रचनाकाल १७४० से १७६० तक माना जाता है। इन्होने एक बार शेख़ रगरेज़िन नामक एक मुसलमान कपडे रगनेवाली स्त्री को अपनी पगडी रगने के लिए दी। उसके पल्ले पर एक चिट बधी हुई चली गई, जिस पर निम्न आधा दोहा लिखा हुआ था—

'कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन'।

शेख़ रगरेजिन भी एक अच्छी प्रत्युत्पन्नमति कवयित्री थी। उसने उक्त आधे दोहे का उत्तरार्ध—

'कटि को कचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन'।।

लिख कर उस चिट सहित पगडी दे दी। बस इस काव्य-कुशलता पर आलम ऐसे

रीझे कि उसके प्रेम में मुसलमान होकर उससे विवाह भी कर लिया ।* शेख की प्रत्युत्पन्नमति या हाजिरजवाबी का एक और भी उदाहरण है । एक बार शाहजादा मुअज्जम ने हँसी मे पूछा कि 'क्या आलम की औरत आप ही है ?' शेख ने तत्काल उत्तर दिया कि 'हाँ जहाँपनाह, जहान की माँ मै ही हूँ' । शेख की कविताएँ भी सुन्दर है । 'आलम केलि' नामक पुस्तक मे आलम और शेख की रचनाएँ सकलित है । कुछ कवित्त सवैये एसे है जिनका कुछ अश आलम ने और कुछ अश शेख ने लिखा है । उक्त पुस्तक मे सगृहीत कविताओ के अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थो मे भी इनकी कविताएँ मिली है । ये उत्कृष्ट शृगारिक कवि है । प्रेम की पीर को प्रकट करने मे तो ये रसखान और घनानन्द से टक्कर लेते है । इनकी परिमार्जित प्राजल पदावली मे प्रेम की पीर परम रम्य रूप मे प्रकट हुई है । ये कल्पना की ऊँची और अस्वाभाविक उडानो के चक्कर मे न पडकर अपनी अनुभूतियो को बडी ही तन्मयता से कविता मे उतारते हैं । इन्होने रेखता या उर्दू भाषा मे भी कुछ कविताएँ लिखी थी । इनका एक कवित्त देखिए—

रात के उनीदे, अरसाते, मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सुहात है ।
तीखी तीखी कोरनि करोरि लेत काढे जीउ,
केते भए घायल औ केते तलफात है ।।
ज्यो-ज्यो लै सलिल चख 'सेख' धौवै बारबार,
त्यो-त्यो बल बु दन के बार झुकि जात है ।
कैबर के भाले, कैधो नाहर नहनवाले,
लोहू के पियासे कहूँ पानी ते अघात है ?

श्रीधर या मुरलीधर—इनका जन्म स० १७३७ मे प्रयाग मे हुआ था । इनके 'जगनामा' काव्य मे फर्रुखसियर और जहाँदार के युद्ध का वर्णन है ।

---

* श्री डा० सरनदास भनोत ने आलम की 'स्याम सनेही' नामक एक अज्ञात पुस्तक का सम्पादन कर प्रकाशित करवाया है । इसकी भूमिका मे आपने प्रबल प्रमाणो से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सम्राट् अकबर का समकालीन 'माधवानल काम कँदला' का लेखक आलम और आलम केली के रचयिता आलम ये दोनो एक ही हैं तथा आलम के ब्राह्मण होने व शेख रगरेजिन के साथ विवाह की कथा कल्पित है ।

सूरतिमिश्र—इनका रचनाकाल स० १७६६ से १७९४ तक है। ये आगरे के रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनकी लिखी हुई बिहारी सतसई, कविप्रया और रसिक-प्रिया की टीकाओ से इनका व्यापक पाडित्य प्रकट होता है। इनके अतिरिक्त 'वैतालपचविशति' का ब्रज-भाषा-गद्य मे अनुवाद, अलकार-माला, रस-रत्नमाला, सरस रस, रस-ग्राहक-चन्द्रिका, नखशिख, काव्य-सिद्धान्त तथा रस-रत्नाकर नामक आठ ग्रन्थ भी मिले है। इनकी कविता का नमूना देखिए—

तेरे ये कपोल बाल अति ही रसाल,
मन जिनकी सदाई उपमा विचारियत है।
कोई न समान जाहि कीजै उपमान,
अरु बापुरे मधूकन के देह जारियत है॥
नेकु दरपन समता की चाह करी कहूँ,
भये अपराधी ऐसी चित्त धारियत है।
'सूरति' सो याही ते जगत बीच आज लौ,
उनके बदन पर छार डारियत है॥

उदयनाथ (कवीन्द्र)—ये कालीदास त्रिवेदी के पुत्र अन्तर्वेद के निवासी थे। स० १७३६ मे उत्पन्न हुए थे। रस-चन्द्रोदय, विनोदचन्द्रिका, जोगलीला नामक इनकी तीन पुस्तके प्राप्त हुई है। इनकी कल्पना अपने विषय के अनुकूल और भाषा प्रसाद-गुण सम्पन्न है। नमूना देखिए—

शहर मंझार ही पहर एक लागि जैहै,
छोरे पै नगर के सराये है उतारे की।
कहत कविन्द मग माझ ही परेगी साझ,
खबर उडानी है बटोही द्वैक मारै की॥
घर के हमारे परदेश को सिधारे,
याते दया कै बिचारी हम रीति राहवारे की।
उतरौ नदी के तीर, बर के तरे ही तुम,
चौकौ जनि चौकि तहि पाहरू हमारे की॥

श्रीपति—ये कालपी के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनका रचनाकाल स० १७७७ से आरम्भ होता है। काव्य-सरोज, कवि-कल्पद्रुम, रस-सागर, अनुप्रास-विनोद, विक्रम-विलास, सरोज-कलिका, अलकार-गगा ये सात ग्रन्थ इनके बनाये मिलते है। इन्होने अन्य आचार्यों की अपेक्षा काव्यागो का निरूपण अधिक समीक्षात्मक दृष्टि से किया है। दोषो के उदाहरणो मे केशव की कविताएँ उद्धृत कर इन्होने अपनी समालोचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। आगे चल कर भिखारीदास जी ने अपने काव्य-निर्णय मे इनकी बहुत-सी बाते अपना ली। इनकी रचनाओ मे कृत्रिम शब्दाडम्बर का दोष नही है। भाषा सरस-साहित्यिक, सुललित और अलकृत है, अत रीतिकाल के उत्कृष्ट कवि व आचार्यो मे इनकी गणना की जा सकती है। इनकी रचना का एक नमूना देखिए—

घूँघट उदय गिरिवर ते निकसि रूप,
सुधा सो कलित छवि-कीरति बगारो है।
हसि डिठौना स्याम सुखसील बरषत,
करषत सोक, अति तिमिर विदारो है॥
श्रीपति विलोकि सौति-वारिज मलिन होत,
हरषि कुमुद फूलै नद को दुलारो है।
रजन मदन, तन गजन बिरह, बिवि,
खजन सहित चद वदन तिहारो है॥

कृष्ण कवि—प्रसिद्ध है कि ये बिहारी के पुत्र थे। इन्होने बिहारीसतसई की टीका स० १७८५ से १७९० के बीच मे लिखी। इस टीका मे काव्यागो का विवेचन भी किया गया है। टीका का नमूना देखिए—

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल॥
छबि सो फबि सीस किरीट बन्यो, रुचिसाल हियेबनमाल लसै।
कर कजहि मजु रली मुरली, कछनी कटि चारु प्रभा बरसै॥
कवि कृष्ण कहै लखि सुन्दर मूरति यो अभिलास हिए सरसै।
वह नदकिसोर बिहारी सदा यहि बानिक मो हिय माँझ बसै॥

बीर—ये दिल्ली निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। इन्होने स० १७७९ मे कृष्ण-चन्द्रिका नामक रस और नायिका-भेद का ग्रन्थ बनाया था।

गंजन—ये काशी निवासी ब्राह्मण थे। इन्होने अपने आश्रयदाता दिल्ली के बादशाह के वज़ीर कमरुद्दीनखाँ के नाम पर 'कमरुद्दीनखाँ-हुलास' नामक शृगार रस का ग्रन्थ स० १७८६ मे बनाया था। एक कवित्त देखिए—

मीना के महल जरफाब दर परदा है,
हलबी फनूसन मे रोशनी चिराग की।
गुलगुली गिलम गरक आब पग होत,
जहाँ बिछी मसनद लालन के दाग की॥
केती महताब मुखी खचित जवाहरिन,
गजन सुकवि कहै बौरी अनुराग की।
एत मादु दौला कमरुद्दीनखाँ की मजलिस,
सिसिर मे ग्रीषम बनाई बड भाग की॥

भिखारीदास—ये प्रतापगढ के निकट ट्योगा गाँव के निवासी कायस्थ कृपालदास के पुत्र थे। इनका कविता-काल स० १७८५ से १८०७ तक माना जाता है। इन्होने प्रतापगढ-नरेश पृथ्वीपतिसिंह के भाई हिन्दुपतिसिह के आश्रय मे रह कर रस-साराश, छन्दोऽर्णव-पिंगल, काव्य-निर्णय, नाम-प्रकाश, विष्णुपुराण भाषा, छन्द-प्रकाश, शतरज-शतिका, अमर-प्रकाश आदि ग्रन्थो की रचना की। ये सामान्यतया अपने विषयो को स्पष्ट करने मे अधिक सफल हुए हैं और विषयो का विवेचन भी व्यापक है किन्तु गद्य का प्रचार न होने के कारण इनकी रचनाएँ भी रीतिकाल के अन्य आचार्यों के समकक्ष ही स्वीकार की गई है। उनमे कुछ विशेष नवीनता नही दिखाई देती और साथ ही इन्होने श्रीपति से बहुत-कुछ सामग्री ली है। ये रस-विवेचन, भाषा की स्वाभाविक सरसता आदि दृष्टियो से देव से उत्कृष्ट प्रतीत होते है। इन्होने कल्पना की ऊँची उडाने नही भरी है और प्रत्येक बात को बडे ही सीधे और स्वाभाविक ढग से कहा है। इनकी एक रचना देखिए—

अँखियाँ हमारी दई मारी सुधि बुधि हारी,
मोहू ते जु न्यारी दास रहै सब काल में।

कौन गहै ज्ञानै, काहि सौपत सयाने, कौन,
लोक ओक जानै, ये नही है निज हाल मे ।
प्रेम पगि रही, महामोह मे उमगि रही,
ठीक ठगि रही, लगि रही बनमाल मे ।
लाज को अँचै कै, कुलधरम पचै कै वृथा,
बधन सँचै कै भई मगन गोपाल मे ।।

भूपति (राजा गुरुदत्तसिह)—ये अमैठी के नरेश और बडे ही काव्यरसिक थे। ये वीर भी थे और कवि भी। इनकी बनाई हुई शृगार रस की सतसइ, कण्ठाभूषण और रसरत्नाकर नामक तीन पुस्तके कही जाती है । सतसई स० १७९१ में बनी थी । इनकी कविता देखिए—

घूँघट पट की आड दै हँसति जबै वह दार ।
ससि-मण्डल ते कढति छनि जनु पियूष की धार ।।
भये रसाल रसाल है भरे पुहुप मकरन्द ।
मान-सान तोरत तुरत भ्रमत भ्रमर मद-मन्द ।।

तोष निधि—यह इलाहाबाद जिले के सिगरौर (शृगवेरपुर) नामक ग्राम के निवासी थे। इनका रचनाकाल स० १७९१ के लगभग है। सुधानिधि, विनयशतक और नखशिख नामक इनके तीन ग्रन्थ हैं । इनकी रचना बडी सरस और अलकृत है। एक कविता देखिए—

भूषन-भूषित दूषन-हीन प्रवीन महारस मैं छबि छाई।
पूरी अनेक पदारथ ते जेहि मे परमारथ स्वारथ पाई ।।
औ उकतै मुकतै उलही कवि तोष-अनोष धरी चतुराई ।
होत सबै सुख की जनिता बनि आवति जौ बनिता कविताई ।।

दलपतिराय और वसीधर—ये दोनो कवि अहमदाबाद के निवासी थे। इन्होने स० १७९२ में महाराज जसवन्तसिह के भाषा-भूषण के आधार पर 'अलकार-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नाम से बनाया। इसमें दिये गये उदाहरणो मे अलकारो का समन्वय भी गद्य मे किया गया है, यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। कविता भी इनकी अच्छी है। नमूना देखिए—

अरुन हरौल नभ-मडल-मुलुक पर,
चढ्यो अक्क चक्कवै कि तानि के किरिन-कोर ।
आवत ही सॉवत नछत्र जो धाय धाय,
घोर घमसान करि काम आए ठौर ठौर ।
ससहर सेत भयो, सटक्यो सहमि ससि,
आमिल-उलूक जाय गिरे कदरन और ।
दुद देखि अरबिद-बदीखाने ते भगाने,
पायक पुलिद वै मलिद मकरद चौर ॥

सोमनाथ—ये भरतपुर-निवासी ब्राह्मण थे और भरतपुर के राजकुमार प्रतापसिह के आश्रय मे रहते थे । इन्होने अपने १७९४ में निर्मित रसपीयूष-निधि नामक रीतिग्रन्थ मे काव्यागो का व्यापक विवेचन किया है । इस दृष्टि से ये श्रीपति और भिखारीदास के समकक्ष कहे जाते है । कृष्ण-लीलावती-पचाध्यायी, सुजान विलास तथा माधव-विनोद नाटक नामक इनकी अन्य रचनाओ से इनकी परिपक्व प्रतिभा, कुशल-कल्पना व उत्कृष्ट काव्य-शक्ति का परिचय मिलता है । एक कविता नीचे दी जाती है—

दिसिविदिसन ते उमडि मढि लीनो नभ,
छाडि दीने धुरवा, जवासै-जूथ, जरिगे ।
डहडहे भए द्रुम रचक हवा के गुन,
कहूँ कहूँ मोरवा पुकारि मोद भरिगे ॥
रहि गये चातक जहॉ के तहॉ देखत ही,
सोमनाथ कहै बूँदा बूँदिहू न करिगे ।
सोर भयो घोर चारो ओर महिमडल मे,
'आए घन-आए घन' आयके उघरिगे ॥

रघुनाथ—ये काशी नरेश महाराज बरबिडसिंह के सभासद् थे । इन्होने स० १७९० से १८१० तक काव्य-कलाधर, रसिक-मोहन, जगत-मोहन, इश्क-महोत्सव, और बिहारी सतसइ की टीका नामक पॉच पुस्तके लिखी । रसिक-मोहन

मे दिये गये अलकारो के उदाहरणो के प्रत्येक पद मे वह अलकार विद्यमान है, यही इसकी विशेषता है। एक उदाहरण देखिए—

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन,
कहै रघुनाथ भरे चैनरस सिय रे।
दौरि आए भौर से करत गुनी गुनगान,
सिद्ध से सुजान सुखसागर सो नियरे ॥
सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरिया सी जागी चिता जनक के जियरे।
धनुष पै ठाढे राम रवि से लसत आजु,
भोर कैसे नखत नरिद भए पियरे ॥

दूलह—ये कालीदास त्रिवेदी के पौत्र और उक्त उदयनाथ के पुत्र थे। इनका रचनाकाल १८०० से १८२५ तक है। इनका कवि-कुल-कण्ठाभरण नामक अलकार-ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनकी रचना सरस, सुन्दर और स्वाभाविक होते हुए भी अनूठी कल्पनाओ से युक्त है। इसीलिए इनके सम्बन्ध मे किसी ने यहाँ तक कहा है कि "और बराती सकल कवि दूलह दूलह राय।"

कविता का एक नमूना देखिए—

धरी जब बॉही तब करी तुम 'नाही',
पॉय दियौ पलिकाही 'नाही नाही' कै सुहाई हौ।
बोलत मे नाही, पट खोलत मे नाही,
कवि दूलह उछाही लाख भॉतिन लहाई हौ ॥
चुबन मे नाही, परिरभन मे नाही,
सब आसन बिलासन मे नाही ठीक ठाई हौ ॥
मेलि गलबाही, केलि कीन्ही चितचाही, यह,
'हॉ' ते भली 'नाही' सो कहॉ ते सीखि आई हौ ॥

रसनिधि—ये दतिया के जमीदार थे। इनका वास्तविक नाम पृथ्वीसिह और रचनाकाल स० १७६० के लगभग था। इनके बनाये हुए रतनहजारा, अरिल्ल-

और मॉझो, जगन्नाथप्रसाद द्वारा सग्रहीत दोहो का सग्रह ये तीन सकलन प्राप्त हुए है। ये बिहारी के अनुकरण पर लिखने वाले शृगारी कवि थे और अपनी कविता मे फारसी पदावली का प्रयोग प्रचुरता से करते थे। इनके कुछ दोहे देखिए—

हित करियत यहि भाँति सो मिलियत है वही भाँत ।
छीर नीर तैं पूछि लै हित करिबे की बात ॥
रूप नगर बस मदन नृप दृग जासूस लगाई ।
नेहनि मन कौ भेद उन लीनो तुरत मगाइ ॥
सुन्दर जोबन रूप जो बसुधा मे न समाइ ।
दृग तारन तिल बिच तिन्है नेही धरत लुकाइ ॥
उडौ फिरत जो तूल सम जहाँ तहाँ बेकाम ।
ऐसे हरुये को धर्यो कहा जानि मन नाम ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की लखौ सनेही आइ ।
जुरे कहूँ टूटै कहूँ कहूँ गाँठि परि जाइ ॥

रसलीन—बिलग्राम-निवासी इस मुस्लिम कवि का पूरा नाम सय्यद गुलाम नबी था। इन्होने स० १७९४ मे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अग-दर्पण लिखी। इसमे उत्प्रेक्षा आदि अलकारो से युक्त अगो का अत्यन्त चमत्कृत वर्णन है। इनके दोहे इतने चमत्कृत है कि लोग उन्हे बिहारी का समझ बैठते है। अग-दर्पण के अतिरिक्त 'रस-प्रबोध' नामक छोटे से रीतिग्रन्थ मे रस, भाव, नायिका-भेद आदि का सुन्दर विवेचन किया है। इनकी रचनाओ मे उक्ति-वैचित्र्य की प्रमुखता है। कुछ दोहे देखिए—

अमी हलाहल, मद भरे सेत स्याम रतनार ।
जियत, मरत, झुकि-झुकि, परत, जेहि चितवहि इक बार॥
चख चलि स्रवन मिल्यो चहत, कच बढि छुवन छवानि ।
कटि निज दरब धर्यौ चहत, वक्षस्थल ने आनि ॥
रमनी मन पावत नही, लाज प्रीति को अत ।
दूहू ओर ऐंच्यो रहै, जिमि बिबि तिय को कत ॥

रसिक सुमति—इन्होने स० १७८५ के लगभग सस्कृत-ग्रन्थ कुवलयानद के आधार पर अलकार-चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ बनाया था। नमूना देखिए—

प्रत्यनीक अरि सो न बस, अरि हितूहि दुख देय।
रवि सो चलै न, कज की दीपति ससि हरि लेय ॥

कुमार मणिभट्ट—गोकुलग्राम निवासी इस कवि ने स० १८०३ के आसपास 'रसिक-रसाल' नामक सुन्दर रीति-ग्रन्थ की रचना की थी। इनकी कविता का उदाहरण देखे—

गावै बधू मधुरे सुरगीतन, प्रीतम सग न बाहिर आई।
छाई कुमार नई छिति मे छबि, मानो बिछाई नई दरियाई ॥
ऊँचे अटा चढि देखि चहूँ दिसि बोली यौ बाल गरो भरि आई।
कैसी करौ हहरे हियरा, हरि आए नही उलही हरियाई ॥

शम्भुनाथ मिश्र—इस नाम के तीन कवि हुए है। सबसे पहले कवि ने स० १८०६ मे रसतरगिणी, रस-कल्लोल और अलकार-दीपक नामक तीन ग्रन्थ असोथर के राजा भगवन्तराय खीची के आश्रय मे रह कर बनाये थे।

शिवसहायदास—जयपुरनिवासी इस कवि ने स० १८०९ मे शिव-चौपाई और लोकोक्ति-रसकौमुदी नामक ग्रन्थ बनाये। दूसरी पुस्तक मे कहावतो मे नायिका-भेदो का वर्णन किया गया है। कविता देखे—

करौ रुखाई नाहिन बाम। बेगहि लै आऊँ घनश्याम ॥
कहै पखानो भरि अनुराग। बाजी ताँत, कि बूझ्यो राग ॥
बोले निठुर पिया बिनु दोस। आपुहि तिय बैठी गेहि रोस ॥
कहै पखानो जेहि गहि मोन। बैल न कूद्यो कूदी मोन ॥

रूपसाहि—पन्नानिवासी उक्त कवि ने स० १८१३ मे रूपविलास नामक रीति-ग्रन्थ लिखा। इनकी कविता का नमूना देखे—

जगमगाति सारी जरी झलमल भूषन ज्योति।
भरी दुपहरी तिया की भेट पिया सो होति ॥
लालन बेगि चलो न क्यो? बिना तिहारे बाल।
मार मरोरनि सो मरति, करिए परसि निहाल ॥

ऋषिनाथ—आसनी-निवासी इस कवि ने काशीराज के मन्त्री सदानन्द के आश्रय मे रह कर स० १८३१ मे अलकारमणि-मजरी बनाई।

बैरीसाल—ये आसनी के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। इनका भाषाभरण नामक सुन्दर अलकार-ग्रन्थ स० १८२५ में लिखा गया था। इनके दोहे अत्यन्त सरस और अलकारो के उत्कृष्ट उदाहरण है। दो दोहे देखिए—

नहि कुरग नहि ससक यह, नहि कलक नहि पक।
बीस बिसै बिरहा दही गडी दीठि ससि अक॥
करत कोकनद मदहि रद तुव पद हर सुकुमार।
भए अरुन अति दबि मनो पायजेब के भार।

दत्त—कानपुर जिले के निवासी इस कवि ने अपनी स० १८३० मे निर्मित 'लालित्यलता' मे अलकारो के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये है। नमूना देखने ही योग्य है—

ग्रीषम मे तपे भीषम भानु, गई बनकुज सखीन की भूल सो।
घाम सो बामलता मुरझानी, बयार करै घनस्याम दुकूल सो॥
कपत यो प्रगट्यो तनस्वेद उरोजन दत्तजू ठोढी के मूल सों।
द्वै अरबिद-कलीन पै मानो गिरै मकरद गुलाब के फूल सो॥

रतन कवि—इन्होने अपने आश्रयदाता श्रीनगर (गढवाल)-नरेश फतहसाह के नाम पर फतेह-भूषण नामक स० १८३० मे अलकार-ग्रन्थ लिखा जिसके उदाहरणो मे उक्त नरेश के प्रशसात्मक पद भी पर्याप्त मात्रा मे है।

हरिनाथ—(नाथ) काशी-निवासी इस कवि ने स० १८२६ मे निर्मित अलकार-दर्पण नामक छोटे-से ग्रन्थ मे एक ही पद्य मे अलकारो के कई उदाहरण प्रस्तुत किये है। नमूना देखे—

तरुनी लसति प्रकास ते, मालति लसति सुबास।
गोरस गोरस देत नहि, गोरस चहति हुलास॥

मनिराम मिश्र—कन्नौज के रहने वाले इस कवि ने स० १८२९ मे छन्दछप्पनी और आनन्द-मगल नामक पुस्तको मे क्रमश छन्दो का सुन्दर विवेचन और भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद किया।

चन्दन—ये शाहजहाँपुर जिले के निवासी बन्दीजन थे और गौडराजा केसरीसिंह के आश्रय मे रहते थे। इनका रचनाकाल स० १८२० से १८५० तक है। शृगार-सागर, काव्याभरण, कल्लोल-तरगिणी, केसरी-प्रकाश, चन्दन-सतसइ, पथिक-बोध, पत्रिका-बोध नाममाला, नख-शिख, तत्त्व-सग्रह, सीतवसन्त, कृष्ण-काव्य और प्राज्ञ-विलास ये इनके तेरह ग्रन्थ प्राप्त है। हिन्दी के अतिरिक्त फारसी मे भी ये 'सन्दल' के नाम से अच्छी शायरी करते थे और अनेक विषयो के ज्ञाता थे। इनकी कविता का नमूना देखिए—

ब्रजवारी गँवारी दै जाने कहा, यह चातुरता न लुगायन मे।
पुनि बारिनि जानि अनारिनि है, रुचि एती न चदन नायन मे।
छबि रग सुरग के बिदु बने, लगै इद्रबधू लघुतायन मे।
चित जो चहैदी चकि सी रहैदी, केहि दी मेहदी इन पायन मे।

देवकीनन्दन—ये कन्नौज के निकटवर्ती मकरद नगर के निवासी थे। इनका रचनाकाल स० १८४० से १८६० तक माना जाता है। इन्होने अपने आश्रयदाता महन्त सफराजगिरि के नाम पर सफराज-चन्द्रिका और अवधूतसिंह के नाम पर अवधूत-भूषण नामक ग्रन्थ बनाये। शृगार-चरित्र भी इनकी एक तीसरी रचना है। नमूना देखिए—

बैठी रग रावटी मे हेरत पिया की बाट,
आए न बिहारी भई निपट अधीर मै।
देवकीनन्दन कहै स्याम घटा घिर आई,
जानि गति प्रलय की डरानी बहु, बीर! मै॥
सेज पै सदासिव की मूरति बनाय पूजी,
तीनि डर तीनहू की करी तदबीर मै।
पाखन मै सामरे, सुलाखन मे अखैबट,
ताखन मे लाखन की लिखी तसबीर मै॥

महाराज रामसिंह—इस नवलगढ-नरेश ने अलकार-दर्पण, रस-निवास और रसविनोद नामक ग्रन्थ स० १८३० से १८६० तक बनाये।

भानकवि—स० १८४५ मे रचित इनके 'नरेन्द्र-भूषण' मे वीर, भयानक, अद्भुत आदि अनेक रसात्मक उदाहरणो के द्वारा अलकारो का विवेचन किया गया है। नमूना देखिए—

घन से सघन स्याम, इदु पर छाय रहे,
बैठी तहॉ असित द्विरेफन की पॉति सी।
तिनके समीप तहॉ खजन की सी जोरी, लाल!
आरसी से अमल निहारे बहु भॉति सी॥
ताके ढिग अमल ललौहे बिविविद्रुम से,
फरकति ओप जामै मोतिन की काति सी।
भीतर ते कढति मधुर बीन कैसी धुनि,
सुनि करि भान परि कानन सुहाति सी॥

थान कवि—जिला रायबरेली के निवासी इस कवि ने अपने आश्रयदाता दलेलसिह के नाम पर 'दलेल-प्रकाश' की रचना की। इसमे छन्द, अलकार, सगीत आदि अनेक विषयो की खिचडी है। लघु अक्षरो की इनकी रचनाएँ सुन्दर बनी है। इनकी रचना का नमूना देखे—

कलुष - हरनि सुख - करनि सरनजन,
बरनि बरनि जस कहत धरनिधर।
कलिमल-कलित बलित-अघ खलगन,
लहत परमपद कुटिल कपटतर॥
मदन-कदन सुर-सदन बदन ससि,
अमल नवल द्युति भजन भगतवर।
सुरसरि! तव जल दरस परस करि,
सुर सरि सुभ गति लहत अधम नर॥

बेनी बन्दीजन—बैती ज़िला रायबरेली के निवासी इस कवि ने अपने आश्रय-दाता टिकैतराय के नाम पर 'टिकैतराय-प्रकाश' तथा रस-विलास नामक ग्रन्थ बनाये और अपने उपहास काव्य 'भडौवा-सग्रह' के कारण ये अत्यन्त लोकप्रिय और प्रसिद्ध हो गये है। इन्होने समकालीन कवियो तथा कजूस दानियो आदि की खूब

हसी उडाई है। कही किसी के छोटे आमो का तो कही किसी की रजाई का बडा ही हास्यपूर्ण वर्णन किया है। इनका रचनाकाल १८४९–१८८० तक माना जाता है। इनके आमो का नमूना देखिए—

चीटी की चलावै को ? मसा के मुख आपु जाय,
स्वास की पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाए मरु मरु कै निहारे जात,
अनु परमानु की समानता खगत है॥
बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौ बखान करौ,
मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है।
ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि,
जाके आगे सरसो सुमेर सो लगत है॥

बेनी प्रवीन—ये लखनऊ-निवासी वाजपेयी ब्राह्मण थे और लखनऊ के नवाब के मत्री के पुत्र नवल कृष्ण के आश्रय मे रहते थे। इनके नवरस-तरग, शृगारभूषण, तथा विठूर के महाराज नानाराव के नाम पर लिखित नानाराव-प्रकाश तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनके अन्तिम दिन आबू मे बीते थे। नवरस-तरग मे इनके उदाहरण अत्यन्त ललित और सरस बन पडे है। इसलिए इन्हे मतिराम और पद्माकर का समकक्ष कवि कहा गया है। इनका रचनाकाल १८६० से आरम्भ होता है। कविता का नमूना देखिए—

भोर ही न्योति गई ती तुम्है वह गोकुल गाँव की ग्वालिन गोरी।
आधिक राति लौ बेनी प्रवीन कहा ढिग राखि करि बरजोरी॥
आवे हँसि मोहि देखत लालन, भाल मे दीन्ही महावर घोरी।
एते बडे ब्रजमडल में न मिली कहुँ माँगेहु रचक रोरी॥
जान्यो न मै ललिता अलि ताहि जो सोवत माहि गई करि हाँसी।
लाए हिए नख केहरी के सम, मेरी तउ नहि नीद विनासी॥
ले गई अबर बेनी प्रवीन ओढाय लटी दुपटी दुखरासी।
तोरि तनी तन छोरि अभूषन भूलि गई गर देन की फाँसी॥

जसवन्तसिंह द्वितीय—इनका अनुमानित रचनाकाल १८५६ है । इस 'तेरवाँ-नरेश' के लिखे सालिहोत्र और शृंगार-शिरोमणि नामक दो ग्रन्थ हैं ।

यशोदानन्दन—इनका जन्म संवत् १८२८ है । इनके रचे हुए बरवै-नायिका-भेद में नौ बरवै संस्कृत में और त्रेपन अवधी भाषा में हैं । सरसता की दृष्टि से यह रचना रहीम के टक्कर की कही गई है । इनका विशेष कुछ वृत्त ज्ञात नहीं है ।

करन कवि—इन्होंने छत्रसाल के वंशज पन्नानरेश हिन्दूपतिसिंह के आश्रय में सं० १८६० में साहित्य रस और रस कल्लोल नामक रीति-ग्रन्थों की रचना की। ये रचनाएँ सामान्यतया श्रेष्ठ हैं । नीचे कविता का नमूना दिया जाता है—

कटकित होत गात विपिन समाज देखि,
हरी हरी भूमि हेरि हियो लरजतु है ।
एते पै करन धुनि परत मयूरन की,
चातक पुकारि तेह ताप सरजतु है ।
निपट चबाई भाई बन्धु जे बसत गाँव,
दाँव परे जानि कै न कोऊ बरजतु है ।
अरज्यो न मानी तू, न गरज्यो चलत बार,
एरे घन वैरी! अब काहे गरजतु है ॥

गुरुदीन पाण्डे—इनके सं० १८६० में बनाये हुए बाग मनोहर नामक ग्रन्थ में केशव की कविप्रिया के आधार पर काव्यांगों का सर्वांगपूर्ण निरूपण किया गया है । छन्दों का निरूपण इस ग्रन्थ की विशेषता है । उदाहरण देखिए—

मुख-ससि ससि दून कला धरे । कि मुकता-गन जावक में भरे ।
ललित कुंदकली अनुहारि के । दसन है वृषभानु-कुमारि के ॥
सुखद जंत्र कि भाल सुहाग के । ललित मंत्र किधौ अनुराग के ।
भ्रुकुटि यों वृषभानु-सुता लसै । जनु अनंग-सरासन को हँसै ॥
मुकुर तौ पर-दीपति को धनी । ससि कलंकित, राहु-बिथा घनी
अपर ना उपमा जग में लहै । तव प्रिया! मुख के सम को कहै?

ब्रह्मदत्त—इन्होंने अपने आश्रयदाता काशी-नरेश के अनुज दीपनारायण सिंह के नाम पर दीप-प्रकास तथा एक दूसरे ग्रन्थ विद्वद्विलास की रचना सं० १८६० से १८६५ तक की ।

रसिक गोविन्द—ये जयपुर निवासी थे। इनके रामायण-सूचनिका, रसिक-गोविन्दानन्द-घन, लछमन-चद्रिका, अष्टदेश-भाषा, पिगल, समय-प्रबन्ध, कलिजुग-रासो, रसिक-गोविन्द, युगल-रसमाधुरी ये नौ ग्रन्थ मिले है। इनके रसिक-गोविन्दानन्दघन मे काव्याङ्गो का अत्यन्त विस्तृत विवेचन हुआ है। रीतिकाल मे यही एक ऐसे आचार्य हुए है जिन्होने लक्षण गद्य मे दिये और रस, शक्ति आदि का शास्त्रीय विवेचन करते हुए अपने पूर्ववर्ती सस्कृत के आचार्यो के मतो का भी उल्लेख किया। ये व्रजभाषा के साहित्यिक गद्य के सर्वप्रथम लेखक भी कहे जा सकते है, क्योकि गोस्वामी विट्ठलनाथ और गोकुलनाथ का गद्य कथावाचको की शैली का व साधारण है और और इनसे पूर्ववर्ती टीकाकारो का गद्य बिल्कुल बेठिकाने का था। किन्तु रसिक गोविन्द का गद्य अत्यन्त परिमार्जित है। इनके गद्य और विवेचन-शैली का एक नमूना देखिए—

'अन्य ज्ञानरहित जो आनन्द सो रस। प्रश्न—अन्य-ज्ञान-रहित आनन्द तो निद्रा हू है। उत्तर—निद्रा जड है यह चेतन। भरत आचार्य सूत्रकर्ता को मत—कारण कारज सहायक है जे लोक मे इन्ही की नाटच मे, काव्य मे, विभाव सज्ञा है। अथ टीका कर्ता को मत तथा साहित्यदर्पण को मत—सत्त्व,विशुद्ध, अखण्ड,स्वप्रकाश, आनन्दचित्त, अन्यज्ञान, नही सग, ब्रह्मास्वाद, सहोदर रस।'

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मम्मट, विश्वनाथ आदि के काव्य-प्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि प्रामाणिक ग्रन्थो के आधार पर इस आचार्य ने काव्यागो का अधिक से अधिक सुन्दर विवेचन करने का प्रयत्न किया है। स्वरचित, उद्धृत या अनूदित सभी उदाहरण भी अत्यन्त सरस है, अत इन्हे रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ आचार्यों मे से एक कहा जा सकता है। इनका रचनाकाल स० १८५० से १९५० तक है।

आलस सो मद मद धरा पै धरती पाय,
　　भीतर ते बाहर न आवै चित चाय कै,
रोकती दृगनि छिन छिन प्रति लाज साज,
　　बहुत हँसी की दीनी बानि बिसराय कै॥
बोलति वचन मृदु मधुर बनाय, उर—
　　अतर के भाव की गम्भीरता जनाय कै।
बात सखी सुन्दर गोविन्द की कहात तिहै॥
　　सुन्दरी बिलोकै बक भृकुटि नचाय कै॥

पद्माकर भट्ट—ये बान्दे के रहने वाले तैलग ब्राह्मण मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। इनका जन्म १८१० मे और मृत्यु १८९० मे कानपुर मे गगा-तट पर हुई। भारत के अनेक राजा रावो द्वारा इनका पर्याप्त सम्मान हुआ और इन्होंने भी उनके नामो पर अनेक ग्रन्थ लिखे। जैसे कि—सितारा के महाराज रघुनाथराव या राघोबा, पन्ना के महाराज हिन्दुपति, जयपुर-नरेश प्रतापसिंह तथा उनके पुत्र महाराज जगतसिंह, सुगरा के नोने अर्जुनसिंह, गुसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर, उदयपुर के महाराणा भीमसिंह, ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिन्धिया, और बून्दी-नरेश आदि अनेक राजा-महाराजाओ ने इन्हे अपना राजगुरु व राजकवि मानकर खूब धन-दौलत और सम्मान दिया। इनके हिम्मत-बहादुर-विरुदावली, जगद्विनोद, पद्माभरण, प्रबोध-पचासा, गगा-लहरी और रामरसायन नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

हिम्मत-बहादुर विरुदावली मे हिम्मत बहादुर की वीरता का ओजस्वी वर्णन है। जगद्विनोद और पद्माभरण शृगार रस व अलकारो के सुन्दर ग्रन्थ है। इसकी कथा की कल्पनाएँ बडी ही सुन्दर बन पाई है। कोमलकान्त पदावली और सरस भावनाओ का इसमे मणिकाचन योग हो रहा है। परिस्थितियो के प्रवाह के अनुसार इनकी भाषा नित्य नवीन रूप धारण करती रहती है। 'गनगोर-वर्णन' में उदयपुर के महाराणा के कहने पर उक्त मेले का वर्णन किया है। रामरसायन तुलसीदास जी की दोहा-चौपाई-शैली पर लिखा हुआ रामचरित-सम्बन्धी ग्रन्थ है। किन्तु इसे सफल काव्य नही कहा गया। इन्होंने अपनी अन्तिम अवस्था में प्रबोध-पचासा तथा गगा-लहरी नामक वैराग्य व भक्तिपूर्ण काव्यो की रचना की थी। इनकी उत्कृष्ट कल्पना की उडान, विषय-विवेचन की विशुद्धता और पदावली की मधुरता व शब्दो की लाक्षणिकता आदि विशेषताओ ने इन्हे रीतिकाल के बिहारी आदि महाकवियो की पक्ति मे ला बैठाया। भाषा की अनुप्रासमयता यद्यपि इनमे भी पर्याप्त रूप मे पाई जाती है तथापि यह सर्वत्र नही है। इनकी कुछ कविताएँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

जैसो ते न मोसो नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब होहूँ तोसो नेकहूँ न डरिहौ।
कहै पद्माकर प्रचड जो परैगो तो,
उमड करि तोसो भुजदड ठोकि लरिहौ॥
चलोचलु चलोचलु विचलु न बीचही ते,
कीच बीच नीच तो कुटम्बको कचरिहौ।

एरे दगादार मेरे पातक अपार तौहि,
गगा के कछार मे पछार छार करिहौ ।।

तीखे तेगवाही जे सिपाही चढै घोडन पै,
स्याही चढै अमित अरिदन की ऐल पै ।
कहै पद्माकर निसान चढै हाथिन पै,
धूरि धार चढै पासमान के सैल पै ।।
साजि चतुरग चमू जग जीतिबे के हेतु,
हिम्मत बहादुर चढत फर फैल पै ।
लाली चढै मुख पै, बचाली चढै बाहन पै,
काली चढै सिह पै, कपाली चढै बैल पै ।।

ग्वाल कवि—मथुरा-निवासी इस कवि ने यमुना-लहरी, भक्त-भावन, रसिकानन्द, रसरग, कृष्णजू को नखशिख, दूषण-दर्पण, हम्मीर-हठ, गोपी-पच्चीसी, राधामाधव-मिलन, राधाष्टक आदि ग्रन्थ स० १८७९ से १९१८ तक लिखे । ये रीतिकाल की परिपाटी के पक्के पुजारी थे और अनेक देशो का भ्रमण करने के कारण गुजराती, पजाबी आदि भाषाओ के अच्छे लेखक बन गये थे । कविता अत्यन्त चमत्कारपूर्ण होने के कारण पर्याप्त लोक-प्रिय है । 'कवि हृदयविनोद' में इनकी बहुत सी कविताएँ सग्रहीत हैं । नमूने देखिए—

दिंया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि,
खाव पियो, देव लेव, यही रह जाना है ।
राजा राव उमराव केते बादसाह भए,
कहाॅ ते कहाॅ को गए, लग्यो न ठिकाना है ।।
ऐसी जिदगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे !
देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है ।
आए परवाना पर चलै ना बहाना, यहाॅ,
नेकी कर जाना, फेर आना है न जाना है ।।

प्रतापसाही—ये रतनसेन बन्दीजन के पुत्र थे और चर्खारी-नरेश विक्रम-साही के आश्रय मे रहते थे। इनका रचनाकाल स० १८८० से १९१० तक है। व्यग्यार्थ-कौमुदी, काव्य-विलास, जयसिंहप्रकाश, शृगार-मजरी, शृगार-शिरोमणि, अलकार-चिन्तमणि, काव्यविनोद, रसराज की टीका, रत्न-चन्द्रिका, जुगल-नखशिख, बलभद्र-नखशिख की टीका आदि कई ग्रन्थ बनाये। इनकी व्यग्यार्थ-कौमुदी और काव्य-विलास सुन्दर रीति-ग्रन्थ है। आचार्यत्व की दृष्टि से ये अपने काव्य मे पूर्ण सफल होने के कारण श्रीपति और दास के समकक्ष है। काव्य-कुशलता के कारण ये मतिराम और पद्माकर की कोटि में जा बैठते है। इनकी भाषा और भावोत्कृष्टता कविता के चारो पदो मे समरस और एकरूपता लिए रहती है। इन्ही सब बातो को देखकर इनकी गणना पद्माकर आदि प्रमुख कवियो मे की गई है। इनकी रचना के दो नमूने देखिए—

तडपै तडिता चहुँ ओरन ते छिति छाई समीरन की लहरे।
मदमाते महा गिरिशृगन पै गन मजु मयूरन के कहरै ॥
इनकी करनी बरनी न परै, मगरूर गुमानन सौ गहरै।
घन ये नभ मडल मे छहरै, घहरै कहुँ जाय, कहूँ ठहरै ॥
कानि करै गुरु लोगन की, न सखीन की सीखन ही मन लावति।
एड-भरी अँगराति खरी. कत घूघट मे नए नैन नचावति ॥
मजन कै दृग अजन आँजति, अग अनग-उमग बढावति।
कौन सुभाव री तेरो परयो, खिन आँगन मे, खिन पौरि मे आवति ॥

बोधा—ये राजापुर (जिला बाँदा) के निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थ और बचपन से पन्ना-नरेश के आश्रय मे रहते थे। इनका पूरा नाम बुद्धसेन था पर उक्त महाराज इन्हे प्यार से "बोधा" कहकर पुकारा करते थे, इसलिए इनका यह नाम प्रसिद्ध हो गया। इनका रचनाकाल स० १८३० से १८६० तक माना जाता है। बोधा एक बडे रसिक प्रकृति के प्राणी थे। पन्ना दरबार की सुभान नामक वश्या से इनका प्रेम हो जाने पर महाराज ने रुष्ट होकर इन्हे ६ महीने के लिए देश-निकाला दे दिया। अपनी प्रेयसी सुभान के विरह मे ६ महीने तक तडपते हुए इस कवि ने विरह-वारीश नामक एक प्रेमपूर्ण काव्य-सग्रह तैयार कर दिया। ६ महीने की अवधि बीत जाने पर इन्होने दरबार मे जाकर महाराज को अपनी उक्त रचना की कुछ कविताएँ सुनाईं, तो महाराज बहुत प्रसन्न हुए और मनचाही चीज मागने को कहा, इस पर

इन्होने कहा "सुभान अल्लाह"[1] महाराज ने बडी प्रसन्नता से सुभान को इन्हे देकर इनकी इच्छा पूर्ण कर दी। इश्कनामा भी इनकी एक दूसरी पुस्तक प्रसिद्ध है। इनकी कविताओ मे प्रेम की पीर अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रकट हुई है। सरस साहित्यिक रचनाओ के साथ इन्होने कुछ बाजारू और चलती तुकबन्दियाँ भी लिखी थी। इनकी कविता के कुछ नमूने लीजिए —

लोक की लाज औ सोक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गाव को गेह को देह को नातो सनेह मे हातो करै पुनि सोऊ।।
बोधा सुनीति निबाह करै घर ऊपर जाके नही सिर होऊ।
लोक की भीति डरात जो मीत तौ प्रीति के पैडे परे जनि कोऊ।।

बोधा सब जग ढूँढ्यो फिरि फिरि धाइ।
जेहि मनही मन चाहत सो न लखाइ।।

हिलि मिलि जानै तासो मिलि कै जनावै हेत
हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिये।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै
लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये।।
बोधा कवि नीति को निबेरो यही भाति अहै
आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये।
दाता कहा, सूर कहा, सुन्दर सुजान कहा,
आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिये।।

सम्मन—ये जिला हरदोई के निवासी थे। इस ब्राह्मण कवि के दोहे पर्याप्त प्रसिद्ध है। दोहो के अतिरिक्त पिगल काव्य-भूषण नामक एक रीति-ग्रन्थ भी इनका मिला है। इनका रचनाकाल स० १८६० से १८८० तक माना जाता है। इनका एक दोहा देखिए—

निकट रहे आदर घटै, दूर रहे दुख होय।
सम्मन या ससार मे प्रीति करो जनि कोय।।

---

[1] मुसलमान अपने हृदय के हर्षसूचक उद्गारो को प्रकट करने के लिए उक्त पद का प्रयोग करते है जिसका अर्थ 'ईश्वर को धन्यवाद' से मिलता-जुलता है।

आसनी वाले पहले ठाकुर—ये सवत् १७०० के लगभग विद्यमान थे। इनकी केवल कुछ-एक फुटकर कविताएँ ही मिली है। ये ब्रह्मभट्ट थे।

आसनी वाले दूसरे ठाकुर—ये शिवनाथ कवि के पुत्र, सेवक कवि के पितामह और सरयूपारीण ब्राह्मण थ। किन्तु एक बार मझोली के राजा के विवाह-अवसर पर इनके किसी पूर्वज ने भाटो की तरह कुछ कवित्त पढकर पुरस्कार प्राप्त किया। इस पर इनके भाई-बन्धुओ ने इन्हे जाति से निकाल दिया और वे आसनी के भाट नरहरी कवि की कन्या से अपना विवाह कर आसनी मे जा रहे और भाट हो गये। इसीलिए ब्रह्मभट्ट कहलाये। ये काशी-नरेश के सम्बन्धी बाबू देवकीनन्दन के आश्रय मे रहते थे। इन्होने सतसई वरनार्थ नाम की बिहारी सतसई की टीका लिखी थी। इनकी स्वतन्त्र कविताएँ भी सुन्दर है। इनका रचनाकाल १८६० के लगभग है।

तीसरे बुदेलखण्डी ठाकुर—ये काकोरी-निवासी कायस्थ थे और जैतपुर-नरेश केसरीसिह के आश्रय मे रहते थे। बाँदा-नरेश हिम्मत बहादुर आदि अन्य राजा राव भी इनका पर्याप्त आदर करते थे। पद्माकर जी से इनकी अपनी-अपनी रचनाओ के सम्बन्ध मे कुछ नोक-झोक प्राय हो जाया करती थी। एक बार पद्माकर जी ने कहा 'ठाकुर कविता तो बहुत अच्छी करते है पर पद कुछ हलके पडते है।' इस पर ठाकुर बोले 'तभी तो हमारी कविता उडी-उडी फिरती है'। एक बार किसी बात पर क्रुद्ध होकर इन्होने हिम्मत बहादुर के सामने तलवार तक निकाल ली थी। इनकी कविताओ मे भावो की सरलता और स्वाभाविकता, भाषा की सुन्दरता और कला की रमणीयता आदि गुण पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते है। इन्होने लोकोक्ति और मुहावरो का भी बडा ही सुन्दर और सुव्यवस्थित प्रयोग किया है। प्रधानत प्रेमनिरूपक कवि होते हुए भी इन्होने जीवन की अनेक दशाओ का सुन्दर चित्रण किया है। इनका रचनाकाल १८५० से १८८० तक है। इनकी कुछ कविताएँ देखिए—

अपने अपने सुठि गेहन मे चढे दोऊ सनेह की नाव पै री।
अँगनान मे भीजत प्रेम भरे, समयो लखि मे बलि जावँ पै री॥
कहै ठाकुर दोउन की रुचि सो रग व्है उमडे दोउ ठावँ पै री।
सखी, कारी घटा बरसै बरसाने पै, गोरी घटा नँदगाँव पै री॥
पिया प्यार करै जेहि पर सजनी तेहि की सब भाँतिन सैयत है।
मन मार करौ तौ परौ भ्रम मे, फिर पाछे परे पछितैयत है॥

कवि ठाकुर कौन की कासौ कहो? दिन देखि दसा बिसरैयत है।
अपने अटके सुन ए री भटू ? निज सौत के मायके जैयत है।।

पजनेस—पन्नानिवासी इस कवि का विशेष परिचय और ग्रन्थ नही मिले, पर इधर-उधर प्राप्त फुटकर रचनाओ ने ही इन्हे हिन्दी के अच्छे कवियो की श्रेणी मे ला बैठाया। भारतजीवन प्रेस से प्रकाशित 'पजनेस-प्रकाश' नामक सग्रह मे इनके एक सौ सत्ताईस कवित्त-सवैये सकलित किये गये है। इनका वाक्य-विन्यास व्यवस्थित और कविताएँ चमत्कृत है। इन्होने बीच-बीच मे फारसी शब्दो का प्रयोग किया है। इससे फारसी के भी अच्छे ज्ञाता प्रतीत होते है। इनका रचनाकाल स० १९०० के लगभग है। नमूना यह है—

पजनेस तसद्दुकता बिसमिल जुलफे फुरकत न कबूल कसे।
महबूब चुना मदमस्त सनम् अजदस्त अलाबल जुल्फ बसे।।
मजमूये न काफ सफाक रुए सम क्यामत चश्म से खू बरसे।
मिजगां सुरमा तहरीर दुता नुकते बिन बे किन ते किन से।।

द्विजदेव महाराज मार्नासह—ये अयोध्या के महाराज थे। इनका जन्म स० १८८० और देहान्त १९३० मे हुआ था। इनकी शृगार-बत्तीसी और शृगारलतिका नामक पुस्तको मे ऋतुओ का वर्णन बँधी हुई परम्परा पर नही प्रत्युत स्वाभाविक और सरस हुआ है जिनसे प्रकृति के प्रति इनके अन्तर् का प्रेम प्रकट होता है। भाषा शब्दाडम्बरहीन होते हुए भी अत्यन्त सुललित और अलकृत है। शृगारलतिका का एक सटीक बडा भारी सस्करण अयोध्या की महारानी ने प्रकाशित कराया था। इनकी कुछ कविताएँ देखिए—

बाके सकहीने राते कज-छवि छीने माते,
झुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कछू गनै न।
'द्विजदेव' की सौ ऐसी बानक बनाइ बहु,
भातिन बगारे चित चाह न चहूधा चैन।।
पेखि परे पात जो पै गातन उछाह भरे,
बार बार तातै तुम्हे बूझती कछूक बैन।
एहो ब्रजराज मेरे प्रेमधन लूटिबे को,
बीरा खाइ आये कितै आपके अनोखे नैन?

सेवक—यह आसनी वाले ठाकुर कवि के पौत्र थे। इनका जन्म १८७२ म और देहान्त १९३८ मे हुआ था। वाग्विलास नामक इनका नायिका-भेद का ग्रन्थ

सुन्दर है। इसके अतिरिक्त इनके सवैये भी पर्याप्त प्रसिद्ध है। एक कवित्त देखिए—

बसी बजावत आनि कढे बनिता घनी देखन को अनुरागी,
हौं हूँ अभाग भरी डगरी मगरी गिरे चौकि सबै डरि भागी।
लागै कलक सेवक सो इन्हे फेरि हो सौति सुभाव लै जागी,
हाय हमारी जरै अँखियाँ विष बान ह्वै मोहन कै उर लागी।

सरदार—यह काशी-नरेश के आश्रित थे। इनका रचनाकाल सवत् १९०० के लगभग माना जाता है। वाग्विलास, साहित्य-सरसी, तुलसीभूषण, शृगार-सग्रह, राग-रत्नाकर, साहित्यसुधाकर आदि इनकी सुन्दर रचनाएँ है। बिहारी सतसई, सूर के दृष्टकूट तथा केशव की रसिक प्रिया और कवि प्रिया पर भी इन्होने सुन्दर टीकाएँ लिखी थी। नमूना नीचे दिया जाता है—

मनि मन्दिर चन्द मुखी चितवै हित मंजुल मोद मवासिन को,
कमनीय करोरिन काम कला करि थामि रही पिय पासिन को।
सरदार चहूँ दिसि छाय रहे सब छद छरा रस रासिन को,
मन मद उसासन लेन लगी मुख देखि उदास खवासिन को।

लच्छीराम भट्ट—इनका जन्म सवत् १८९८ मे अमोढा (जिला बस्ती) मे हुआ था। इन्होने अपने आश्रयदाताओ के नाम पर प्रेमरत्नाकर, प्रतापरत्नाकर, मानसिंहाष्टक, लक्ष्मीश्वररत्नाकर, रावणेश्वरकल्पतरु, कमलानद-कल्पतरु इत्यादि ग्रन्थ बनाये।

अभ्यास

१ आचार्य और कवि की परिभाषा लिखकर स्पष्ट करे कि इनके एकीकरण का साहित्य पर क्या प्रभाव पडा ?

२ साहित्य की भक्ति-सम्बन्धी धारा क्रमश शृङ्गार के रूप मे क्यो परिवर्तित हो गई ?

३ रीतिकाल के साहित्य की गुण-दोष-विवेचनात्मक समालोचना करे और बताए कि इसे 'रीति-काल' कहना कहाँ तक उपयुक्त है ?

४, विहारी के साहित्य की समालोचना करे ?

५ देव, भिखारीदास, पद्माकर भट्ट तथा महाराज जसवन्तसिंह के जीवन व साहित्य पर प्रकाश डाले।

६ आप रीतिकाल के किस लेखक को पूर्ण आचार्य या प्रकृत-कवि के रूप मे उपस्थित कर सकते है, युक्ति व प्रमाणो से अपने पक्ष को पुष्ट करे।

तेरहवाँ अध्याय

रीतिकालिक वीर-साहित्य या वीर-गाथा का द्वितीय उत्थान

जैसा कि पहले कहा गया है स० १७०० से १९०० तक सामाजिक, राजनैतिक आदि विविध कारणो से भारतीय समाज मे जहाँ एक ओर विलासिता की प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही थी, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीय वीरतात्मक विचारधारा भी अपने नये रूप मे प्रकट हो रही थी। वर्तमान-युग के प्रारम्भ मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और उनकी मण्डली के लेखको की रचनाओ मे जिस वीरता और राष्ट्रीयता के दर्शन होते है वह भूषण आदि पूर्ववर्ती कवियो की वीरता का ही विकसित स्वरूप है। यद्यपि रीतिकाल मे परिमाण की दृष्टि से वीरता की रचनाएँ अपेक्षाकृत स्वल्प हुई है तथापि समाज व साहित्य पर इनका प्रभाव भी शृगारी कवियो से कम नही प्रत्युत कुछ विशेष ही है। अत इतिहास मे रीतिकाल के वीर-कवियो को भी एक स्वतन्त्र स्थान अवश्य मिलना चाहिए।

शृगार के विरोधी या उसकी प्रतिक्रिया के रूप मे प्रकट होने वाले इस काल के वीर-साहित्य की भी अपनी विविध विशेषताएँ है। वीर-गाथा-काल के साहित्य से यह साहित्य सर्वथा भिन्न है। उसकी भाषा प्राय अपभ्रशनिष्ठ डिंगल थी किन्तु इस युगका साहित्य अधिकतर व्रज-भाषा मे लिखा गया। वह गीत या प्रबन्ध-काव्यो के रूप मे प्रकट हुआ था किन्तु यह रीति-परम्परा के अनुसार मुक्तक और प्रबन्ध-काव्यो के रूप मे उपस्थित हुआ। छन्द भी प्राय कुछ परिवर्तित हो गये। इन दोनो साहित्यो मे सबसे बडा अन्तर यह है कि वीर-गाथा-काल का साहित्य वीर राजाओ की प्रशस्तियो मे लिखा जाने पर भी राष्ट्रीयता, स्वधर्म-रक्षा आदि वीर वृत्तियो का परिचायक नही है। चारणो ने इस साहित्य मे अपने आश्रयदाता राजाओ का बखान-मात्र किया है। उनकी वीरता का वर्णन भी सर्वांशत वैयक्तिक रूप लिए हुए है। समाज, राष्ट्र और धर्म से उसका बहुत ही स्वल्प सम्बन्ध है। यहाँ तक कि वीर-गाथा-काल के साहित्यकारो ने युद्ध के स्पष्टत राष्ट्रीय और राजनैतिक स्वरूप को छिपा कर उसे वैयक्तिक रूप दे दिया है। शहाबुद्दीन गौरी के भारत पर आक्रमण का भी एक स्त्री को कल्पित कारण बता दिया गया। इसीलिए वीर-गाथा-काल के साहित्य मे न तो सच्ची वीरता के ही दर्शन होते है और न कवि के अन्तर्तम के। विपरीत इसके इस दूसरे उत्थान के वीर-साहित्य के निर्माता राजाओ

की स्तुति-मात्र गाने वाले भाट या चारण न थे। वे सच्चे कवि थे, उन्होंने किसी राजा की प्रशसा के लिए नही प्रत्युत स्वराष्ट्र और स्वधर्म की रक्षा करने वाले वीर पुरुषो की कर्तव्य-भावनाओ को प्रेरित करने के लिए अपनी कविताएँ कही थी—

इन्द्र जिमि जम्भ पर वाडव सुअम्भ पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन वारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यो सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अस पर, कान्ह जिमि कस पर,
त्यो मलेच्छ-वस पर सेर सिवराज है॥

आदि इस काल की सहस्रो रचनाओ मे रचयिता का अन्तर्तम प्रकट हो रहा है। ये कविताएँ किसी व्यक्ति की प्रशसा के लिए नही प्रत्युत स्वराष्ट्र में स्वधर्म और आत्मगौरव का सचार करने के लिए कवि के मानस से स्वत प्रकट हुई प्रतीत होती है। इस वीर-साहित्य के चरित-नायक और चरित-लेखक अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ खो बैठे है। वे वीर और वीर-भावनाओ के साथ एकाकार हो गये है। चन्द-वरदायी और पृथ्वीराज आकार-प्रकार में एक जैसे थे या नही ये विषय तो विवादास्पद है। किन्तु भूषण और शिवाजी सर्वथा भिन्न देशीय, भिन्न भाषा-भाषी और भिन्न आकार-प्रकार के होते हुए भी इस प्रकार एकाकार हो गये है कि उनकी पृथक् सत्ता प्रतीत ही नही होती। इस सम्बन्ध में श्रीयुत डाक्टर सूर्यकान्त जी अपने विवेचनात्मक इतिहास में कैसे प्रौढ विचार व्यक्त करते है—

'दूसरी ओर भूषण का शिवराजभूषण अलकार-ग्रन्थ होने पर भी उत्कृष्ट काव्य है, क्योकि यहाँ शिवाजी की प्रशसा झूठी नही अपितु यथार्थ है, और सच्चे दिल से की गई है। कविता करते समय भूषण के दिल मे बेचैनी थी, भाव उमड रहे थे। उसने किसी प्रकार का पारितोषिक पाने की नीयत से अपना यह पद्य—'इन्द्र जिमि जम्भ पर' आदि नही लिखा, प्रत्युत अपने दिल का आवेश निकाल कर उसे हलका करने के लिए, हिन्दुत्व के सदेश को जन-साधारण के दिल की गहराई तक पहुँचाने के लिए, और उसकी रक्षा के सत्य स्वरूप को प्रत्यक्ष कराने के लिए लिखा। शिवाजी और भूषण पृथक्-पृथक् दो व्यक्ति नही थे। वे एक ही घटना

के दो पक्ष थे। हिन्दुत्व की प्रदीप्त आत्मा कर्मक्षेत्र में शिवाजी और भावनाक्षेत्र मे भूषण के रूप में जाज्वल्यवती हुई थी। भूषण प्रोद्वतित भावना-क्षेत्र के शिवाजी थे और शिवाजी कठोर कर्मक्षेत्र के भूषण। सक्षेप मे भूषण के काव्य को पढ हमारे हृदय मे रागात्मक सम्बन्ध का सचार हो जाता है। हमारा हृदय वीरता के समुद्र में हिलोरे लेने लगता है। उसकी तन्त्री झनक उठती है और भावना रणक्षेत्र की तलवारो पर नाचने लगती है। भूषण का ध्येय यही था और यही उसकी कविता थी।

उक्त मन्तव्य महाकवि लाल और महाराज छत्रसाल आदि अन्य इस काल के चरित-नायक और चरित-लेखको तथा गुरु गोविन्दसिंह आदि राष्ट्र-रक्षक कवियो के सम्बन्ध मे भी सर्वांशत या अशत चरितार्थ होता है। यही इस वीर-साहित्य के द्वितीय उत्थान-काल के काव्यो की विशेषता है और वीर-गाथा-काल के साहित्य की अपेक्षा भिन्नता है। अब यहाँ ऐसे ही कवियो का वर्णन किया जाता है। सामान्यतया वीर-गाथा-काल के इस द्वितीय उत्थान का आरम्भ महाकवि भूषण से होता है, किन्तु बीकानेर के पृथ्वीराज राठौर की रचना मे राष्ट्रीय स्वाभिमानपूर्ण वीरोल्लास का सर्वप्रथम दर्शन होता है इसलिए पृथ्वीराज का उल्लेख यहाँ समीचीन है।

राठौर पृथ्वीराज—ये बीकानेर नरेश के छोटे भाई थे। और प्राय अकबर के दरबार मे रहा करते थे। इनके हृदय मे वीर, श्रृगार और भक्ति की त्रिवेणी बह रही थी। इन्होने काबुल के मिर्ज़ा हकीम से लोहा लिया था। अकबर के दरबारी सामन्त होते हुए भी इन्होने महाराणा प्रताप के स्वातन्त्र्य-प्रेम की पर्याप्त प्रशसा की और अपनी अत्यन्त ओजस्विनी रचनाओ के द्वारा उनके साहस को प्रबल प्रोत्साहन दिया। वस्तुत इस कवि के हृदय मे स्वदेशाभिमान की भावनाएँ सदा हिलोरे लेती रहती थी। इसीलिए अपने स्वामी और सम्राट अकबर को 'नौ रोज' का मेला लगाने पर स्पष्ट फटकार लगाने मे ये नही हिचकिचाये। महाराणा प्रताप के नाम लिखा हुआ इनका एक पत्र ही इन्हे हिन्दी-साहित्य मे प्रतिष्ठित पद पर पहुँचा देता है, किन्तु राजस्थानी साहित्य मे ये अपनी श्रृगारी रचना के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हैं। 'क्रुसन रुकमणी री वेल' नामक इनकी श्रृगारिक रचना अत्यन्त सरस और सुन्दर है। यहाँ महाराणा प्रताप के नाम लिखे गये पत्र का कुछ अश उद्धृत किया जाता है—

धर बाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणा नरिन्दा घेरियो, रहै गिरिन्दां राण।।

पातल राण प्रवाड मल, बाकी घडा बिभाड।
खूदाडै कुण है खुरा, तो ऊभा मेवाड॥
माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै साप॥
अकबर समद अथाह, तिह डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाडो तिड माह, पोयण फूल प्रतापसी॥

बनवारी—इनका रचनाकाल स० १६९०—१७०० तक है। विशेष वृत्त कुछ ज्ञात नही हो सका। महाराजा जसवन्तसिंह के बडे भाई अमरसिंह ने उन्हे 'गँवार' कहनेवाले सलावतखाँ को भरे दरबार मे शाहजहाँ के सामने तलवार के घाट उतार दिया था। बनवारी ने अमरसिंह की उक्त वीरता का बडा ही ओजस्वी वर्णन किया है। एक नमूना देखिए—

धन्य अमर छिति छत्रपति अमर तिहारो नाम।
सहाजहा की गोद मे, हन्यो सलावत खान॥
उत गकार मुखते कढ्यो, इतै कढी जमधार।
बार कहन पायो नही, भई कटारी पार॥

भूषण—इनका जन्म स० १६७० तिकवाँपुर मे और मृत्यु स० १७७२ मे हुई।

वीररस के प्रसिद्ध महाकवि 'भूषण' प्रसिद्ध कवि मतिराम व चिंतामणि त्रिपाठी के भाई थे। चित्रकूट के सोलकी राजा रुद्र ने इन्हे 'कविभूषण' की उपाधि दी थी। तभी से ये भूषण के नाम ही से प्रसिद्ध हो गये। इनका वास्तविक नाम किसी को ज्ञात नही। पहले यह अनेक राजाओ के यहाँ रहे, पर अन्त मे अपनी विचारधारा के अनुकूल छत्रपति महाराज शिवाजी के यहाँ जा पहुँचे। पन्ना के महाराज छत्रसाल भी इनका बहुत सम्मान करते थे। यहाँ तक कि एक बार उन्होने इनकी पालकी में अपना कन्धा लगाया था। इन्हे एक-एक कविता पर महाराज शिवाजी से लाखो रुपये, कई गाँव तथा हाथी प्राप्त हुए थे।

अन्यान्य रीति-कालिक कवियो ने या तो शृगारिक वर्णन किये है अथवा अपने आश्रय-दाताओ की झूठी प्रशसा मे पृष्ठ के पृष्ठ रग डाले है। किन्तु भूषण ने न तो जनता की कुत्सित वृत्तियो को जागृत करने वाली शृगारिक रचना ही लिखी

और न किसी राजा की चाटुकारितापूर्ण झूठी प्रशसा ही की। इन्होने अत्याचार का दमन करने वाले, देश की स्वतन्त्रता के सच्चे पुजारी महापराक्रमी महापुरुषो की सच्ची वीरता का बखान कर कवि-कर्त्तव्य का पूर्णरूपेण पालन किया है। यही कारण है कि अन्यान्य कवियो द्वारा अपने आश्रय-दाता की प्रशसा मे लिखी हुई किसी रचना या कविता का आज कोई नाम भी नही लेता, किन्तु भूषण के कवित्तो को जनता बडे उत्साह से पढती है। इनके 'शिवराज-भूषण' 'शिवा-बावनी' और 'छत्रसाल-दशक' ये तीन ग्रन्थ है।

भूषण की राष्ट्रीयता—पिछले दिनो हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का आभास पाकर कुछ नेतागण भूषण की रचनाओ मे राष्ट्रीयता के विरोधी तत्त्वो की गन्ध पाने लगे और उन्होने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा मे से शिवा-बावनी को निकलवा दिया। इस सम्बन्ध में हम कह सकते है कि एक तो किसी उत्कृष्ट साहित्यकार का बहिष्कार वैसे ही नितान्त अनुचित है, उस पर भूषण को राष्ट्रीयता का विरोधी कहना तो किसी प्रकार युक्ति-सगत दिखाई नही देता। माना कि भूषण ने औरगज़ेब आदि म्लेच्छ शासको की निन्दा में कुछ पद लिखे है, किन्तु उन्होने केवल मुसलमान होने के नाते न तो किसी की निन्दा की है और न हिन्दू होने के कारण किसी की स्तुति। वे जाति, धर्म या सम्प्रदाय के भेदभाव या पक्षपात के बिना अत्याचारियो की निन्दा और अत्याचार के विरोधियो की प्रशसा मे अपनी प्रतिभा का प्रयोग करते रहे। उन्होने औरगज़ेब आदि की निन्दा इसलिए नही की कि वे मुसलमान थे प्रत्युत अत्याचारी होने के कारण उनकी निन्दा करनी पडी। जो लोग भूषण की रचनाओ मे किसी प्रकार की अराष्ट्रीयता की गन्ध पाते है उनके मत में कोई भी रचना स्थायी राष्ट्रीय साहित्य की श्रेणी मे नही आ सकेगी। क्योकि राष्ट्रीयता या देश-भक्ति की परिभाषा परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। आज से सौ-डेढसौ वर्ष पूर्व तक हमारे लिए मुसलमान वैसे ही विदेशी शासक थे जैसे कि इस युग मे अग्रेज़। और आज अग्रेज़ भी विदेशी शासक के रूप मे यहाँ नही रहा वह भी भाईचारे की भावना से ही भारत मे रह रहा है। अत शरत्‌बाबू का 'पथेरदावी' (पथ के दावेदार) सरीखे उपन्यास और सुन्दरलाल जी के 'भारत मे अग्रेजी राज्य' जैसे इतिहास जो कि पहले अग्रेज़ो के विरोधी होने के कारण या यू कहे कि राष्ट्रीय होने के कारण सदा ज़ब्त किये जाते रहे थे अब अग्रेज और भारतीय भाइयो में वैमनस्य के प्रचारक होने के कारण अराष्ट्रीय करार दे दिये जाने चाहिएँ। ऐसा करना यदि न्याय्य और युक्ति-सगत नही प्रतीत होता तो कोई कारण नही कि भूषण की रचनाओ को अराष्ट्रीय कहकर परीक्षाओ से निष्कासित कर दिया जाय।

भूषण की भाषा में अव्यवस्थिता का दोष दिखाया जाता है, और यह सत्य भी है, किन्तु यह दोष रीतिकाल के प्राय सभी लेखको में पाया जाता है। छत्रसाल दशक आदि भूषण की प्रवाहात्मक रचनाओ की भाषा अत्यन्त ही परिष्कृत और सुव्यवस्थित है। भाषा का दोष केवल उन्ही रचनाओ में आ गया जो किसी घटना को लेकर किसी अलकार के उदाहरण के रूप में लिखी गई है। अर्थात् शिवराज भूषण की भाषा में ही कही-कही शैथिल्य है अन्यत्र नही।

इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि तात्कालिक कवि-परम्परा की परिपाटियो से परिवेष्टित होने के कारण इस कवि की रचना पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त न कर सकी। इनका सबसे बडा ग्रथ 'शिवराज भूषण' शिवाजी की यशोगाथा का विस्तारक होते हुए तथा अपना ऐतिहासिक मूल्य रखते हुए भी जन-साधारण के सम्पर्क मे नही आ पाया। क्योकि यह अलकारो के लक्षणोदा-हरणो के रूप मे लिखा गया है। यदि यह प्रबधकाव्य के रूप में प्रस्तुत होता तो अवश्य ही प्रजाजनो से पर्याप्त प्रशसा और प्रेम प्राप्त कर लेता।

कुछ वर्ष हुए भूषण के समय के सम्बन्ध में एक विवाद उठ खडा हुआ था। कुछ आलोचको ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि महाकवि भूषण शिवाजी के समय मे नही प्रत्युत शिवाजी के पौत्र महाराज शाहूजी के समय मे हुए थे। किन्तु—'शाहू को सराहूँ कि सराहूँ छत्रसाल को' इत्यादि काव्याशो में उन्होने महाराज शाहूजी की प्रशसा अवश्य की है और वे शाहूजी के समय तक विद्यमान भी रहे थे। पर वे निश्चित रूप से शिवाजी के दरबार मे रहने वाले कवि थे। उन्होनें शिवाजी की वीरता का आँखो देखा ऐतिहासिक वर्णन किया है। स्थान-स्थान पर वर्तमान काल का प्रयोग है। उन दिनो कोई भी परवर्ती कवि ऐसा सजीव सत्य वर्णन नही कर सकता था। अत जो लोग यह कहते है कि भूषण शिवाजी के समय मे नही प्रत्युत शाहूजी के समय में हुए थे, वे सर्वथा भ्रम मे है। भूषण की कुछ रचनाओ के नमूने नीचे दिये जाते है—

दारा की न दौर यह, रार नही खजुवे की,
बाँधिबो नही है कैधौ मीर सहवाल को।
मठ विश्वनाथ को, न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा, मदिर गोपाल को॥
गाढे गढ लीन्हे अरु बैरी कतलाम कीन्हे,
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।

बूडति है दिल्ली सो सँभारै क्यो न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ।।
चकित चकत्ता चौकि-चौकि उठै बारबार,
दिल्ली दहसति चितै चाहि करषति है ।
बिलखि बदन बिलखत विजैपुर-पति,
फिरत फिरगिन की नारी फरकति है ।।
थर-थर कापत कुतुबसाहि गोलकुडा,
हहरि हबस-भूप-भीर भरकति है ।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते बादसाहन की छाती धरकति है ।।

जिहि फन फूतकार उडत पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो ।
विषजाल-ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो ।।
कीन्हो जिहि पान पयपान सो जहान कुल,
कोलहू उछलि जलसिधु खलभलिगो ।
खग्ग-खगराज महाराज सिवराजजू को,
अखिल भुजग मुगल दल निगलिगो ।।

गुरु गोविन्दसिह—ये सिक्खो के दसवे और अन्तिम गुरु थे। इनका जन्म स० १७२३ मे पटने मे और सत्य-लोक-वास स० १७६५ मे दक्षिण हैदराबाद मे गोदावरी नदी के तट पर अविचल नामक नगर मे हुआ था। यही पर भादो वदी चतुर्थी को दो पठानो ने पेट मे छुरा भोककर इनकी इहलोकलीला समाप्त कर दी। आपने भी उनमे से एक आततायी का वही अन्त कर दिया। आपके पिता श्री गुरु तेगबहादुर का यवनो ने बडी क्रूरता के साथ वध किया था। दिल्ली का चाँदनी चौक वाला शीशगज नामक गुरुद्वारा श्री गुरु तेगबहादुर के अमर बलिदान को अहर्निश घोषित कर रहा है। गुरु गोविन्दसिह ने अपने पूर्ववर्ती नौ अहिंसा के

उपासक सन्तस्वभाव के गुरुओ की विचारधारा मे सहसा क्राति उपस्थित कर इस सन्त सम्प्रदाय के अनुयायियो को वीरव्रत की दीक्षा दे उन्हे कर्मयोगी शिष्य या सिक्ख बना दिया। इस प्रकार एक बडी दृढ वीरवाहिनी प्रस्तुत कर हिन्दु धर्म की रक्षा के लिए इस महापुरुष ने अपने तथा अपने परिवार के प्राणो की बाज़ी लगा दी। तिलक और जनेऊ की रक्षा के लिए इनकी तलवार सदा खुलकर खेला करती और ये अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए सदा सन्नद्ध रहते। यहाँ तक कि अपने दोनो लाडले लालो को जीते जी सरहिद की दीवारो मे चुने जाते देखकर भी इनके या उन बच्चो के हृदय मे हिदु धर्म के प्रति आस्था तिल भर भी शिथिल न हुई। इस वीर और विद्वान् महापुरुष ने एक बडा भारी सैनिक सगठन तो अवश्य कर दिया किन्तु सेनापति के स्थान पर शोभित होने वाले, परम्परा से प्राप्त गुरु के प्रतिष्ठित पद का भी अन्त कर दिया। उन्होने शायद (गुरुडम) की बुराइयो को देखकर ही ऐसा किया होगा। गुरुजी ने सुनीतिप्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धिसागर, चण्डीचरित्र, आदि अनेक ग्रन्थो की रचना की। चण्डीचरित्र दुर्गासप्तशती के आधार पर लिखा हुआ इनका बडा ही ओजस्वी वीर काव्य है। इनकी भाषा भी अत्यन्त सुव्यवस्थित, प्रौढ साहित्यिक व्रज है। इन्होने स्वय तो बहुत कुछ लिखा ही, साथ ही सूर्यप्रकाश आदि काव्य महाकवि सतोषसिह आदि दूसरे विद्वानो से भी लिखवाये। ऐसे विद्वानो मे सन्त गुलाबसिह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके लिखे हुए वेदान्त-सम्बन्धी चार ग्रथो का वेदान्त-प्रेमी सिक्खो मे बडा आदर है। गुरुजी ने अपने अनेक शिष्यो को काशी भेज कर वेदो का सागोपाग अध्ययन करवाया। दशम गुरुग्रन्थ मे इनकी वाणियो का सग्रह है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

निर्जर निरूप हो कि सुन्दर स्वरूप हो कि,
भूपन के भूप हो कि दाता महादान हो ?
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया,
रोग सोग के मिटैया किधौ मानी महामान हो ?

विद्या के विचार हो अद्वैत अवतार हो कि,
सुद्धता की मूर्ति हो कि सिद्धता की सान हो ?
जोबन के जाल हो कि कालहू के काल हो कि,
सत्रुन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो ?

कहा भयो जो सब जग जीत सु लोगन को बहुत्रास दिखायो ।
और कहा जु पै देस विदेसन माहि भले गज गाहि बधायो ।।
जो मन जीतत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो ।
लाज गई कछु काज सरचो नहि लोक गयो परलोक गमायो ।।

लालकवि—इनका जन्म स० १७१४ तथा मृत्यु स० १७६४ के बाद किसी समय महाराजा छत्रसाल के साथ किसी युद्ध मे हुई थी ।

मऊ निवासी इस वीर कवि का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था । इन्होंने अपने छत्रप्रकाश काव्य मे चम्पतराय के पुत्र प्रसिद्ध देश-भक्त महाराज छत्रसाल की वीरता का अत्यन्त विशद, ओजस्वी और सरल भाषा मे वर्णन किया है । इसमे शब्दा-डम्बर या व्यर्थ के वर्णन-विस्तार का कही नाम भी नही है । ऐतिहासिक घटनाएँ भी बिना किसी तोड-मरोड के सर्वथा सत्य रूप मे अकित की गई हैं । बुन्देलवश की उत्पत्ति, चम्पतराय के विजय-वृत्तान्त व उन पर मुगलो के आक्रमण, तथा छत्रसाल द्वारा औरगजेब के हाथो से पुन अपने राज्य का उद्धार और अनेक प्रदेशो पर विजय आदि ऐतिहासिक तथ्यो तथा प्रबन्ध-काव्योचित सभी गुणो के सर्वांगीण समावेश के कारण छत्रप्रकाश का हिन्दी साहित्य मे विशेष स्थान है । इसके अतिरिक्त विष्णु-विलास और राज्य-विनोद नामक इनके दो अन्य ग्रन्थ भी कहे जाते हैं । 'छत्रप्रकाश' काशी-नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है । क्योकि उक्त ग्रथ मे छत्रसाल का जीवन वृत्त स० १७६४ तक का दिया गया है । इसलिए प्रतीत होता है कि ये उक्त स० मे ही इस ससार से उठ गये थे । या यह ग्रथ अधूरा है । 'छत्र-प्रकाश' दोहा, चौपाई, छन्द मे लिखा गया है । वीर रस का परिपाक, उक्त दोहा-चौपाई आदि मे ठीक नही हो सकता अत यदि ये कवित्त आदि छन्दो मे अपनी रचना करते तो अत्यधिक सफलता और लोक-प्रियता प्राप्त कर लेते । इनकी रचना का एक नमूना देखिए—

जिन मे छिति छत्री जाये । चारिहु युगन होत जे आये ।।
भूमि भार भुज दडिन थम्भे । पूरन करे जु काज अरम्भे ।।
गाय वेद द्विज के रखवारे । जुद्ध जीति जे देत नगारे ।।
छत्रिन की यह वृत्त बनाई । सदा जग की खाय कमाई ।।
गाय वेद विप्रन प्रतिपालै । घाउ ऐडधारिन पर घालै ।।
उद्यम ते सपति घर आवै । उद्यम करै सपूत कहावै ।।

उद्यम करै सग सब लागै । उद्यम ते जग मे जस जागै ।।
समुद उतरि उद्यम ते जैये । उद्यम ते परमेश्वर पैये ।।
जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई । जग वृत्ति क्षत्रिन तब पाई ।।
यह ससार कठिन रे भाई । सबल उमडि निर्बल को खाई ।।
छनिक राज-सम्पति के काजै । बधुन मारत बन्धु न लाजै ।।
कछु कालगति जानि न जाई । सब मे कठिन कालगति भाई।।
सदा प्रबुद्धि बुद्धि है जाकी । तासो कैसे चले कजा की ।।
साहस तजि उर आलस माडे । भाग भरोसे उद्यम छाड़ै ।।
ताहि तजै जग सम्पति ऐसे । तरुनी तजै वृद्धपति जैसे ।।

सूदन—ये मथुरा-निवासी चौबे ब्राह्मण थे, और भरतपुर नरेश सुजान सिह उपनाम सूरजमल के आश्रय मे रहते थे। इन्होने अपने आश्रयदाता की वीरता के वर्णन मे सुजानचरित्र नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा। भरतपुर के इन जाट नरेशो का भारतीय वीरता के इतिहास मे अपना एक विशेष स्थान है। मुगल साम्राज्य के अतिम दिनो मे इनकी वीरता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। पानीपत की तीसरी लडाई मे भरतपुर-नरेश ने अपने प्रचण्ड पराक्रम के अपूर्व जौहर दिखाए थे, किन्तु अन्तिम दिनो मे पासा पलटा और इनकी इच्छानुसार सैन्य-सचालन न हो पाया इसलिए ये पेशवा से रूठ कर वापिस भरतपुर को लौट आये। फलत मराठो को पराजय का मुह देखना पडा।

प्रस्तुत पुस्तक मे ऐतिहासिक घटनाओ का बिल्कुल यथार्थ वर्णन है। अहमदशाह बादशाह के सेनापति असदखाँ ने जब फतहअली पर चढाई कर दी तो सूरजमल ने फतहअली की सहायता कर असदखाँ की सेना के परखचे उडा दिये और असदखाँ का काम तमाम कर दिया। इन्होने माडवगढ और मेवाड के कुछेक प्रदेशो को जीतकर जयपुर-नरेश की सहायता की, और मराठो का मुह मोड दिया। फिर इन्होने बादशाह के सेनापति सलावतखाँ को परास्त किया, पठानो पर आक्रमण किया, और बादशाह से लड कर दिल्ली को भी लूट लिया। सुजान-चरित्र मे य सब घटनाएँ अपने वास्तविक रूप मे घटित की गई है। इसीलिए यह काव्य अपना विशेष ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। सूदन ने युद्ध तथा सैनिको मे अपूर्व उत्साह का सचार कर देने वाली वीरोल्लासमयी वक्तृताओ व साहसी शूर-वीरो के हृदयो की उमगमयी उत्ताल तरगो का बडी सजीव और ओजस्वी भाषा मे वर्णन किया है। यह काव्य वास्तव मे एक वीर

काव्य है, अत रणक्षेत्र मे सन्नद्ध वीरो को इसके कडकडाते कवित्त जैसे प्रभावित कर पाते है वैसे आज के शान्तचित्त रसिक पाठको को नही। इसमे एकमात्र वीररस ही आदि से अन्त तक प्रवाहित हो रहा है। कवि ने इसके अध्यायो का नाम भी जग रखा है। यह ग्रन्थ सात जगो तथा विविध छन्दो मे लिखा गया है। उक्त विशेषताओ के साथ-ही-साथ इसमे कुछ-एक त्रुटियाँ भी है। जैसे कि वर्णनो का अत्यधिक विस्तार, घोडो, शस्त्रो आदि के असख्य नामो की भरमार। यह इसके साहित्यिक सौन्दर्य को न्यून कर देती है। ऐसे विस्तृत वर्णन प्राचीन-काव्य-शैली के एक आवश्यक अग समझे जाते रहे। आज के पाठको का भले ही उनको पढते-पढते चित्त ऊब जाय पर पुराने पाठक उनमे भी खूब रस लेते थे, इसमे कुछ सन्देह नही। प्रस्तुत पुस्तक का रचनाकाल सवत् १८१०-१८२० के लगभग माना गया है,क्योकि इसमे स० १८०२ से १८१० तक की घटनाओ का वर्णन है। इसकी कुछ एक कविताएँ देखिए—

सेलनु धकेला ते पठान मुख मैला होत,
केते भट मेला है भजाये भुव भग मे।
तग के कसे ते तुरकानी सब तग कीनी,
दग कीनी दिली औ दुहाई देत बग मे॥
सूदन सराहत सुजान किरवान गहि,
धायो धीर धरि वीरताई की उमग मे।
दक्खिनी पछेला करि खेला ते अजब खेल,
हेला मारि गग मे रुहेला मारे जग मे॥

आप विख चाखै भय्या षट् मुख राखे देखि,
आसन मे राखै बस बास जाको अँचलै।
भूतन के छैया आस पास के रखैया और,
कलि के नथैया हूँ के ध्यान हूँ ते न चलै॥
बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल,
भाग को धतूरे को पसारि देत अचलै।
घर को हवाल यहै सकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे, पूत मोदक को मचलै॥

धडधद्धर धड़धद्धर भडभब्भर भड़भब्भर,
तडतत्तर तडतत्तर कडकक्कर कडकक्कर ।
दब्बत लुत्थिन अब्बत, इक सुखब्बत से,
चब्बत लोह अचब्बत सोनित गब्बत से ।।
चुट्टित खुट्टित केस सुलुट्टित इक्क मही,
चुट्टित पुट्टित सीस सुखुट्टित तग गही ।
कुट्टित घुट्टित काय बिघुट्टित प्रान सही,
छुट्टित आयुध हुट्टित गुट्टित देह दही ।।

जोधराज—ये बालकृष्ण गौड ब्राह्मण के पुत्र थे और नीमराणा (अलवर) के राजा चन्द्रभान के आश्रय मे रहते थे । इन्होने रणथम्भोर के महाराज हम्मीरदेव की वीरता का वर्णन करने के लिए 'हम्मीररासो' सवत् १८७५ मे लिखा था । महाराज हम्मीर ने अलाउद्दीन से डटकर लोहा लिया था । इतिहास के इसी गौरवशाली पृष्ठ की कथा जोधराज ने बडे ही ओजपूर्ण शब्दो मे कही है । इसमे न कही विशेष अत्युक्ति है न अनैतिहासिक कल्पनाएँ ही । मुसलमानो से टक्कर लेने वाले प्राचीन वीर की कथा जोधराज ने बडी ही उपयुक्त और प्रभावपूर्ण कविताओ मे कहकर कवि-कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन किया । इनकी कविता का एक-एक पद कवि-हृदय की भावनाओ को अभिव्यक्त करता है । इनकी कविता के कुछ नमूने देखिए—

कब हठ करै अलावदी रणथभवर गढ आहि ।
कबै सेख सरनै रहै बहुरचो महिमा साहि ।।
सूर सोच मन मे करौ, पदवी लहौ न फेरि ।
जो हठ छाडो राव तुम, उत न लजै अजमेरि ।।
सरन राखि सेख न तजौ, तजौ सीस गढ देश ।
रानी राव हमीर को, यह दीनो उपदेश ।।
कहँ पँवार जगदेव सीस आप कर कट्टचो ।
कहाँ भोज विक्रम सुराव जिन पर दुख मिट्टचो ।।
सवा भार नित करन कनक विप्रन को दीनो ।
रह्यो न रहिये कोय देव नर नाग सु चीनो ।।

यह बात राव हम्मीर सू रानी इमि आसा कही ।
जो भई चक्कवै-मडली सुनौ राव दीखै नही ।।
जीवन-मरन-सजोग जग कौन मिटावै ताहि ।
जो जनमै ससार मे अमर रहै नहि आहि ।।
कहाॅ जैत कहॅ सूर, कहाॅ सोमेश्वर राणा ।
कहाॅ गये प्रथिराज साह दल जीति न आणा ।।
होतब मिटै न जगत मे कीजै चिन्ता कोहि ।
आसा कहै हमीर सों अब चूको मत सोहि ।।

चन्द्रशेखर वाजपेयी—ये मुअज्जमाबाद के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८५५ और देहान्त स० १९३० मे हुआ था। ये जोधपुर के महाराज मानसिह के यहाँ रहे। अन्तिम दिनो में ये पटियाला-नरेश कर्मसिह के आश्रय में जा पहुँचे। पटियाला के महाराज नरेन्द्रसिह की प्रेरणा से इन्होने अपना प्रसिद्ध काव्य 'हम्मीर-हठ' लिखा। इस काव्य मे वीर दर्प की बडी सुन्दर और ओजपूर्ण व्यजना हुई है। काव्य के पद-पद में उत्साह का प्रभाव उमड रहा है। इनकी-सी सुव्यवस्थित, परिमार्जित और ओजस्वी भाषा इने-गिने ही वीर कवियो मे दिखाई देती है। व्यर्थ के शब्दाडम्बर या नामो की भरमार या अनावश्यक वर्णन नही किया गया। भूषण मे वीर काव्योचित अनेक गुणो के रहते हुए भी रीति की रूढिबद्धता से उसका महत्त्व कम हो गया। लाल के छत्र-प्रकाश की दोहा-चौपाई-पद्धति वीर काव्यो के लिए अधिक उपयुक्त नही जान पडती। दोहा, चौपाई, छन्द मे हृदय की उद्दाम प्रवृत्तियो का निरूपण भली-भाँति हो ही नही सकता। व्यर्थ के वर्णन-विस्तार ने सूदन के काव्य को साधारण कोटि मे ला बैठाया किन्तु चन्द्रशेखरके 'हम्मीरहठ' मे उक्त किसी प्रकार की त्रुटि नही है। नवीन उद्भावनाएँ या कल्पनाएँ करने के पचडे मे न पडकर इस कवि ने प्राचीन साहित्यिक परम्परा से प्राप्त घटनाओ और कल्पनाओ के सहारे ही इस काव्य की रचना की है और अधिकतर जोधराज के हम्मीर रासो का सहारा लिया गया है। फिर भी यह उससे सर्वथा स्वतन्त्र, मौलिक और साहित्यिक महत्त्व से युक्त रचना है। हम्मीरहठ का वीर साहित्य में पर्याप्त सम्मानपूर्ण स्थान है। इस कवि की भाषा अत्यन्त अलकृत व स्वाभाविक सौन्दर्य-समन्वित है। विषय के अनुसार पदावली मे परिवर्तन चन्द्रशेखर की अपनी विशेषता है।

इनकी वीर रसात्मक कविताओ को पढते-पढते पाठक के भुज दण्ड फडकने लगते है, तो उधर शृगारी कविताएँ रसिक के अन्तर्तम को रस-विभोर कर देती हैं। यह काव्य सचमुच हिन्दी साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न है। हम्मीर हठ के अतिरिक्त

इस कवि ने विवेक-विलास, रसिक-विनोद, हरि भक्तिविलास, नखशिख, वृन्दावन-शतक, गुहपचाशिका, ताजिक ज्योतिष, माधवी वसन्त ये आठ अन्य पुस्तके भी लिखी थी। इनके हम्मीर हठ की कुछ कविताएँ देखिए—

उवै भानु पच्छिम प्रतच्छ, दिन चंद प्रकासै।
उलटि गग बरु बहै, काम रति प्रीति बिनासै॥
तजै गौरि अरधग, अचल ध्रुव आसन चल्लै।
अचल पवन वरु होय, मेरु मन्दर गिरि हल्लै॥
सुरतरु सुखाय, लोमस मरै, मीर! सक सब परिहरौ।
मुख-बचन वीर हम्मीर को बोलि न यह कबहूँ टरौ॥

भागे मीरजादे पीरजादे और अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाय कै।
भागे गज बाजि रथ पथ न सँभारै, परै,
गोलन पै गोल, सूर सहमि सकाय कै॥
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि बेगि,
बलित वितुण्ड पै बिराजि बिलखाय कै।
जैसे लगे जगल मे ग्रीषम की आगि,
चलै भागि मृग महिष बराह बिललाय कै॥

थोरी थोरी बैसवारी नवल किसोरी सबै,
भोरी भोरी बातन विहँसि मुख मोरती।
बसन विभूषन विराजत विमल वर,
मदन मरोरनि तरकि तन तोरती॥
प्यारे पातसाह के पास अनुराग-रंगी,
चाय भरी चायल चपल दृग जोरती।
काम-अबला सी, कलाधर की कला सी,
चारु चपक-लता सी चपला सी चित चोरती॥

डिंगल भाषा का परवर्ती साहित्य

डिंगल भाषा के वीरगाथाकालीन साहित्य का परिचय पहले दिया जा चुका है। पूर्वनिर्दिष्ट रचनाओ के अतिरिक्त भी डिंगल भाषा मे सैकडो छोटी-मोटी रचनाएँ लिखी जाती रही। इस भाषा का साहित्य 'ख्यात' अर्थात् इतिहास, 'बात' अर्थात् वार्ता या कल्पित कथा, 'गीत', 'प्रसग', 'दासतान', 'वाचनिका' आदि कई

रूपो मे उपलब्ध है। इसके जिन प्रमुख साहित्यकारो का उल्लेख पहले नही हुआ उनका परिचय यहाँ दिया जाता है—

श्रीधर—इन्होने स० १४५४ मे 'रणमल छन्द' नामक रचना मे ईडर के राठौर राजा रणमल की वीरता का वर्णन किया था।

शिवदास—गगरोलगढ (कोटा राज्य) के राजा अचलदास खीची के आश्रित इस कवि ने स० १४७० मे 'अचलदास खीचीरी वाचनिका' नामक पुस्तक मे उक्त महाराज के साथ माडू के सुलतान के युद्ध का वर्णन किया है।

सूजो—बीठू खाप के इस चारण कवि ने 'राऊ जेडतसी रा छन्द' नामक रचना मे बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान के साथ बीकानेर के राव जैतसिह के युद्ध का वर्णन है। पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। इसका रचनाकाल स० १६०० है।

ईश्वरदास—मारवाड के भद्रसेन नामक ग्राम के निवासी इस भक्त चारण ने हरिरस, बाललीला, गरुडपुराण, सभापर्व, हालाझालारा कुडलियाँ, गुणआगम, रासकैलाश आदि कई ग्रन्थ स० १६१५ से १६७५ तक लिखे।

दयालदास—मेवाडनिवासी इस भाट कवि ने 'राणारासो', 'रासो को अग' और 'अकल को अग' ये तीन ग्रन्थ स० १६७५ के लगभग लिखे। ये एक अच्छे भावुक कवि थे। अत राणारासो मे मेवाड का इतिहास पर्याप्त सफलतापूर्वक लिख सके।

जग्गाजी—इस चारण कवि के 'रतन महेसदासोतरी वाचनिका' नामक ग्रन्थ मे जोधपुर के महाराज जसवन्तसिह के साथ शाहजहाँ के विद्रोही पुत्र औरगजेब के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे रतलाम-नरेश रतनसिह ने विशेष वीरता दिखाई थी अत उन्ही के नाम पर यह पुस्तक उक्त युद्धकाल स० १७१५ के लगभग लिखी गई थी। पुस्तक मे गद्य और पद्य दोनो का प्रयोग हुआ है।

मुहणोत नैणसी—ये जोधपुर-नरेश जसवन्तसिह के मत्री थे। इन्होने स० १७२० के लगभग 'मुहणोत नेणसीरी ख्यात' नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक गद्य-ग्रन्थ मे राजपूताना के ३६ राजवशो का विस्तृत इतिहास लिखा।

मान—इस मेवाडी कवि ने स० १७३७ मे उदयपुर के महापराक्रमी महाराणा राजसिह की वीरता का वर्णन करने के लिए 'राजविलास' नामक सुन्दर ऐतिहासिक काव्य लिखा। ग्रन्थ में शृगार और वीर रस प्रधान है।

हरिदास—इस भाट कवि ने स० १७६३ मे 'अजीतसिह-चरित्र' नामक ग्रन्थ में महाराजा जसवन्तसिह और उनके पुत्र अजीतसिह का इतिहास मवतो के साथ लिखा था।

वीरभाण—इस चारण सुकवि ने 'राजरूपक' मे जोधपुर के महाराज अभयसिह और अहमदाबाद के सूबेदार सरबलदखाँ के युद्ध का वर्णन स० १८०६ मे किया था ।

करणीदान—मेवाड के शूलवाला ग्राम के निवासी इस चारण कवि ने 'सूरजप्रकाश' मे महाराज अभयसिंह तक का जोधपुर का इतिहास दिया है ।

गोपीनाथ—बीकानेर-नरेश के आश्रित इस कवि ने 'ग्रन्थराज' (गजसिंह-रूपक) मे महाराज गजसिंह का चरित्र स० १८०० मे लिखा था । ये डिंगल भाषा के श्रेष्ठ कवि थे ।

हुक्मीचन्द—जयपुर के भडेडिया नामक ग्राम के निवासी और जयपुर-नरेश प्रतापसिंह के आश्रित, इस कवि के दोहे, कुण्डलियाँ, छप्पय आदि राजस्थान मे अत्यन्त ही लोकप्रिय है । इनका रचनाकाल स० १८२० है ।

मंछाराम—जोधपुर के निवासी इस कवि ने स० १८६३ मे 'रघुनाथ रूपक' नामक रीतिग्रन्थ लिखा जिसके उदाहरणो मे रामायण की कथा क्रम से कही गई है । इस प्रकार यह ग्रन्थ अनुपम है ।

महाराजा मानसिंह—जोधपुर के इन महाराज ने हिन्दी और सस्कृत मे लगभग २५ ग्रन्थ लिखे थे । इनका जन्म स० १८३९ मे हुआ था ।

बाकीदास—इस चारण कवि ने २७ ग्रन्थ लिखे, जिनसे राजपूताने के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पडता है । ये ग्रन्थ काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्रकाशित हो चुके है । कवि का जन्म स० १८२८ मे और देहान्त १८९० मे हुआ था ।

किशनजी—मेवाड के महाराणा भीमसिंह के आश्रित इसकवि ने भीम विलास, रघुवरजसप्रकाश नामक ग्रन्थो मे क्रमश महाराणा भीमसिंह का जीवनचरित्र और छन्दो का वर्णन किया है । इनकी भाषा प्रौढ और परिमार्जित है । इनका रचनाकाल स० १८३४ से १८८८ है ।

बख्तावरजी—इस मेवाडी कवि ने स० १९०० के लगभग केहरप्रकाश, रसोत्पत्ति सचार्णव, आदि ११ ग्रन्थ बनाये थे ।

सूर्यमल—बून्दी-राज्य के आश्रित इस कवि ने वशभास्कर और वीरसतसई नामक दो ग्रन्थ लिखे । इनका वश-भास्कर अत्यन्त प्रसिद्ध है । किन्तु साहित्यिक दृष्टि से वीरसतसई अत्युत्कृष्ट रचना है । इनकी कविता मे वीर भावनाओ की बडी ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । इनका जन्म स० १८७२ और देहान्त १९२० मे हुआ था ।

दुरसा जी—इस मेवाडी कवि ने महाराणा प्रताप सिंह की वीरता का बडे ही उत्साह जनक रूप मे वर्णन किया है।

मुरारीदान—डिंगल भाषा के महान् विद्वान् इस कवि ने डिंगल-कोष और वश-समुच्चय नामक ग्रन्थ लिखे। ये सूर्यमलजी के दत्तक पुत्र थे और उनके वश-भास्कर को इन्होने पूरा किया था।

ऊमरदान—इस मारवाडी कवि ने बहुत-सी सुधारवादी कविताएँ लिखी, जो 'ऊमरकाव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका जन्म स० १९०८ में हुआ था।

बालाबक्श—जयपुर राज्य-निवासी इस चारण-कवि ने १९ ग्रन्थ तथा बहुत-सी फुटकर कविताएँ लिखी और काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा को १२०००) रुपये दान दिया जिससे इनके नाम पर पुस्तकमाला प्रकाशित हो रही हैं। इनका जन्म स० १९१२ मे और देहान्त १९९८ मे हुआ था।

महाराज चतुरसिंह—मेवाड के राजवशज हिन्दी सस्कृत आदि अनेक भाषाओ के ज्ञाता इस कवि ने शान्तरस और भक्ति से पूर्ण १६ ग्रन्थ लिखे थे। इनका जन्म स० १९३३ में हुआ था।

अभ्यास

१ महाकवि भूषण के रचनाकाल पर प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओ के राष्ट्रीय पक्ष पर व्यापक विचार प्रकट करें।

२ वीरगाथा काल की रचनाओ तथा रीतिकाल की वीर रचनाओं में क्या साम्य वैषम्य है, भाषा, भाव तथा शैली के आधार पर स्पष्ट विवेचन करें।

३ गुरुगोविन्दसिंह की साहित्य व समाज-सेवाओ का सक्षिप्त परिचय दे।

४ लाल और सूदन इन दोनो कवियो का परिचय देकर उनकी रचनाओ की आलोचना करे।

५ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखें—

१ जोधराज, २ चन्द्रशेखर, ३ शिवाबावनी, ४ पृथ्वीराज राठौर।

६ वीरगाथाकाल के पश्चात् डिंगलभाषा के साहित्य की गतिविधि कैसी रही? इसके इन परवर्ती कवियो मे से किन्ही प्रसिद्धतम दो कवियों का परिचय दे।

चौदहवाँ अध्याय

रीतिकाल का भक्ति-साहित्य

सवत् सत्रह सौ के लगभग हिन्दी मे भक्ति-सम्बन्धी साहित्यिक सुरसरी-स्रोत के साथ शृगार और वीरता रूपी यमुना और सरस्वती की दो धाराएँ और आ मिली। इस प्रकार इस काल मे एक प्रकार से साहित्यिक त्रिवेणी का सगम हो गया। जिस प्रकार वीरगाथाकालीन वीरता की पूर्व-प्रवाहित धारा ही क्रमश भक्ति मे परिवर्तित हो गई थी और वीरगाथा की धारा कुछ समय के लिए सर्वथा समाप्त हो गई वैसे भक्ति-सम्बन्धी-धारा शृगार मे परिवर्तित होकर सहसा समाप्त नही हो गई प्रत्युत शृगार से प्रभावित अपने एक नवीन रूप मे वह अबाध गति से इस युग मे भी बहती रही।

इस काल के भक्त कवियो मे कुछ रामभक्त है, तो दूसरे कृष्णभक्त, और कई नीति और धर्म के उपदेशक है। उपदेशको मे भी अनेक साहित्यिक सरसता लिए हुए अपनी रचनाएँ लिखते रहे। कुछ ने केवल सामान्य उपदेश की कुडलियाँ या दोहे लिखे। इस प्रकार रीतिकाल का भक्ति-साहित्य भी विविध रूपो मे प्रकट होता रहा। अब यहाँ ऐसे ही कवियो का परिचय दिया जाता है।

ताज—ये करौली की रहने वाली कृष्णभक्त मुस्लिम महिला थी। इनके रचनाकाल का आरम्भ सवत् १७०१ से माना जाता है। मीराबाई की भाँति इन्होने भी कृष्ण-प्रेम मे तन्मय होकर अपने अन्तर् के उद्गार अत्यन्त मार्मिक रूप मे व्यक्त किये है। इनके फुटकर कवित्त-सवैये आदि ही प्राप्त हुए है। इनकी एक कविता देखिए—

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूगी मै।
देवपूजा ठानी मै निमाज हू भुलानी,
तजे कलमा कुरानी सारे गुनन गहूगी मै॥
सावला सलोना सिरताज सिर कुल्ला दिये,
तेरे नेह दाग मे निदाघ ह्वै दहूँगी मै।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै,
हौतो तुरकानी हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मै॥

घनानन्द या आनन्दघन—इनका जन्म स० १७४६ के लगभग और मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण मे स० १८१७ मे हुई । ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुन्शी और जाति के कायस्थ थे । इनका सुजान नामक वेश्या से प्रेम था । ये साहित्य और सगीत दोनो कलाओ के पारगत, रसिक-शिरोमिण भावुक कवि थे । एक दिन कुछ षड्यन्त्रकारियो की प्रेरणा से बादशाह ने इन्हे गाना सुनाने के लिए कहा । इनके टाल-मटोल करने पर उक्त षड्यन्त्रकारी दरबारियो ने कहा कि सुजान के कहने पर ये गायेगे । सुजान दरबार मे बुलाई गई और आनन्दघन ने उस अपनी प्रेमिका के सामने मुख और बादशाह की ओर पीठ करके गाना सुना दिया । बादशाह इससे सन्तुष्ट भी हुआ और रुष्ट भी । इसलिए इन्हे नगर से निकल जाने की आज्ञा दे दी । चलते समय इन्होने सुजान को भी अपने साथ चलने को कहा किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया । इस पर इन्हे सासारिक माया-मोह से घृणा और विरक्ति हो गई । ये वृन्दावन जाकर वैष्णव हो गये । वही भक्तिपूर्ण रचना लिखकर अपना शेष जीवन व्यतीत कर दिया । अन्तिम दिनो मे अहमदशाह अब्दाली के सिपाहियो ने इन्हे घेर कर रुपया लेने के लिए 'जर-जर' (धन-धन) कहके इनसे रुपये माँगे । इन्होने 'जर' शब्दको उलटकर 'रज-रज' कहते हुए तीन मुट्ठी धूल फेक दी । इस पर क्रुद्ध हो सिपाहियो ने इनका बायाँ हाथ काट डाला । सामान्यतया इन्होने शृगार के सयोग और वियोग दोनो पक्षो पर लिखा है, तथापि प्राय प्रधानता विप्रलम्भ ही की है । सुजान के उक्त व्यवहार से इनके भावुक हृदय को बडी भारी ठेस पहुँची । तभी से ये विरह-वेदना के गीतो मे ही तन्मय रहते और अपनी प्रत्येक कविता में 'सुजान' ही को सम्बोधित करते । यह 'सुजान' शब्द शृँगाररस की कविताओ मे नायक के लिए और भक्ति-सम्बन्धी रचनाओ मे श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है । इनकी भाषा बडी ही सरस, प्रौढ और प्रवाहयुक्त है । इसमें कही शैथिल्य का नाम नही । लाक्षणिकता, मूर्तिमत्ता और प्रयोगो की विलक्षणता इन-जैसी अन्य व्रज-भाषा-कवियो मे बहुत ही कम दिखाई देती है । रसखान आदि कुछ ही कवि इन-जैसी सरस, प्राजल व मुहावरेदार भाषा लिखने में समर्थ हो सके ।

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'घनानन्द कवित्त' की भूमिका मे बडे प्रमाणो से यह सिद्ध किया है कि 'घनानन्द' या आनन्दघन नामवाले निम्नलिखित तीन कवि हुए है.—

नदगाववासी आनन्दघन	सोलहवी शती का उत्तरार्ध
जैन आनन्दघन	सत्रहवी शती का उत्तरार्ध
वृन्दावनवासी आनन्दघन	अठारहवी शती का उत्तरार्ध

इसी पुस्तक मे यह भी सिद्ध किया गया ह कि आनन्दघन की मृत्यु नादिरशाह के हमले मे नही प्रत्युत अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण में स० १८१७ में हुई थी। नादिरशाह ने तो मथुरा पर आक्रमण ही नही किया था। अब तक इनकी निम्नस्थ ४० पुस्तको का पता लगा है —

१ सुजानहित, २ कृपाकन्द निबन्ध ३ वियोग वेली, ४ इश्कलता, ५ यमुनायश, ६ प्रीतिपावस, ७ प्रेम पत्रिका, ८ प्रेम सरोवर, ९ व्रज विलास, १० रसवन्त, ११ अनुभव चन्द्रिका, १२ रग बधाई, १३ प्रेम-पद्धति, १४ वृषभानुपुर सुषमा, १५ गोकुल गीत, १६ नाम माधुरी, १७ गिरिपूजन, १८ विचार सागर, १९. दानघटा, २० भावना प्रकाश, २१ कृष्ण कौमुदी, २२ धाम चमत्कार, २३ प्रिया प्रसाद, २४ वृन्दावन मुद्रा, २५ व्रजस्वरूप, २६ गोकुल चरित्र, २७ प्रेम पहेली, २८ रसनायश, २९ गोकुल विनोद, ३० व्रज प्रसाद, ३१ मुरलिकामोद, ३२ मनोरथ मजरी, ३३ व्रज व्यवहार, ३४ गिरिगाथा, ३५ व्रज वर्णन, ३६ धामाष्टक, ३७ त्रिभगी छद, ३८ कवित्त सग्रह, ३९ स्फुट, ४० पदावली।

इनकी दो कविताएँ देखिए —

पहिले अपनाय सुजान सनेह सो,
क्यो फिर नेह को तोरियै जू।
निरधार आधार दै धार मझार,
दई गहि बॉह न बोरियै जू॥
घनआनद आपने चातक को,
गुन बॉधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढाय क आस,
बिसास मे क्यो विष घोरियै जू॥

पर कारज देह को धारे फिरौ,
परजन्य ! जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ,
सब ही विधि सज्जनता सरसौ॥
घनआनद जीवनदायक हौ,
कछु मोरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आगन,
मो असुवान को लै बरसौ॥

महाराज विश्वनाथसिंह—ये बडे भारी विद्याप्रेमी, काव्य-रसिक और भक्त नरेश थे। आपने स० १७७८ से १७९७ तक रीवा राज्य पर शासन किया था। इनके आश्रय मे रहने वाले अनेक कवियो ने तो इनके नाम पर बहुत से ग्रन्थ बनाये ही, साथ ही इन्होने स्वय भी अनेक ग्रन्थो की रचना की थी। आनन्द-रघुनन्दन नाटक, उत्तम-काव्यप्रकाश, रामायण, गीता रघुनन्दन प्रमाणिका, सर्व-सग्रह, कबीर-बीजक की टीका, आनन्द-रामायण, धनुर्विद्या, परधर्म-निर्णय, उत्तमनीति-चन्द्रिका, गीतावली पूर्वार्ध, पाखण्डखण्डिनी, ध्रुवाष्टक, ककहरा, सगीत रघुनन्दन आदि विविध विषयो के इनके बत्तीस ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। ये सगुण रामोपासक होते हुए भी निर्गुण वाणी के प्रति आस्था रखते थे। इन्होने 'कबीर-बीजक की टीका' सगुण परक ही लिखी है। इनका आनन्दरघुनन्दन नाटक हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक माना जाता है क्योकि इसमे केवल पद्यात्मक सवाद ही नही प्रत्युत गद्य को भी आवश्यक स्थान दिया गया है। इनकी रचना का नमूना आगे दिया जाता है—

भाइन भृत्यन विष्णु सो, रैयत भानु सो, सत्रुन काल सो भावै।
सत्रु बली सो बचै करि बुद्धि औ अस्त्रसो धर्महि नीति चलावै॥
जीतन को करे केते उपाय औ दीरघ दृष्टि सबै फल पावै।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै नृप सो कबहूँ नहि राज गँवावै॥

भक्तवर नागरीदासजी—ये कृष्णगढ के नरेश थे। इनका वास्तविक नाम महाराज सावतसिंह था और जन्म स० १७५६ मे हुआ था। कहा जाता है कि ये देहली आये हुए थे कि पीछे इनके पिता का देहान्त हो गया और राज्य पर इनके भाई ने अधिकार कर लिया। इन्होने मरहटो की सहायता से अपना राज्य पुन प्राप्त किया किन्तु इस गृह-कलह से ये विरक्त-से हो गये,और स० १८१४ मे अपने पुत्र को राज्य देकर वृन्दावन आकर 'नागरीदास' के नाम से प्रसिद्ध हुए। वृन्दावन मे इनकी उपपत्नी 'बणीठणीजी' भी इनके साथ रहकर कविता किया करती थी। कृष्णगढ में इनकी तिहत्तर पुस्तके सुरक्षित है। ये पूर्ण भक्त थे, अत इनकी रचनाओ में भावो की पुनरुक्ति का होना स्वाभाविक है। इन्होने गीत, कवित्त, सवैया, रोला आदि विविध छन्दो और शैलियो में अपनी रचनाए लिखी थी जिनकी भाषा भी सामान्यतया सुव्यवस्थित और सुन्दर है। व्रजसार, रामचरितमाला, वैराग्य-वल्लरी, जुगलभक्ति-विनोद आदि इनकी रचनाए है। नमूना देखिए—

'जामे रस सोई हरचो, यह जानत सब कोय।
गौर स्याम द्वै रग बिन, हर्यो रग नहि होय॥

अरे पियारे क्या करौ, जाहि रहो है लाग।
क्यो करि दिल बारूद मे, छिपे इश्क की आग।।
फूले फूलनि स्वेत बिच, अलि बैठे मधु लैन।
दम्पति हित वृन्दविपिन, धारे अगणित नैन।।

सबलसिह चौहान—इनका निवासस्थान निश्चित नही है। सबलगढ या चन्दागढ के ये राजा थे ऐसा कहा जाता है। इनका रचनाकाल स० १७१२ से १७८१ तक है। इन्होने महाभारत का दोहा, चौपाई छन्द मे अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त ऋतु-सहार का भी भाषानुवाद किया था। 'रूपविलास' तथा एक छन्द-शास्त्र की पुस्तक ये दो और रचनाए भी इनकी कही जाती है। भाषा सरल है। उसमे व्यर्थ का शब्दाडबर नही। नमूना देखिए —

अभिमनु धाई खडग परहारे। सम्मुख जेहि पायो तेहि मारे।।
भूरिश्रवा बान दस छाँटे। कुवर हाथ के खडगहि काटे।।
तीन बान सारथि उर मारे। आठ बान ते अस्व सहारे।।
सारथि जूझि गिरे मैदाना। अभिमनु वीर चित्त अनुमाना।।
अर्जुनसुत इमि मार किय, महाबीर परचड।
रूप भयानक देखियत, जिमि जम लीन्हे दड।।

छत्रसिंह कायस्थ—वटेश्वर-क्षेत्र के निवासी इस कवि ने स० १७५७ में 'विजय-मुक्तावली' के नाम से महाभारत का अनुवाद किया था। इनकी भाषा चलती और ओजपूर्ण है। दो दोहे देखिए—

निरखत ही अभिमन्यु को विदुर डुलायो सीस।
रच्छा बालक की करो हे कृपाल जगदीस।।
आपुन काँधो युद्ध नही धनुष दियो भुवडारी।।
पापी बैठे गेह कत पाडुपुत्र तुम चारी।।

बख्शी हसराज—ये पन्ना-नरेश के आश्रित श्रीवास्तव कायस्थ थे। सखी सम्प्रदाय के अनुयायी होने के कारण इनका नाम 'प्रेमसखी' भी है। १ स्नेह-सागर, २ विरह-विलास, ३ रामचन्द्रिका और ४ बारहमासा। ये चार पुस्तके इनकी प्रसिद्ध है। इनकी रचना-शैली प्रौढ तथा भाषा शब्दाडम्बरहीन व प्रवाहयुक्त है। इनका जन्म स० १७९९ मे पन्ना मे हुआ था। इनकी एक कविता देखिए—

दमकति दिपति देह दामिनी सी चमकत चचल नैना ।
घूघट बिच खेलत खजन से उडि उडि दीठि लगै ना ।।
लटकति ललित पीठ पर चोटी बिच-बिच सुमन सॅवारी ।
देखे ताहि मैर सो आवत, मनहु भुजगिनि कारी ।।

जनकराज किशोरीशरण—ये अयोध्यानिवासी वैरागी महात्मा थे। स० १७९७ इनका रचनाकाल माना गया है। इन्होने भक्ति और ज्ञान सम्बन्धी तुलसी-दासचरित्र,कवितावली, सीताराम-सिद्धान्त-मुक्तावली आदि कई पुस्तके लिखी थी। इनकी कविता देखिए—

फूले कुसुम द्रुम विविध रग सुगन्ध के चहुँ चाब ।
गुंजत मधुप मधुमत्त नाना रग रज अग फाब ।।
सीरो सुगध सुमद बात विनोद कत बहत ।
परसत अनग उदोत हिय अभिलाष कामिनि कत ।।

अलबेली अलि—ये विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के महात्मा वशीअलि जी के शिष्य थे। इनका रचनाकाल स० १७७५ से १८०० तक है। इनके बनाये हुए 'समय-प्रबन्ध पदावली' नामक ग्रन्थ मे बडी सरस कविताएँ है।

चाचा हितवृन्दावनदास—ये पुष्कर के गौड ब्राह्मण थे और स० १७६५ मे उत्पन्न हुए थे। ये कृष्णगढ-नरेश भक्तवर नागरीदास जी के भाई बहादुरसिंहजी के आश्रय में रहते थे। पर भाई-भाई मे सघर्ष देख ये वृन्दावन चले गये। कहा जाता है कि इन्होने एक लाख पद लिखे थे, जिनमे से अब केवल दो हजार प्राप्त हैं। छत्रपुर के राजकीय पुस्तकालय मे इनकी रचनाएँ सुरक्षित है। इनकी कविताएँ कला और भाव दोनो दृष्टियो से उत्कृष्ट कही जाती है। नमूना नीचे दिया जाता है—

मिठबोलनी नवल मनिहारी ।
भौहै गोल गरूर है याके नैन चुटीले भारी ।।
चूरी लखि मुख ते कहै, घूँघट मे मुसकाति ।
ससि मनु बदरी ओंट ते दुरि दरसत यहि भॉति ।।
चूरो बडो है मोल को, नगर न गाहक कोय ।
मो फेरी खाली परी, आई सब घर टोय ।।

गिरिधर कविराय—इनका रचनाकाल स० १८००के लगभग माना जाता है। इनका विशेष परिचय प्राप्त नही हो सका। भाषा की दृष्टि से ये अवध के निवासी प्रतीत होते है। इनकी कुण्डलियाँ अत्यन्त लोकप्रिय है। ग्रामीण अपढ लोग भी इनकी किसी-न-किसी कुण्डली को समय-समय पर कहते रहते है। इनकी कुछ कुण्डलियाँ नीचे दी जाती है —

साईं बैर न कीजिये, गुरु पण्डित कवि यार।
बेटा बनिता पवरिया, यज्ञ करावनहार ॥
यज्ञ करावनहार, राजमन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप को तपै रसोई ॥
कह गिरिधर कविराय, युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सो तरह, दिये बनि आवै साई ॥

सोना लादन पिय गये, सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिय मिले, रूपा व्है गये केश ॥
रूपा ह्वै गये केश, रोय रग रूप गँवावा।
सेजन को बिसराम, पिया कबहुँ न पावा ॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौ ले सोना ॥

गुन के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रग, काग सब भये अपावन ॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिन गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के ॥

साई सब ससार मे, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ मे, तबलग ताको यार ॥

तबलग ताको यार, यार सग ही सग डोलै ।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नही बोलै ।।
कह गिरिधर कविराय, जगत यह लेखा भाई ।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साई ।

भगवत् रसिक—ये वृन्दावन-निवासी और टट्टी सम्प्रदाय के महात्मा ललितमोहनीदास के शिष्य थे । इनका रचनाकाल १८३० से १८५० तक माना जाता है । इनके कवित्त, कुण्डलियाँ और छप्पय बडे ही मनोहर और पवित्र प्रेम के परिचायक है । इनकी एक कविता देखिए—

कुजन ते उठि प्रात गात जमुना मे धौवै ।।
निधुबन करि दडवत बिहारी को मुख जौवै ।।
करै भावना बैठि स्वच्छ थल रहित उपाधा ।।
घर घर लेय प्रसाद लगै जब भोजन साधा ।।
सग करै भगवत रसिक, कर करवा, गूदरि गरे ।
वृन्दावन बिहरत फिरै, जुगल रूप नैनन भरे ।।

गुमान मिश्र—इनका रचनाकाल स० १८०० से १८४० तक माना जाता है । व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्यकार कृष्णभक्त कवि गुमान मिश्र बुन्देलखन्ड की पन्ना रियासत मे स्थित महेवा ग्राम के निवासी थे । इनके पिता का नाम गोपालमणि था और ये चार भाई थे । ये पिहानी के राजा अकबर अलीखाँ के आश्रय मे रहते थे ।

इनके प्रबन्ध-काव्य 'कृष्ण-चन्द्रिका' का कृष्ण-साहित्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योकि प्राचीन कृष्ण-काव्य मे केवलमात्र यही एक सरस एव उत्कृष्ट प्रबघ-काव्य है । इसके सम्बन्ध मे प्रसिद्ध समालोचक श्री गुलाबरायजी लिखते है कि 'फिर काव्यका कहना ही क्या वह तो काव्य-धारा में एक तरगायित उथल-पुथल पैदा कर देता है तथा कवि की कविता-कल्लोलिनी मानसिक काव्य-उल्लास को बरबस विभोर कर देती है ।' इसके वर्णन बडे सरल, स्वाभाविक और सरस है । पुस्तक की भूमिका मे श्रीयुत कविवर उदयशकर जी भट्ट द्वारा प्रदर्शित—'उस रात मुझे नीद नही आई, कृष्णचन्द्रिका की एक अपूर्व पाण्डुलिपि हाथ लग गई थी । उसे खतम किये बिना मुझे चैन कहाँ ? उस रात मैंने सारी पुस्तक समाप्त कर डाली, कविता क्या

थी कही-कही तो अमृत के घूँट थे। निस्सदेह यह अपूर्व पुस्तक है' इसीलिए पन्ने पलटते आँखो मे रात कटी' इन विचारो मे रचमात्र भी अत्युक्ति नही। कृष्ण-चन्द्रिका के अतिरिक्त इन्होने श्रीहर्ष कवि के सस्कृत काव्य 'नैषधीयचरित'का भी हिन्दी पद्यो में अनुवाद किया था। 'छन्दाटवी' नामक छन्दशास्त्र का ग्रन्थ और रस-नायिकाभेद आदि पर भी इनके ग्रन्थ कहे जाते हैं। इनकी रचना के नमूने देखिए—

दुर्जन की हानि, विरधापनोई करै पीर,
गुन लोप होत एक मोतिन के हार ही।
टूटै मनिमालै निरगुन गाय ताल लिखै,
पोथिन ही अक, मन कलह विचार ही॥
सकर बरन पसु पच्छिन मे पाइयत,
अलक ही पारै असभंग निरधार ही।
चिर चिर राजौ राज अली अकबर, सुरराज-
के समाज जार्के राज पर वार ही॥
न्हाती जहाँ सुनयना नित बावली मे,
छूटे उरोजतल कुकुम नीर ही मे।
श्रीखण्ड चित्र दृग-अजन सग साजै,
मानौ त्रिबेनि नित ही घर ही बिराजै॥

खेलहि प्रभु नाँध्यो कसु पटु बान्ध्यौ
हरि हर-बर करि कदम चढ़े।
ठोकनि भुजदडिन लीला मडनि
अति उर उमगि उछाह बढ़े॥
कूदे जहँ प्यारे नद दुलारे
चलि पहुँचे अहि भवन तहाँ।
आवत बनमाली जाने काली लखि
लखि खल उर रोस महाँ॥

उठ्यौ कोह काली कराली सु आयौ,
फनी फुँक फुँकार हुँकार धायौ।

उमडे घुमडे घनै सीस छाये,
घटाटोप ह्वैके मनो मेघ आये ।।
लसै तेज आरक्तता नैन बाढे,
मनो अग्नि के कुड ते ताइ काढे ।
तहाँ तर्किकै उग्रता वक्त्र बायौ,
किधौ भूरि भडार भै को बतायौ ।।
कढी बज्र की कील सी काल डाढै,
बसै मीचु तामे हसै नीच गाढै ।
चले जोर जीहा महा दुख दानी,
किधौ म्यान ते काल खैची कृपानी ।।
गति सबल अबल स्वासनि बल हरि सुहिय लहरातु घट ।
लखि विकल व्यालाली सिथिल तब आई अबला निकट ।।
पति गति लखि करि तिय दुख करि करि अहि पति-
नीह समाजै जुरिकै भ्राजै तन लाजै ।
तहँ हरि बरि करि उर धरि धरि करि हरि पर,
जाइ सुराजै नमिता साजै प्रिय काजै ।।
गर गहवर करि द्रग जल झरि करि बिनय करै,
कर जोरै चहुँ ओरै जे चित चौरै ।
यह बिधि धरि करि अति अवगुन करि रिस करिकै,
बर जोरै मदके भोरै मति थोरै ।।
(कृष्णचन्द्रिका)

श्री हठीजी—ये श्री हितहरिवश जी की शिष्य-परम्परा के कवि थे। इनका रचनाकाल स० १८३७ है। इनके बनाये हुए 'राधा-सुधा-शतक' की भाषा बडी अलकृत और सरस है। एक कविता देखिए—

गिरि कीजै गोधन, मयूर ब्रज कुजन को,
पशु कीजै महाराज नद के नगर को ।

नर कौन ? तौन जौन राधे राधे नाम रटै,
नट कीजै बर कूल कालिन्दी-कगर को ॥
इतने पै जोई कछु कीजिए कुवर कान्ह,
रखिए न आन फेर हठी के झगर को ।
गोपी पद-पकज-पराग कीजै महाराज,
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगर को ॥

सूरजराम पडित—इनके स० १८०५ मे बनाये हुए 'जैमिनी पुराण भाषा' नामक ग्रन्थ मे पुराणो के अनेक कथानक दोहा, चौपाई, पद्धति पर सकलित किये गये है। यह रचना पर्याप्त प्रौढ प्रतीत होती है। नमूना नीचे दिया जाता है—

गुरु पद पकज पावन रेनू ।
कहा कलपतरु, का सुरधेनू ॥
गुरुपद-रज अज हरिहर धामा ।
त्रिभुवन-विभव विश्व-विश्रामा ॥
तब लगि जग जड जीव भुलाना ।
परम तत्व गुरु जिय नहि जाना ॥
श्रीगुरु पकज पॉव पसाउ ।
स्रवत सुधामय तीरथराउ ॥
सुमिरत होत हृदय असनाना ।
मिटत मोहमय मन-मल नाना ॥

भगवन्तराय खीची—ये असोथर के बड़े ही विद्यानुरागी राजा थे । इनकी बनाई हुई रामायण अभी तक कही नही मिली । हनुमान् जी की स्तुति सम्बन्धी कविताएँ इनकी बडी ओजपूर्ण है । इनका रचनाकल स० १८१७ है । एक उदाहरण देखिए—

विदित विसाल ढाल भालु-कपि-जाल की है,
ओट सुरपाल की है तेज के तुमार की ।
जाही सो चपेटि कै गिराए गिरि गढ, जासो,
कठिन कपाट तोरे, लकिनी सो मार की ।

भनै भगवत जासो लागि लागि भेटे प्रभु,
जाके त्रास लखन को छुभिता खुमार की ।
ओडे ब्रह्मअस्त्र की अवाती महाताती, बन्दौ,
युद्ध-मद-माती छाती पवन कुमार की ।।

हरनारायण—इन्होने स० १८१२ मे माधवानल-काम-कन्दला और वैताल-पच्चीसी नामक दो काव्य लिखे थे। इनकी भाषा प्राय अलकृत है। नमूना देखिए—

सोहे मुण्ड चन्द सो, त्रिपुड सो विराजै भाल,
तुड राजै रदन उदंड के मिलन ते ।
पाप-रूप-पानिप विघन-जल-जीवन के,
कुड सोखि सुजन बचावै अखिलन ते ।।
भुगुति भुकुति ताकै तुण्डते निकसि तापे,
कुड बाँधि कढती भुसुड के बिलन तें ।
एसे गिरनन्दिनी के नंदन को ध्यान ही मे,
कीवे छोड़ि सकल अपानहि दिलन ते ।।

व्रजवासीदास—वृन्दावन-निवासी और वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी इस कवि ने सं० १८२७ मे दोहा, चौपाई, छन्दो में व्रजविलास नामक प्रबन्ध-काव्य और प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक का अनुवाद लिखा था। इसमें बालकृष्ण की लीलाओ का ही वर्णन किया गया है। अत प्रबन्ध-काव्यो के लिए आवश्यक जीवन की अनेकरूपता के अभाव के कारण यह सफल प्रबन्ध-काव्य नही बन पाया। फिर भी सरल और सुव्यवस्थित व्रजभाषा आदि अन्य गुणो के कारण इसका कृष्ण-भक्तो में पर्याप्ति प्र ार रहा है। कविता का नमूना नीचे है —

लेहु लाल यह चन्द्र मै, लीनो निकट बुलाय ।
रोवै इतने के लिये, तेरी श्याम बलाय ।।
देखहु श्याम निहारि, या भाजन मे निकट ससि ।
करी इती तुम आरि, जा कारण सुन्दर सुवन ।।

इन दोनो मे समान रूप से कुशल, और दूसरा कवि रीतिकाल के भीतर नही पाया जाता। इनकी कुछ एक कविताओ के नमूने देखिए—

गोकुलनाथ—

सखिन के श्रुति मे उकुति कल कोकिल की,
गुरुजन हू पै पुनि लाज के कथान की।
गोकुल अरुन चरनॉबुज पै गुज पुज,
धुनि सी चढति चचरीक चरचान की॥
पीतम के श्रवन समीप ही जुगुति होति,
मैन-मत्र-तत्र के बरन गुनगान की।
सौतिन के कानन मे हालाहल ह्वै हलति,
एरी सुखदानि ! तौ बजनि बिछुवान की॥

(राधाकृष्ण विलास)

दुर्ग अति ही महत् रक्षित भटन सो चहुँ ओर।
ताहि घेरचो शाल्व भूपति सेन लै अति घोर॥
एक मानुष निकसिबे की रही कतहुँ न राह।
परी सेना शाल्व नृप की भरी जुद्ध-उछाह॥

(महाभारत)

गोपीनाथ—

सर्वदिसि मे फिरत भीषम को सुरथ मन-मान।
लखे सब कोई तहॉ भूप अलात चक्र समान॥
सर्वथार सब रथिन सो तेहि समय नृप सब ओर।
एक भीषम सहससम रन जुरो हो तहँ जोर॥

मणिदेव—

बचन यह सुनि कहत भो चक्रांग हस उदार।
उडौगे मम सग किमी तुम कहहु सो उपचार॥
खाय जूठो पुष्ट, गर्विय काग सुनि ये बैन।
कह्यो जानत उडन की शत रीति हम बल ऐन॥

रामचन्द्र—इनकी ६२ कवित्तो की एक छोटी-सी पुस्तक 'चरणचन्द्रिका' प्रसिद्ध है। इसमे पार्वतीजी के चरणो का वर्णन करते हुए कवि ने अपने अपूर्व काव्य-कौशल का परिचय दिया। इस वर्णन मे अलौकिक सुषमा, विभूति, शक्ति और शान्ति टपक रही है। भाषा की लाक्षणिकता ने इस रचना मे चार चाँद लगा दिये हैं। रचनाकाल स० १८४० है। कविता देखिए—

नूपुर बजत मानि मृग से अधीन होत,
मीन होत जानि चरनामृत-झरिनि को ॥
खजन से नचै देखि सुषमा शरद की सी,
खचै मधुकर से पराग केसरनि को ॥
रीझि रीझि तेरी पदछवि पै तिलोचन के,
लोचन मे, अब धारै केतिक धरनि को ॥
फूलत कुमुद से मयक से निरखि नख,
पकज से खिलै लखि तर वा-तरनि को ॥

मंचित—ये मऊ के रहने वाले ब्राह्मण थे। इन्होने 'कृष्णायन' और 'सुरभि-दान लीला' नामक ये दो कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी पुस्तके लिखी थी। कृष्णायन मे 'राम-चरितमानस' के अनुकरण पर कृष्ण-कथा कही गई है, पर भेद इतना है, कि 'मानस' अवधी भाषा मे है और कृष्णायन व्रज मे। भाषा मे यत्र-तत्र गोस्वामी जी के समान सस्कृत का भी प्रयोग हुआ है। कुल मिलाकर यह रचना साधारण-सी प्रतीत होती है। सुरभिदान-लीला मे बालकृष्ण की कुछ लीलाओ का सुन्दर वर्णन है। इनका रचनाकाल स० १८५० के लगभग है। इनकी कविता देखिए—

अचरज अमित भयो लखि सरिता।
दुतियन उपमा कहि सम चरिता ॥
कृष्णदेव कहँ प्रिय जमुना सी।
जिमि गोकुल गोलोक प्रकासी ॥
अति विस्तार पार पय पावन।
उभय करार घाट मनभावन ॥
बनचर बनज बिपुल बहु पच्छी।
अलि-अवली-धुनि सुनि अति अच्छी ॥

नाना जिनिस जीव सरि सेवै ।
हिसाहीन असन सुचि जेवै ।।
(कृष्णायन)

मधुसूदनदास—ये मथुरा-निवासी चौबे थे । इन्होने 'रामचरितमानस' की शैली पर रामाश्वमेध नामक एक अत्यन्त सफल और मनोहर प्रबन्ध-काव्य की रचना की । ग्रन्थ का कथानक पद्मपुराण से लिया गया है । इसमे दोहा, चौपाई और बीच-बीच मे गीतिका आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है । प्रबन्ध-काव्यपटुता, कवित्व-शक्ति तथा पदावलि की प्राजलता आदि गुणो ने इस काव्य को रामचरितमानस के समकक्ष ला बैठाया है । साधारण पाठक को तो रामाश्वमेध और रामचरितमानस इन दोनो रचनाओ मे सहसा पारस्परिक अन्तर भी नही प्रतीत होता । प्रस्तुत रचना अत्यन्त सरस, सुन्दर और साहित्यिक है, इसमें कुछ सन्देह नही । इनका रचनाकाल सवत् १८३९ हैं । इनकी रचना का एक नमूना देखिए—

सिय रघुपति-पद कज पुनीता ।
प्रथमहि बन्दन करौ सप्रीता ।।
मृदु मजुल सुन्दर सब भाति ।
ससि-कर-सरिस सुभग नख पाँती ।।
प्रणत कल्पतरु तर सब ओरा ।
दहन अज्ञ तम जन चित-चोरा ।।
त्रिविध कलुष कुजर घनघोरा ।
जगप्रसिद्ध केहरि बरजोरा ।।
चितामणि पारस सुरधेनू ।
अधिक कोटि गुन अभिमत देनू ।।
जन-मन-मानस रसिक मराला ।
सुमिरित भजन विपति बिसाला ।।
निरखि कालजित कोपि अपारा ।
विदित होय करि गदा प्रहारा ।।
महावेग युत आवे सोई ।
अष्ट धातुमय जाय न जोई ।।

मनियारसिंह—ये काशीनिवासी क्षत्रिय थे। इन्होने महिम्न भाषा, सौंदर्य-लहरी, (भगवती की स्तुति) हमनुमत्-छब्बीसी और सुन्दरकाड ये चार भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ प्रौढ, परिमार्जित और अलकृत भाषा मे लिखी। इनका रचनाकाल स० १८४१ के लगभग माना जाता है। इनकी एक कविता देखिए—

मेरो चित्त कहाँ दीनता मे अति दूबरो है,
अधरम-धूमरो न सुधि के सभारे पै।
कहाँ तेरी ऋद्धि कवि बुद्धि-धारा ध्वनि ते,
त्रिगुण ते परे ह्वै दिखात निरधारे पै॥
मनियार याते मति थकित जकित ह्वै कै,
भक्तिबस धरि उर धीरज बिचारे पै।
बिरची कृपाल वाक्यमाल या पुहुदन्त,
पूजन करन काज चरन तिहारे पै॥

कृष्णदास—मिर्ज़ापुर-निवासी इस कवि ने स० १८५३ मे माधुर्य-लहरी नामक पुस्तक मे कृष्णचरित लिखा है।

गणेश—ये महापात्र नरहरि बन्दीजन के वशज और गुलाब कवि के पुत्र थे। काशी-नरेश महाराज उदितनारायण सिंह के आश्रय म रहकर इन्होने वाल्मीकि-रामायण श्लोकार्थ-प्रकाश, प्रद्युम्न-विजय, और हनुमत्-पचीसी नामक तीन ग्रथ लिखे। प्रद्युम्न-विजय सात अको मे विभक्त पद्यात्मक मौलिक नाटक है। गद्य के सर्वथा अभाव के कारण यह सफल नाटक नही कहा जा सकता। इनका रचना-काल स० १८५० से १९१० तक है।

ललकदास—लखनऊ के इस महन्त ने स० १८६० से १८८० तक अपने सत्योपाख्यान नामक ग्रन्थ में रामचन्द्र के जन्म से लेकर विवाह तक का विस्तृत वर्णन किया है। दोहा, चौपाई, छद मे लिखी हुई यह रचना सामान्यत सुन्दर ह।

खुमान—चरखारी-नरेश विक्रमसाही के आश्रित इस कवि ने अमर-प्रकाश, अष्टयाम, लक्ष्मण-शतक, हनुमान्-नखशिख, हनुमान्-पचक, हनुमान्-पचीसी, नीति-विधान, नृसिंह-चरित्र आदि पुस्तके लिखी थी। लक्ष्मण-शतक में लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का बडा ही ओजस्वी वर्णन है। इनका रचनाकाल स० १८३० से १८८० तक है।

नवलसिंह कायस्थ—झासीनिवासी और समथर-नरेश हिन्दुपति के आश्रित इस कलाकार ने विविध विषयो की अनेक पुस्तके लिखी थी जिनमे रास-पचाध्यायी, रामचन्द्र-विलास, रसिकरजनी, मूलभारत, आल्हा-रामायण, मूलढोला आदि विशेष उल्लेखनीय है । इनका कविता-काल सवत् १८७३-१९२६ है ।

वृन्द—ये मेडता (मारवाड) के निवासी और कृष्णगढ-नरेश राजसिंह के गुरु थे । इन्होने अपने प्रसिद्ध नीतिसम्बन्धी ग्रथ 'वृन्दसतसई' की रचना स० १७६१ मे की थी। वृन्द-सतसई की सूक्तियाँ अत्यन्त लोक-प्रिय है। इसके अतिरिक्त 'शृङ्गार-शिक्षा' और 'भाव-पचाशिका' नामक दो पुस्तके और भी प्राप्त हुई है । वृन्द-सतसई के कुछ दोहे देखिए—

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध मे, रस शृङ्गार न सुहात ।।
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि ।
सब को मन हर्षित करै, ज्यों विवाह मे गारि ।।
नयना देय बताय सब, हिय कौ हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ।।
अति परिचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी, चदन देति जराय ।।
निष्फल श्रोता मूढ पै, कविता वचन बिलास ।
हाव भाव ज्यो तीय के, पति अधे के पास ।।
जो पावै अति उच्च पद, ताकौ पतन निदान ।
ज्यो तपि तपि मध्याह्न लौ, अस्त होतु है भान ।।
बुरौ तऊ लागत भलौ, भली ठौर पर लीन ।
तिय नैनन नीकौ लगे, काजर जदपि मलीन ।।
ओछे नर के पेट मे, रहै न मोटी बात ।
आध सेर के पात्र मे, कैसे सेर समात ।।
तृनहूँ ते अरु तूल ते, हरुवो याचक आहिं ।
जानतु है कछ माँगि है, पवन उडावत नाहि ।।

बैताल—ये विक्रमसाही की सभा मे रहने वाले बन्दीजन थे। इनका रचनाकाल स० १८३९ से १८८६ के मध्य माना गया है। बैताल की कुडलिया भी गिरिधर की कुडलियो के समान ही प्रसिद्ध है। इन की प्रत्येक कुडली मे विक्रम को सबोधित किया गया है। इनकी एक कुडली नीचे देखिए—

टका करै कलहूल टका मिरदंग बजावै।
टका चढावे सुखपाल टका सिर छत्र धरावे।
टका माय अरु बाप टका भैयन कौ भैया।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड लडैया।
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाय रात दिन।
बैताल कहे विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन॥

लाला हरजसराय—ये कसूर (पूर्वी पजाब) के निवासी श्वेताम्बर स्थानकनिवासी सम्प्रदायानुयायी ओसवाल जाति के जैन गृहस्थ थे। इन्होंने जैन धर्म-सम्बन्धी साहित्य मे अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। इन की तीन रचनाए उपलब्ध हुई है—१. देवाधिदेव-रचना, २. साधगुणमाला, ३ देव-रचना। देवाधिदेव-रचना मे तीर्थंकरो की स्तुति है। साधुगुण माला में जैन साधुओ के तप, त्याग और सयम का सुन्दर वर्णन है। देव रचना मे देवलोक के देवताओ की ऋद्धि-सिद्धि ऐश्वर्य आदि विभूतियो का विस्तृत वर्णन है। इनके काव्य मे चित्रकाव्य का चमत्कार अपूर्व है। कविताओ को पढते समय दण्डी आदि सस्कृत आचार्यो का स्मरण हो आता है। कुछ उदाहरण देखिए—

तामस औ मद लोभप्रहार, रहा प्रभलो दम औ समता।
ता मरयाद सधीमन दास, सदा नमधीस दया रमता।
ताम गही गरमातत सत, तसतत मारग ही गमता।
ता मत नेह करी लख सोइ, इसो खल रोक हने तमता।

परम परम पद रमण करम रज वरज अमल सत।
अजर अमर अज अटल करण मन तन वच वरजन।
अचल अखय वर अनघ अलख जस अगम अकथमन।
थकन अमर नर सरव समन गण गणधर बरनन॥

बाबा दीनदयालगिरी—इनका जन्म स० १८६९ मे काशी में और देहान्त १९१५ मे हुआ। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता गोपालचन्द्र (गिरिधरदास) के घनिष्ठ मित्र थे। सामान्यत ये जनता मे एक अन्योक्तिकार के रूप मे ही प्रसिद्ध है। इनकी अन्योक्तिया भी अधिकाश सस्कृत श्लोको के आधार पर ही लिखी गई है। फिर भी वृन्द, बैताल और गिरिधरदास की अपेक्षा इनकी अन्योक्तियाँ उत्कृष्ट है। ये केवल उपदेशात्मक सूक्तिकार नही प्रत्युत कुशल कवि भी थे। इन्होने अपनी कविताओ मे काव्य के कलापक्ष और भावपक्ष दोनो का सुन्दर समन्वय किया है। दोनो को एक ही कविता में ठूसकर दोनो की हत्या नही की, प्रत्युत विभिन्न कविताओ मे दोनो पक्षो की बडी हृदयहारिणी अवतारणा की गई है। भावप्रधान रचनाओ मे ये श्लेष, यमक आदि शाब्दिक चमत्कार के चक्कर मे नही पडे है, और जहाँ शब्द-चमत्कार दिखलाना चाहा है वहाँ भी ये पूरे उतरे है। इनकी ये प्रसिद्ध रचनाएँ प्राप्त हुई है—अन्योक्ति-कल्पद्रुम, अनुराग-बाग, वैराग्य-दिनेश, विश्वनाथ नवरत्न और दृष्टान्ततरगिणी। अन्योक्ति-कल्पद्रुम का हिंदी साहित्य मे अपना एक विशेष स्थान है। इन्होने इस मे लौकिक और आध्यात्मिक दोनो पक्षो पर बडी ही अनूठी सरस और हृदयहारिणी अन्योक्तियाँ कही है। अनुरागबाग में कवित्त तथा मालिनीछद मे कृष्ण की अनेक लीलाओ का अनुपम वर्णन है। दृष्टान्ततरगिणी नीति सम्बन्धी दोहो की पुस्तक है। 'विश्वनाथ-नवरत्न' मे भगवान् शकर की स्तुति की गई है। 'वैराग्य-दिनेश' मे ऋतु-वर्णन के साथ-साथ ज्ञान वैराग्य आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इस सूची से इन के विविध विषयो पर व्यापक अधिकार का परिचय प्राप्त हो जाता है। इनकी कुछ कविताएँ देखिए—

पराधीनता दुख महा, सुख जग मे स्वाधीन।
सुखी रमत शुक बनबिषे, कनक पीजरे दीन॥
तहाँ नही कुछ भय जहाँ, अपनी जाति न पास।
काठ बिना न कुठार कहुँ, तरु को करत विनास॥
नही रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान।
अधिक पूजियत रूप ते, बिना रूप विद्वान॥
सरल सरल ते होय हित, नही सरल अरु बक।
ज्यो सर सूधहि कुटिल धनु, डारै दूर निसक॥

इक बाहर इक भीतरे, इक मृदु दुहु दिसि पूर ।
सोहत नर जग त्रिविध ज्यो, बेर बदाम अगूर ।।
जिनतरु को परिमिल परसि,लियो सुजस सब ठाम ।
तिन भञ्जन करि आपनो,कियो प्रभञ्जन नाम ।।
कियो प्रभञ्जन नाम, बडो कृतघन बरजोरी ।
जब जब लगी दवागि, दियो तब झोकि झकोरी ।।
बरनै दीनदयाल, सेउ अब खल थल मरु को ।
ले सुख सीतल छॉह, तासु तोर्यो जिन तरु को ।।
देखो पथिक उघारि कै, नीके नैन विवेक ।
अचरज है बाग मे, राजत है तरु एक ।।
राजत है तरु एक, मूल ऊरध अध साखा ।
द्वै खग तहॉ अचाह, एक इक बहु फल चाखा ।।
बरनै दीनदयाल, खाय सो निबल बिसेखो ।
जो न खाय सो पीन, रहै अति अद्भुत देखो ।।

गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास—इनका जन्म स० १८९० मे काशी मे हुआ। इनके पिता काले हर्षचन्द्र इन्हे ११ वर्ष का ही छोडकर स्वर्ग सिधार गये थे। इन्होने अपने परिश्रम से सस्कृत और हिंदी का गम्भीर अध्ययन किया। इनका समय अधिकतर काव्यचर्चा में ही जाता था। इनकी मृत्यु स० १९१७ मे हुई। ये भारतेन्दु हरिश्चद्र के पिता थे। भारतेन्दुजी ने इनकी लिखी ४० पुस्तकें बताई है, जिन मे बहुत-सी मिलती नही। इनकी रचनाएँ दो ढग की है। १—गर्ग-सहिता आदि भक्तिमार्ग की कथाए जो सरल साधारण पद्यो में कही गई हैं। २—काव्यकौशल की दृष्टि से लिखी रचनाएँ जो यमक और अनुप्रास आदि से इतनी लदी हुई है कि बहुत स्थलो पर दुरूह हो गई है। ये जरासधवध, भारतीभूषण रसरत्नाकर,ग्रीष्मवर्णन आदि है। जरासन्धवध अपूर्ण काव्य है जो केवल ११ सर्गों तक लिखा गया है, पर अनुप्रास और यमक का विधान जैसा इसम है और कही न मिलेगा। इनका 'नहुष नाटक' भी एक प्रसिद्ध नाटक है। रामकथामृत, कृष्णकथामृत आदि नामो से दसो अवतारो के सम्बन्ध मे भी इन्होने दस पुस्तकें लिखी थी। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिए—

सकल वस्तु सग्रह करै, आवै कोउ दिन काम ।
बखत परे पर न मिलै, माटी खरचे दाम ।।
पुन्य करिय सो नहि कहिय, पाप करिय परकास ।
कहिबे सो दोउ घटत है, बरनत गिरिधर दास ।।
पावक बैरी रोग रिन, सेसहु रखिये नाहि ।
ए थोरे हूँ बढहि पुनि, महा जतन सो जाहि ।।
रूपवती लज्जावती, सीलवती मृदु बैन ।
तिय कुलीन उत्तम सोई, गरिमाधर गुन ऐन ।।
अति चचल नित कलह रुचि,पति सो नाहि मिलाप ।
सो अधमा तिय जानिये, पाइय पूरब पाप ।।
सुख दुख अरु विग्रह विपति, यामे तजे न सग ।
गिरिधर दास बखानिये, मित्र सोइ बर ढग ।।
उद्यम मे निद्रा नही, नही सुख दारिद माँहि ।
लोभी उर सन्तोष नहि, धीर अबुध मे नाहि ।।

महाराज रघुराजसिह रीवां-नरेश—इनका जन्म १७८० मे और देहान्त १८३६ मे हुआ । इनके राम-स्वयवर, रुक्मणीपरिणय, आनन्दाम्बुनिधि, रामाष्ट-याम आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध है । इनकी कविता का एक नमूना देखिए—

मुख देखत ही मनमोहन को अति सोहन जोहन लागी जबै ।
नहि नैन हिले नहि बैन चले नहि धाय मिलै नहि शीश नवै ।।
ब्रजबालन हाल लख्यो अस लाल उताल कियो उरमाल तबै ।
रसरास विलास मे हास हुलास सो पूरण के दिये आश सबै ।।

कल किशलय कोमल कमल, पदतल सम नहि पायँ ।
यक सोचत पियरात नित, यक सकुचतु झरि जायँ ।।
विलसति यदुपति नखनितति, अनुपम द्युति दरिशाति ।
उडुपति युत उडु अवलि लखि, सकुचि सकुचि दुरिजाति ।।

सविता दुहिता श्यामता, सुख सरिता नख ज्योति।
सुतल अरुणता भारती, चरण त्रिवेणी होति ॥

गोविंद गिल्लाभाई—यह गुजरात के रहने वाले व्रजभाषा के कवि थे। इनका जन्म सवत् १९०५ मे और देहान्त १९८१ मे हुआ। नीति विनोद, पावस पयोनिधि, श्लेषचद्रिका, विष्णुविनयपच्चीसी आदि इन्होने ३२ ग्रन्थ लिखे थे। इनकी एक कविता देखिए—

बेनी के बिलोकि ब्याल पेट को घिसत सदा,
मुख को बिलोकि इन्दु हीन कला करि है।
काया को बिलोकी कलधौत परे पावक मे,
स्रौन को निरखि सीप सागर मे परि है ॥
दसन की दुति देखि दारिम दरार खात,
'गोविन्द' गयद गति देखि धूरि धरि है।
ताहि ते कहत तोको पेट तेरो ढाँप प्यारी,
पेट न दिखाव कोऊ पेट मार मारि है ॥

अभ्यास

१. आनन्दघन की रचनाओ का ममालोचनात्मक परिचय दे।
२. गुमान मिश्र की 'कृष्णचन्द्रिका' कैसा काव्य है ?
३ वृन्द, गिरिधर कविराय, बाबा दीनदयालगिरि और बैताल की रचनाओ पर प्रकाश डाले।
७. सक्षिप्त टिप्पणिया लिखे—
खुमान, मचित, व्रजवासीदास, चाचा हितवृन्दावनदास, गोषालदास (गिरधरदास)।

आधुनिक युग

राष्ट्रीयचेतनात्मक गद्य-काल

(सवत् १९०० से आज तक)

पंद्रहवाँ अध्याय

सामयिक परिस्थितियाँ

हम देखते है कि हिन्दी-गद्य का प्रारम्भ सुनिश्चित रूप से इशाअल्लाखाँ आदि चार लेखको के साथ सवत् १८५० के लगभग हो गया था, किन्तु सवत् १८५० से १९०० तक काव्य क्षेत्र मे नवीन विचारधारा का विकास नही हो पाया। पद्य तो अपनी पुरानी परिपाटी पर चल ही रहा था, साथ ही गद्य भी पुराणो के अनुवाद, धार्मिक चर्चा या किस्सा-कहानियो से आगे न बढ सका। सवत् १९०० के लगभग साहित्य-क्षेत्र मे भारतेन्दु जी के पदार्पण करते ही एक नवीन क्राति हुई। प्राचीन विचार-धारा सर्वथा परिवर्तित हो गई। दस-बीस वर्षों मे ही साहित्य ने अपना रग-रूप सहसा बदल लिया। इस नवीन साहित्य का विवेचन करने से पूर्व उन परिस्थितियो पर प्रकाश डालना आवश्यक है जिनके कारण साहित्य को अपनी करवट बदलनी पडी। वह अपनी पुरानी परम्परा को त्याग कर नव-निर्मित मार्ग पर चल निकला। साहित्य की इस नवजागृति म सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी परिस्थितियाँ कारण है। जैसेकि—

भारत से मुसलमानी राज्य उठ जाने और अग्रेजो के आधिपत्य स्थापित हो जाने पर सवत् १९०० तक तो जनता देशी और विदेशी शक्तियो की पारस्परिक नोच-खसोट के कारण चकित, त्रस्त व किंकर्त्तव्य-विमूढ-सी रही, किन्तु जनता को जब यह विश्वास हो गया कि अग्रेज अब भारत मे एक व्यापारी के रूप मे नही प्रत्युत शासक के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुका है। वह केवल आर्थिक व राजनैतिक प्रभुत्व पाकर ही सन्तुष्ट नही हो रहा प्रत्युत अब वह सास्कृतिक विजय के लिए भी प्रयत्नशील है। उसने ईसाई मिशनरियो के द्वारा निम्न वर्ग को प्रलोभित कर ईसाई बनाना आरम्भ कर दिया है। शिक्षित वर्ग मे हिन्दू धर्म के विधि-विधानो की निस्सारता का ढोल पीट-पीटकर उसके मस्तिष्क मे भी प्राचीन सस्कृति के प्रति विराग और ईसाइयत के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये है, साथ ही हिन्दुओ के सती-प्रथा आदि अनेक धार्मिक विधि-विधानो को भी राजाज्ञा द्वारा अवैध ठहरा दिया है, तो वह क्रुद्ध हो उठी। भारतीय जनता राजनैतिक उलट-फेरो को शान्ति-पूर्वक सहन करने मे अभ्यस्त हो चुकी थी। यूनानी-आक्राता सिकन्दर से लेकर अब तक की २३०० वर्षों की लम्बी अवधि

मे अनेक विदेशी राज्य-सत्ताएँ आईं और गईं। स्थानीय शासको ने उनका विरोध भी किया, उन्हे दूर भी हटाया और परिस्थितियो से प्रभावित होकर उन्हे यहाँ बैठ भी जाने दिया। उन विदेशी शासको या आक्राताओ ने जब तक राजनैतिक विजय को ही अपना उद्देश्य समझा और जनता की धार्मिक भावनाओ या सामाजिक परम्पराओ मे हस्तक्षेप नही किया तब तक स्थानीय जनता भी—

'कोऊ नृप होई हमहि का हानि'

कहकर आत्मलीन ही रही। किन्तु शासक वर्ग ने जब-जब जनता के धार्मिक अधिकारो पर कुठाराघात किया तब-तब यहाँ की जनता ने उस सत्ता के सिंहासन को पलटने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। हम देखते है कि आरम्भ मे अनेक मुसलमान लुटेरे भारत पर चढाई करते और चले जाते। जब उनके शासन यहाँ स्थिर हो गये तो उनमे से अधिकाश ने प्राय भारत के धार्मिक विधि-विधानो मे हस्तक्षेप नही किया। और जिस किसी ने ऐसा करने का प्रयत्न किया, जनता ने उसका मुहतोड उत्तर दिया। औरगज़ेब ने हिन्दू-धर्म का नाश करने के लिए उस पर अत्यन्त तीव्र और कठोर कुठार चलाना चाहा, फलत जनता ने जागृत होकर देखते-ही-देखते मुगल साम्राज्य को मिट्टी मे मिला दिया। इधर अग्रेज जब तक केवल राजनैतिक शासक के रूप मे रहा तब तक जनता ने उसका कुछ विशेष प्रतिकार नही किया। जब उसने धार्मिक कार्यो मे हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया तो जनशक्ति नागिन की तरह फुकार उठी। परिणामस्वरूप सवत् १९१४ (सन् १८५७) मे अग्रेजी सत्ता को समाप्त करने के लिए स्वातन्त्र्य-प्राप्ति का स्मरणीय-प्रयत्न किया गया। सफल नेतृत्व और सगठन-शक्ति के अभाव तथा सिक्खो और गोरखो के शत्रु-पक्ष के सहायक बन जाने के कारण उस प्रयत्न में प्रत्यक्ष सफलता प्राप्त न हो सकी, पर वह प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ भी नही गया। जिस उद्देश्य से वह सघर्षण उत्पन्न हुआ था उसमे जनता को अवश्य सफलता मिली। ईस्ट-इडिया-कम्पनी के स्वेच्छाचारी शासन की सत्ता समाप्त हो गई और सम्राज्ञी विक्टोरिया की अधीनता मे भारत को ब्रिटिश राज्य का एक अग मान लिया गया। धार्मिक कार्यों मे हस्तक्षेप न करने का तथा शासन-कार्य मे सबको समान पद प्राप्त कर सकने का आश्वासन दिया गया। इस प्रकार भारतीय जनता और अग्रेज शासक दोनो को सन् सत्तावन के सघर्ष में समान रूप से सफलता और असफलता प्राप्त हुई। अग्रेज अब भारतीय सस्कृति या धर्म मे प्रत्यक्ष हस्तक्षेप छोडकर प्रच्छन्न रूप से ईसाइयत के प्रचार में तत्पर हो गया। मेकाले आदि की सुनिश्चित आयोजना के अनुसार भारतीय सस्कृति के एक-एक दुर्ग पर पृथक्-पृथक् रूप मे प्रच्छन्न व पुष्ट प्रहार आरम्भ हुए। सस्कृति

की मूलाधार भारतीय भाषाओ को शासन-प्रणाली व शिक्षा-पद्धति से सर्वथा बहिष्कृत कर दिया गया। राज्य-भाषा के नाम पर अग्रेजी और जन-भाषा के नाम पर उर्दू व फारसी को 'हिन्दुस्तानी' नाम देकर प्रचारित किया जाने लगा। देश-भाषा हिन्दी व सस्कृत को केवल 'ब्राह्मणो की 'भाषा' बताया जाने लगा। उधर गोवध अबाध रूप में आरम्भ हुआ। ईसाई-प्रचारक भी अग्रेज शासको द्वारा उत्पन्न भारतीय दरिद्रता, अकाल व महामारी आदि से पीडित, अशिक्षित अथच निम्न श्रेणी की विपन्न जनता को धडाधड ईसाई बनाने लगे। साथ ही अग्रेजी-शिक्षित उच्च वर्ग के मस्तिष्क मे चोटी, जनेऊ, पूजा-पाठ तथा पौराणिक कथानको के प्रति निस्सारता का भाव भरकर उन लोगो को ईसाइयत की सभ्यता अपनाने के लिए प्रेरित किया जा रहा था। जनता इस मीठे विष को धीरे-धीरे प्रेमपूर्वक निगलने लग पडी थी। सामान्य मनुष्य को ईसाइयत की मीठी मार का कुछ आभास ही नही हो पाता था। ऐसी परिस्थिति मे यदि भारतीय विचक्षण वर्ग अथवा समाज के नेता साहित्यकार निश्चेष्ट रह जाते तो सम्पूर्ण भारत कुछ ही काल में सम्पूर्णतया ईसाइयत के रग मे रग जाता। ऐसी दशा मे भारतीय सस्कृति के सरक्षक-विवेचको के हृदय मे इसकी प्रतिक्रिया का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। पहले ईसाइयो के सास्कृतिक प्रभुत्त्व को मिटाने का उपक्रम हुआ और यह निश्चय हो जाने पर कि राजनैतिक प्रभुत्त्व का अन्त किये बिना अग्रेज के सास्कृतिक साम्राज्य का ध्वस न हो सकेगा, राजनैतिक स्वातन्त्र्य के लिए भी प्रयत्न प्रारम्भ हो गये। इस प्रकार हम देखते है कि राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, प श्रद्धाराम फिल्लौरी आदि अनेको मनीषियो ने ईसाइयत के मोह-जाल को काटने तथा भारतीय सस्कृति की पुन प्रतिष्ठा के लिए अत्यन्त स्तुत्य स्मरणीय अथच सफल प्रयत्न प्रारभ कर दिये। आर्यसमाज, ब्रह्म-समाज, सनातन धर्म आदि विविध सास्कृतिक व धार्मिक सस्थाओ तथा राजा-महाराजाओ ने इस सस्कृति सरक्षा के महायज्ञ में पूरा-पूरा भाग लिया। समाज के सचेतक साहित्य-स्रष्टाओ ने भी इस प्रयत्न के साथ अपना स्वर मिलाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बकिमचन्द्र तथा उनके सहयोगी अनेक साहित्यिको ने अपने सत्-साहित्य से समाज को सास्कृतिक सुधारस का पान करा पुनर्जीवित किया।

सामान्यतया तात्कालिक समाज पाश्चात्य सस्कृति के अनुराग और विराग के झूले में झूल रहा था। पश्चिमी वैज्ञानिक यंत्रो की सुखद सामग्री और यूरोपियनो के रहन-सहन की चटक-मटक पर मुग्ध अथच मराठो, मुसलमानो, सिक्खों और राजपूतो की पारस्परिक नोच-खसोट से उद्विग्न जनता अग्रेजी राज्य में सुख,

शाति और सुव्यवस्था की सास लेने लगी थी। इन्ही कारणो से जहाँ उसके हृदय मे अग्रेजों के प्रति एक विचित्र आकर्षण व मोह का भाव जागृत हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्र-निर्माता दूरदर्शी मनस्वी पाश्चात्य सस्कृति के विषैले प्रभाव को भी प्रकट कर रहे थे। भारतेन्दु-युग के साहित्य मे इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक अन्त सघर्ष से भरी हुई भावनाएँ ही पहले-पहल प्रधान रही।

अगरेज़ राज सुख साज सजै बहु भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी॥

मे अग्रेजो के प्रति इसी अनुराग-विराग का परिचय मिलता है। किंतु समय के परिवर्तन के साथ ही साथ राष्ट्र ने अग्रेजी राज्य को स्पष्टतया एक अभिशाप के रूप मे देख लिया और साहित्य मे वही भावनाएँ प्रधान रूप से प्रकट होने लगी। उसमे देश-भक्ति का स्वर मुख्य रूप से सुनाई देने लगा। वीरता की भावनाएँ फिर से लहराने लगी। इस प्रकार हरिश्चन्द्र-युग की काव्य-धारा से वीरगाथा के तृतीय उत्थान का आरभ होता है। अभी तक जनता ने हिंदू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता का विशेष अनुभव नही किया था। इसीलिए तात्कालिक साहित्य मे भूषण सरीखी बाह्य अथवा शारीरिक एव हिंदुत्त्व की भावनाओ से परिपूर्ण वीरता ही प्रमुख रूप से प्रकट होती रही। आर्य सस्कृति और आर्य-जनता के विजय-घोषो की ही प्रधानता रही। सक्षेप मे कह सकते है कि भारतेन्दु-कालिक साहित्य नवीन और प्राचीन के सधि-स्थल पर निर्मित हो रहा था। उसमें नवीन के प्रति आकर्षण और प्राचीन के प्रति मोह था। कृष्ण-भक्ति, शृंगार और वीरता की भावनाएँ उसमें प्राचीन परम्परा पर अभिव्यक्त हुईं। इस दृष्टि से देखने पर रीतिकालीन पूर्वोक्त शृंगार, भक्ति व वीरता से पूर्ण त्रिविध साहित्य का भारतेन्दुकालीन साहित्य म सामजस्य लक्षित होता है। साथ ही समाज-सुधार आदि की अभिनव प्रेरणाएँ भी उसमे पर्याप्त परिमाण मे पाई जाती है। इस प्रकार भारतेन्दु-युग की सामयिक परिस्थितियो, सामाजिक अवस्थाओ तथा साहित्यिक विचार-धाराओ का विश्लेषण करने पर हम देखते है कि इस युग के पूर्वार्ध मे अग्रेजो के राजनैतिक साम्राज्य स्थापित हो जाने पर सास्कृतिक विजय के प्रयत्न प्रारभ होते है, जिसमे वे भारत पर अपनी भाषा, सस्कृति और रहन-सहन की प्रणाली को लादना चाहते है और इसकी प्रतिक्रिया के रूप मे भारतीय मनीषी भारत की अपनी भाषा, संस्कृति और सभ्यता के सरक्षण व प्रचार के लिए कटिबद्ध हो जाते है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, राजा लक्ष्मणसिंह, नवीनचन्द्रराय, श्रद्धाराम फिल्लौरी, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिस प्रकार उर्दू व अग्रेजी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर

हिंदी-प्रचार के प्रयत्न किये उसका उल्लेख यथास्थान किया जायगा। उनके समाज-सुधार सबधी सास्कृतिक कार्यों से प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति पूर्णतया परिचित है। क्योकि भारतेन्दु जी के प्रभाव क्षेत्र से बाहर रह कर ही पूर्वोक्त महानुभावो ने हिंदी-प्रचार का कार्य सपन्न किया था। इसीलिए भारतेन्दु के समकालीन होने पर भी उक्त व्यक्तियो का उल्लेख भारतेन्दु जी से पूर्व इस अध्याय मे किया जायगा। और अगले अध्याय मे भारतेन्दु जी से प्रभावित साहित्य का विवरण दिया जायगा।

भारतेन्दु-काल की समाप्ति के पश्चात् साहित्य मे द्विवेदी-युग के पदार्पण के साथ-साथ राष्ट्र की परिस्थितियो मे पुन परिवर्तन हुआ। विदेशी शासन-सत्ता के प्रति घृणा के भाव चरमोत्कर्ष पर जा पहुँचे। अग्रेजो को बाहर निकालने के लिए हिंदू-मुस्लिम-एकता की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। शासक-वर्ग और जमीदारो के अत्याचारो के विरुद्ध जनता मे रोष की लहर उठ खडी हुई। अग्रेज सरकार भी देश-भक्तो का दमन करने पर उतारू हो गई। 'बग-भग' आदोलन ने राष्ट्रीयता के विचारो को सहसा उद्दीप्त कर दिया। 'वन्दे-मातरम्' का गान लोकप्रिय हो चला। इस प्रकार भारत की राष्ट्रीय आत्मा जागृत हो उठी। भारतेन्दु-युग के अन्त और द्विवेदी-युग के आरभ की विचार-धारा का यही स्वरूप था। प्रथम महायुद्ध और उसके परिणामो ने भारत की देश-भक्ति को अत्यन्त सजीव रूप मे उपस्थित किया। गोखले द्वारा प्रवर्तित और गाधी जी द्वारा प्रचारित सत्याग्रह-आदोलन भारत की नस-नस मे समा गया। खिलाफत-आदोलन ने हिंदू-मुस्लिम एकता की भावना को विशेष बल दिया। फलत साहित्य भी गाँधी-वाद से अनुप्राणित होने लगा। क्या गद्य, क्या पद्य, क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या नाटक साहित्य के सभी क्षेत्रो में गाँधीवादी विचारधारा प्रवाहित होने लगी। भारत की एक राष्ट्र-भाषा हिंदी का प्रचार और प्रभाव भी खूब बढा। अब तक उसका स्वरूप सर्वथा स्थिर हो चुका था। द्विवेदी जी के प्रयत्नो से भाषा ने एक स्थिर, सुनिश्चित और सुसस्कृत रूप ग्रहण कर लिया।

प्रसाद, पन्त, निराला आदि कोमल प्रकृति के कलाकारो ने खडी बोली के अक्खडपन को दूर कर उसे सुकोमल, कमनीय, कात पदावली से परिपूर्ण किया। इस समय साहित्य क्षेत्र मे एक नवीन क्रातिकारी परिवर्तन के दर्शन भी होने लगे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के छायावादी और रहस्यवादी गीतो के सकलन 'गीताजलि' पर नोबेल-पुरस्कार प्राप्त होते ही सपूर्ण भारतीय सुकवि-समाज उन्ही की भावनाओ मे सोचने तथा वाणी मे बोलने लग पडा। रहस्य-वादात्मक रचनाओ के प्रचार मे रविबाबू का प्रभाव तो प्रत्यक्ष है ही, साथ ही उसका एक दूसरा भी कारण स्पष्ट है। द्विवेदी-कालिक काव्य मे इतिवृत्तात्मकता या उपदेशात्मकता

की ही प्रधानता थी। देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और समाज-सुधार की कविताएँ सुन-सुनकर जनता पूर्णतया परितृप्त हो चुकी थी। द्विवेदीकाल का साहित्य भाषा, विषय सभी दृष्टियो से घिसा-घिसाया पिष्ट-पेषित प्रतीत होन लगा। उसमे नवीनता और रसात्मकता के स्थान पर शुष्कता, नीरसता और एकरूपता को देखकर समाज की चित्तवृत्ति उससे कुछ ऊबने-सी लगी। ऐसी परिस्थिति म साहित्य के किसी नवीन रूप का प्रकट होना आवश्यक और स्वाभाविक था। अत कहा जाता है कि साहित्य मे छायावाद व रहस्यवाद की अवतारणा द्विवेदीकाल की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। छायावाद व रहस्यवाद के इस काल मे राष्ट्र-चेतना भी कुछ समय के लिए फिर से सुप्त-सी हो गई थी, अत अन्य प्रवृत्तियो की अपेक्षा प्रकृति के नाना रूपो में प्रियतम का साक्षात्कार या लौकिक प्रेयसियो के वियोग मे विरहालाप अथवा निराशा व वेदना के भाव ही प्रमुख पद प्राप्त कर बैठे। सन् १९३० के राष्ट्रीय आदोलन, सन् ३६ के प्रातीय स्वराज्य और सन् ३८ के द्वितीय विश्व-यद्ध ने समाज मे एक नवीन उथल-पुथल मचा दी। अब तक भारत मे रूसी-साम्यवाद की कहानी पर्याप्त लोकप्रिय हो चुकी थी, रूसी वर्गहीन समाज जनता को अपनी ओर आकृष्ट करने लगा। दलित और शोषित, श्रमिक और कृषक अपने परिश्रम से उपार्जित पूजी पर अपना ही प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। उधर छायावाद व रहस्यवाद की वास्तविक जीवन से दूर केवल आकाश में उडने वाली अप्सरियो के समान सुन्दर किंतु अनुपयोगी भावात्मक कविताओ से जनता की चित्तवृत्ति हटने लगी। इस प्रकार समाज की विचारधारा के परिवर्तन के साथ-साथ रहस्यवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे प्रगतिवाद या क्रातिवाद प्रकट हुआ। सभी कवि साम्यवाद के स्वर मे स्वर मिलाकर श्रमिको और शोषितो के गीत गाने लगे। जिसे देखो वही क्राति, नव-निर्माण, महानाश के राग अलापने लगा। परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ प्रगतिवाद के अन्धानुकरण की प्रथा भी अब प्राय समाप्त-सी होती जा रही है, और वाद-विशेष के बन्धन से निकल कर साहित्य को स्वतत्र पथ पर अग्रसर करने का प्रयत्न प्रारभ हो गया है।

यह है हमारे आधुनिक युग की समाज व साहित्य की परिस्थितियो का या समाज की विचार-धारा के उतार-चढाव का एक सक्षिप्त विश्लेषण। इस प्रकार संवत् १९०० तक हिन्दी-काव्य का प्राचीन युग समाप्त हो जाता है और सवत् १९०० से आधुनिक या नवीन युग का आरम्भ होता है। भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से प्राचीन साहित्य की अपेक्षा आधुनिक साहित्य मे नवीनता,

मौलिकता अथच भिन्नता है। विषयो की अनेकरूपता और परिमाण की दृष्टि से भी यह साहित्य बढा-चढा है। पाठको मे प्रचलित पुस्तकें भी प्राचीन की अपेक्षा नवीन अत्यधिक हैं। इस प्रकार इस सौ वर्षो के सीमित समय मे सम्पन्न हुए विशाल साहित्य को हम पाँच भागो में विभक्त कर सकते है। सदासुखलाल आदि लेखकों के समय खडी बोली का साहित्य सद्य प्रसूत शिशु के रूप मे था। शैशव की इस अबोध अवस्था मे अनेक विनाशक उपद्रवो को पार कर इस साहित्य ने हरिश्चन्द्र काल की बाल्यावस्था मे प्रवेश किया। इस समय इसे अपने पैरो खडा होने की शक्ति प्राप्त हुई। वह आत्मबल के सहारे जीवन की ज्योति से जगमगाने लगा। अपनी बाल-सुलभ चचलता और विमोहकता व नवीन के प्रति उत्सुकता आदि सचेष्ट गुणो के कारण इस साहित्य ने सबको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। द्विवेदी-युग ने इस साहित्य को सस्कार-युक्त किया। इस समय का सस्कार-सम्पन्न साहित्य सात्विकता, सदाचार, चरित्रबल आदि सात्त्विक वृत्तियो से परिपूर्ण स्नातक के रूप मे प्रकट हुआ। द्विवेदीयुग के साहित्य मे न तो बाल-सुलभ चचलता है और न यौवन का विलास ही। उसमें उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता रूपी स्नात-कीय गुण विशेष रूप से लक्षित होते हैं। सदाचार-प्रचारक या आदर्शोन्मुख साहित्य ही का इस समय बोलबाला रहा। आगे चलकर प्रसाद और पन्त के युग में सत्प्रवृत्तियो से परिपूर्ण खडी बोली का साहित्य सुकुमारता और विलासिता के सुखद स्वप्न में निमग्न होने लगा। उसमे प्रेम अपने परिपूर्ण और नवीन रूप में प्रकट हुआ। कुछ समय उक्त विलासिता के स्वप्न-लोक मे विचरण करने के पश्चात् जीवन-सघर्ष की वास्तविकता को पहचान कर और अपनी वर्तमान अवस्था से झुझलाकर इस साहित्य ने सघर्ष, नवनिर्माण, क्रान्ति या उथल-पुथल का सहारा लिया। इस दृष्टि से सौ वर्ष के खडी बोली के साहित्य की निम्न अवस्थाएँ बताई जा सकती हैं—

१ सदासुखलाल आदि के समय की शैशवावस्था ।
२. हरिश्चन्द्रप्रवर्तित बाल्यावस्था (स्फूर्त प्रचार-युग) ।
३ द्विवेदीप्रवर्तित कुमारावस्था (उपदेशात्मक सस्कार-युग) ।
४ पन्त-प्रसादप्रवर्तित नवयौवनावस्था (छायावादी सौकुमार्य-युग)।
५ यौवनावस्था (प्रगतिपूर्ण क्रान्तियुग) ।

विषय व शैली आदि की दृष्टि से यह साहित्य १ दृश्य, २ श्रव्य इन दो मुख्य भागो मे विभक्त किया जा सकता है। नाटक, प्रहसन और एकाकी नाटक ये ३ दृश्य काव्य के वर्तमान रूप है। श्रव्यकाव्य गद्य—उपन्यास, आख्यायिका, निबन्ध,

समालोचना और पत्र-पत्रिका, तथा पद्य-प्रबन्ध, मुक्तक, गीत (लीरिक) खण्ड-काव्य आदि भागो मे विभक्त है। इस काल का प्रारम्भिक पद्य व्रजभाषा मे और गद्य खडी बोली मे लिखा जाता रहा। आगे चल कर गद्य और पद्य दोनो के लिए खडी बोली का व्यवहार होने लगा। आरम्भिक गद्य का विवेचन पूर्वपरिचय के रूप मे यहाँ पर दिया जा रहा है। आगामी अध्यायो मे शेष चारो युगो के साहित्य का उक्त शैलियो के आधार पर पृथक-पृथक् विवेचनात्मक परिचय दिया जायगा।

हिंदी-गद्य का प्रारम्भ

यद्यपि हिन्दी गद्य का सुनिश्चित स्वरूप विक्रम की बीसवी शताब्दी में आकर प्रकट हुआ, तथापि व्रजभाषा और खडी-बोली-गद्य के यत्र-तत्र बिखरे हुए नमूने पहले ही से प्राप्त होते है। अमीर खुसरो ने पद्यात्मक रचनाओ के साथ-साथ लोक-भाषा (खडी बोली) के गद्य मे भी अपने विचार व्यक्त किये थे। अत हिन्दी खडी-बोली-पद्य की भाति गद्य का भी प्रथम प्रसिद्ध लेखक खुसरो को माना जा सकता है। खुसरो के पश्चात् अकबर के दरबारी कवि गग ने स० १६४० के लगभग "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नामक एक पुस्तक खडी-बोली मे लिखी। इसकी भाषा का एक नमूना देखिए—

"सिद्धि श्री १०८ श्री श्री पातशाहीजी श्री दलपति जी अकबर शाह जी आम खास मे तखत ऊपर विराजमान हो रहे। और आम खास भरने लगा है। जिसमे तमाम उमराव आय-आय कुरनिस बजाय जुहार करके अपनी-अपनी बैठक में बैठ जाया करे अपनी-अपनी मिशाल से जिनकी बैठक नही सो रेसम के रस्से में रेसम की लूमे पकड-पकड के खड़े ताजीम मे रहे ..इतना सुन के पातशाही जी श्री अकबरशाही जी आधसेर सोना नरहरदास चारन को दिया। इनके डेढ सेर सोना हो गया। रास वचना पूरन भया आमखास बरखास हुआ।"

उक्त उद्धरण से स्पष्ट सिद्ध होता है कि अकबर के समय मे आज जैसी शुद्ध हिन्दी—खडी बोली का पर्याप्त प्रचार हो गया था। उसमे विदेशी शब्द वे ही आ पाये थे जो दरबारी शिष्टता के कारण अत्यावश्यक समझे गये। उस समय के हिन्दू एक मुस्लिम सम्राट् के लिए 'प्रणाम' और 'नमस्कार' सरीखे उच्च आदरसूचक शब्दो का प्रयोग करने मे आत्मग्लानि का अनुभव करते थे और विदेशी 'सलाम' से भी बचना चाहते थे, इस दृष्टि से "जुहार" का प्रयोग बडा ही उपयुक्त प्रतीत होता है। जन-सामान्य मे ऐसी खडी बोली ही प्रचलित थी। इसका प्रमाण गोस्वामी तुलसीदास जी के हस्ताक्षरो से अकित भदेनी के ठाकुर के पुत्रो मे उत्पन्न पारस्परिक विवाद को मिटाने के लिए लिखित एक 'पचनामा' की भाषा से मिलता है।

मेवाडी कवि जटमल ने स० १६८० के लगभग राजस्थानी मिश्रित खडी बोली मे 'गोरा-बादल की कथा' नामक एक पुस्तक पद्य मे लिखी जो सं० १८८० मे गद्य मे रूपान्तरित की गई[१]। इसके गद्यका एक उदाहरण भी देखिए—

"उस जग आलीषान बाबा राज करता है मसीह वाका लडका है सो सब पठानो मे सरदार है जयेसे तारो मे चन्द्रमा है ओ ऐसा बो है ।। १४८ ।। धर्म सी नाव का वेतलीन का बेटा जटमल नाम कवेसर ने ये कथा सवल गाँव मे पूरण करी।"[१]

इसके अतिरिक्त गोसूदराज बन्दा निवाज सहवाज़ बुलन्द नामक एक मुस्लिम लेखक ने स० १४७० के लगभग फारसी से प्रभावित भाषा मे "मिराजुन आसकीन" और "हिदायतनामा" नामक सूफी सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने वाली दो पुस्तके लिखी थी। मिराजुन आसकीन की भाषा का एक नमूना देखिए—

"ऐ भाई सुनो जे कोई दूध पीवेगा सो तुम्हारी पैरबी करेगा शरियत पर कायम अछेगा। पानी पीवेगा सो विश्वास के कतरया मे डूबेगा।"

इस प्रकार जन-सामान्य की भाषा खडी बोली की रचनाएँ पहले-पहल गद्य और पद्य दोनो रूपो मे बहुत स्वल्प प्रमाण मे मिलती है। यह तो हुई प्राचीन खडी बोली-गद्य की बात अब व्रजभाषा-गद्य के सम्बन्ध मे विचार करने पर ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम व्रजभाषा का गद्य गोरखपन्थी साहित्य मे मिलता है। नाथो की अनेक पुस्तके गद्य मे लिखी गई थी। स० १४०० के आस-पास लिखित गोरखनाथ नाम पर लिखी गई एक गद्य-पुस्तक का नमूना नीचे दिया जाता है—

"सो वह पुरुष सम्पूर्ण तीर्थ स्नान करि चुकौ अरु सपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि कौ दै चुकौ अरु सहस्र जज्ञ करि चुकौ अरु देवता सर्व पूजि चुकौ अरु पितरनि कौ सतुष्ट करि चुकौ स्वर्गलोक प्राप्ति करि चुकौ जा मनुष्य को मन छनमात्र ब्रह्म के विचार बैठो।"

इसके पश्चात् कई एक अन्य गोरखपन्थी साधुओ ने हिन्दी मे कुछ गद्य लिखा था, उसका भी एक नमूना देखिए—

"मैजू हो गोरख सो मछन्दर नाथ को दण्डवत् करत हो। है कैसे वै मछन्दरनाथ। आत्मा ज्योति निश्चल है, अन्तहकरण जिनिकौ अरु मूलद्वार तै छह चक्र जिनि नीकि तरह जानै।"

इसके पश्चात् १६वी शताब्दी मे वल्लभाचार्य जी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ

---

१ यह विषय विवादास्पद है कि जटमल ने अपनी मूल पुस्तक ही गद्य और पद्य दोनो मे लिखी थी या वह मूल पद्य मे ही लिखी गई थी और बाद मे गद्य मे रूपान्तरित कर दी गई।

जी ने 'शृगार-रस-मण्डन' नामक व्रज-भाषा मे गद्य-ग्रन्थ लिखा। इनकी भाषा का निम्न स्वरूप है—

"प्रथम की सखी कहतु है। जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनको प्रेमामृत मे डूबी कै इनके मन्द हास्य ने जीते है। अमृत समूह ताकरि निकुज विषै शृगार रस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।"

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सुपुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ जी के नाम पर भी १ 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता', २ 'दोसौ बावन वैष्णवो की वार्ता', ३ 'वन-यात्रा' ये तीन गद्य-ग्रन्थ मिले है। इनमे से एक की भाषा का नमूना यहाँ दिया जाता है—

"सो श्री नन्दगाम मे रहतो हतो सो खण्डन ब्राह्मण शास्त्र पढचो हतो। 'सो जितने पृथ्वी पर मत है सबकौ खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो। याही ते सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पारयो हतो। सो एक दिन श्री महाप्रभु जी के सेवक वैष्णवन की मण्डली मे आयो। सो खण्डन करन लाग्यो। वैष्णवन ने कही जो तेरो शास्त्रार्थ करनो होवै तो पण्डितन के पास जा, हमारी मण्डली मे तेरे आयवो को काम नही। इहाँ खण्डन मण्डन नाही। भगवद् वार्ता को काम है। भगवद् यश सुननो होवै तो इहाँ आवो।"

यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता और चौरासी वैष्णवो की वार्ता ये दोनो ही ग्रन्थ गोस्वामी जी के स्वरचित नही प्रतीत होते। क्योकि इनमे गोस्वामी जी की प्रशसा के पुल बाधे गये हैं। कोई भी लेखक स्वय अपनी इस प्रकार की प्रशसा नही लिख सकता। हा 'वन-यात्रा' उन्होने स्वय लिखी होगी।

स० १६६० के लगभग नाभादास जी ने अपनी पुस्तक 'अष्टयाम' व्रजभाषा-गद्य मे लिखी। इसकी भाषा निम्न प्रकार की है—

"तब श्री महाराजकुमार प्रथम वशिष्ट महाराज के चरण छुई प्रणाम करत भये है। फिर ऊपर वृद्ध समाज तिनको प्रणाम करत भये फिर श्री राजाधिराज जू को जोहार करि कै श्री महेन्द्रनाथ दशरथ जू के निकट बैठत भये'। इसी समय के आस-पास प्रसिद्ध अष्टछाप के कवि नन्ददास ने अपना नासिकेतोपाख्यान नामक गद्य-ग्रन्थ लिखा था। इसका उल्लेख करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि व्रजभाषा-गद्य में लिखा एक नासिकेतोपाख्यान मिला है जिसके किसी लेखक का नाम ज्ञात नही, समय स० १७६० के उपरान्त है।

किन्तु शुक्लजी ने स्वय नन्ददास की रचनाओ मे 'नासिकेतोपाख्यान' का भी उल्लेख किया है। अत उपलब्ध प्राचीन नासिकेतोपाख्यान निश्चित ही नन्ददासकृत

है। इसका रचनाकाल १७६० नही प्रत्युत १६६० होना चाहिए। इसका एक उद्धरण देखिए—

"हे ऋषीश्वरो, और सुनो मैं देख्यो है सो कहूँ। कालैवर्ण महादुख कै रूप जमकिंकर देखे। सर्प, बीछू, रीछ, व्याघ्र, सिंह बडे २ गृध्र देखे। पन्थ मे पाप कर्मी कौं जमदूत चलाइकै मुद्गर अरु लोह के दण्ड कर मार देत हैं। आगे और जीवन को त्रास देते देखे है। सु मेरो रोम २ खरो होत है।"

स० १७६७ मे सूरति मिश्र ने वैतालपच्चीसी लिखी। स० १८५२ मे ला० हीरालाल न जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के आदेशानुसार 'आईन-अकबरी की भाषा वाचनिका' नामक पुस्तक बोलचाल की भाशा मे लिखी। इसकी भाषा निम्न प्रकार की है —

"अब शेख अबुल फजल ग्रन्थ को करता प्रभु को निमस्कार करिकै अकबर बादस्याह की तारीफ लिखने कौ कसत करै है।"

इसके पश्चात् व्रज-भाषा-गद्य मे स्वतन्त्र रूप से पुस्तक लेखन की परिपाटी प्राय समाप्त-सी हो जाती है। और टीकाओ या लक्षण-ग्रन्थो मे ही कही-कही गद्य के दर्शन होते ह। किन्तु इन टीकाओ का गद्य एसा अस्त-व्यस्त है कि पाठक मूल रचनाओ को भले ही समझ जाय पर टीका की भाषा का अर्थ नही निकाल सकता। उदाहरण के लिए एक सस्कृत के सरल श्लोक तथा रामचन्द्रिका के एक दोहे की टीका देखिए—

उन्मत्तप्रेमसरभादालभन्ते यदगनाः।
तत्र प्रत्यूहमाधातु ब्रह्मापि खलु कातरः॥

इसकी टीका है—अगना जु है स्त्री सु। प्रेम के अति आवेश करिं। जुकीय केरना चाहति है ता कयि विषै ब्रह्मा ऊ। प्रत्यूह आधातु। उन्तराउ करिवै कहाँ। कातर-काइरू है। काइरु कहावै असमर्थ। जु कछु स्त्री करयो चाहै सु अवस्य करहिं। ताको अन्तराउ ब्रह्मा पहँ न करयो जाइ औरे की कितीक बात।

राघव शर लाघव गति, छत्र मुकुट यों हयो।
हस सबल असु सहित, मानहु उडि कै गयो॥

इसकी टीका है—'सबल कहै अनेक रग मिश्रित है, असु कह किरण जाके ऐसे जे सूते है, तिन सहित मानो कलिंद गिरिश्रृग ते हस कहे हस समूह उड गयो है। यहाँ जाति विषयी एक वचन है हसन के सदृश श्वेत छत्र है और सूर्य के सदृश अनेक रग जटित मुकुट है'।

बताइए, ऐसी टीकाओ से भला कोई क्या समझ सकता है।

अधिकाश लक्षण-ग्रथकारो ने भी प्राय ऐसी ही अव्यवस्थित भाषा का प्रयोग किया है किंतु रसिकगोविन्द आदि कुछ-एक आचार्यों ने बडी ही सुन्दर, शुद्ध और साहित्यिक भाषा के नमूने उपस्थित किये। इनके गद्य का नमूना पहले १७० पृष्ठ पर दिया जा चुका है।

इस प्रकार हम देखते है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा प्रवर्तित व्रज-भाषा-गद्य की परम्परा बीच २ मे प्रकट और लुप्त होती हुई अठारहवी शताब्दी के मध्य-भाग मे आकर सर्वदा के लिए सर्वथा लुप्त हो गई। इस प्रकार व्रजभाषा-गद्य का तिरोहित हो जाना भी आगामी साहित्य के लिए श्रेयस्कर ही सिद्ध हुआ, क्योकि यदि व्रजभाषा-गद्य की परम्परा चलती रहती तो वर्तमान युग मे गद्य के लिए खडी बोली को सहसा सर्वसम्मति से न अपनाया जा सकता। सभवत एक पक्ष व्रजभाषा के लिए अड जाता और व्रजभाषा और खडी बोली के वादविवाद मे बहुत-सा समय नष्ट हो जाता। अत इसे प्रभु का प्रसाद ही समझना चाहिए कि व्रजभाषा-गद्य की परम्परा निरन्तर न चल कर बीच ही मे समाप्त हो गई।

हिंदी-साहित्य के पहले चारो कालो मे खडी बोली और व्रजभाषा-गद्य की उक्त रचनाओ के सिवा बिहारी भाषा और राजस्थानी मे भी पर्याप्त गद्य-पुस्तके लिखी जाती रही जिनमे राजस्थानी गद्य की पुस्तको की तो सख्या बहुत ही बडी है। डिगल की ये गद्य-पुस्तके 'ख्यात' अर्थात् ऐतिहासिक और 'बात' अर्थात् कल्पित कहानी इन दो रूपो मे प्राप्त होती हैं। इनकी सख्या लगभग ढाई सौ से भी अधिक है। उनमे से कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तको का उल्लेख पहले पृष्ठ २१२-१४ पर हो चुका है।

मिथिला-नरेश राजा हरिहरदेव के सभासद् ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने वर्णरत्नाकर नामक बिहारी भाषा का गद्य-ग्रथ स० १३५८ मे लिखा।

आधुनिक खडी-बोली-गद्य का प्रारम्भ

आधुनिक खडी-बोली-गद्य का प्रारम्भ पटियालानिवासी रामप्रसाद निरजनी के 'भाषा योगवाशिष्ठ' नामक ग्रथ से होता है। रामप्रसाद निरजनी पटियाला के राजकीय कथाव्यास थे। इन्होने स० १७९४ मे अपने योगवाशिष्ठ की रचना की। इनका गद्य अत्यन्त प्रौढ और परिमार्जित है। देखिए ये कितना परिष्कृत गद्य लिख रहे है—

"प्रथम परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है, जिस से सब भासते है और जिसमे सब लीन और स्थित होते है। अगस्त्यजी के शिष्य सुतीक्षण के मन मे

एक सदेह पैदा हुआ, तब वह उस के दूर करने के कारण अगस्त्य मुनि के आश्रम को जा विधि सहित प्रणाम करके बैठे और विनति कर प्रश्न किया कि हे भगवन् आप सब तत्त्वो और सब शास्त्रो के जाननहारे हो मेरे एक सदेह को दूर करो। मोक्ष का कारण कर्म है कि ज्ञान है अथवा दोनो है हमे समझाय के कहो। इतना सुन अगस्त्य मुनि बोले कि हे ब्रह्मण्य केवल कर्म से मोक्ष नही होता और न केवल ज्ञान से मोक्ष होता है मोक्ष दोनो से प्राप्त होता है। कर्म से अन्त करण शुद्ध होता है मोक्ष नही होता और अन्त करण की शुद्धि बिना केवल ज्ञान से मुक्ति नही होती।"

कैसी सुन्दर और सुव्यवस्थित भाषा है। स० १८१८ मे वसुवा मध्यप्रदेश के रहने वाले प दौलतराम ने 'जैन पद्मपुराण' का हिंदी मे अनुवाद किया। इस की भाषा योगवाशिष्ठ के समान प्रौढ और परिमार्जित तो नही है फिर भी उसमे फारसी आदि के शब्द बिल्कुल नही आ पाये है। पद्मपुराण के गद्य का एक नमूना देखिए–

'जबूद्वीप के भरत क्षेत्र विषै मगध नामा देश अति सुन्दर है जहाँ पुण्य अधिकारी बसे है, इद्र के लोक समान सदा भोगोपभोग करै है और भूमि विषै साँठेन के वाडे शोभायमान हैं। जहाँ नाना प्रकार के अन्नो के समूह पर्वत समान ढेर हो रहे है।'

स० १८४० के लगभग राजस्थान के किसी अज्ञात लेखक ने खडी बोली मे 'मडोवर का वर्णन' लिखा था। उसकी भाषा का स्वरूप यह है—

'अवल मे यहाँ माडव्यरिसी का आश्रम था। इस सबब से इस जगे का नाम माडव्याश्रम हुवा। इस लफज का बिगडकर मडोवर हुआ है।'

यह पुरानी गद्य-परम्परा उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे समाप्त हो जाती है। और नवीन आधुनिक परम्परा का प्रारम्भ इस के पचास वर्ष पश्चात् उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में सदासुखलाल आदि चार लेखको के साथ होता है। इस आधुनिक गद्य-परिपाटी का परिचय देने से पूर्व यहाँ गद्य के सम्बन्ध में कुछ-एक अन्य उपयोगी बातो पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

मुगल साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ खडी बोली का भी सम्पूर्ण भारत मे पर्याप्त प्रचार हो गया, इसमे कुछ सदेह नही। देहली और आगरा में स्थायी रूप से रहने वाले शासक व सैनिक वर्ग सुदूर दक्षिण मे हैदराबाद तक और पूर्व मे मुर्शिदाबाद तक जाकर देहली और आगरा की खडी बोली मे ही अपना सब

व्यवहार करते थे। मुगल-शासन-काल में राज्य भाषा भी खड़ी बोली की एक शैली (उर्दू) ही थी।

मुगल साम्राज्य के ध्वस हो जाने पर देहली का वैभव क्षीण हो गया। उसके स्थान पर लखनऊ और मुर्शिदाबाद आदि पूर्वीय प्रान्तो की राजधानिया चमक उठी। ऐसी अवस्था मे यह स्वाभाविक था कि देहली और आगरे के रहने वाले सम्पन्न व्यापारी वर्ग व प्रतिभाशाली कवि भी उक्त नगरो को छोडकर मुर्शिदाबाद आदि पूर्वीय प्रान्तो के श्रीसम्पन्न नगरो की ओर बढ जाते। ये लोग स्वय तो इन दूर-दूर के प्रान्तो मे फैले ही, साथ ही केन्द्रीय भाषा (हिंदी खडी बोली) का भी इनके द्वारा सर्वत्र प्रचार हो गया। इसलिए यह भी कह सकते है कि खडी बोली का व्यापक प्रचार मुगल साम्राज्यो के खडहरो पर हुआ।

अनेक आलोचक जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से लल्लूलाल और सदलमिश्र को हिंदी-गद्य लिखते देख कर कह दिया करते थे कि अग्रेज़ो की प्रेरणा से ही हिंदी-

---

* यहाँ उर्दू भाषा की उत्पत्ति पर भी सक्षिप्त विचार कर लेना चाहिए। विक्रम की दसवी से लेकर तेरहवी शताब्दी तक अरब, ईरान, बिलोचिस्तान, तुर्किस्तान आदि विदेशो के हजारो सैनिक भारत मे आते और बसते रहे। उनकी छावनियो में सौदा बेचने वाले दुकानदार भारतीय थे और ग्राहक उक्त विदेशी सैनिक। व्यापारी और ग्राहक की भाषाएँ सर्वथा भिन्न थी। ग्राहक फ़ारसी में कोई बात पूछता तो दूकानदार उसे यहाँ की भाषा हिन्दी मे उत्तर देता। एक हिन्दी नही जानता था तो दूसरा फारसी से अनभिज्ञ था। इन दोनो अजनबी भाषा-भाषियो के रात-दिन के पारस्परिक सम्बन्ध को बनाये रखने के लिए एक मिली-जुली भाषा का प्रयोग परमावश्यक था। फलत· विदेशी सैनिक या ग्राहक ने यहाँ के हिन्दी शब्दो को अपनाया तो इधर भारतीय दूकानदार ने भी बहुत से उनके शब्द सीख लिये। पहले-पहल इस प्रकार की मिली-जुली भाषा का प्रयोग आवश्यकतावश व विवशता-पूर्वक किया जाता था। किन्तु धीरे-धीरे जब वे सैनिक स्थायी रूप से यही पर बस गये तो उनकी भाषा ने भी यही का रगरूप ग्रहण कर लिया। निरन्तर सम्पर्क के कारण यहाँ का व्यापारी वर्ग भी विदेशी शब्दो को अनायास बोलने का अभ्यासी हो गया। कई सौ वर्षों तक यह मिली-जुली बोली बिना किसी नाम या रूप के हिन्दू और मुस्लिम दोनो समाजो मे समान रूप से व्यवहृत होती रही। मुसलमान विद्वान् फारसी, अरबी मे तथा हिन्दू आचार्य सस्कृत, प्राकृत या अपभ्रश मे भले ही लिखते रहे हो, पर दोनो जातियो के जन-साधारण

गद्य का प्रचार आरम्भ हुआ था। किंतु यह कथन नितान्त असत्य और भ्रामक है। क्योकि रामप्रसाद निरजनी, दौलतराम, सदासुखलाल, इशाअल्लाखाँ इन चारों लेखको ने लल्लूलाल से बहुत पहले अत्यन्त सुव्यवस्थित भाषा मे परम प्रौढ़ गद्य लिखने की परिपाटी का प्रारम्भ कर दिया था। इन लोगो को किसी अग्रेज की प्रेरणा नही प्रत्युत समय और समाज की परिस्थितियो ने ही गद्य लिखने के लिए प्रेरित किया था।

आधुनिक हिंदी-गद्य की प्रारम्भिक अवस्था के सम्बन्ध मे इतना विचार कर लेने के पश्चात् इस गद्य का आरम्भ करने वाले चार प्रमख लेखको का परिचय देते हैं। ये चारो लेखक हिंदी गद्य के दृश्यमान विशाल भवन के चार आधार-स्तम्भ ही हैं। इनमे से सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ है मुन्शी सदासुखलाल।

मुन्शी सदासुखलाल—ये हिंदी मे अपना उपनाम 'सुखसागर' और उर्दू मे 'न्याज' रखते थे। इनका जन्म स० १८०३ मे दिल्ली मे और देहान्त स०

की भाषा तो सदा हिन्दी ही रही। मुसलमानो ने भी अठारहवी शताब्दी से पूर्व उक्त मिली-जुली बोली उर्दू में रचनाएँ बिल्कुल नही लिखी। सभी मुसलमान लेखक जब यहाँ की बोली मे लिखना चाहते तो शुद्ध हिन्दी में ही लिखते रहे। किन्तु शाहजहाँ के समय उक्त मिली-जुली भाषा एक नवीन साहित्यिक रूप धारण करने लगी और उसका नया नाम भी खोज निकालने का प्रयत्न किया जाने लगा। फारसी आदि भाषाओ मे छावनी या किले को 'उर्दू' कहते है अत उर्दू (छावनियो) में ही सर्वप्रथम प्रचलित होने के कारण इस भाषा का भी नाम 'उर्दू भाषा' ही रख दिया गया। दक्षिण भारत के कुछ एक शायरो—कवियो ने सर्वप्रथम इस भाषा मे कुछ शेर लिखने का प्रयत्न किया। ये शेर फारसी के शेरो से भी सुन्दर और प्रभावपूर्ण प्रमाणित हुए। फिर क्या था। धडाधड उर्दू मे कविताएँ लिखी जाने लगी। ज्यो-ज्यो समय बीतता गया त्यो-त्यो यह भाषा हिन्दी से दूर हटकर सर्वथा एक नवीन साहित्यिक रूप ग्रहण करती गई। दक्षिण भारत के उक्त मुस्लिम कवियो ने इस भाषा को पहले-पहल 'रेखता' या गिरी-पडी भाषा का नाम दिया था। इस प्रकार यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि आरभ में उर्दू हिन्दी की ही एक विशेष शैली थी न कि कोई स्वतन्त्र भाषा। किन्तु आजकल अरबी, फारसी के शब्दो से ऐसे लाद दी गई है कि उसे हिन्दी की एक शैली कहना तो दूर रहा भारतीय भाषा तक कहने मे सकोच होता है। आज की 'उर्दू' को तो सर्वथा विदेशी भाषा ही कहा जा सकता है।

१८८१ मे हुआ । ये बहुत वर्षो तक ईस्ट-इडिया-कम्पनी के उच्च-अधिकारी-पद पर भी नियुक्त रहे। पहले-पहल ये उर्दू और फारसी मे अनेक गद्य-पद्य की पुस्तके लिखते रहे और पैसठ वर्ष की अवस्था मे नौकरी से पेंशन पाकर प्रयाग चले गये। इन्होने अपना अवशिष्ट जीवन भगवद्भजन मे वही पर बिता दिया । 'मुतख-बुत्तवारीख' नामक अपनी पुस्तक मे इन्होने अपना जीवन-परिचय भी दिया है। यह पुस्तक इनकी मृत्यु से छ वर्ष पूर्व १८७५ मे समाप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त इन्होने भागवत्, रामायण व प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का उर्दू मे छदोबद्ध अनुवाद भी किया था। हिंदी मे भी विष्णुपुराण के आधार पर एक पुस्तक लिखी थी। किंतु अभी तक उसकी कोई पूरी प्रति नही मिली। इनकी भाषा के नमूने ही मिले है। देखिए इनकी भाषा कितनी सुसस्कृत, साहित्यिक तथा प्रौढ है—

'इससे जाना गया कि सस्कार का भी प्रमाण नही, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष मे चाडाल से ब्राह्मण हुए जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चाडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमे लोग नास्तिक कहेगे, हमें इस बात का डर नही। जो बात सत्य होय उसे कहना चाहिए, कोई बुरा माने कि भला माने।'

इस लेखक के हृदय मे शुद्ध हिंदी लिखने-लिखाने तथा उसका प्रचार करने की बडी भारी लगन दिखाई देती है। उर्दू के बडे भारी विद्वान् लेखक और सुकवि होते हुए भी इन्होने ऐसी सुन्दर सस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग किया। हिंदी का प्रचार बन्द होते देख इन्हे बडा ही दुख होता था। अपनी इस अन्तर्वेदना को इन्होने निम्नपद की पक्ति मे स्पष्ट रूप से प्रकट किया है—

'रस्मो रिवाज भाषा का दुनिया से उठ गया'।

इंशाअल्लाखॉ—इनके पिता मीरमाशाअल्लाखॉ काश्मीर से दिल्ली आकर शाही हकीम के पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। मुग़ल शक्ति के क्षीण हो जाने पर वे मुर्शिदाबाद के नवाब के पास चले गये। वहा पर इनका जन्म स० १८२१ मे हुआ था और देहान्त स० १८७५ मे हुआ। इनकी गणना उर्दू के प्रसिद्ध शायरो मे की जाती है। हिंदी मे भी इन्होने 'रानी केतकी की कहानी या उदयभानचरित' नामक एक गद्य-पुस्तक लिखी। अपनी इस पुस्तक के लिखने का उन्होने यह कारण बताया है—'एक दिन बैठे २ यह बात अपने ध्यान मे चढी कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिस मे हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा मन फूल की कली के समान खिले, बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच मे न हो अपने मिलने वालो मे से एक कोई बडे पढ-लिखे पुराने-

घुराने डौग बूढे घाग यह खटराग लाये और लगे कहने, यह बात होते दिखाई नही देती। हिदवीपन भी न निकले, भाखापन भी न हो, जैसे भले लोग अच्छे-अच्छे आपस मे बोलते-चालते है ज्यो-का-त्यो वही सब डौल रहे और छाँव किसी की न हो यह नही होने का।'

इससे प्रकट है कि इशाअल्लाखॉ कोई रचना ठेठ हिंदी मे लिखना चाहते थे। इन्होने बाहर की बोली (अरबी, फारसी, तुर्की आदि) गवारी बोली (व्रज और अवधी) और भाखापन अर्थात् सस्कृतनिष्ठ हिंदी से बचने की प्रतिज्ञा की है और इस प्रकार ये अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने मे बहुत कुछ सफल भी हुए है। यद्यपि अपनी उक्त रचना मे सर्वत्र सुव्यवस्थित हिंदी का प्रयोग करने मे ये सर्वथा सफल हुए है, फिर भी इनका उर्दू लिखने का जन्मजात सस्कार सर्वांशत नही छूट पाया। कही २ फारसी ढग का वाक्य-विन्यास 'रानी केतकी की कहानी' मे भी लक्षित हो जाता है। जैसे—

'सिर झुकाकर नाक रगडता हू अपने बनाने वाले के सामने जिसने हमे बनाया।'

'दिन-रात जपता हू उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को।'

यहॉ पर नाक रगडता हू, जपता हू ये क्रियाए पहले आई है और कर्ता का प्रयोग बाद मे हुआ है, अत ये फारसी शैली के वाक्य है। किंतु सारी पुस्तक मे एसे वाक्य बहुत ही कम प्रयुक्त हुए है। इशा की भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि वह अत्यन्त चुस्त, मुहावरेदार व चटकीली मटकीली है। इन्होने चुलबुली भाषा मे अपनी कलम की कारीगरी प्रकट करने के लिए ही कलात्मक रूप मे 'केतकी की कहानी' लिखी थी। शुक्लजी ने इनकी भाषा पर टिप्पणी देते हुए लिखा है कि 'अपनी कहानी का आरम्भ ही इन्होने इस ढग से किया है जैसे लखनऊ के भाँड घोडा कुदाते हुए महफिल मे आते है'। इशा की भाषा की तीसरी विशेषता है, तुकान्तता। उसमे सानुप्रास विराम प्राय अनेक स्थलो पर दिखाई दे जाते हैं। कुल मिलाकर यह रचना अत्यन्त सफल तथा भाषा, भाव, वर्णन, शैली आदि सभी दृष्टियो से सर्वांशत भारतीय है। देखिए कैसी चलती चटपटी भाषा है—

'इस बात पर पानी डाल दो नही तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुह से जीते-जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट नही पच सकती। तुम अभी अल्हड हो तुमने अभी कुछ देखा नही जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूगी तो तुम्हारे

बाप से कहकर वह भभूत जो वह निगोडा भूल मछदर का पूत अवधूत दे गया है हाथ मुरकवाकर छिनवा लूगी ।'

लल्लूलाल जी—यह आगरा-निवासी गुजराती ब्राह्मण थे । इनका जन्म स० १८२० मे और देहान्त स० १८८२ मे हुआ । अग्रेजो ने कलकत्ते मे अपने अग्रेज अफसरो को भारतीय भाषा सिखाने के लिए फोर्ट विलियम कॉलिज खोल रखा था । अभी तक इस कॉलिज मे भारतीय भाषा के नाम पर उर्दू, फारसी ही पढी-पढाई जाती रही, किंतु यह प्रवचना अब और अधिक समय तक टिक नही सकती थी । उन्हे यहाँ की वास्तविक देशभाषा हिंदी के लिए भी कुछ न कुछ करने को विवश होना पडा फलत अनेक उर्दू-फारसी के शिक्षको व मुन्शियो में से दो को हिंदी सिखाने तथा इसमे कुछ पुस्तके लिखने का काम भी सौपा गया। ये दोनो सज्जन थे—लल्लूलाल और सदलमिश्र । जहाँ उर्दू के लिए हजारो रुपये व्यय किये जा रहे थे वहाँ पचास-साठ रुपये अब हिंदी के नाम पर भी न्योछावर किये जाने लगे । जान गिलक्राइस्ट ने लल्लूलालजी को व्रजभाषा की कथा-कहानियो को हिंदी व उर्दू मे लिखने के लिए कहा । इस पर इन्होने सिंहासन-बत्तीसी, बैताल-पचीसी, शकुन्तला नाटक, और माधवानलकामकन्दला ये चार पुस्तके उर्दू मे तथा प्रेमसागर नामक पुस्तक हिंदी खडी बोली मे लिखी । इनके अतिरिक्त इन्होने हितोपदेश का भी 'राजनीति' के नाम से व्रजभाषा-गद्य मे अनुवाद किया तथा बिहारीसतसई की लालचन्द्रिका नामक टीका लिखी । माधवविलास और सभा-विलास नामक दो अन्य पुस्तके भी इन्होने छापी थी । इन्होने सस्कृत प्रेस के नाम से एक प्रेस खोला, जिसमें हिंदी की अनेक पुस्तके प्रकाशित की । इनकी भाषा व्रजभाषा की पुट तथा पडिताऊपन लिए हुए कथावाचको की-सी है । वाक्यो मे तुकान्त के कारण इनके गद्य मे भी पद्य का-सा लालित्य लक्षित होता है । यद्यपि इन्होने इशाअल्लाखॉ की भाँति विदेशी शब्दो से बचने की स्पष्ट प्रतिज्ञा तो नही की पर लिखते समय यथासभव अरबी फारसी के शब्दो से ये बचना अवश्य चाहते थे । यहाँ तक कि कई हिंदी के शब्दो को भी इन्होने उर्दू का जान कर विकृत कर दिया । फिर भी ये कही २ 'बैरख' (झडा) सरीखे ठेठ फारसी के शब्दो का प्रयोग भ्रम से कर गये है । इनकी भाषा का नमूना देखिए—

'श्री शुकदेव मुनि बोले—महाराज ग्रीष्म की अति अनीति देखकर नृप पावस प्रचड पशु पक्षी जीव जन्तुओ की दशा विचार चारो ओर से दल बादल साथ ले लडने को चढ़ आया । तिस समय घन जो गरजता था सोई तो धौसा बजता था और जो वर्ण-वर्ण की घटा घिर आई थी सोई शूरवीर रावत थे जिनके बीच

बिजली की चमक शस्त्र की चमक थी, बगपाँत ठौर २ पर ध्वजा-सी फहरा रही थी, दादुर, मोर, बडखौतो की-सी भाँति यश बखानते थे और बडी-बडी बूंदो की झडी बाणो की-सी झडी लगी थी।

'जिस काल ऊषा बारह वर्ष की हुई तो उसके मुखचन्द्र की ज्योति देख पूर्णमाशी का चन्द्रमा छवि छीन हुआ, बालो की श्यामता के आगे अमावस्या की अधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केचली छोड कर सटक गई। भौ की बकाई निरख धनुष धकधकाने लगा, आँखो की बढाई चचलाई देख मृग मीन खजन खिसाय रहे।

सदलमिश्र—ये बिहार के रहने वाले थे। इनका जन्म १८२१ में और देहान्त १९०६ मे हुआ था इन्होने गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से हिंदी गद्य मे 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इनकी रचना मे पूर्वीपन प्रकट होता है। इनकी भाषा चलती और सुव्यवस्थित प्रतीत होती है। इनके गद्य का एक अवतरण नीचे दिया जाता है।

"इस प्रकार से नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक का वर्णन कर फिर जौन-जौन कर्म किये से जो भोग होता है सो सब ऋषियो को सुनाने लगे कि गौ, ब्राह्मण, माता-पिता, मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरु इनका जो वध करते है वो झूठी साक्षी भरते, झूठ ही कर्म मे दिन-रात लगे रहते है, अपनी भार्य्या को त्याग दूसरे की स्त्री को ब्याहते औरो की पीडा देख प्रसन्न होते है और जो अपने धर्म से हीन पाप ही मे गडे रहते है वो माता-पिता की हित बात को नही सुनते, सबसे बैर करते है, ऐसे जो पापी जन है सो महा डरावने दक्षिणद्वार से जा नरक मे पडते है।"

जैसा कि पहले कहा गया है उक्त चारो लेखको मे मुन्शी सदासुखलाल की भाषा ही सर्वश्रेष्ठ है। आगामी गद्य-लेखको की परम्परा ने इनकी भाषा को ही आदर्श माना। कालक्रम की दृष्टि से भी इनका रचना-काल पहले आता है, अत चारो लेखको मे इनका ही प्रमुख स्थान है।

इन चारो लेखको द्वारा प्रवर्तित गद्य-परम्परा प्राय इनके साथ ही समाप्त हो गई है। इनके पश्चात् लगभग पचास वर्ष तक किसी सुयोग्य साहित्यिक ने गद्य में कुछ भी लिखने का कष्ट नही उठाया। इनसे प्राय पचास वर्ष पश्चात् सर्वप्रथम राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, राजा लक्ष्मणसिंह, श्रद्धाराम फिल्लौरी तथा स्वामी दयानन्दजी आदि कई एक हिंदी-हितैषियो ने गद्य की अभिराम-व-अविराम परम्परा का पुन प्रारम्भ किया। इस पचास वर्ष के बीच के समय में

ईसाई लेखको ने पूर्वप्रतिष्ठित गद्य से लाभ उठाकर अपने धर्म के प्रचार के लिए बाइबिल के अनेक अशो के हिंदी गद्य मे अनुवाद निकालने आरम्भ किये। इन लोगो ने अपने धर्म-प्रचार की भावनाओ से प्रेरित होकर ही हिंदी मे कुछ लिखा-लिखाया था—जनसाधारण तक अपने सिद्धातो को पहुचाने के उद्देश्य से ही इन्होने हिंदी का सहारा लिया था, न कि हिंदी प्रचार के लिये। अत हिंदी जगत् पर ईसाइयो का कोई भी उपकार नही माना जा सकता। विपरीत इसके ईसाइयो को ही हिंदी भाषा का आभार स्वीकार करना चाहिए, जिस की कृपा से ये लोग अपने धर्म का इतना अधिक प्रचार कर पाये। इन ईसाई लेखको की भाषा भी सदासुख-लाल की भाषा के समान सस्कृतनिष्ठ साहित्यिक है। एक नमूना देखिए—

"परन्तु सोलन की इन अत्युत्तम व्यवस्थाओ से विरोध भजन न हुआ। पक्षपातियो के मन का क्रोध न गया। फिर कुलीनो मे उपद्रव मचा और इसलिए प्रजा की सहायता से पिसिसट्रेटस नामक पुरुष सबो पर पराक्रमी हुआ। इसने सब उपाधियो को दबा कर ऐसा निष्कटक राज्य किया कि जिसके कारण वह अनाचारी कहाया, तथापि यह उस काल मे दूरदर्शी और बुद्धिमानो मे अग्रगण्य था।"

इनकी ऐसी शुद्ध भाषा से एक बात और यह सिद्ध होती है कि बहुत से हिंदुस्तानी भाषा के भक्त लोग इसी आधार पर हिंदी का विरोध करते है कि 'जनसाधारण सस्कृतमय हिंदी को नही समझ पाते'। इसलिए फारसी से प्रभावित हिंदुस्तानी को जनभाषा बनाना चाहिए। इन लोगो को ईसाइयो की उक्त पुस्तको से कुछ शिक्षा लेनी चाहिए। उक्त ईसाई लेखको ने विद्वत् समाज के लिए नही प्रत्युत जनसाधारण में धर्मप्रचार के लिए ही हिंदी मे पुस्तके निकाली थी, यदि इस हिंदी को जनसाधारण न समझ पाते तो ये कदापि ऐसी साहित्यिक हिंदी न लिखते। अत कह सकते है कि हिंदी को जनसाधारण नही समझ पाते यह कहना निराधार ही है। इन ईसाई लेखको मे अधिकाश हिंदुस्तानी पादरियो ने स्वय भी लिखा और पडितो से भी लिखवाया। 'आसो' और 'जान' नामक कुछ एक अग्रेज पादरियो ने स्वय भी हिंदी मे सुन्दर भजन लिखे थे। इन लोगो ने धर्म पुस्तको के सिवा स्कूलो के लिए पाठ्य-पुस्तके भी प्रस्तुत कर प्रकाशित करवाईं, जिनमे इतिहास, भूगोल आदि सभी विषयो का समावेश हुआ है। आगरा मे स० १८९० मे स्थापित 'स्कूल बुक सोसाइटी' तथा बगाल के सीरामपुर प्रेस से ऐसी अनेको पुस्तके प्रकाशित हुईं।

आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज—सन् १८५७ के स्मरणीय स्वातन्त्र्य-सग्राम

की समाप्ति के साथ स्थानीय शासकवर्ग के विचारो मे एक अलौकिक क्रांति तथा विचित्र क्रिया-प्रतिक्रियाए प्रारम्भ हुईं। ईसाइयो ने हिंदुओ मे अपने धार्मिक विचारो का प्रचार प्रारम्भ किया, तो उसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप पूर्व मे ब्रह्मसमाज तथा उत्तर-प्रदेश व पजाब आदि पश्चिमी प्रान्तो मे आर्यसमाज की सुधारात्मक प्रवृत्तियाँ प्रकट हो गईं। इन दोनो सुधारवादी समाजो ने ईसाई और मुसलमानो के प्रभाव से हिंदू धर्म को मुक्त करने तथा उसके प्राचीन रूप की पुन प्रतिष्ठा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर दिखलाया।

राजा राममोहनराय—ब्रह्मसमाज के इस प्रवर्तक ने वेदान्त सूत्रो का हिंदी मे अनवाद प्रकाशित कराया। स० १८८६ मे उन्होने 'वगदूत' नामक एक हिंदी पत्र भी प्रकाशित किया। इनकी भाषा बगला से प्रभावित साहित्यिक हिंदी है। भाषा का एक नमूना देखिए—

"जो सब ब्राह्मण सागवेद अध्ययन नही करते सो सब व्रात्य है, यह प्रमाण करने की इच्छा करके ब्राह्मणधर्म-परायण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री जी ने जो पत्र साग-वेदाध्ययन-हीन अनेक इस देश के ब्राह्मणो के समीप पठाया है, उसमे, देखा जो उन्होने लिखा है—वेदाध्ययन हीन मनुष्य को स्वर्ग और मोक्ष होने शक्ता नही।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती—इनका जन्म स० १८८१ मे मोरवी (गुजरात) मे और मृत्यु १९४० मे अजमेर मे हुई। ये आर्यसमाज के प्रवर्तक, वेदो के महान् विद्वान् भाष्यकार और बडे भारी सुधारक थे। इन्होने स० १९२० से प्राय प्रत्येक प्रान्त व नगर मे घूम-घूम कर अपने वैदिक-धर्म के प्रचार के लिए कमर कस ली। स० १९३२ मे इन्होने आर्यसमाज की स्थापना की और प्रत्येक आर्यसमाजी के लिए आर्य-भाषा (हिन्दी) का पढना-पढाना आवश्यक ठहराया। सत्यार्थप्रकाश, भ्रमोच्छेदन, अनुभ्रमोच्छेदन, वेदविरुद्ध मतखडन, वेदान्तध्वान्त निवारण आदि अपनी प्रमुख पुस्तके हिन्दी ही मे लिखी। इस प्रकार स्वामी जी तथा उनके आर्यसमाज ने हिन्दी-प्रचार मे पर्याप्त सहयोग दिया, इसमे कुछ सन्देह नही। स्वामी जी के गद्य का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर प्रीति से करे। क्योकि समाज का सौभाग्य बढाना समुदाय का काम है एक का नही।

—सत्यार्थप्रकाश

श्रद्धाराम फिल्लौरी—फिल्लौरनिवासी इस पजाबी पडित ने भी हिन्दू-धर्म व हिन्दी भाषा के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया। अपने प्रभावशाली उपदेशो के द्वारा इन्होने कपूरथला के महाराज को ईसाई होने से बचाया। इन्होने स० १९२० से स० १९३८ तक हिन्दी, उर्दू और पजाबी मे अनेक पुस्तके लिखी, जिसमे से 'सत्यामृत-प्रवाह' नामक सिद्धान्त ग्रन्थ बडी ही प्रौढ और परिमार्जित हिन्दी भाषा मे लिखा। आत्म-चिकित्सा, तत्त्वदीपक, धर्म-रक्षा, उपदेश-सग्रह आदि अनेक धार्मिक पुस्तको के अतिरिक्त इन्होने अपना एक बहुत बडा जीवन-चरित्र १४०० पृष्ठो मे लिखा था, जोकि दुर्भाग्य से नष्ट हो गया। स० १९३४ मे इन्होने भाग्यवती नामक एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा जिसकी सब ने सराहना की। स० १९३८ मे जब उनकी मृत्यु हुई तो अन्तिम समय मे सहसा उनके मुख से निकला कि—'भारत मे भाषा के लेखक दो है, एक काशी में, दूसरा पजाब मे, परन्तु आज एक ही रह जायगा'। काशी के लेखक से उनका अभिप्राय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी से था। श्रद्धारामजी अपने समय के वास्तविक हिन्दीहितैषी और प्रौढ गद्य-पद्य लेखक थे। प्रसिद्ध 'जय-जगदीश हरे' की आरती इन्ही की बनाई हुई है।

शिक्षा-विभाग में हिन्दी—अब तक सरकारी शिक्षा-विभागो मे उर्दू, फारसी और अग्रेजी ही का अखड साम्राज्य था। स्कूलो और मदरसो मे आरम्भिक शिक्षा का माध्यम एकान्तत उर्दू ही को स्वीकार किया जा चुका था। अग्रेज अधि-कारी-वर्ग और उनके पिट्ठू प्रशसक भारतीय पदाधिकारी भी उत्तरोत्तर उर्दू को ही प्रोत्साहन देते हुए भारतीय भाषा हिन्दी को नामशेष कर देने के लिए कमर कसे बैठे थे। ऐसी स्थिति मे दो राजाओ ने एक साथ कम-क्षेत्र मे उतर कर शिक्षा-विभाग मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इन दो राजाओ मे से पहले थे—

राजाशिवप्रसाद सितारेहिन्द—ये रणथम्भोर के एक राजा धाँदल के वशज थे। इनके पूर्वज देहली मे जवाहरात का व्यापार करते थे। किन्तु नादिरशाही में ये मुर्शिदाबाद चले गये और वहाँ से काशी आ गये। वही पर आपका जन्म स० १८८६ मे हुआ। सन् १८५७ के गदर मे इन्होने अग्रेज़ो की बडी सहायता की। फलत. अग्रेज सरकार ने इन्हे विभिन्न उच्च पदो पर नियुक्त कर राजा की उपाधि से विभू-षित किया। आप बहुत समय तक शिक्षा-विभाग मे इन्स्पेक्टर के पद पर भी काम करते रहे। इस पद पर प्रतिष्ठित होकर आपने हिन्दी की अत्यन्त सराहनीय सेवा की। स्कूलो मे हिन्दी को स्थान दिलाने व हिन्दी की पाठ्य-पुस्तके लिखने-लिखाने का इन्हो-अत्यन्त स्तुत्य प्रयत्न किया। आरम्भ मे ये वास्तविक हिन्दी के पक्षपाती थे, किन्तु आगे चलकर ये 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू के भक्त बन गये, और अपनी देवनागरी-लिपि

मे लिखित हिन्दी भाषा मे फारसी के शब्दो की भरमार करने लगे। इनकी आरम्भिक रचनाओ (मानवधर्मसार आदि) की भाषा स्वच्छ हिन्दी है, किन्तु 'इतिहासतिमिर-नाशक' आदि इनकी परवर्ती पुस्तके उर्दू के 'मिलाप' 'प्रताप' आदि आधुनिक पत्रो मे प्रयुक्त होने वाली आज की उर्दू से मिलती-जुलती हिन्दुस्तानी मे है। राजासाहब ने इस वर्ण-सकर भ्रष्ट-भाषा का प्रचार करने के लिए बडे जोर से उसकी वकालत भी आरभ करदी। इस सम्बन्ध मे वे कहते है कि—'हम लोगो को जहाँ तक बन पडे चुनने मे उन शब्दो को लेना चाहिए जो आम-फहम और खासपसन्द हो, अर्थात् जिनको ज्यादा आदमी समझ सकते है, और जो यहाँ के पढे-लिखे, आलिम-फाजिल, पडित-विद्वान् की बोलचाल मे छोडे नही गये है, और जहाँ तक बन पडे हरगिज गैर मुल्क के शब्द काम मे न लाने चाहिएँ, और न सस्कृत की टकसाल कायम करके नये-नये ऊपरी शब्दो के सिक्के जारी करने चाहिएँ। जबतक कि हम लोगो को उसके जारी करने की जरूरत साबित न हो जाय।' इस उद्धरण मे पूरी-की-पूरी पक्तियाँ 'आमफहम' जैसी फारसी की क्लिष्ट पदावली से पूर्ण है। इसे भला हिन्दी कैसे कहा जा सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि राजा साहब ने अपने भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तो मे अपनी इच्छानुसार नही प्रत्युत अधिकारी वर्ग व सरकारी नौकरो के सकेतो पर ही परिवर्तन किया होगा। इनकी हिन्दी-प्रचार की लगन को देखकर चारो ओर से इनके सिद्धान्तो का ज़ोरदार विरोध आरम्भ हो गया था। अग्रेज कभी नही चाहता था कि हिन्दू सस्कृति फलती-फूलती रहे। हिन्दू सस्कृति के नाश के लिए हिन्दी को पददलित कर देना आवश्यक था। आर्थिक दृष्टि से भी दो-दो भाषाओ की पढाई का प्रबन्ध शासको के लिए बडा ख़र्चीला सिद्ध हो सकता था। इन कारणो से अग्रेज तो हिन्दी के विरोधी थे ही, इधर अब मुसलमान हिन्दी के विरोध मे अपने आका अग्रजो से भी सर्वदा बढे-चढे जा रहे है। आज स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय कहलाने वाले देश-भक्त मुसलमान नेता व पदाधिकारी भी हिन्दी का नाम सुनते ही बौखला उठते है, तो सौ वर्ष पूर्व के मुसलमानो की तो बात ही क्या। हिन्दी का नाम सुनते ही भारतीय मुसलमानो का ईमान ख़तरे मे पड जाता है। इसलिए वे प्राणप्रण से शिवप्रसाद के हिन्दी प्रचार के प्रयत्नो का विरोध करने पर उतारू हो गये। विधर्मी और विदेशी मुसलमानो और अग्रेज़ो के अतिरिक्त उस समय के हमारे भारतीय हिन्दू, मुन्शी, मसद्दी या क्लर्क भी हिन्दी को फूटी आँखो नही देख सकते थे। ये लोग भी पडितो की इस भाषा को पढने से घबराते थे। इसलिए हिन्दू, मुसलमान और अग्रेज़ो के सयुक्त विरोध के दबाव के कारण शिवप्रसाद जी ने हिन्दी को उर्दू बना देने का प्रयत्न किया।

वे लल्लूलाल जी के 'वैंताल पच्चीसी' के उर्दू अनुवाद को टकसाली हिन्दी मानने लगे। पहले-पहल तो उन्होने ऐसी भाषा को परिस्थितियो से बाध्य होकर अपनाया, पर आगे चल कर वे उसके कट्टर पक्षपाती हो गये। इतना सब कुछ होने पर भी उनकी आरम्भिक हिन्दी-सेवाओ के लिए हिन्दी जगत् उन्हे सदा स्मरण रखेगा। शिवप्रसाद जी की मृत्यु स० १९५२ मे काशी मे हुई।

इन्होने 'बनारस अखबार' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी काशी से प्रकाशित करवाया। यह नागरी अक्षरो मे लिथो मे छपता था और इसकी भाषा हिन्दुस्तानी ही थी। इनके मानवधर्मशास्त्र की भाषा देखिए—

'मनुस्मृति हिन्दुओ का मुख्य धर्मशास्त्र है उसको कोई भी हिन्दू अप्रमाणित नही कह सकता। वेद मे मनुजी ने जो कुछ कहा है उसे जीव के लिए औषधि समझना। और बृहस्पति लिखते है कि धर्मशास्त्र आचार्यो मे मनुजी सबसे प्रधान और अतिमान्य है क्योकि उन्होने अपने धर्मशास्त्र मे सम्पूर्ण वेदो का तात्पर्य लिखा है।'

राजा लक्ष्मणसिंह—ये आगरे के रहने वाले यदुवशी क्षत्रिय थे। आपका जन्म स० १८८३ में और देहान्त १९५३ मे हुआ। आप हिन्दी, सस्कृत व फारसी के अच्छे विद्वान् थे। काग्रेस के प्रतिष्ठापक 'मिस्टर ह्यूम' ने इन्हे अपने अधीन इटावा जिले की कलेक्टरी में पहले तहसीलदार और फिर डिप्टी-कलेक्टर के पद पर प्रतिष्ठित किया। गदर के दिनो मे इन्होने भी अग्रेजो की पर्याप्त सहायता की थी। परिणामस्वरूप इन्हे राजा की उपाधि प्राप्त होगई। इन्होने राजा शिवप्रसाद के भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तो का कडे शब्दो मे खण्डन किया और शुद्ध हिन्दी के पुन. प्रचार का बीडा उठाया। इन्होने रघुवश के अनुवाद की भूमिका मे स्पष्ट शब्दो मे लिखा कि —'हमारे मत मे हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी २ है. हिन्दी मे सस्कृत के पद बहुत आते है और उर्दू में अरबी फारसी के। किन्तु कुछ आवश्यक नही है कि अरबी फारसी के शब्दो के बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते है जिसमे अरबी फारसी के शब्द भरे हो।'

इस प्रकार राजासाहब लक्ष्मणसिंह ने शिवप्रसाद के विचारो का मुहतोड उत्तर देकर हिन्दी-साहित्यिक के नाते अपने कर्तव्य का पूरी तरह पालन कर दिखाया। इन्होने स० १९१८ मे 'प्रजा-हितैषी' नामक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित किया। स० १९१९ मे इन्होने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक का अत्यन्त सुन्दर और सरस अनुवाद किया। पहले इसमें सर्वत्र गद्य ही का प्रयोग हुआ था किन्तु बाद मे कविताओ का अनुवाद पद्यो मे कर दिया गया। अब तक शकुन्तला नाटक के जितने भी हिन्दी अनुवाद हुए है उनमे यह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इनका लिखा हुआ रघु-

वश का अनुवाद भी अच्छा बन पडा है। इनके शाकुन्तल के गद्य का नमूना देखिए—

'अनसूया—(हौले प्रियवदा से) सखी! मै भी इसी विचार मे हूँ। अब इससे कुछ पूछूगी (प्रकट) महात्मा! तुम्हारे मधुर वचनो के विश्वास मे आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को विरह मे व्याकुल छोड यहाँ पधारे हो? क्या कारण है जिससे तुमने अपने कोमल गात को कठिन तपोवन मे आकर पीडित किया है।'

ये कविता भी बहुत सुन्दर लिखते थे। मेघदूत का भी इन्होने अत्यन्त सरस अनुवाद किया था। सबसे बढकर इन्होने यह काम किया कि अग्रेजी और उर्दू के कानूनी शब्दो का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद उपस्थित किया। किन्तु इस सुविज्ञ शासक के द्वारा प्रस्तुत हजारो शब्दो का वह सग्रह न जाने कहाँ लुप्त हो गया। अन्यथा इस समय वह कोष राष्ट्र के लिए एक महत्त्वपूर्ण निधि प्रमाणित होता। इनके मेघदूत के अनुवाद की एक कविता भी देखिए—

सुर युवती जुरि मिलि तहँ आवे। पकरि तोहि जलयन्त्र बनावे॥
रघसि रघसि हीरा ककन सो। नीर झरावे तो अगन सो॥
इन खिलवारन मे परि तेरो। छुटकारो नहि होय सवेरो॥
श्रावन कठोर घोर तब कीजो। यो डरपाय उन्हें मग लीजो॥

शिवसिंह सेंगर—इनका जन्म स० १८७८ मे काथा गाँव मे हुआ था। ये पुलिस-इन्स्पेक्टर थे। काव्यरसिक होने के कारण इन्होने अपने यहाँ ग्रन्थो का बडा भारी सग्रह किया। १९३४ मे इन्होने 'शिवसिंह-सरोज' नामक हिन्दी साहित्य का बडा भारी इतिहास लिखा जिसमे लगभग १००० कवियो का परिचय दिया गया यह हिन्दी मे प्रथम बडा साहित्यिक इतिहास है। इसके अतिरिक्त आपने ब्रह्मोत्तर-खड व शिवपुराण का भी गद्यानुवाद किया था।

राजा लक्ष्मणसिह आदि लेखको के पश्चात् भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने वर्तमान हिन्दी गद्य का प्रारम्भ किया।

अभ्यास

१ आधुनिक काल का साहित्य किन परिस्थितियो मे प्रकट हुआ? सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियो का सिहावलोकन करते हुए बतायँ कि उनका हिन्दी-साहित्य पर क्या प्रभाव पडा?

भारतेंदु प्रवर्तित प्रचार-युग

सोलहवाँ अध्याय

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और उनकी मडली

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र—वर्तमान हिन्दी-युग के प्रतिष्ठापक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म सवत् १९०७ मे काशी के प्रसिद्ध वैश्य वश मे हुआ। इनके पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र जी उपनाम 'गिरधरदास' की गणना हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवियो मे है। भारतेन्दु जी ने 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए पाँच वर्ष की ही अवस्था मे अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार दिखा दिया था।

लै व्योडा ठाडे भए, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन्य को हनन लगे बलवान।।

यह दोहा इन्होने पाँच वर्ष की आयु मे बनाया था। दस वर्ष की छोटी-सी अवस्था में इनके माता-पिता स्वर्ग सिधार गये। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, पण्डित ईश्वरदत्त तिवारी, मौलवी ताजअली, बाबू नन्दकिशोर आदि से इन्होने बचपन मे हिन्दी, उर्दू, सस्कृत आदि भाषाएँ सीखी। पण्डित लोकनाथ ने इनमे साहित्यिक रुचि जागृत की। १४ वर्ष की अवस्था मे बाबू गुलाबराय की पुत्री मन्नो देवी से इनका विवाह हुआ। इनके कोई पुत्र नही था। कन्या-रत्न से ही आप सन्ततिशाली हुए। सवत् १९४१ मे ३४ वर्ष की छोटी-सी अवस्था मे अपनी अपूर्व प्रतिभा का प्रकाश कर ये इहलोक-लीला सवरण कर गये। इस स्वल्प आयु में समाज व साहित्य की जो अनुपम सेवाएँ ये कर गये, उन्हे देखते हुए कह सकते है कि—

शुचीना श्रीमता गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।
तत्र त बुद्धिसयोग लभते पौर्वदेहिकम्।।

भगवान् कृष्ण के उक्त कथन को चरितार्थ करने वाले ये कोई पूर्व जन्म के योगमार्ग से विचलित हुए योगी थे। अवश्य ही वे लोकोत्तर व्यक्तित्त्व-सम्पन्न एक महामानव थे इसमे कुछ सन्देह नही। उनके साहित्य के समान उनका जीवन भी अनेकरूपता लिए था।

वे निष्काम भाव से जीवन के सभी रसो व तत्त्वो का उपयोग करते थे। महान् विलासी होते हुए भी उनका अन्तस्तल कमलपत्र की भाँति निर्लिप्त था। सुख

और दु ख उनके लिए समान थे। अपनी अतुल पैतृक सम्पत्ति को इन्होने समाज व साहित्य के विविध कार्यो मे सर्वथा समाप्त कर दिया। वे शतरज के कुशल खिलाडी, मार्मिक सगीतज्ञ, दूसरो की नकल करने मे बहुरूपियो के भी गुरु, कुशल अभिनेता, हास्य और व्यग्य के आचार्य, कबूतर उडाने के पूरे शौकीन, सहृदय और मस्त प्रकृति के प्राणी थे। उनकी बात-बात-से सहृदयता व उदारता टपकती थी। होली पर खूब हुडदग मचाते यहाँ तक कि गायक-गायिकाओ की मण्डली के साथ विचित्र वेष बनाए गली-गली घूमते। उत्सवो पर इत्र के दीपक जलाना उनके लिए साधारण-सी बात थी। काशी-नरेश ने इन्हे इस प्रकार सम्पत्ति का व्यय करते देख एक बार कहा कि 'बबुआ, इस प्रकार बाप-दादो के धन को न फूको'। आपने तत्काल उत्तर दिया कि 'इसने मेरे बाप-दादो को फूक डाला, अब मै इसे फूक डालूगा'। और यही कर दिखाया। अपने अन्तिम दिनो मे इनके पास पैसे का नाम भी नही रहा। कुछ तो अर्थाभाव और कुछ सरकार के कोप के कारण इस कवि का अन्तिम जीवन कष्टपूर्ण ही रहा। कहा जाता है कि राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इनके विपत्तिवर्धन मे एक कारण थे। इनकी दु खी अवस्था की बात सुनकर उदयपुर के महाराणा ने इन्हे १००००) रुपया भेजते हुए लिखा था कि आपके कलेवे के लिए कुछ रुपये भेजे जा रहे है। वह पुष्कल धनराशि इनके लिए सचमुच कलेवे का ही काम दे सकी। इनकी उदारता का तो कहना ही क्या। काशी मे कई वर्षो तक एक विद्यालय अपने व्यय से चलाते रहे। जब भी जिसे चाहते प्रसन्न होकर जो चाहे दे डालते। ऐसा मनमौजी साहित्यकार दूसरा कोई शायद ही हुआ हो। प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' का वयोवृद्ध पात्र रायसाहब कमलानन्द कुछ रूपान्तरित हरिश्चन्द्र ही है। हरिश्चन्द्र जी ने निम्न कवित्त मे सक्षिप्त रूप से अपना चरित्र अकित कर दिया है—

सेवक गुनीजन, चाकर चतुर के है,
कविन के मीत, चित हित गुनगानी के।
सीधेन सो सीधे, महा बाके हम बाकेन सो,
'हरीचन्द्र' नगद दमाद अभिमानी के।
चाहिबे की चाह, काहू कीन परवाह नेही,
नेह के दीवाने सदा सूरत निमानी के।
सरबस रसिक के, दास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के।

समाज व साहित्य-सेवाएं—भारतेन्दु जी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा और अलौकिक प्रभावशाली व्यक्तित्व के बल पर समाज व साहित्य की चिरस्मरणीय सेवाएँ की। भारतेन्दुजी के समय मे समाज मे राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा आदि की भावनाएँ घर कर चुकी थी, किन्तु हिन्दी-साहित्य अभी पुराने ढर्रे पर ही चला आ रहा था। उसमे नवीन उद्‌बुद्ध समाज की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए समाज की विचार-धारा का प्रतिबिम्ब न था। उस समय का धार्मिक व शृगारिक साहित्य सचमुच ही केवल बूढो व पडितो के काम की वस्तु रह गया था। उसमे नवस्फूर्ति, नवचेतना और नवीन उत्साह नही था। समाज व साहित्य की विचार-धाराएँ दो भिन्न-मार्गो पर चल रही थी। ऐसी स्थिति मे निश्चय ही साहित्य की अकालमृत्यु की सभावना उपस्थित हो गई थी। जो साहित्य सामयिक समाज की भावनाओ को अपने आप मे प्रतिबिम्बित नही करता, समाज उसे कभी नही अपना सकता। जब समाज किसी भाषा के साहित्य को नही अपनायगा तो उस भाषा के साहित्य का अन्त हो जाना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य जब समाज से उपेक्षित होकर शैशव ही में एक प्रकार से अपनी अतिम घडियो की ओर अग्रसर होने वाला था, तब भारतेन्दु जी ने अपने सुधारस से उसे पुनर्जीवित, जागृत और प्रफुल्लित कर दिया। साहित्य और समाज की विचार-धारा का सामजस्य कर भारतेन्दु जी ने हिन्दी-साहित्य-रक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारतेन्दुजी तथा उनकी मडली ने सामयिक समाज के लिए उपयोगी और रोचक साहित्य का निर्माण कर लाखो पाठक प्रस्तुत कर दिये तथा यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी-साहित्य मे भी राष्ट्र की नवीन-से-नवीन विचार-धारा अभिव्यक्त होती रहती है। साहित्य के साथ भाषा का निर्माण उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है। अब तक हिन्दी भाषा तीन दलो के दलदल मे फस कर सर्वथा अचकचा रही थी। राजा शिवप्रसाद उसे 'आम फहम' का रूप देकर हिन्दुस्तानी या उर्दू बना डालना चाहते थे। बहुत-से विद्वान् साहित्य-क्षेत्र मे इस नई भाषा खडी बोली को प्रविष्ट ही नही होने देना चाहते थे, वे ब्रज-भाषा के पक्षपाती थे। राजा लक्ष्मणसिंह, सदासुखलाल आदि की भाषा में प्रान्तीयता का पुट और पडिताऊपन था। भारतेन्दु जी ने सर्वप्रथम खडी बोली का निखरा हुआ रूप प्रस्तुत किया और स्पष्ट सिद्ध किया कि पात्रो की विविधता के आधार पर या परिस्थितियो के विभेद से यह भाषा अनेकरूपो मे व्यवहृत होती हुई भी अपना एक स्थिर और सुव्यवस्थित रूप रखती है।

भारतेन्दु जी ने स्वय तो बहुत कुछ लिखा ही, साथ ही एक बहुत बड़ा लेखक-

मंडल प्रस्तुत कर नवीन साहित्य के भण्डार को भरपूर कर दिया। यह साहित्य सर्वाशत मौलिक है। इसमे हिन्दी का अपनापन पूर्णरूपेण प्रकट हो रहा है। इसमे किसी अन्य भाषा या साहित्य का प्रभाव लक्षित नही होता। भारतेन्दु जी की सबसे बडी विशेषता नवीन और प्राचीन युग का सामजस्य है। वह युग क्राति का नही प्रत्युत सुधार का था। नवीन की ओर आकृष्ट होती हुई भी जनता प्राचीन का सर्वथा परित्याग नही करना चाहती थी। उस समय साहित्य-स्रष्टाओ को कोई अपनी प्राचीन परिपाटी से हटाकर सर्वथा नवीन मार्ग पर ला खडा करने का प्रयत्न करता तो सम्भवत वे चौकन्ने हो जाते और उसका साथ न देते। इसलिए भारतेन्दु जी ने प्राचीन परम्परा को अपनाते हुए नवीन युग के लिए मार्ग प्रस्तुत किया।

अब तक हिन्दी मे नाटक का सर्वथा अभाव था। महाराज विश्वनाथसिह का 'आनन्द रघुनन्दन' और गोपालचन्द्र जी का 'नहुष' ये दो ही नाटक सुने जाते थे। बगला आदि प्रगतिशील भाषाओ के साहित्य मे नवीन विचारो के साथ नाटको की भी धूम मच रही थी। भारतेन्दु जी ने अपने भारत-भ्रमण मे जगन्नाथ जी की यात्रा के अवसर पर बगला-साहित्य की इस नवीन रुचि और गति-विधि को परख लिया था, फलत उन्होने हिन्दी मे नाटको की झडी-सी लगा दी। एक-से-एक सुन्दर कई नाटक उन्होने थोडे ही समय मे समाज को दे डाले। भारतेन्दु जी की सबसे बडी विशेषता उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा या व्यापक पाडित्य है। इस दृष्टि से हमे हिन्दी के तीन कलाकार प्रमुख पद पाते दिखाई देते है। गोस्वामी तुलसीदास जी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशकरप्रसाद। इन तीन दिव्य विभूतियो मे जैसी सर्वतो-मुखी प्रतिभा दिखाई दी वैसी अन्य किसी हिन्दी-कवि मे नही। वाल्मीकि, व्यास और कालिदास जिस प्रकार सस्कृत मे लोकप्रिय है, वैसे ही हिन्दी मे गोस्वामी तुलसीदास, हरिश्चन्द्र और प्रसादजी। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल पर भारतेन्दु जी ने शृगार, वीर, करुण, रौद्र, हास्य, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शान्त और वत्सल इन दसो रसो पर खडी बोली, व्रज, अवधी आदि सभी भाषाओ के गद्य, पद्य, चम्पू, नाटक आदि सभी साहित्यिक विधाओ पर चमत्कार दिखाया और खूब दिखाया। जब वे शृगार रसाप्लावित राधा-कृष्ण के प्रेम गीत गाते है तो जयदेव और विद्यापति के साथ जा बैठते है। समाज-सुधार की चर्चा करते-करते राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द सरस्वती के समकक्ष हो जाते है। प्राचीन वीरता की कविता कहते-कहते उनमें भूषण का-सा उत्साह दिखाई देता है। तात्कालिक देश की दशा का वर्णन करते हुए वे एक राष्ट्रीय नेता

के रूप में प्रकट होते है। चूरन के लटके जैसे बाजारू हल्के विषयो से लेकर गभीर-से-गभीर साहित्य का उन्होने सृजन किया था। उनकी भाषा-शैली भी अनेकरूपता लिए रहती थी। जैसे वे उत्कृष्ट मौलिक लेखक थे वैसे ही श्रेष्ठ अनुवादक भी। उनके 'मुद्राराक्षस' सस्कृत तथा शेक्सपीयर के अग्रेजी 'मरचैट आफ वेनिस' के अनुवादो मे मौलिक रचनाओ के समान ही सभी उत्कृष्ट गुण पाये जाते है। उन्होने काव्य, नाटक, निबध, पत्र-पत्रिका, इतिहास आदि साहित्य के विविध अगो पर प्रामाणिक रूप से लिखा है। अन्तिम दिनो मे वे उपन्यास लिखने की ओर भी प्रवृत्त हुए थे, किन्तु उस कार्य को वह पूरा न कर पाये। इस प्रकार भारतेन्दु जी ने स्वल्प समय मे ही साहित्य और समाज-निर्माण के लिए जो कुछ कार्य किया वह अपना उपमान आप ही है।

स्वदेशाभिमान की तो वे साकार प्रतिमा ही थे। 'भारत-दुर्दशा' और 'नील-देवी' नाटको मे इनका यह देश-प्रेम उमड रहा है। 'वैदिकी हिंसा-हिसा न भवति' आदि नाटको मे समाज-सुधार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य मे देश-भक्ति के सर्वप्रथम सन्देशवाहक भारतेन्दु जी ही ठहरते है। साहित्य-निर्माण के अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने जनहितकर कार्य भी अनेक किये। चौखम्बा स्कूल (जो अब भी हरिश्चन्द्र हाई स्कूल के नाम से प्रसिद्ध है) स्थापित किया। 'कवितावर्धिनी समाज' नामक इनकी प्रवर्तित सभा मे अनेक प्रसिद्ध कवि अपनी सुन्दरतम कविताओ का पाठ किया करते थे। भक्ति का प्रचार करने के लिए 'तदीय समाज' नामक सभा की स्थापना कर 'भगवद्भक्ति' नामक पत्रिका प्रकाशित की। साहित्यिक चर्चा के साथ अभिनय, मनोरजन आदि के लिए 'पैनी रीडिंग क्लब' स्थापित की। इनके 'कवि समाज' मे बडी सुन्दर समस्या-पूर्तियाँ हुआ करती थी। "हरिश्चन्द्र मेगजीन" (बादमे हरिश्चन्द्र चन्द्रिका) नामक पत्रिका भी इन्होने प्रकाशित की थी। हिन्दी-प्रचार के लिए केवल साहित्य-निर्माण को पर्याप्त न समझकर यह स्थान-स्थान पर घूम-घूमकर 'हिन्दी भाषा व नागरी लिपि' की उपयोगिता पर प्रभावशाली भाषण दिया करते थे। इसी उद्देश्य से उन्होने बलिया में 'सत्य हरिश्चन्द्र' 'अन्धेर-नगरी' और 'देवाक्षर-चरित्र' नामक नाटको के अभिनय भी किये थे। प० रविदत्त शुक्ल रचित 'देवाक्षर-चरित्र' प्रहसन मे उर्दू की गडबडी का सुन्दर वर्णन था। भारतेन्दु जी ने कुल मिला कर १७५ छोटी-मोटी पुस्तके लिखी। ७५ ग्रन्थो का सम्पादन या प्रकाशन किया जिनमे से सत्यहरिश्चन्द्र मौलिक नाटक तथा 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद साहित्य की स्थायी निधि की वस्तुए है। यद्यपि इनके साहित्य मे आज की-सी प्रौढता और गम्भीरता के दर्शन नही होते

और प्रकृति-वर्णन भी श्रुतिपरम्परा के ही है स्वानुभूत नही, पर उस युग में इन्होने जो कुछ लिखा उससे अच्छा और कोई लिख ही नही सकता था। हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियो के साहित्य की समालोचना करते समय तात्कालिक परिस्थितियो को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए। भारतेन्दु जी ने जो कुछ कार्य किया वह साहित्य-ससार मे सदा स्मरणीय रहेगा और उनका नाम स्वर्णाक्षरो में अकित रहेगा। इन्ही सब बातो को देखते हुए समालोचक वर्ग ने भारतेन्दु जी के नाम पर ही उस युग का नामकरण किया है। इनकी निम्न रचनाए अत्यन्त प्रसिद्ध है—

मौलिक नाटक—१ सत्यहरिश्चन्द्र (आर्य क्षेमेश्वर के 'चडकौशिक' की छाया पर स्वतन्त्र नाटक है उसका अनुवाद नही, अत इसे अनूदित नाटको में स्थान देना भ्रामक है) २ चन्द्रावलि-नाटिका, ३ भारत दुर्दशा, ४ नीलदेवी, ५ माधुरी, ६ पाखड-विडम्बन, ७ अधेर नगरी (यह प्रहसन इन्होने एक ही दिन मे लिखा था) ८ वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति (प्रहसन), ९. विषस्य विषमौषधम् (प्रहसन), १० सती प्रताप, ११ प्रेमयोगिनी आदि तथा 'नाटक' नामक नाट्य-शास्त्र का विवेचनात्मक ग्रन्थ।

अनूदित नाटक—१ विशाखदत्त कवि कृत 'मुद्राराक्षस', २ काचन कवि कृत 'धनजयविजय', ३ राजशेखर कृत प्राकृत नाटिका 'कर्पूर मजरी', ४ चौरकवि नामक सस्कृत कवि के आधार पर यतीन्द्रमोहन ठाकुर द्वारा बगला में निर्मित 'विद्यासुन्दर', ५ भारत जननी (सम्पादित) अग्रेज कवि शेक्सपीयर का 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' ('दुर्लभ बन्धु' या 'वश नगर का महाजन' के नाम से)।

इतिहास आदि विविध विषय—१. काश्मीर कुसुम, २ बादशाह दर्पण, ३ उदयपुरोदय, ४ पुरावृत्त-सग्रह, ५. चरितावली, ६ दिल्ली-दर्बार-दर्पण आदि। इन्होने नाभादास के भक्तमाल के उत्तरार्ध मे ऐसा काव्य-कौशल व्यक्त किया कि वह नाभादास जी का लिखा ही प्रतीत होता है। एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' तथा 'हम्मीर हठ' नामक उपन्यास भी इन्होने लिखने आरम्भ किये थे। इनके गद्य और पद्य के कुछ उदाहरण देखिए—

१ 'अहा, स्थिरता किसी को भी नहीं है जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक तथा वैदिक दोनो कर्मों का प्रवर्तक था जो दोपहर तक अपना प्रचण्ड प्रताप क्षण-क्षण बढाता गया, जो गगनांगण का दीपक और कालसर्प की शिखामणी था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गवाकर देखो समद्र में गिरा चाहता है' (सत्यहरिश्चन्द्र)।

२ **झपटिया**—कहो मिसरजी, तोरी नीद नाही खुलती, देखो सखनाद होय गया मुखियाजी खोजत रहे ।

मिश्र—चलै तौ आहत्थे आधियै राति के सखनाद होय, तौ हम का करै ? तोरे तरह से हमहू को घर मे से निकसि के मन्दिर मे घुसना आवना होता तो हमहू जल्दी आवते । हिंया तो दारा नगर से आवना पडत है । अब ही सुरजौ नाही उगै ।

३ हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा । अरे अब क्या चिता पर सम्हलेगा ? भारत भाई उठो देखो अब यह दुख नही सहा जाता । अरे कब तक बेसुध पडे रहोगे ? उठो देखो तुम्हारी सतानो का नाश हो गया । छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते है । इस पर भी नही चेतते । हाय मुझसे तो अब यह दशा नही देखी जाती । (भारतदुर्दशा)

इनकी एक कविता भी देखिए—

धोवत सुन्दरी वदन करन अति ही छवि पावत,
वारिधि नाते ससि कलक मनु कमल मिटावत ।
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत,
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मनमोहत ।।

(सत्यहरिश्चन्द्र)

भारतेन्दु-मण्डली के लेखक

भारतेन्दुजी ने अपने प्रयत्न और प्रोत्साहन से हिन्दी-साहित्य मे अनेक कुशल कलाकार उत्पन्न किये । जिनमे बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है । इन लेखको की भाषा, विषय-शैली मे बहुत कुछ साम्य और वैषम्य भी है । सभी के लेखो मे हास्य और व्यग्य का पर्याप्त पुट है । सहृदयता इन लेखको के प्रत्येक लेख से टपकती है । गम्भीर-से-गम्भीर विषय को भी ये अत्यन्त सरस और रोचक ढग से लिखने वाले कलाकार थे । प्रत्येक के प्राणो मे जीवन का उत्साह लहरा रहा था । सभी की भाषा मे अपनापन है, उस पर बगला या अग्रेजी आदि शैलियो का कुछ भी प्रभाव नही । हिन्दी की प्रकृति इनके लेखो मे बडे स्वाभाविक रूप से निखर रही है । देशभक्ति और समाज-सुधार के लिए प्रत्येक मे प्रबल प्रेरणा पाई जाती है । सामाजिक उत्सवो, त्यौहारो आदि के लिए सभी उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करते और उन पर सुन्दर विवेचनात्मक लेख भी लिखते । सभी ने किसी-न-किसी पत्र-पत्रिका का सम्पादन भी अवश्य किया । सक्षेप मे सभी लेखक भारतेन्दुजी के पद-चिन्हो पर पूरी तरह

चलते रहे। इन समताओ के साथ सभी के लेखो मे अपनी-अपनी विशेषताजन्य विषमता भी है। बालकृष्ण भट्ट स्थान-स्थान पर ब्रैकेट के बराडे (कोष्ठक की कोठरी) मे अग्रेजी शब्दो को बैठाने के अभ्यासी है। प्रतापनारायण मिश्र पूर्वी पदो का प्रयोग प्रचुर परिमाण मे कर जाते है। बद्रीनारायण चौधरी कलम की कारीगरी को परखने वाले कुशल कलाकार है। समलकृत भाषा उनकी सबसे बडी विशेषता है। ठाकुर जगमोहनसिह प्रकृति के प्राकृत पुजारी है। ऐसा सच्चा प्रकृति-प्रेम तात्कालिक अन्य लेखको मे नही मिलता। इसी प्रकार तात्कालिक अन्यान्य लेखको की भी अपनी-अपनी विशेषताएँ है। अब यहाँ इन कलाकारो का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

पडित बालकृष्ण भट्ट—इनके पूर्वज मालवा के निवासी थे पर प्रयाग मे आ बसे थे। वही पर इनका जन्म स० १९०१ म और देहान्त १९७१ में हुआ। मिशन स्कूल म मैट्रिक पास करने के पश्चात् आपने सस्कृत शास्त्रो का पर्याप्त अध्ययन और मनन किया। प्रयाग मे 'हिन्दी प्रवर्धिनी सभा' की स्थापना कर सवत् १९३३ मे 'हिन्दी प्रदीप' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र मे सामाजिक, राजनैतिक,साहित्यिक सभी प्रकार के सुन्दर लेख प्रकाशित होते थे। यह पत्र उनके जीवनकाल के पश्चात् भी कुछ समय तक चलता रहा। इनके लेखो मे यत्र-तत्र कहावतो का प्रयोग और मुहावरो का बाहुल्य रहता था। व्यग्यात्मकता और हास्य-प्रियता इनमे भी समान रूप से पाई जाती है। अपने पत्र मे यह सस्कृत कवियो की भी समय-समय पर चर्चा करते रहते थे। ब्रेक्ट के बराडे मे अग्रेजी शब्दो को बैठाना इनकी अपनी वैयक्तिक विशेषता है। आँख, कान, नाक, भौ आदि छोटे-छोटे विषयो पर इन्होंने बडी ही चुस्त और मुहावरेदार भाषा मे छोटे-छोटे आकर्षक निबन्ध लिखे है। मनोरजकता और हास्यप्रियता तो इन लोगो का जीवन-सर्वस्व ही थी। शुक्लजी के छोटे भाई के यह कहने पर कि 'मेरी आख आ गई है' इन्होने तत्काल कहा कि "भैया यह आँख भी बुरी बला है इसका आना-जाना, उठना-बैठना आदि सभी बुरा है।' इन्होने कलिराज की सभा, रेल का विकट खेल, बाल-विवाह-नाटक, चन्द्रसेन-नाटक आदि मौलिक नाटक लिखे। 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' इनके उपन्यास है। माइकेल मधुसूदनदत्त के पद्मावती और शर्मिष्ठा नामक बगला नाटको का अनुवाद भी इन्होने किया। हिन्दी-गद्य मे समालोचना के सूत्रपात का श्रेय भी इन्हे ही प्राप्त है। लाला श्रीनिवासदास के सयोगिता-स्वयवर की इन्होने सवत् १९४१ मे कडी समालोचना की थी। आप प्रयाग के कायस्थ-पाठशाला कॉलेज मे सस्कृत अध्यापक के पद पर भी प्रतिष्ठित रहे थे। इनके निबन्धो का

संग्रह 'साहित्य-सुमन' नाम से प्रकाशित हो चुका है। भट्टजी की भाषा का नमूना देखिए—

'इधर पचास-साठ वर्षों से अंग्रेजी राज्य के अमन-चैन का फायदा पाय हमारे देश वाले किसी भलाई की ओर न झुके। वरन् दस वर्षों की गुडियो का ब्याह कर पहले से ड्योढी-दूनी सृष्टि अलबत्ता बढाने लगे। आत्मनिर्भरता म दृढ अपने कूवते बाजु पर भरोसा रखने वाला पुष्टवीर्य पुष्टबल भाग्यवान् एक सन्तान अच्छा। कूकर-सूकर से निकम्मे रग-रग में दास भाव से पूर्ण परभाग्योपजीवी दास किस काम के।'

प्रतापनारायण मिश्र—इनका जन्म सवत् १९१३ मे और देहान्त सवत् १९९१ मे कानपुर मे हुआ। ये भी भारतेन्दुजी की भाँति मौजी स्वभाव के कलाकार थे। स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होने सस्कृत, फारसी, अरबी, बगला का अच्छा अभ्यास किया। भारतेन्दु जी की 'कवि-वचन-सुधा' से यह प्रारम्भ में पर्याप्त प्रभावित हुए। कानपुर के लावणीबाजो के सत्सग मे ये कविता करने लगे। पडित ललिताप्रसाद त्रिवेदी से इन्होने काव्य-शास्त्रो का अध्ययन किया। इन्होने सवत् १९४० म 'ब्राह्मण' नामक पत्र निकाला। भारतेन्दु जी की परम्परा पर चलते हुए भी इनकी भाषा मे अपनापन है। व्यग्यात्मकता और लोकप्रियता इनमे सबसे अधिक है। गम्भीर-से-गम्भीर विषय को भी ये व्यग्यपूर्ण मनोरजक रूप मे उपस्थित करते थे। इनके शीर्षक भी आकर्षक तथा विविध विषयो के रहते थे। 'उर्दू बीबी की सम्पत्ति' शीर्षक लेख मे इन्होने उर्दू भाषा की वेश्या के साथ बडी सुन्दर तुलना कर दिखाई है। खून, जिगर का टुकडा, कत्ल आदि की प्रधानता के कारण ये उर्दू कविता को 'हस्पताल' कहा करते थे। हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए डेपुटेशनो को गवर्नरो से मिलता या अखबारो को चिल्लाता देख इन्होने 'घूरे का लत्ता बिनै कनातन के डोल बाँधै' शीर्षक लेख लिखकर स्पष्ट कहा कि जब तक जनता अपने दैनिक व्यवहार में हिन्दी नही लाती तबतक हिन्दी को राजभाषा बनाने की कल्पना वैसी ही है जैसे कि कोई कूडे-करकट के ढेर मे से चिथडे इकट्ठे करनेवाला भिखारी बडी-बडी कनाते बनाने की कल्पना करे। मिश्रजी की पचास वर्ष पूर्व की यह भविष्यवाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई। आज विधान-परिषद् द्वारा हिन्दी के राजभाषा घोषित हो जाने तथा कई नगरो मे हिन्दी मे तार देने का प्रबन्ध हो जाने पर भी हिन्दी तार देने वाले क्लर्कों के सारा दिन खाली बैठे रहने की शिकायत सुनाई दे रही है। अब भी जनता अपना कार्य-व्यवहार हिन्दी मे नही करना चाहती। 'समझदार की मौत' 'बात' 'वृद्ध' आदि छोटे-मोटे कई विषयो पर इनकी लेखनी बडे ही प्रभावशाली

और मनोरजक लेख उगलती रहती थी। निबन्धो के अतिरिक्त 'कलि-कौतुक-रूपक,' 'सगीत-शाकुन्तल,' 'भारत-दुर्दशा,' 'हठी हमीर', 'गोसकट नाटक,' कलि-प्रभाव नाटक' और 'जुआरी की खुआरी' ये नाटक भी लिखे थे। 'सगीत-शाकुन्तल' काली-दास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक का लावणी के ढग पर खडी बोली मे गीतात्मक अनुवाद है। भट्टजी और मिश्र जी का हिन्दी-निबन्ध-लेखको मे वही स्थान माना गया है जो अग्रेजी मे एडीसन और स्टील का है। इन लोगो ने दैनिक जीवन के लिए उप-योगी साहित्य को मनोरजक भाषा मे उपस्थित कर अनेक नये पाठको को हिन्दी की ओर आकृष्ट कर लिया। इनकी विनोदशील प्रकृति भारतेन्दु जी से बिल्कुल मिलती-जुलती थी। कानपुर मे एक नाट्य-समिति का निर्माण कर उसके अभिनयो मे यह स्वय भाग लिया करते थे। स्त्री-पात्र का अभिनय करने के लिए अपने माता-पिता से इन्होने दाढी-मूछ मुडवाने की आज्ञा ली थी। कुछ समय तक इन्होंने राजा रामपाल-सिंह के 'हिन्दुस्तान' पत्र का सम्पादन भी किया था। इनकी भाषा का एक नमना देखिए—

'यदि सचमुच हिन्दी का प्रचार चाहते हो तो आपस के जितने कागज-पत्र लेखा-जोखा टीप तम्मसुक हो सब मे नागरी लिखी जाने का उद्योग करो। जिन हिन्दुओ के यहाँ मौलवी साहब बिस्मिल्लाह करवाते है उनके पडितो से अक्षराभ्यास कराने का उपचार करो। चाहे कोई हसे चाहे दबकावे, जो हो सो हो तुम मनसा वाचा कर्मणा उर्दू को चुल्लू देने मे सन्नद्ध हो बस फिर देखना पाँच-सात वर्ष मे फारसी छारसी उड जायगी, नही तो होता तो परमेश्वर के किये है। हम सदा यही कहा करेगे 'पीसै का चुकरा गावै का सीताहरन' 'घूरे के लत्ता बिनै कनातन का डोल बाधै।' उक्त उदाहरण से मिश्रजी का हिन्दी-प्रेम और पूर्वी प्रयोगो का परिचय मिल जाता है।

उपाध्याय पडित बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—प्रेमघनजी का जन्म मिर्जापुरमे एक सम्पन्न ब्राह्मण वश मे सवत् १९१२ मे और देहान्त १९८९ मे हुआ था। बातचीत, वेश-भूषा, आकार-प्रकार, हाव-भाव, स्वभाव आदि सभी दृष्टियो से ये भारतेन्दु जी के प्रतिरूप प्रतीत होते थे। भारतेन्दु जी और चौधरी जी के चित्रो को एक साथ देखकर दोनो को पृथक् रूप मे पहचानना कठिन हो जाता है। भारतेन्दुजी के ये अन्तरग मित्रो मे से थे। रईसी तो इनकी बात-बात से टपकती थी। एक घटना का उल्लेख करते हुए किसी समालोचक ने लिखा था कि 'सन्ध्या के समय आगन में साहित्यिक चर्चा हो रही थी कि इतने में वायु के वेग से बीच में पडा लैम्प भभकने लगा, तो चौधरीजी लैम्प की बत्ती कम करने के लिए नौकर को

पुकारने लगे। पास मे पडे हुए लैम्प की बत्ती वे अपने हाथो कम नही कर सकते थे, जिस का काम वही करेगा, भले ही चिमनी क्यो न टूट जाय। और हुआ भी वही नौकर के आते-आते चिमनी टूट गई।' इस छोटी-सी घटना से उनकी रईसाना प्रकृति का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। इनकी सुशिक्षिता माता ने बचपन मे इन्हे स्वय शिक्षा दी थी। बाद मे ये अग्रेजी, फारसी आदि विदेशी भाषाए भी पढ गये। अवध-नरेश सर प्रतापनारायणसिह के सम्पर्क मे घुडसवारी और शिकार का इन्हे शौक लग गया। पडित रामानद पाठक के ससर्ग से इन्होने सस्कृत साहित्य का अभ्यास किया। पडित इद्रनारायण शगलू ने इनमे काव्य-रुचि जागृत की और हरिश्चन्द्रजी से परिचय भी कराया। इन्होने 'आनन्द-कादम्बिनी' और 'नागरी-नीरद' नामक पत्र भी निकाले। इनकी भाषा-शैली सबसे विलक्षण और अत्यन्त अलकृत थी। अनुप्रास और रूपक आदि की जैसी छटा इनके गद्य मे दिखाई देती है वैसी अन्यत्र नही। यह केवल विचारो को व्यक्त करने वाले लेखक नही, प्रत्युत कलम की कारीगरी को परखनेवाले कुशल कलाकार थे। 'नागरी-नीरद' के लेखो के स्तम्भ भी 'सम्पादकीय सम्मतिसमीर' 'वृत्तान्त-बलाकावली,' 'नियम-निर्घोष' सरीखे सुन्दर सानुप्रास रूपकमय रखे थे। भारतेन्दु जी को साधारण भाषा मे लिखते देख ये उनके लिखने मे उतावलेपन की शिकायत किया करते थे और चाहते थे कि वे भी वैसा ही काव्य-कौशल दिखाया करे। ये अपने उक्त पत्रो को स्वलिखित लेखो, कविताओ आदि से ही भर दिया करते थे। इसके लिए हरिश्चन्द्रजी ने एक बार लिखा था कि 'जनाब, यह किताब नही जो आप अकेले ही इरकाम फरमाया करते है, बल्कि अखबार है कि जिसमे अनेक-जनलिखित लेख होना आवश्यक है और यह भी जरूरी नही कि सब एक तरह के लिक्खाड हो।' ला० श्रीनिवासदास के 'सयोगिता-स्वयवर' की इन्होने २१ पृष्ठो मे लम्बी समालोचना की थी। चौधरीजी की ये रचनाए प्राप्त हो चुकी है—प्रयाग-रामागमन, भारत-सौभाग्य, मगल-आशा, हार्दिक बधाई, धन्यवाद, कजली-कादम्बिनी, आनन्द-अरुणोदय, भारत-बधाई, वारागना-रहस्य। इन रचनाओ मे कवि का देश-प्रेम भी स्पष्ट झलक रहा है। एक रचना मे इन्होने भारत व इगलैड की जनता के अधिकारो को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—

ब्रिटिश राज की प्रजा बृटिन औ हिंद उभय की।
लखहु दशा पर युगल भाग के अस्त उदय की॥
वे निज देश-हेतु विरचत है नीति नियम सब।
बिन उनकी सम्मति कछु राजा करत भलॉ कब॥

राजा नामै हेतु करति सब प्रजा प्रबन्धहि ।
पर उन कह इतनेहु पै है सपनेहु सन्तोष नहि ।।
औ हम भारतवासी जन निज दशा कहन को ।
जाय सकत नहि तहा भूलि कै एकौ छन को ।।

दादाभाई नौरोजी के काला कहे जाने पर इनके हृदय से निम्न उद्गार निकल पडे थे—

'कारो निपट निकारो नाम लगत भारतीयन ।
जदपि न कारे तऊ भागि कारो विचारि मन ।।
अचरज होत तुम्हहु सम गोरे बाजत कारे ।
तासो कारे कारे शब्दन पर है वारे ।।

इस कवि ने राष्ट्रीय गान 'वन्दे मातरम्' की प्रशसा मे लिखा था—

'खग वन्दे मातरम् मधुर ध्वनि पडने लगी सुनाई ।'

इनके गद्य का भी एक नमूना देखिए—

द्विजदेवी श्री महारानी बडहर लाख झझट झेल और चिरकाल पर्यन्त बडे-बडे उद्योग और मेल से दुख के दिन सकेल अचल कोटि का पहाड सकेल फिर गद्दी पर बैठ गई। ईश्वर का भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्य पर दु ख की रेल-पेल और कभी उस पर सुखो की कुलेल है ।

'दोनो दलो की दलादली मे दलपति का निर्णय दलदल मे ही फसा रह गया ।'

ठाकुर जगमोहनसिंह—इनका जन्म सवत् १९१४ मे और देहान्त १९५६ मे हुआ । ये कछवाहे राजपूत थे । इनका सम्बन्ध जयपुर के राज्यवश से था । इनके पिता ने सन् सत्तावन के विद्रोह मे भाग लिया था । इसलिए इनकी जागीर जब्त कर ली गई । यह विजयराघवगढ (मध्यप्रदेश) के राजकुमार थे । काशी मे रहकर इन्होने विद्याध्यन किया और यही भारतेन्दुजी के सम्पर्क मे आये । ये असिस्टेट कमिश्नर और कूचबिहार की स्टेट कौसिल के मन्त्री भी रहे थे । भारतेन्दुजी के अन्तरग मित्रो मे इनकी भी गणना है । भारतेन्दुकालीन अन्य लेखको ने प्रकृति का वास्तविक चित्र अकित नही किया । वे सुनी-सुनाई बाते लिखकर आगे बढ जाते है । भारतेन्दुजी ने स्वय गगा और यमुना के बहते पानी मे कमल खिलाये है, किन्तु ठाकुर साहब ने

संस्कृत-साहित्य के सम्पर्क और विन्ध्यवन के रमणीय प्रान्तो मे निवास के कारण अनेकरूपा प्रकृति के परम रम्य रूप का सच्चा साक्षात्कार प्राप्त कर वास्तविक वर्णन किया। इनके 'श्यामा-स्वप्न' मे प्रकृति का बडा ही सजीव चित्र अकित हुआ है। इनकी रचना को पढ़ते समय पाठक के हृदय मे स्वत सस्कृत-रचना का-सा रस-सचार होने लगता है। ठाकुर साहब की ये रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है—प्रेम-रत्नाकर, श्यामास्वप्न, श्यामालता, देवयानी, श्यामा-सरोजिनी, मानस-सम्पत्ति, ऋतुप्रकाश। इनके श्यामा-स्वप्न का एक नमूना देखिए—

'मै कहाँ तक इस सुन्दर देश का वर्णन करू ? जहाँ की निर्झरिणी—जिनके तीर वानीर से बडे मदकल कलित विहगमो से शोभित है। जिनके मूल से स्वच्छ और शीतल जलधारा बहती है और जिनके किनारे श्याम जम्बू के निकुज फल भार से नमित जनाते है—शब्दायमान होकर झरती है। जहाँ के शल्लकी वृक्षो की छाल में हाथी अपना बदन रगड खुजली मिटाते है और उनमे से निकला क्षीर सब वन के शीतल समीर को सुरभित करता है। मजु वजुल की लता और नील निचुल के निकुज जिनके पत्ते ऐसे सघन जो सूर्य की किरणो को भी नही निकलने देते इस नदी के तट पर शोभित है।

पं० अम्बिकादत्त व्यास—इनका जन्म सवत् १९१५ और देहान्त सवत् १९५७ मे हुआ। ये सस्कृत के धुरन्धर विद्वान् और हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार थे। सनातन धर्म के पुराने प्रमुख उपदेशको मे इनकी गणना है। इनका सस्कृत उपन्यास 'शिवराज-विजय' सस्कृत साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखता है। ये व्रज भाषा के एक उत्कृष्ट कवि भी थे। 'गद्य-मीमासा' मे इन्होने गद्य-रचना का सुन्दर विवेचन किया, बिहारी-सतसई पर बिहारी-बिहार नामक एक सुन्दर काव्य-ग्रन्थ भी लिखा था। इनकी ये हिन्दी रचनाए प्रकाशित हो चुकी है—ललिता-नाटिका, पावस-पचासा, भारत-सौभाग्य-नाटक, गोसकट-नाटक, सुकवि-सतसई, कथा-कुसुम-मालिका, स्वर्ग-सभा, बिहारी-बिहार, गद्य-काव्य-मीमासा, आश्चर्य-वृत्तान्त, ईश्वर-इच्छा, ताश-कौतुक-पच्चीसी, चतुरग-चातुरी, धर्म की धूम, 'कलियुग और घी' प्रहसन, स्वामी-चरणामृत, निज-वृत्तान्त, रसीली-कजरी, अवतार-मीमासा, साहित्य-नवनीत- साख्य-सुधा, हो हो होरी।

लाला श्रीनिवासदास—इनका जन्म सवत् १९०८ मे और देहान्त सवत् १९४४ में देहली मे हुआ। भारतेन्दु-मडली के लेखको मे इनका अपना स्थान था। ये हिन्दी, अग्रेजी, फारसी, उर्दू, सस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे, और विद्वानो का सदा सम्मान करते थे। एक बार ये पडित प्रतापनारायण मिश्र से मिले और उन्हे एक मुहर भेंट की।

इस पर पडितजी ने बिगड कर कहा कि 'क्या आप अपने धन का अभिमान दिखाने आये हैं' तब इन्होने हाथ जोडकर विनय की कि 'मै तो मातृभाषा के मदिर में अक्षत चढाता हू।'

इनकी भाषा साफ सुथरी और मुहावरेदार है। इन्होने राजनीति, रणधीर-प्रेममोहिनी, तप्ता-सवरण, सयोगिता-स्वयम्बर, 'प्रहलाद-चरित' नाटक और 'परीक्षा-गुरू' सर्वप्रथम हिन्दी-उपन्यास लिखा। 'रणधीर प्रेम-मोहिनी' शेक्सपीयर के 'रोमियो एण्ड जूलियट' के आधार पर लिखित हिन्दी का सर्वप्रथम दु खान्त नाटक है। इनके गद्य का एक नमूना देखिए—

'न्यायवृत्ति यद्यपि सब वृत्तियो को समान रखने वाली है परन्तु इसकी अधिकता से भी मनुष्य के स्वभाव मे मिलनसारी नही रहती। क्षमा नही रहती।'

बाबू तोताराम—इनका जन्म सवत् १९०४ और देहान्त सवत् १९५९ में हुआ। ये कायस्थ थे, ये पहले हेडमास्टर रहे और बाद में अलीगढ से 'भारत-बन्धु' पत्र निकालने लगे। ये भी भारतेन्दु जी के हिन्दी-प्रचार कार्य मे पूरा भाग लेते और हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका में लेख भी लिखते रहते थे। भाषा-सर्वाधनी-सभा स्थापित कर अपनी 'कीर्तिकेतू,' 'केटोकृतान्त नाटक' (अग्रेजी का अनुवाद) आदि पुस्तको की आय भी उसी के लिए अर्पित कर दी।

प० केशवरामभट्ट—ये महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इनका जन्म सवत् १९११ और देहान्त सवत् १९६१ मे हुआ। इन्होने वर्तमान सामाजिक अवस्था को लेकर हिन्दू, मुसलमान, अग्रेज लुटेरे, लफगे, मुकदमेबाज आदि अनेकविध पात्रो से परिपूर्ण 'सज्जाद सम्बुल' और 'समसाद सौसन' नामक दो नाटक लिखे। और विहार-बन्धु प्रेस खोलकर 'बिहार-बन्धु' नामक पत्र भी निकाला।

पं० राधाचरण गोस्वामी—इनका जन्म सवत् १९१५ मे और देहान्त १९८१ में वृन्दावन मे हुआ। ये सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे। 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' से प्रभावित होकर ये देश-सेवा और समाज-सुधार की ओर प्रवृत्त हो गये। इन्होने 'भारतेन्दु' नामक पत्र भी निकाला और सुदामा नाटक, सती चन्द्रावली, अमरसिंह राठौर, 'तन मन धन श्री गौसाई जी के अर्पण' आदि नाटक भी लिखे। विरजा, जावत्री, मृण्मयी आदि बगला उपन्यासो के अनुवाद भी किये।

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाड्या—इनका जन्म स० १९०८ में हुआ था। इन्होने काशी-क्वीन्स कॉलेज मे शिक्षा प्राप्त की। वही पर इनकी भारतेन्दुजी से प्रगाढ़ता हो गई। बाद मे ये १३ वर्ष तक उदयपुर मे विभिन्न पदो पर कार्य कर अन्त में प्रतापगढ के दीवान बन गये। इन्हे पुरातत्व का भी अच्छा अभ्यास था। चन्दवर-

दाई के पृथ्वीराजरासो के प्रथम समय का सम्पादन कर उसे प्रामाणिक ठहराने का इन्होने प्रयत्न किया था। अग्रेज-स्तोत्र, प्रेम-प्रबोधनी, वसत-प्रबोधनी आदि इनकी रचनाए प्रकाशित हो चुकी है। इन्होने भारतेन्दुजी की हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका को अन्तिम दिनो मे प्रकाशित किया था।

पडित भीमसेन शर्मा—इनका जन्म स० १९१२ मे हुआ था। ये स्वामी दयानन्द जी के परम सहायक थे, किन्तु अन्तिम दिनो मे सनातन धर्म के समर्थक बन गये। इन्होने 'आर्य सिद्धान्त' और 'ब्राह्मण सर्वस्व' पत्र प्रकाशित किये और उपनिषद् आदि के हिन्दी भाष्य भी किये। ये वैदिक साहित्य के परम विद्वान् थे। 'सस्कृत भाषा की अद्भुत शक्ति' नामक लेख मे इन्होने अरबी, फारसी के शब्दो को सस्कृतमय बना डालने की सम्मति दी थी। जैसे दुश्मन—दु शमन, सिफारिश—क्षिप्राशिष, शिकायत—शिक्षायत्न, चश्मा—चक्ष्मा आदि। नरमेध यज्ञ, पुनर्जन्म, विधवा-विवाह मीमासा, अष्टाध्यायी, वेदाग प्रकाश १४ भाग, मनुस्मृति, गीता, ईश केन, मुण्डक माण्डूक्य आदि उपनिषदो के भाष्य, आर्यमत निराकरण प्रश्नावली, मूर्तिपूजा मडन, षोडश सस्कार विधि आदि ग्रथ इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य को प्रकट करते हैं।

काशीनाथ खत्री—इनका जन्म स० १९०६ मे आगरे मे और देहान्त १९४८ मे हुआ। स्वदेशानुराग, कर्त्तव्य-पालन, चरित्र-निर्माण आदि इनके प्रधान विषय थे। इनकी ये रचनाए प्राप्त हुई है—ग्राम-पाठशाला और निकृष्ट नौकरी नाटक, तीन ऐतिहासिक रूपक, बाल-विधवा-सताप-नाटक। इन्होने अग्रेजी की कई रचनाओ का भी हिन्दी मे अनुवाद किया था।

बाबू राधाकृष्णदास—इनका जन्म स० १९२२ और देहान्त १९६४ मे हुआ। यह भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई थे। इन्होने भारतेन्दु जी के अपूर्ण नाटक 'सती-प्रताप' को पूरा किया। दु खिनी बाला, महारानी पद्मावती अथवा मेवाड-कमलिनी, महाराणा प्रताप नाटक, नि सहाय हिन्दू (उपन्यास) लिखे। स्वर्णलता, मरता क्या न करता आदि उपन्यासो के इन्होने अनुवाद भी किये।

कार्तिकप्रसाद खत्री—इनका जन्म सवत् १९०८ और देहान्त सवत् १९६१ मे हुआ। इन्होने कलकत्ता से 'प्रेम-विलासिनी' मासिक पत्रिका और 'हिन्दी-प्रकाश' साप्ताहिक पत्र निकाले। इनका हिन्दी-प्रेम सराहनीय था। इनके रेल का विकट खेल नाटक तथा प्रमिला, जया, मधमालती आदि बगला उपन्यासो के अनुवाद प्रसिद्ध है।

बाबू गदाधरसिंह—इनका जन्म सवत् १९०५ मे और देहान्त १९५५ मे हुआ। यह भारतेन्दुजी और शिवप्रसाद के घनिष्ठ मित्र थे। सस्कृत उपन्यास कादम्बरी, बगला दुर्गेश-नन्दिनी और बग-विजेता के अनुवाद किये। अपना बडा भारी पुस्तकालय यह काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को दे गये।

राजा रामपालसिह—इनका जन्म सवत् १९०६ मे हुआ। यह काला-ककर के नरेश थे। सस्कृत, फारसी, अग्रेजी आदि कई भाषाओ के विद्वान् और भारतीय विचारो के पक्के समर्थक होते हुए भी ये अग्रेजी-वेश-भूषा मे रहते थे। इन्होंने इग्लैड से 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र हिन्दी और अग्रेजी मे निकालना प्रारम्भ किया। भारत लौटने पर हिन्दुस्तान को दैनिक हिन्दी-पत्र बना दिया गया। यह सर्वप्रथम दैनिक पत्र था। महामना पडित मदनमोहन मालवीय जी आदि कई महापुरुष इसके सम्पादक रह चुके थे। राजा साहब अग्रेज-समर्थक लेखो का मुह-तोड उत्तर देते और अग्रेजो को जहाँ मौका पाते बुरी तरह अपमानित करते। कई बार तो अग्रेजो को रेल के डिब्बो पर से उतरा दिया। य काग्रेस के प्रारम्भिक प्रर्वतको मे से थे।

लाला सीताराम—इनका जन्म सवत् १९१० मे अयोध्या मे हुआ। ये कायस्थ थे। बी० ए० पास करने के पश्चात् य 'अवध' अखबार के सम्पादक हुए। इन्होंने सस्कृत और अग्रेजी के अनेक ग्रन्थो का बहुत सुन्दर अनुवाद किया। वास्तव मे हिन्दी अनुवादको मे इनका एक विशेष स्थान है। मेघदूत, कुमारसम्भव, रघुवश, नागानन्द, ऋतु-सहार, हितोपदेश, भवभूति का उत्तर-रामचरित, शूद्रक का मृच्छकटिक और कालीदास के मालविकाग्नि मित्र आदि कई सस्कृत के काव्य और नाटको के इन्होंने अनुवाद किये। शेक्सपीयर के भी लगभग सभी नाटको का इन्होने अनुवाद कर डाला था।

महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी—इनका जन्म सवत् १९१८ काशी मे हुआ था। ये काशी के प्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञानाचार्य थे। जायसी के पद्मावत के कुछ अश पर इन्होने जार्ज ग्रियर्सन के साथ मिलकर भाष्य लिखा था। इसके अतिरिक्त तुलसी-सुधाकर, नया-सग्रह, मानस-पत्रिका, हिन्दी-वैज्ञानिक-कोष, गणित तथा बहुत से ज्योतिष ग्रन्थ लिखे।

जार्ज ग्रियर्सन—ये अनेक भाषाओ के आचार्य एक अग्रेज विद्वान् थे। 'मॉडर्न लिट्रेचर ऑफ नॉर्दरन हिन्दुस्तान' नामक प्रसिद्ध साहित्य का इतिहास इन्होंने 'शिवसिह-सरोज' के आधार पर लिखा। भाषा-विज्ञान के भी ये प्रकाड पडित माने जाते है। अग्रेज हिन्दी-लेखको मे इनका अपना विशेष स्थान है।

फ्रेडरिक पिन्काट—यह इग्लैण्ड-निवासी-लेखक अपने देश मे बैठा हुआ ही हिन्दी-सेवा करता था। बालदीपिका (चार भाग) और विक्टोरिया चरित्र नामक इनकी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। यह भारतेन्दु जी के पत्र-मित्र थे। इनकी गद्य-पद्यमयी भाषा ऐसी सुन्दर और सुव्यवस्थित है कि कोई सहसा उसे सात समुद्र पार के लेखक की भाषा नही कह सकता। भारतेन्दु जी के नाम लिखे हुए इनके एक पद्यात्मक पत्र को देखिए—

"बैस-बस-अवतस, श्री बाबू हरिचन्द जू।
छीर नीर कलहस, टुक उत्तर लिखि देव मोहि॥
पर उपकार मे उदार अवनि मे एक
भाषत अनेक यह राजा हरिचद है।
विभव बडाई वपु बसन विलास लखि
कहत यहा के लोग बाबू हरिचद है॥
चद ऐसो अमिय अनदकर आरत को
कहत कविद यह भारत को चद है।
कैसे अब देखे, को बतावै, कहा पावे ?
हाय, कैसे वहा आवैं, हम कोई मतिमद है॥
श्रीयुत सकल-कविद कुल-नुत बाबू हरिचद।
भारत-हृदय सतार-नभ उदय रहो जनु चद॥

इनके हिन्दी-प्रेम का प्रमाण इस पत्र से प्रकाशित होता है—'मै भी सम्पूर्ण-रूप से जानता हू कि जब तक किसी देश मे निज भाषा और अक्षर सरकारी और व्यवहार-सम्बन्धी कामो मे नही प्रवृत्त होते है तब तक उस देश का परम सौभाग्य हो नही सकता। इसलिए मैने बार-बार हिन्दी भाषा के प्रचलित करने का उद्योग किया है। देखो, अस्सी बरस हुए बगाली भाषा निरी अपभ्रश भाषा थी। पहले-पहल थोडी-थोडी सस्कृत बाते उसमे मिली थी। परन्तु अब क्रम करके सवारने से निपट अच्छी भाषा हो गई। इसलिए चाहिए कि इन दिनो पडित लोग हिन्दी-भाषा मे थोडी २ सस्कृत भाषा मिलावें।"

इनके अतिरिक्त चित्तौडगढ का इतिहास, रामायण-समय-विचार तथा अपनी अनेक यात्राओ के लेखक दामोदर शास्त्री, योगदर्शन-भाष्य, स्वर्ग में महासभा, स्वर्ग

मे सबजैक्ट कमेटी, पाखड मूर्ति, अपूर्व सन्यासी, कठी-जनेऊ का विवाह, आर्यमत-मार्तण्ड आदि के लेखक तथा अनेक पत्रो के सम्पादक सम्पादकाचार्य पडित रुद्रदत्त शर्मा, व्याख्यान-वाचस्पति पडित दीनदयालु शर्मा, पडित दत्तराम चौबे, प्रबल हिन्दी-प्रचारक पडित गौरीदत्त, इतिहास-लेखक मुन्शी देवीप्रसाद, उपनिषद् आदि सस्कृत ग्रन्थो के अनुवादक पडित तुलसीराम शर्मा, आर्यसमाज के कर्मठवीर और गुरुकुल-पद्धति के प्रवर्तक महात्मा मुशीराम (बाद मे स्वामी श्रद्धानन्द जी) अयोध्याप्रसाद खत्री, ठाकुर प्रसाद खत्री, आदि अनेक अन्यान्य हिन्दी-हितैषी भी इसी समय हिन्दी-प्रचार-कार्य मे सलग्न दिखाई देते है।

प्रचार-कार्य

भारतेन्दु जी तथा उनकी मडली ने लोक-रुचि के अनुकूल सामयिक साहित्य का सृजन कर साहित्यिको की रुचि खडी बोली के काव्य-क्षेत्र की ओर आकृष्ट कर दी और अनेक पाठक प्रस्तुत कर दिये। किन्तु जनसामान्य और शासन-विधान मे हिन्दी को प्रचारित करने का कार्य भी उस समय की एक और महत्त्वपूर्ण समस्या थी। जैसा कि प्रतापनारायण मिश्र के पूर्वोक्त लेख से स्पष्ट है शासक तो क्या तात्कालिक हिन्दू जनता भी हिन्दी को नही अपना रही थी। अनेक कारणो से उर्दू और अग्रेजी ही शिक्षा तथा अन्यान्य विभागो मे अपना अधिकार जमाये बैठी थी। ऐसी परिस्थिति मे स्वामी दयानन्द सरस्वती, पडित श्रद्धाराम फिल्लौरी, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आदि पूर्वोक्त सुधारको और लेखको के अतिरिक्त अन्य कई स्वनामधन्य महानुभावो ने भी हिन्दी-प्रचार तथा उसे प्रत्येक क्षेत्र मे यथोचित स्थान दिलाने के लिए भगीरथ प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। विभिन्न सभा-सस्थाओ से भी इस कार्य मे सहयोग और साहाय्य प्राप्त हुआ। यहाँ उसी का सक्षिप्त विवेचन किया जाता है—

कर्मठ हिन्दी-प्रचारक पडित गौरीदत्त, भारत भूषण महामना पडित मदनमोहन मालवीय, महात्मा मुशीराम, (स्वामी श्रद्धानन्द जी) पजाब केसरी लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक, श्रीयुत मोहनदास कर्मचन्द गाँधी (महात्मा जी) आदि इस युग के प्रमुख हिन्दी-प्रचारक है।

प० मदनमोहन मालवीय जी ने युक्तप्रान्त के सरकारी विभागो मे हिन्दी को स्थान दिलाने के लिए अनेक लेख लिखे व आन्दोलन किये। गवर्नरो के पास शिष्ट-मंडल भेजे। 'कोर्ट-करैक्टर एन्ड प्राईमरी इज्यूकेशन' शीर्षक सौ फुल्स्केप पेजो का पुस्तकाकृति-निबन्ध प्रकाशित कर हिन्दी की उपयोगिता और महत्ता प्रमाणित की।

सवत् १९५६ मे मालवीय जी के नेतृत्व मे डा० सुन्दरलाल, अयोध्या के महाराज प्रतापनारायणसिह आदि कई प्रतिष्ठित पुरुषो का प्रतिनिधि-मडल युक्तप्रान्त के गवर्नर से मिला। ६०००० हस्ताक्षर भी हिन्दी के पक्ष मे करवाये गये। काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा ने इस कार्य मे विशेष योग दिया। इस प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप युक्त-प्रान्त के न्यायालयो मे हिन्दी को भी सवत् १९५७ मे मान्यता मिल गई। उधर गाँधीजी ने अफ्रीका मे हिन्दी-प्रचार का बीडा उठाया। पजाब मे लाला लाजपतराय, महात्मा हसराज तथा स्वामी श्रद्धानन्दजी आदि प्रचार-कार्य करते रहे।

पडित गौरीदत्त ने स० १९४४ से हिन्दी-प्रचार का बीडा उठा लिया। घूम-घूमकर हिन्दी-प्रचार के लिए व्याख्यान देते और नमस्ते प्रणाम आदि के स्थान पर 'जयनागरी' कहा करते। ये हाथ मे नागरी का झडा लिए हुए जहाँ-कही जाते तो इनके पीछे लडके हुल्लड मचाते हुए फिरा करते थे। इन्होने स्थान २ पर देवनागरी स्कूल खोले। इनकी स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी तीन पुस्तके गवर्नमैट से पुरस्कृत हुई थी।

सवत् १९५० मे पडित रामनारायण मिश्र, डा० श्यामसुन्दरदास, श्री शकरनाथ और श्री शिवकुमारसिह इन चार छात्रो ने मिलकर 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' की स्थापना की, जो आज हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के पश्चात् भारत की एकमात्र प्रमुख प्रतिनिधि हिन्दी-सस्था है। साहित्य-निर्माण आदि कार्य तो इसके सम्मेलन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। बाबूराधाकृष्णदास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, पडित लक्ष्मीशकर मिश्र, पडित मदनमोहन जी मालवीय, कालाककर-नरेश राजा-रामपाल सिह, काकरोली-नरेश महाराज बालकृष्णलाल, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, बद्रीनारायण चौधरी, श्रीधर पाठक आदि अनेक प्रमुख साहित्यिक नेता, और श्री-मन्तो ने प्रथम वर्ष ही मे इस सभा के सरक्षक बनकर इसके कार्य को सहसा उत्कर्ष पर पहुचा दिया। प्राचीन पुस्तको की खोज और हिन्दी-शब्द-सागर नामक कोष का निर्माण तथा अनेक प्रचार-आन्दोलनो का आरम्भ आदि इस सभा के महत्त्वपूर्ण कार्य है। यह सभा अपनी त्रैमासिक पत्रिका 'काशी-नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के नाम से प्रकाशित करती है। हिन्दी-साहित्य और भाषा के लिए इस सभा ने जो कुछ कार्य किया है वह अत्यन्त स्तुत्य और महत्त्वपूर्ण है इसमे कुछ सन्देह नही।

इसी समय स्वामी श्रद्धानन्द जी आदि आर्यसमाज के नेताओ ने गुरुकुल और प० दीनदयालुजी, तथा मालवीयजी आदि सनातनधर्मी नेताओ ने ऋषिकुल खोलने आरम्भ किये। इन शिक्षा-सस्थाओ ने हिन्दी-प्रचार मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। इनके

अतिरिक्त राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस, हिन्दू-सभा आदि संस्थाएँ एक या दूसरे रूप मे हिन्दी का प्रचार या समर्थन करती रही। इनका परिचय आगे यथास्थान दिया जायगा।

अभ्यास

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जीवन-वृत्त लिखकर उनकी साहित्य व समाज-सेवाओ का विस्तृत परिचय दे।

२ भारतेन्दु-मण्डली के लेखको की भाषा-विषय-शैली की तुलनात्मक समीक्षा करे।

३. प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी और ठाकुर जगमोहनसिंह के जीवन-वृत्त व साहित्य पर संक्षिप्त प्रकाश डाले।

४ भारतेन्दु-युग मे किन २ व्यक्तियो, सभा-संस्थाओ ने किस प्रकार हिन्दी-प्रचार के लिए कार्य किया ?

द्विवेदी-प्रवर्तित संस्कार-युग

सत्रहवाँ अध्याय

द्विवेदी-प्रवर्तित संस्कार-युग

भारतेन्दु जी तथा उनकी मडली के सरस और सामयिक साहित्य की कृपा से हिन्दी के असख्य पाठक हो गये। किन्तु उक्त मडली के लेखको के क्रमश उठ जाने पर उनका स्थान लेने वाले नये लेखको का अभाव-सा दिखाई देने लगा। इसलिए सर्व-प्रथम इस युग के सुलेखको की रुचि हिन्दी की ओर आकृष्ट करना आवश्यक था। खडी बोली केवल बोली या लोक-भाषा न रह कर साहित्य-क्षेत्र मे प्रविष्ट हो अब तक दो अवस्थाओ को पार कर चुकी थी। शैशव के निरीह साहित्य और कुमारावस्था के सरस साहित्य की शोभा उसमे दीख पडी। गद्य मे तो वह विधिपूर्वक प्रयुक्त होने लगी थी, पर पद्य मे अभी उसका प्रवेश न हो पाया था। यह स्थिति अस्वाभाविक-सी बन गई कि गद्य मे एक भाषा का प्रयोग हो और पद्य मे दूसरी का। इसलिए पद्य के लिए भी खडी बोली का प्रयोग अपरिहार्य प्रतीत होने लगा। भारतेन्दु युग एक प्रकार से खडी-बोली का प्रचार युग था। उस युग मे जिससे जैसी (भाषा) बन आई उसने वैसी साध ली। रीतिकाल की व्रजभाषा की भाँति हरिश्चन्द्रयुग की खडी बोली भी व्याकरण-सस्कार से हीन थी। भाषा को एक सुस्थिर और परिमार्जित रूप देने के लिए अब उसे व्याकरण सम्मत बनाने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। 'बडे-बडे पुस्तक छपे, 'आशा किया' आदि च्युतसस्कृत तथा अनेक अप्रयुक्त प्रान्तीय प्रयोगो के प्रचलन को समाप्त करना इस समय की प्रमुख समस्या थी। खडी बोली मे पद्य की प्रतिष्ठा व उसकी सुनिश्चित शैलियो के आविष्कार की ओर भी समालोचको का ध्यान आकृष्ट हो रहा था। हरिश्चन्द्र-काल के पद्य मे रीति-कालीन परम्परा व राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला अपना स्थान यथापूर्वक बनाये बैठी थी। उस युग मे नवीन और प्राचीन की खिचडी-सी पकने लगी थी। अब पाठक उस दुरगेपन की अपेक्षा केवल नवीन विचारधारा की एकरूपता को अपनाना चाहते थे। सन् १९०५ के बग-भग ने राजभक्ति-मिश्रित देशभक्ति की भावना को हटाकर शुद्ध राष्ट्रीयता की भावनाओ को विकसित कर दिया था। साहित्य को भी तदनुरूप परिवर्तित हो जाना चाहिए था। भारतेन्दु-युग की समाप्ति के साथ साहित्यिको के सम्मुख यह सब समस्याएँ उपस्थित हो गई। भारतेन्दु-काल मे प्रकट एक प्रतिभा इस युग मे प्रकाशित हो इन समस्याओ का समाधान करने की ओर अग्रसर हुई। पण्डित श्रीधर पाठक की

अपूर्व प्रतिभा ने व्रजभाषा के साथ स्वच्छन्द शैली मे खडी बोली के पद्य का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। 'अटवी-अटन' आदि रचनाओ मे बेठिकाने समाप्त होने वाली अतुकान्त शैली के लिए उन्होने मार्ग प्रस्तुत किया। पाठक जी आग्ल-साहित्य विशेषतया गोल्डस्मिथ कवि से प्रभावित थे। उनकी यह नवीन शैली आग्ल-साहित्य पर आश्रित थी। वे आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रथम क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावादी (रोमाण्टिक) कवि कहे जाते है। किसी भी समाज या साहित्य ने स्वच्छन्दतावादी विचारधारा या शैली को सहसा नही अपनाया—आपातत· उसे तिरस्कृत ही किया है। अतएव साहित्यिक पाठक जी द्वारा प्रस्तुत पथ का सहसा अनुसरण न कर सके। पाठक जी द्विवेदी-युग और भारतेन्दु-युग की मध्य-की कडी बन पाये। ऐसी परिस्थितियो में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य-ससार मे उद्भूत हों उक्त समस्याओ का समाधान कर दिया।

पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी—इनका जन्म दौलतपुर (जिला रायबरेली) मे सवत् १९२७ और देहान्त सवत् १९९५ मे हुआ। अपने ग्राम मे हिन्दी, सस्कृत और उर्दू की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् रायबरेली हाईस्कूल में इन्होने अग्रेजी व अरबी-फारसी पढी। बम्बई मे रहकर मराठी और गुजराती आदि भाषाओ की अभिज्ञता प्राप्त की। तार-बाबू, टेलीग्राफ-इन्सपेक्टर आदि पदो पर कार्य करने के पश्चात् ऑफिसर से झडप हो जाने के कारण नौकरी छोडकर घर चले गये। सवत् १९६० मे आपने 'सरस्वती' का सपादन-भार सभाला। सरस्वती के सम्पादन के साथ ही आपकी साहित्यिक प्रतिभा सहसा चमक उठी। तब से लेकर मृत्युपर्यन्त आप हिन्दी के परिष्कार और शृगार मे सलग्न रहे। उपर्युक्त सब समस्याओ का समाधान कर इन्होने साहित्य की जैसी स्तुत्य सेवाएँ की है वे सदा स्मरणीय रहेगी। उस समय के सामान्य-शिक्षित और लेखक-वर्ग को अग्रेजी और बगला आदि दूसरी भाषाओ के साहित्य ने अत्यधिक प्रभावित कर रखा था। वे लोग इन्ही भाषाओ मे लिखने मे गौरव समझते थे। 'हिन्दी का विद्वान्' और उसका 'साहित्य' आदि शब्द उन्हे अस्वाभाविक और अपरिचित-से प्रतीत होते थे। उन्हे अपनी भाषा मे लिखना-लिखाना अप्रिय-सा लगता था। द्विवेदी जी ने ऐसे ही लेखको को पकड़-पकड कर हिन्दी लिखने के लिए प्रेरित व उत्साहित किया। उन्होने उर्दू, अग्रेजी, बगला आदि में लिखने वाले अनेक लेखको को हिन्दी-साहित्य में ला बैठाया। जिन मे से कुछ तो कई अमूल्य साहित्यरत्न दे गये। मुन्शी प्रेमचन्द और महाशय सुदर्शन-सरीखे अनेक लेखक उर्दू को सहसा तिलाजली दे हिन्दी ही के बन बैठे। इसके अतिरिक्त द्विवेदीजी ने नवीन हिन्दी-लेखको को प्रोत्साहित कर उन्हे अच्छा कलाकार

बना दिया। ऐसे कलाकारो मे राष्ट्र के प्रतिनिधिकवि मैथिलीशरण जी गुप्त प्रमुख है। गुप्तजी ने 'साकेत' सरीखे अमर महाकाव्य की रचना मे भी द्विवेदीजी की प्रेरणा का निम्न रूप मे उल्लेख किया है—

करते तुलसी भी कैसे मानस नाद ।
महावीर का यदि उन्हे मिलता नही प्रसाद ।।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने नये लेखक प्रस्तुत कर खडी बोली का पद्य मे भी प्रयोग आरम्भ कर दिया। गद्य और पद्य दोनो की भाषा मे एकरूपता ला दी।

भाषा-सस्कार के लिए उन्होने अनेक प्रयत्न व उपाय किये। सरस्वती मे प्रकाशित होने वाले प्रत्येक लेख को वे स्वय शुद्ध कर सजाते, सवारते और लेखको को भविष्य मे वैसे ही सुसस्कृत रूप मे लिखने के लिए सावधान करते। व्याकरण के विविध अगो पर उन्होने स्वय लेख लिखे और दूसरो से भी लेख व पुस्तके लिखवाई। व्याकरण-सम्बन्धी प्रत्येक छोटी-बडी बात को लेकर पर्याप्त चर्चाएँ इस समय चली। विभक्तियो को शब्द से पृथक् या साथ रखने के सम्बन्ध मे भी विचार हुआ। पडित कामताप्रसाद गुरु ने इसी समय अपना प्रसिद्ध प्रामाणिक व्याकरण लिखा। इस प्रकार द्विवेदीजी ने भाषा को सस्कार-सम्पन्न किया। उसमे प्रान्तीय पदावली के पुटो का प्रयोग सर्वथा समाप्त कर दिया। अभी तक विशेष विचारो को व्यक्त करने के लिए कोई विशेष शैली सुनिश्चित नही थी। द्विवेदी जी ने १ व्यग्यात्मक २ आलोचनात्मक ३ गवेषणात्मक शैलियाँ निर्धारित की। तीनो शैलियो की भाषा भी विषयानुकूल परिवर्तित होने लगी।

खडी-बोली-पद्य के तो वे प्रथम प्रवर्तक ही माने जाते है। उनसे पूर्व पाठक जी के सिवा अन्य किसी लेखक ने पद्य मे खडी-बोली का प्रयोग प्राय नही किया था। द्विवेदी जी की प्रेरणा से प्रसूत सभी साहित्यिको ने गद्य और पद्य दोनो के लिए खडी बोली को ही अपनाया। सामान्यतया सस्कृत के वर्णवृत्त, हिन्दी के मात्रिक छन्द और उर्दू बहर इन तीनो शैलियो पर रचनाएँ लिखी जाने लगी। पण्डित अयोध्यासिह जी उपाध्याय ने अपना प्रसिद्ध महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' लिखकर वार्णिक वृत्तो व सस्कृत भाषा के प्रयोग की उपयोगिता प्रकट की। गुप्त जी ने मात्रिक छन्दो को अपनाया। और पाठक जी, प्रसाद जी आदि ने अतुकान्त रचना का प्रयोग सफलता-पूर्वक कर दिखाया।

द्विवेदीजी ने शृगार की प्राचीन परिपाटी का परित्याग कर स्वदेशानुराग आदि की सात्विक प्रवृत्तियो का प्रचार किया। गुप्त जी की 'भारत-भारती' रामनरेश त्रिपाठी के 'स्वप्न', 'पथिक,' 'मिलन' आदि काव्य इसी प्रवृत्ति के परिचायक है।

इस प्रकार भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से द्विवेदी जी ने साहित्य को नवीन रूप, अभिनव चेतना और स्वच्छता प्रदान की। उक्त महत्कार्य के साथ द्विवेदी जी ने स्वय बडे भारी साहित्य का निर्माण किया। सैकडो छोटे-बडे निबन्धो, लेखो और पद्यो के अतिरिक्त इन्होने ४० ग्रन्थ लिखे या अनूदित किये। कालीदास के रघुवश और कुमारसभव के पद्यात्मक अनुवाद तथा महाभारत का सक्षिप्त गद्यानुवाद इनकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ है। इनके महाभारत की भाषा ही को आगामी सभी लेखको ने आदर्श रूप मे स्वीकार किया। इस प्रकार भाषा का सस्कार, खडी बोली मे पद्य का प्रचार, नवीन भाषा, विषय, शैली का आविष्कार और साहित्य-क्षेत्र में नवीन कलाकारो का सत्कार कर द्विवेदी जी ने 'आचार्य' पद पर प्रतिष्ठित होने का पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। वे आधुनिक हिन्दी-जगत् के सचमुच पितामह थे। द्विवेदी जी के गद्य और पद्य के उदाहरण नीचे दिये जाते है। --

सुरम्यरूपे रस-राशि-रजिते, विचित्रवर्णाभरणे कहा गई?
अलौकिकानन्दविधायिनी महा, कवीन्द्र कान्ते कविते अहो कहा?

'इस म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन जिसे अब लोग कुरसीमैन भी कहने लगे है श्रीमान् वूचाशाह है। बाप-दादे की कमाई का लाखो रुपया आपके घर भरा पडा है। पढे-लिखे आप राम का नाम ही है। चेयरमैन सिर्फ इसलिए हुए है कि अपनी कारगुजारी गवर्नमेंट को दिखा कर आप रायबहादुर बन जायँ और खुशामदो से आठ पहर चौसठ घडी घिरे रहे। म्यूनिसिपैलिटी का काम चाहे न चले, आपकी बला से। इसके एक मैम्बर बाबू बख्शीशराय--आपके साले साहब ने फी रुपया तीन-चार पसेरी का भूसा (म्यूनिसिपैलिटी) को देने का ठेका लिया है। आपका पिछला बिल १० हजार रुपये का था। पर कडा-गाडी के बैलो और भैसो के बदन पर सिवा हड्डी के मास नजर नही आता। सफाई के इन्सपैक्टर हैं लाला सतगुरूदास आपकी इन्सपैक्टरी के जमाने मे हिसाब से कम तनख्वाह पाने के कारण मेहतर लोग तीन दफे हडताल कर चुके है।'

'किसी-किसी का ख्याल था कि यह भाषा देहली के बाजार ही की बदौलत बनी है, पर यह ख्याल ठीक नही। भाषा पहले ही से विद्यमान थी और उसका विशुद्ध रूप अब भी मेरठ प्रात मे बोला जाता है।

श्रीधर पाठक--पाठक जी का जन्म सवत् १९१६ मे और देहान्त सवत् १९८५ मे हुआ। इनके पिता पडित लीलाधर थे। ये सरल स्वभाव के परिष्कारप्रिय प्राणी थे। तात्कालिक समाज-सुधरको और देश-प्रेमियो मे इनका प्रमुख स्थान था। खडी

बोली मे ये प्रथम कविता-लेखक थे। द्विवेदी जी ने इनकी प्रशसा मे 'श्रीधरसप्तक' लिखकर इन्हे हिन्दी भाषा का 'जयदेव' कहा था। इनका प्रकृति-वर्णन असाधारण और स्वानुभूत है। प्रसिद्ध आग्ल-कवि गोल्डस्मिथ के 'ट्रेवलर' 'डजर्टिड विलेज' व 'हर्मिट' के अनुवाद 'श्रान्त पथिक, 'ऊजड गाँव, ' 'एकान्तवासी योगी' व सस्कृत काव्य 'ऋतु-सहार' का अनुवाद आदि इनकी रचनाएँ बडी सुन्दर बन पडी है। 'काश्मीर-सुषमा' और 'देहरादून' नामक कविताओ से इनकी प्रकृति-निरीक्षणात्मक भावुकता प्रकट होती है। इनकी ब्रजभाषा मे भी एक नवीन अलौकिकता झलकती है।। 'गोखले-प्रशस्ति' और 'भारत-गीत' आदि इनकी राष्ट्रीय रचनाएँ है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ये सभापति भी थे। 'पद्य-सग्रह' के नाम से इनकी सब कविताएँ सकलित व प्रकाशित हो चुकी है। इनकी दो कविताएँ देखिए—

आज रात इससे परदेशी चल कीजै विश्राम यही।
जो कुछ वस्तु कुटी मे मेरे करो ग्रहण सकोच नही॥
तृण-शैया औ अल्प रसोई पाओ स्वल्प प्रसाद।
पैर पसार चलो निद्रा लो मेरा आशीर्वाद॥

विजन वन प्रान्त था, प्रकृति मुख शान्त था।
अटन का समय था, रजनी का उदय था॥
प्रसव के काल की लालिमा मे लहसा,
बाल शशि व्योम की ओर था आ रहा।
सद्य-उत्फुल्ल अरविद-निभ-नील-सुवि-
शाल नभवक्ष पर जा रहा था चढा॥

प० अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'—उपाध्याय जी का जन्म सवत् १९२२ मे और देहान्त सवत् २००४ मे निजामाबाद मे हुआ। हिन्दी, सस्कृत, अग्रेजी, फारसी आदि अनेक भाषाओ के ये अच्छे ज्ञाता थे। सरकारी नौकरी से पेन्शन पाकर सवत् १९८० मे ये हिन्दू-विश्वविद्यालय काशी मे हिन्दी का अध्यापन कराने लगे। ये अखिलभारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति रह चुके थे। उपाध्याय जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। व्रज, खडी बोली, सस्कृतनिष्ठ या मुहावरेदार सभी भाषाओ के गद्य-पद्यात्मक दोनो रूपो मे इन्होने अपनी सफल लेखनी चलाई।

इनकी रचनाओ को पढते ही पाठक के हृदय मे सर्वप्रथम यही भाव उत्पन्न होता है कि उपाध्यायजी ऐसा भी लिख सकते है और वैसा भी। इनकी रचनाओ मे भाषा की विविधता प्रमुख रूप से लक्षित होती हैं। ये पहले व्रजभाषा मे और फिर खडी बोली मे लिखते रहे। द्विवेदी-युग के प्रभाव से इन्होने सस्कृतनिष्ठ भाषा मे अपना प्रसिद्ध 'प्रियप्रवास' महाकाव्य लिखा। इसमे विरहिणी व्रजागनाओ की विरह व्याकुलता का विविध रूपो मे वर्णन कर श्रीकृष्ण को अलौकिक शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र-रक्षक के रूप में उपस्थित किया गया है इस प्रकार भाषा, विषय और शैली सभी दृष्टियो से अपने समसामयिक साहित्य मे यह काव्य एक नवीन प्रयोग प्रस्तुत करने वाला प्रमाणित हुआ। आगे चलकर छायावादी और रहस्यवादी कवियो ने ऐसी ही सस्कृत पदावली को कोमलकान्त रूप मे प्रस्तुत किया। विषयगत विभिन्नता के अभाव मे यह एक उत्कृष्ट महाकाव्य तो नही पर प्रिय-विरह की विभिन्न अवस्थाओ का प्रदर्शक एक सुललित काव्य अवश्य बन गया है। मुहावरेदार ठेठ हिन्दी में चोखे चौपदे भी इनके सुन्दर है। पद्य के समान गद्य मे भी इन्होने दोनो प्रकार की भाषाएँ लिखी। 'वेनिस का बाका' नामक अनूदित उपन्यास सस्कृतनिष्ठ भाषा मे है। 'अधखिला फूल' 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' नामक उपन्यास तो अपने नाम ही से भाषा के स्वरूप को प्रकट कर रहे हैं। इनका अन्तिम महाकाव्य 'वैदेही-वनवास' भी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें सीता को केवल पतिपरायणा पत्नी ही नही प्रत्युत राष्ट्र-हितैषिणी आदर्श-महिला के रूप में अकित किया है। राम सीता को उसकी सम्मति से ही बन मे भेजते है। रसकलश, (व्रजभाषा की कविताओ का सग्रह) पद्यप्रसून, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, प्रेम-पुष्पोपहार, काव्योपवन, प्रेम-प्रपच, पारिजात, प्रेमाम्बु-प्रवाह-कल्पलता, ऋतुमुकुर, बोलचाल आदि इनके १३ काव्य-सग्रह है। कबीर वचनावली तथा हिन्दी भाषा व साहित्य का विकास आपकी समालोचनात्मक रचनाएँ है। 'प्रियप्रवास' पर १२००) मगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चुका है। ७० वी वर्षगाठ पर आरा की हिन्दी-प्रचारिणी-सभा ने इन्हे 'हरिऔध' अभिनन्दन-ग्रन्थ भी भेट किया था। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिए—

चार डग हमने भरे तो क्या किया,
है पडा मैदान कोसो का अभी।
मौलवी ऐसा न होगा एक भी,
खूब उर्दू जो न होवे जानता॥

रूपोद्यानप्रफुल्ल-प्रायकलिका राकेन्दु-बिम्बानना ।
तन्वङ्गी-कलहासिनी सुरसिका क्रीडाकला-पुत्तली ।।
शोभावारिधि की अमूल्य मणिसी लावण्य लीलामयी ।
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी-माधुर्य-सन्मूर्ति थी ।।

धीरे धीरे दिन गत हुआ, पद्मिनीनाथ डूबे ।
आई दोषा फिर गत हुई, दूसरा बार आया ।।
यो ही बीती विपुल घटिका, औ कई बार बीते ।
आया कोई न मधुपुर से औ न गोपाल आये ।।

श्री मैथिलीशरण गुप्त—गुप्तजी का जन्म सवत् १९४३ मे चिरगाव (झाँसी) मे हुआ। इनके पिता सेठ श्री रामचरण गुप्त स्वय एक अच्छे कवि थे। इन्हे कविता की प्रवृत्ति अपने पिता से और प्रोत्साहन द्विवेदीजी से प्राप्त हुआ। सवत् १९६४ से इनकी रचनाएँ सरस्वती मे छपने लगी। आपका रहन-सहन सादा, सात्विक और स्वभाव नम्र है। वैष्णव धर्म के अनुयायी होते हुए आप सब धर्मो के प्रति उदार और सहिष्णु है। जो लोक-सम्मान इन्हे प्राप्त हुआ है इस युग के अन्य किसी हिन्दी-कवि को नही प्राप्त हो सका। इनकी कविता की श्रेष्ठता की कसौटी लोकप्रियता ही है। इनकी कविता से सारे राष्ट्र और समाज को जागृति मिली है। इनकी भाषा व्याकरण के नियमो पर कसी हुई विशुद्ध खडी बोली है। इन्होने जो कुछ लिखा है राष्ट्र के उत्थान के लिए और इसमे जागृति उत्पन्न करने के लिए। 'भारत-भारती' इनकी पहली लोकप्रिय रचना है। इसमे भारत के अतीत और वर्तमान का सजीव चित्र अकित हुआ है। 'जयद्रथ-वध' महाभारत पर आश्रित देश-भक्ति के भावो से समन्वित आख्यान-काव्य है। 'अनघ' मे बौद्ध-जातक कथा के आधार पर गाँधीवाद का चलता-फिरता चित्र है। इसमे अत्याचार के प्रति अहिंसात्मक विद्रोह दिखाया गया है। त्रिपथगा मे पाडवो के तीन मार्मिक चित्र अकित किये गये है। गुरुकुल मे सिक्ख गुरुओ का वर्णन है।'पचवटी' रामचरित-सम्बन्धी महाकाव्य है। 'नहुष' मे मनुष्य के शुभ कर्मो द्वारा उत्थान और दुष्कर्मो से पतन व पुनरुत्थान के लिए दृढ सकल्पों की कथा है। 'कुणालगीत' मे अशोक के पुत्र कुणाल की कष्ट-सहिष्णुता और त्याग-वृत्ति का चित्र अकित किया गया है। 'काबा और कर्बला' मे हुसैन और उसके परिवार की कष्टपूर्ण कथा के सहारे मुस्लिम सस्कृति का प्रदर्शन किया गया है। 'झकार' मे रहस्यवादी रचनाएँ झकृत हो रही है। 'अर्जन और विसर्जन' मे ईसाई संस्कृति

प्रतिबिम्बित है। बगला से अनूदित 'मेघनाद-वध' मे मेघनाद का उत्कर्ष दिखाया गया है। 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' और 'अनघ' इनके नाटक हैं। कई छोटी-मोटी रचनाओ के अतिरिक्त इनके परमोत्कृष्ट और प्रसिद्ध काव्य 'साकेत', 'द्वापर' और 'यशोधरा' हैं। जो राम, कृष्ण और बुद्ध भारत की इन तीन महाविभूतियो से सम्बद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त 'रग मे भग' 'शकुन्तला' 'किसान' 'पत्रावली' 'वैतालिक' 'स्वदेशसगीत' 'हिन्दू' 'विश्व-वेदना' 'शक्ति' 'गुरु तेगबहादुर' 'सैरन्ध्री' 'वन-वैभव' 'सिद्धराज' 'विकट भट' 'मगल घट' हिडम्बा, पृथ्वीपुत्र, प्रदक्षिणा, अञ्जलि और अर्घ्य आदि मौलिक व 'वीरागना' 'विरहिणी-व्रजागना' 'पलासी का युद्ध' 'उमर-खय्याम' 'स्वप्न वासवदत्ता' आदि अनूदित रचनाएँ है।

'साकेत' का नामकरण अयोध्या के प्राचीन नाम पर किया गया है। द्विवेदीजी ने साहित्यिको का ध्यान काव्य की उपेक्षित नारियो और दलित वर्ग की ओर भी आकृष्ट किया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर पहले ही उर्मिला के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर चुके थे। वही से प्रेरणा प्राप्त कर गुप्तजी के 'साकेत' की सृष्टि हुई है। इस काव्य के प्रत्येक पहलू को लेकर जैसाकि स्वाभाविक था पर्याप्त आलोचना प्रत्यालोचनाएँ हुईं। विरहिणी उर्मिला की विविध मनोवृत्तियो का विशद विवेचन करने के लिए ही यह काव्य लिखा गया था। अत इसमे उक्त विरह का व्यापक वर्णन स्वाभाविक था, किन्तु 'अति' ने इसकी उत्कृष्टता मे कुछ न्यूनता उत्पन्न कर दी। इस काव्य मे कवि राम को चित्रकूट पर छोडकर उनके साथ आगे न जाकर भरत के साथ साकेत लौट आता है और वही उर्मिला के विरह मे सिसकिया भरने लगता है। किन्तु कवि यहाँ भूल जाता है कि उर्मिला कोई साधारण प्रोषितपतिका नायिका न होकर पति को सहर्ष वन मे जाने की स्वीकृति देने वाली एक सुधीर महिला है। और लक्ष्मण भी उससे सदा के लिए विदा नही हो गये। वे कुछ समय पश्चात् उसे मिलने ही वाले हैं। ऐसी अवस्था मे शोकविधुरा कौशल्या आदि सासो को धैर्य बधाने के स्थान पर उर्मिला को स्वय विरहातप मे तडपा-रुलाकर उसके चरित्र को सामान्यता से ऊपर नही उठाया गया। नारी के उत्कृष्ट और आदर्श चरित्र-निर्माण का यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने के लिए ही मानो 'यशोधरा' की रचना हुई है। य यशोधरा और उर्मिला की परिस्थितियो मे भी पर्याप्त अन्तर है। उर्मिला केवल पत्नी है और ऐसी पत्नी जिसको दु ख मे ढाढस बन्धाने वाले पति और ससुर दोनो मे से कोई भी उपस्थित नही है। सास अपने ही शोक-पारावार मे निमग्न है। ऐसी अवस्था मे उर्मिला का विशेष व्याकुल होना स्वाभाविक भी है। विपरीत इसके यशोधरा पत्नी ही नही,

माता भी है। उसकी आँखो मे पानी के साथ आचल मे दूध भी है। प्रिय शिशु की क्रीडाओ मे वह अपने शोक के आवेग को रोक सकती है। सास-ससुर का उसे सहारा है। इसलिए उसे विशेष दु ख इसी बात का है कि उसके स्वामी सिद्धि के लिए उसे कहकर नही गये और फिर लौटने का निश्चय नही। कारण कुछ भी हो उर्मिला की अपेक्षा यशोधरा का चरित्र आदर्श व स्वाभाविक है। 'साकेत' उत्कृष्ट रचना होते हुए भी प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से शिथिल माना गया और 'यशोधरा' ढिलमिल खिचडी काव्य होते हुए भी हिन्दी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचनाओ मे प्रमुख पद पा गया। 'यशोधरा' का वात्सल्य-वर्णन भी स्वाभाविक और सरस है। 'द्वापर' मे 'कृष्ण-चरित्र' को एक सर्वथा नवीन और मौलिक रूप मे अकित करने का प्रयत्न किया गया है। कृष्ण के द्वारा इन्द्रपूजा का विरोध और गोवर्धन-पूजा के प्रवर्तन मे यह युक्ति-युक्त कारण बतलाया गया है कि कृष्ण ने इन्द्रादि देवताओ के नाम पर किये जाने वाले हिसात्मक यागो का विरोध कर दूध-दही आदि सात्विक पदार्थों से सम्पन्न होने वाली पूजा का प्रचार किया। इसमे कृष्ण, यशोदा, बलराम, नारद, कस, वसुदेव आदि पात्रो की मनोदशाओ का नवीन विचार-सरणी के आधार पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। बलराम रूढि-परम्पराओ के घोर विरोधी, उग्र विचारक, प्रगतिवादी क्रान्तिकारी के रूप मे प्रस्तुत हुए है। गुप्तजी ने राष्ट्र की सभी आवश्यक सामयिक समस्याओ के साथ अपना स्वर मिलाकर राष्ट्र की सम्पूर्ण भावनाओ का प्रतिनिधित्व किया है। मध्यकालीन राम-भक्त गोस्वामी जी की भाँति गुप्तजी भी किसी वाद या सम्प्रदाय-विशेष के बन्धन मे न बधकर सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते है। उनके काव्य मे उनके सुख-दु खो या भावनाओ की अपेक्षा भारत की आत्मा ही प्रमुख रूप से प्रतिबिम्बित हो रही है। उनके भरत को भारत लक्ष्मी के सात समुद्र पार चले जाने की चिन्ता है। सीता और राम भी गाँव की कुटियाओ मे ही आनन्द मना रहे हैं।

'तुम अर्धनग्न क्यो रहो अशेष समय मे।
आओ हम काते बुने गान की लय मे॥'

मे भी गाँधीवाद की अपेक्षा राष्ट्रीय जागरण की भावनाएँ ही प्रबुद्ध हो रही है। द्वापर का बलराम —

न्याय धर्म के लिये लडो तुम ऋतहित समझो बूझो,
अनयराज निर्दय समाज से निर्भय होकर जूझो।

राजा स्वय नियोज्य तुम्हारा यदि तुम अटल प्रजा हो,
धात्री नही किन्तु बलदात्री बस अन्यथा अजा हो।

कहता हुआ आज के भारत की आत्मा को अभिव्यक्त कर रहा है। अत कह सकते है कि राष्ट्र ने गुप्तजी को राष्ट्र के प्रतिनिधि-कवि पद पर प्रतिष्ठित कर अपने कर्त्तव्य ही का पालन किया है। इसमें कुछ सन्देह नही कि यदि रवीन्द्रनाथ-ठाकुर 'विश्व-कवि' है तो मैथिलीशरण गप्त 'राष्ट्र-कवि'। इनके साकेत पर १२००) मगलाप्रसाद पारितोषिक तथा ५००) का पुरस्कार हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्राप्त हो चुका है। पिछले दिनो हिन्दी जगत् ने इनकी हीरकजयन्ती बडी धूमधाम से मनाई और मैथिलीशरण-गुप्त-अभिनन्दन-ग्रन्थ भी भेंट किया। इनकी कुछ कविताएँ देखिए—

नाक का मोती अधर की काति से,
बीज दाडिम का समझकर भ्राति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है।

करुणे क्यो रोती है? 'उत्तर' मे और अधिक वह रोई।
मेरी विभूती है जो, उसको भव-भूती कहे क्यो कोई॥

रामनरेश त्रिपाठी—त्रिपाठी जी का जन्म सवत् १९४७ मे हुआ। इनकी कविता देश-भक्ति की भावनाओ से परिपूर्ण और मानव-हृदय मे सत्प्रवृत्तियो को अकुरित करने वाली है। श्रीधर पाठक जी की परम्परा म चलकर इन्होने भी उनके स्वच्छन्दवाद के स्वर-मे-स्वर मिलाया। 'स्वप्न', 'पथिक' आर 'मिलन' नामक इनके तीन छोटे २ खण्ड-काव्य प्रकृति के वास्तविक चित्रण, स्वदेशानुराग और उदात्त भावनाओ से परिपूर्ण है। इन्होने अपने काव्यो मे प्रकृति का आँखो-देखा चित्र अकित किया है। 'पथिक' मे दक्षिण भारत के मनोहर दृश्य उपस्थित किये गये है और 'स्वप्न' मे काश्मीर की छटा बिखर रही है। इस काव्य मे कही २ छायावाद की झलक भी दिखाई दे जाती है। कथानको के लिए कवि ने कोई ऐतिहासिक या पौराणिक आधार न लेकर कल्पना का ही सहारा लिया है। इनके अतिरिक्त त्रिपाठी जी ने 'कविताकौमुदी' नामक एक बृहत् काव्य-सग्रह भी ७ भागो मे प्रस्तुत किया है। इसके विभिन्नखण्डो मे हिन्दी, उर्दू, सस्कृत, बगला आदि विभिन्न भाषाओ के प्रतिनिधि-कवियो का विस्तृत परिचय और उनकी चुनी हुई कविताएँ दी गई है। हिन्दी मे यह

प्रयत्न अपने प्रकार का एक ही है। ग्राम-गीतो के भी ये प्रामाणिक सकलयिता है। त्रिपाठी जी की कुछ कविताएँ तो प्रत्येक हिन्दी-भाषी का कठहार बनी हुई है। 'अन्वेषण'-शीर्षक कविता ऐसी ही कविताओ मे से एक है। मानसी, स्वप्नचित्र, हिन्दुस्तानी कोष, जयत, प्रेमलोक, तरकस, रामचरितमानस की टीका, तुलसीदास और उनकी कविता (दो भाग), मारवाड के मनोहर गीत, सुदामाचरित, पार्वती-मगल, घाघ और भड्डरी, चिन्तामणि, हिन्दी का सक्षिप्त इतिहास, सुकवि-कौमुदी, कौन जानता है, बुद्धि-विनोद, अशोक, चन्द्रगुप्त, महात्मा बुद्ध आदि इनकी छोटी-मोटी कई स्वलिखित अनूदित और सम्पादित रचनाएँ है। कविता देखिए—

प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रग बिरग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ मे वारिद माला॥
नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है।
घन मे बैठ बीच मे बिचरूँ यही चाहता मन है॥

रात दिवस की बूदो द्वारा, तन घट का परिमित यौवन गल।
है निकला जा रहा निरन्तर यह रुक सकता नही एक पल॥

मै ढूढता तुझे था जब कुज और वन मे।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन मे॥

वियोगी हरि—इनका पूरा नाम पण्डित हरिप्रसाद 'वियोगी हरि' है। इनका जन्म सवत् १९५३ मे छत्रपुर राज्य मे हुआ था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मन्त्री रहकर 'सम्मेलन-पत्रिका' का सम्पादन करते रहे। आजकल ये देहली मे हरिजन-उद्योगशाला के आचार्य के रूप मे राष्ट्रसेवा का कार्य कर रहे है। आप परम वैष्णव है किन्तु हरि की अपेक्षा हरिजनो की सेवा आपको अधिक रुचिकर प्रतीत होती है। इनकी आकुल प्रेम-भावना अलौकिक है। व्रजभाषा के आधुनिक प्रमुख कवियो मे इनकी गणना है। सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथदास रत्नाकर और वियोगी हरि ये तीनो ही इस युग के व्रज-भाषा के श्रेष्ठ कवि है। इनकी प्रतिभा ने गद्य और पद्य दोनो मे समान चमत्कार दिखाया। इनकी 'वीर-सतसई' नामक प्रसिद्ध रचना में भारत के नये-पुराने सभी वीरो की प्रशसा मे मार्मिक दोहे कहे गये है और वीर भावनाओ का भी सुन्दर विवेचन किया गया है, जिनमे 'दयावीर' 'धर्मवीर' आदि के साथ विरहिणी व्रजागनाओ की 'विरह-वीरता' की नवीन सूझ है। दोहो मे बिहारी

के ढग पर यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, विरोधाभास आदि अलकारो का भी सुन्दर समावेश हुआ है। यू दोहा छन्द वीररस के परिपाक के लिए पूरा नही उतरता। 'वीर-सतसई' पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से १२००) रुपये का 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' भी प्राप्त हुआ था, जिसे इन्होने सम्मेलन को ही लौटा दिया। 'वीर-सतसई' के बहुत-से दोहो मे प्राचीन कविताएँ प्रतिबिम्बित हो रही है। 'छद्मयोगिनी' 'वीर हरदौल' इनकी नाटकीय रचनाएँ है। 'कवि-कीर्तन' 'अनुराग-वाटिका,' 'व्रजमाधुरी-सार' आदि इनके निबन्ध और सग्रह-ग्रन्थ है। 'प्रेमयोग', 'अन्तर्नाद' और 'सन्तवाणी' उत्कृष्ट भावात्मक गद्य-काव्य है। प्रेम पथिक, भावना, मन्त सुधासार जीवन प्रवाह इनकी इधर की रचनाएँ है। वियोगी हरि जी के पद्य की एक झलक देखिए—

सिवा सुजस सरसिज मुरस मधुकर मत्त अनन्य।
रस भूषण भूषण सुकवि भूषण भूषण धन्य॥
'तो रक्खौ ढिल्लिय तखत, भुजन ढिल्लि कनवज्ज।
बज्ज-पैंज असि कन्ह लौ, करनहार को अज्ज॥

सत्यनारायण कविरत्न—इनका जन्म सवत् १९४१ मे और देहान्त सवत् १९७५ मे हुआ। इनके पिता अलीगढ के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। सवत् १९६६ मे आप बी० ए० परीक्षा मे बैठे पर सफल न हो सके। कविता के प्रति इनकी पहले ही से रुचि थी। बाद मे यह काव्य-प्रेम इतना बढा कि इन्होने साहित्य-सेवा ही को अपने जीवन का एकमात्र उद्देश्य निश्चित कर लिया। पडित जी बडे ही सात्विक और सरल स्वभाव के सीधे-सादे निरीह व्यक्ति थे, किन्तु पत्नी की ओर से इनका जीवन बडा सकटमय था। बेचारे कभी 'भयो यह अनचाहत को सग' कहते हुए आह भरते तो कभी 'बस अब नहि जात सहि' के स्वर मे घटो रोया करते थे। कविरत्न जी के समान भावुक,सरल और शान्त प्रकृति का कवि शायद ही कोई दूसरा हुआ हो। परिस्थितियो के प्रभाव मे पडकर प्राय सभी पुरानी परिपाटी के कवियो ने व्रजभाषा का साथ छोड नवेली खडी बोली का पल्ला पकड लिया, किन्तु कवि-रत्न जी व्रजराज और व्रजभाषा के अनन्य उपासक बने रहे। कृष्ण-प्रेम मे इनकी आँखे झूमती रहती थी। इनकी कृष्ण-भक्ति भी अपना एक विशेष रूप लिए हुए है। ये सूरदास की भाँति —

'अब के माधव मोहि उधारि'

कहकर केवल अपना कल्याण नही चाहते। ये तो सम्पूर्ण राष्ट्र का भला चाहते है और उसी के लिए प्रार्थना करते है। अन्य कवियो की भाँति फैशन के नाते वाहवाही

लूटने के लिए इन्होने देशभक्ति या प्रभु-प्रेम की कविताएँ नही लिखी। इनकी कविता के प्रत्येक अक्षर मे अपूर्व तन्मयता के साथ इनका अन्तर्तम प्रकट हो रहा है। हृदय के ऐसे सच्चे सात्विक उद्गार इस युग के अन्य किसी कवि मे नही दिखाई देते। रसखान और मीरा की भाँति इन्होने अपनी आत्मा ही को कविता मे ढाला है इसमें कुछ सन्देह नही। सत्यनारायण जी ने 'भ्रमर-दूत' की जिस ढग से रचना की है वह अनूठी और सद्य. प्रभावोत्पादिनी है। खेद है कि यह रचना पूरी नही प्राप्त हो सकी। इनके भवभूतिकृत 'उत्तर-रामचरित' और 'मालती-माधव' नाटको के अनुवाद भी परम सरस और उत्कृष्ट हुए है। वे हिन्दी-साहित्य की स्थायी निधि की वस्तु है। पडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने इनकी कविताओ का एक सुन्दर सग्रह 'हृदय-तरग' के नाम से प्रकाशित किया है। मेकाले के अग्रेजी खड-काव्य होरेशस का पद्यानुवाद प्रेम-केलि, स्वामी रामतीर्थ, तिलक, गोखले आदि की प्रशस्तियाँ भी प्रसिद्ध है। इनकी कुछ कविताएँ देखिए—

नित नूतन तृन डारि सघन बसीवट छैया।
फेरि-फेरि कर-कमल, चराई जो हरि गैया।
ते तित सुधि अति ही करत सब तन रही झुराय।
नयन स्रवत जल, नहि चरत व्याकुल उदर अघाय।
उठाय म्हौ फिरै।

नारी-सिच्छा अनादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेश-अवनति प्रचड-पातक अधिकारी॥
निरखि हाल मेरो प्रथम लेहु समुझि सब कोई।
विद्याबल लहि मति परम अबला-सबला होई॥"
लखो अजमाई कै।

भयो क्यो अनचाहत को सग ?
सब जग के तुम दीपक, मोहन प्रेमी हमहुँ पतग।
लखि-लखि दीपति, देह शिखा मे निरत, बिरह लौ लागी।
खीचति आप सो आप उतहि यह ऐसी प्रकृति अभागी।
यदपि सनेह-भरी बतियाँ तऊ अचरज की बात।
योग वियोग दोऊन में इक सम नित्य जरावत गात॥

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—इनका जन्म सवत् १९२३ में तथा देहान्त सवत् १९८९ मे हुआ। रत्नाकर जी के पिता पुरुषोत्तमदास अग्रवाल भी बडे काव्य-रसिक थे। रत्नाकर जी ने बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् आवागढ राज्य मे नौकरी की, फिर ये अयोध्या के राजा प्रतापनारायणसिह के और उनके मरने पर उनकी धर्मपत्नी के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। ये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके थे। रत्नाकरजी ने केवल व्रजभाषा मे कविता की है। इनकी कविता पुरानी पद्धति पर चलते हुए भी सरल और ओजपूर्ण है। भाषा मजी हुई, रोचक और मधुर है। यह इस समय के व्रजभाषा के सबसे बडे और अन्तिम कवि माने जाते है। व्रजभाषा की कविता के ये विराम-चिह्न है। गगावतरण, हरिश्चन्द्र, उद्धव-शतक, समालोचनादर्श, शृगार-लहरी, गगा-लहरी, विष्णु-लहरी, रत्नाष्टक, वीराष्टक आदि काव्यो के अतिरिक्त इनकी बहुत-सी फुटकर रचनाएँ भी है। इन्होने हित-तरगिणी, हम्मीर-हठ, कठाभरण और बिहारी-सतसई आदि प्राचीन काव्यो का सम्पादन और भाष्य भी किया था। 'बिहारी-रत्नाकर' नामक बिहारी-सतसई की टीका सुन्दर है। इनकी सपूर्ण रचनाएँ 'रत्नाकर' के नाम से काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्रकाशित हो चुकी है। 'साहित्य-सुधानिधि' नामक पत्र भी इन्होने निकाला था। 'गगावतरण' पर उक्त महाराणी से १०००) तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग से ५००) का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इनकी कविताओ पर पद्माकर की छाप स्पष्ट है ही साथ ही अन्य कई प्राचीन कवियो को भी इन्होन अपना लिया है।

पण्डित रामचरित उपाध्याय—इनका जन्म सवत् १९२९ मे और देहान्त २००० मे हुआ था। ये सस्कृत के विद्वान् थे। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से इन्होने सुन्दर रचनाएँ लिखी। 'रामचरित-चिन्तामणि' नामक इनका प्रबन्ध-काव्य सामान्यतया सुन्दर है किन्तु उपदेशात्मकता के कारण कई स्थल इसके नीरस हो गये है। कही राम बिना अवसर के ही कौशल्या को लम्बा-चौडा उपदेश दे रहे है, तो कही दूसरे पात्र एक-दूसरे को उपदेश देने मे उलझे हुए है। यह काव्य 'हरिऔध' जी की भाषा और शैली को लेकर सस्कृत वर्णवृत्तो मे लिखा गया है, पर इसमे वैसी रसात्मकता नही आ पाई। इनकी रचनाओ मे यमक की सुन्दर छटा बिखर रही है। 'राष्ट्रभारती' 'देवदूत' देव-सभा,' 'देवी द्रौपदी,' 'भारत-भक्ति' आदि इनकी अनेक छोटी-मोटि रचनाएँ प्रसिद्ध है। इनकी एक कविता देखिए—

कुशल से रहना यदि है तुम्हे, अनुज तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण मे गिरिए रघुराज के, निबल के बल केवल राम है।।

पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय—इनका जन्म सवत् १९४३ मे हुआ था। इनकी रचनाओ मे करुणा और भावुकता पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके थे। दो मित्र प्रवासी, नीति कविता, कविताकुसुम, रघुवशसार, मेवाड गाथा, माधव मजरी, आदि आपकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। महानदी खड-काव्य भी सुन्दर बन पडा है।

राय देवीप्रसाद पूर्ण—इनका जन्म सवत् १९२५ मे और देहान्त सवत् १९७० मे हुआ। ये व्रजभाषा के अच्छे कवि थे और खडी बोली मे भी उतना ही सुन्दर लिखते थे। इन्होने रसिक समाज की स्थापना कर 'रसिकवाटिका' नामक पत्रिका भी निकाली थी। ये सनातन धर्म के पक्के अनुयायी राष्ट्रीय कवि थे। 'सग्राम-निदा,' 'अमलतास,' 'वसन्त वियोग', 'स्वदेशी कुण्डल' आदि इनकी रचनाएँ प्रसिद्ध है। 'अमलतास' मे इनका प्रकृति-प्रेम प्रकट होता है। 'पूर्ण-सग्रह' के नाम से इनकी कविताएँ सकलित हो चुकी है। एक कविता देखिए—

देख तव वैभव, द्रुमकुल-सन्त! विचारा उसका सुखद निदान।
करे जो विषम काल को मन्द, गया उस सामग्री पर ध्यान॥
रगा निज प्रभु ऋतुपति के रग, द्रुमो मे अमलतास तू भक्त।
इसी कारण निदाघ प्रतिकूल, दहन मे तेरे रहा अशक्त॥

पण्डित नाथूराम शर्मा 'शंकर'—इनका जन्म सवत् १९१६ मे और देहान्त सवत् १९८१ म हुआ। ये आर्यसमाज के पक्के प्रचारक पद्यकार थे। समस्या-पूर्तियाँ इनकी बेजोड होती थी। इनकी कल्पनाएँ भी सुन्दर है। ये पहले व्रज-भाषा मे और फिर खडी बोली मे लिखते रहे। 'वायस-विजय', 'गर्भ रण्डा-रहस्य' आदि इनकी पुस्तके प्रसिद्ध है। 'ईश गिरिजा को छोडि ईशु गिरजा मे जाय' "कविता समझाइबो मूढन को सविता गहि भूमि पे डारिबो है" आदि इनकी उक्तियाँ तात्कालिक समाज मे बहुत प्रसिद्ध रही। शकर सर्वस्व के नाम से इनकी समग्र रचनाओ का एक सग्रह प्रकाशित हुआ। इनकी एक कविता देखिए—

तेज न रहेगा तेजधारियो का नाम को भी,
मगल मयक मद मद पड जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायगे सरोवर मे,
डूब डूब शकर सरोज सड जायँगे।

उस पार, शाहजहाँ, नूरजहाँ, सीता, पाषाणी, सूम के घर धूम आदि नाटको का अनुवाद तो बहुत ही सुन्दर बन पडा है। इनकी मौलिक और अनूदित अनेक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। गद्य और पद्य दोनो ही मे इनकी परिमार्जित और सुबोध शैली स्पष्ट लक्षित होती है। इनकी कविताओ का 'पराग' नामक सग्रह बहुत प्रसिद्ध हुआ। ऑख की किरकिरी, शाति कुटीर, चौबे का चिट्ठा, बकिम निबन्धावली, भारत रमणी, तारा बाई, शिवाजी, गल्पगुच्छ, भू-प्रदक्षिणा, महाभारत के कतिपय पर्व, खॉ जहॉ, प्रतापी परशुराम आदि इनकी ७० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

पण्डित बद्रीनाथभट्ट—ये आगरा-निवासी थे। इनके पिता पडित रामेश्वर भट्ट भी हिन्दी-संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। 'रामचरितमानस' की टीका अत्युत्कृष्ट और प्रामाणिक है। ये सफल-व्यग्य-चित्र-लेखक थे। इन्होने दुर्गावती, चन्द्रगुप्त आदि कई प्रसिद्ध नाटक लिखे। तात्कालिक समाज मे इनके नाटक अत्यन्त ही लोकप्रिय रहे, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह नाटक बहुत उच्च कोटि के नही कहे जा सकते।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—इनका जन्म स० १९४१ और देहान्त १९९८ में हुआ। इन्होने व्रजभाषा मे और खडी बोली मे भी अत्युत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। 'लाइट ऑफ एशिया' के आधार पर आपने 'बुद्ध-चरित्र' नामक एक बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध-काव्य की रचना की। आप बडे भावुक तथा सहृदय कवि थे, इनकी भावुकता विपन्नो की विपत्ति से विवर्धित होकर करुणा मे परिवर्तित हो जाती थी। इसीलिए आपकी करुण-रसात्मक कविताएँ अत्यधिक प्रभावोत्पादिनी है। प्रकृति-वर्णन मे तो अपने उपमान आप ही है। आप प्रकृति के अनुरजनकारी दृश्यो तक ही अपने आपको सीमित न रखकर उसके भयकर रूप का भी वैसा ही वर्णन करते है। साथ ही उसमे कल्पना का पुट न देकर उसके भोले-भाले स्वरूप का वास्तविक रूप अकित करते है। आप पुरानी पदावली के प्रयोग के पक्षपाती नही है। इसलिए आपकी व्रजभाषा मे आधुनिकता झलक रही है। इसके अतिरिक्त आप हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ समालोचक है। इन्होने काशी-नागिरी-प्राचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी-शब्द-सागर' नामक बृहत्-कोष के सम्पादन मे महत्त्वपूर्ण भाग लिया। आप कई वर्षों तक काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा की मुख्य पत्रिका के सम्पादक व काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के अध्यापक और हिन्दी-विभागाध्यक्ष भी रहे। शुक्लजी सरल स्वभाव के निष्कपट, आडम्बरहीन और सासारिक झझटो से रहित व्यक्ति थे। जायसी, तुलसी और सूर पर लिखी हुई आलोचनाएँ उनकी विद्वत्ता, सहृदयता और मार्मिकता के ज्वलन्त

उदाहरण है। वे हिन्दी के एकमात्र उच्चकोटि के निबन्ध-लेखक और समालोचक थे। 'विचार-वीथी' और ''चिन्तामणी' उनके कुछ निबन्धो के सग्रह हैं। काव्य में 'रहस्यवाद' और 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' से शुक्लजी के गम्भीर अध्ययन और समालोचना-शक्ति का प्रमाण मिलता है। शुक्लजी की कविता देखिए—

तनि गये सित ओस-बितानहू, अनिल झार-बहार धरा परी,
लुकन लोग लगे घर बीच है, विवर भीतर कीट पतंग से।
युग भुजा उर बीच समेटिकै, लखहु आवत गैयन फेरिकै,
कंपत कबल बीच अहीर है, भरमि भूलि गई सब तान है।

कचन की दीवट पै दीपक सुगध भरे,
जगमग होति भौन भीतर उजास करि।
आभा रग २ की दिखात रही तासो मिलि,
किरन मयक की झरोखन सो ढरि ढरि।
जामे है नवेलिन की निखरी निकाई अग,
अगन की, बसन गए हूँ है नेकु टरि।
उठत उरोज है उसासन सो बार-बार,
सरकि परे है हाथ नीचे कहु ढीले परि।
देखि परै साँवरे सलोने, कहुँ गोरे मुख,
भ्रकुटी विशाल बक,बरुनी बिछी है श्याम।
अधखुले अधर दिखात दन्त कोर कछु,
चुनि धरे मोती मनो रचिबे के हेत दाम।
कोमल कलाई गोल, छोटे पाँय पैजनी है,
देति झनकार जहाँ हिलै कहूँ कोउ वाम।
स्वप्न टूट जात वाकौ जामैं सो रही है पाय,
कुँवर रिसाय उपहरि कछु अभिराम।

इनकी खडी बोली की भी एक कविता देखिए ।

भूरी हरी घास आस-पास फूली सरसो है,
पीली-पीली बिदियो का चारो ओर है प्रसार।
कुछ दूर विरल, सघन फिर और आगे,
एक रग मिला चला गया पीत पारावार।
गाढी हरी श्यामलता की तुग-राशि रेखा घनी,
बाँधती है दक्षिण की ओर उसे घेर-घार।
जोडती है जिसे खुले नीले नभ मडल से,
धुधली-सी नीली नग माला उठी धुआँधार ।

सियारामशरण गुप्त—इनका जन्म स० १९५२ मे हुआ । ये श्री मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। ये जितन गहरे हैं उतने सरल भी। इनकी कविता से वर्षाकालीन वायु की भाँति शीतल प्राणो को तुष्ट और मन को मुग्ध कर देने वाला हल्का-सा झोका प्राप्त हो जाता है। 'ग्राम-वधू' की भाँति प्रसाधनहीन इनकी कविता प्राकृतिक सौन्दर्य्य और परिपक्क रस से ओत-प्रोत है जिसका,सौदर्य मर्यादा और सयम के घूघट से छनकर आने वाले प्रेम का एक मूक प्रदर्शन कर जाता है। सद्य परिणीता की भाँति इनकी कविता-कामिनी पर कौमार्य की मृदुलता, मुग्धता और अल्हडपन टपकते रहते हैं। परदु ख-कातरता-जन्य कोमलता और भावुकता के साथ करुणा की धारा इनकी प्रत्येक कविता मे प्रवाहित हो रही है। आपकी कथात्मक छोटी-छोटी कविताएँ अत्यन्त सजीव चित्र अकित करती है। 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'दूर्वादिल,' 'विषाद' आदि आपकी फुटकर कविताओ के सग्रह है। 'आत्मोत्सर्ग,' 'मौर्य-विजय' 'अनाथ', 'बापू' आदि आपके छोटे २ काव्य है। 'पुण्यपर्व-नाटक,' 'गोद' 'नारी' तथा 'अतिम आकाक्षा' नामक उपन्यास,'मानुषी' कहानी-सग्रह और 'झूठ-सच' 'गद्य-लेख' आदि इनकी अन्य रचनाएँ भी सुन्दर है। 'ईशावास्य, अनुवाद इनकी नवीन रचना है। 'नोआखली' इनकी प्रगतिवादी रचना है। कविता का एक नमूना देखिए—

पत्थरो की सीढी पर सुश्री भरी,
स्नान कर बैठी थी अपूर्व एक सुन्दरी ।

भीगा हुआ वस्त्र ही थी पहने,
धारण किये सुवर्ण रग ।
अग अंग
उसके बने थे स्वय गहने !
कलित कपोलो पर छिटे हुए केशदाम,
हिलडुल क्रीडा करते थे कात काति धाम ।
उसमे से चूते हुए वारि-बिन्दु झलमल,
शोभार सरसाते थे
प्रति पल
नये नये मोती प्रकटाते थे ।
बाया पैर नीचे लटकाये नीलनीर पर ।
दाया पैर रखे हुए सीढी के प्रतीर पर।
अपने नुकेले नेत्र नीचे किए,
पत्थर की वट्टी हाथ मे लिए ।
एेडी मलती थी वह बार-बार पानी डाल ।

अनूप शर्मा—ये आरम्भ मे व्रजभाषा मे कविता लिखते रहे । पश्चात् खडी बोली की ओर आकृष्ट हो गये। 'कुणाल' नामक खड-काव्य मे अशोक के पुत्र कुणाल का चरित्र लिखा। 'सिद्धार्थ' नामक १८ सर्गों के महाकाव्य में भगवान् बुद्ध का चरित्र अकित किया। यह प्रिय-प्रवाम के ढग पर सस्कृत वर्ण-वृत्तो मे लिखा गया है। 'सुमनाजली' मे इनकी फुटकर कविताए सकलित है। व्यापक दृष्टि-कोण और भाषा की सरलता ये दो इनकी बडी विशेषताए है। 'फेरिमिलिबो' काव्य 'वर्धमान' महाकाव्य इनकी इधर की रचनाए है। आधुनिक विज्ञान और इतिहास ने मनुष्य के दृष्टिकोण को जितना व्यापक बनाया है काव्य में उसे प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न करना चाहिए। ये इस कार्य मे पूर्ण उतरे है। कल्पना-जगत् मे के इतिहास की अनेक भावनाओ के चित्र अकित करने वाली इनकी 'जीवन-मरण' रचना भी सुन्दर बन पडी है। 'विराट्-भ्रमण' मे कवि-पाठको को विराट्-विश्व का दर्शन कराता है। इनकी एक कविता देखिए—

पीछे दृष्टिगोचर था गोलचक्र पूषण का,
घूमता हुआ जो नील सपुटी मे चलता।

मानो जलयान के वितल पृष्ठ भाग मध्य,
आता चला फेन पीत पिड-सा उबलता ।।
उछल रहे थे धूमकेतु धुरियो से तीव्र,
यानके सुताडित भचक्र था उछलता ।
मारुत का, मन का, प्रवेग पगा पीछे जब—
आगे चला बाजि-यूथ आतप उगलता ।।

प० जगदम्बाप्रसाद हितैषी—व्रजभाषा के समान सुकुमारता और मधुरता को खडी बोली के कवित्त-सवैयो मे भी प्रतिष्ठित करने वाले ये एक ही कवि है। अनुपम, अलौकिक सुषमा सम्पन्न इनकी कविताए सर्वथा सरल और स्वाभाविक है। इनकी विविध विषयो की रचनाए 'कल्लोलिनी' और 'नवोदिता' मे सकलित हैं। एक कविता देखिए—

भवसिधु के बुद्-बुद् प्राणियो की,
तुम्हे शीतल श्वासा कहे, कहो तो ।
अथवा छलनी बने अबर के,
उर की अभिलाषा कहे, कहो तो ।
घुलते हुए चन्द्र के प्राण की,
.पीडा-भरी परिभाषा कहे, कहो तो ।
नभ से गिरती नखतावलि के,
नयनो की निराशा कहे, कहो तो ।

श्यामनारायण पाडेय—इनका जन्म स० १९६७ मे हुआ । इनके पिता का नाम प० रामाज्ञा पाडेय है । इनके प्रथम काव्य 'त्रेता के दो वीर' मे लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध के अनेक प्रसग्रो के आधार पर इन दोनो वीरो का चरित्र अकित किया गया है। इनकी कविताओ मे भारतीय परम्परा की सचित सस्कृति राष्ट्रीयता के साथ मुखरित हो उठी है । ये अतीत से सारे सम्बन्ध-विच्छेद करके अज्ञात और अज्ञेय भविष्य मे कूद पडने के लिए उत्सुक नही है। इनकी वाणी मे भारत की प्राचीन सस्कृति वर्तमान युग के शब्दो मे बोल रही है। इनके भाव आधुनिक,

शब्द ओजस्वी और कल्पना रोमाचकारी है। आरती, तुमुल, रूपान्तर,'माधव' और 'रिमझिम' नामक छोटी-छोटी रचनाओ के अतिरिक्त 'हल्दी-घाटी' और 'जौहर' नामक इनके दो महाकाव्यो ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की। 'हल्दीघाटी' १७ सर्गों का महाकाव्य है। उत्साह की अनेक अतर्दशाओ की व्यजना व युद्ध की विविध परि-स्थितियो के चित्रण से पूर्ण यह काव्य खडी बोली मे अपने ढग का एक ही है। युद्ध के समाकुल वेग और सघर्ष का ऐसा सजीव और प्रभावपूर्ण वर्णन शायद ही किसी दूसरे काव्य मे मिले। इस महाकाव्य पर देव-पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। 'जौहर' मे वीरदर्पपूर्ण पदावली के साथ करुणाधारा का हृदय-द्रावक प्रवाह भी है। पाडेय जी की कविताए देखिए—

चितौड

नही देखते सतियो के जलने का अगार कहाँ ?
राजपूत ! तेरे हाथो मे है नगी तलवार कहाँ ?
कहाँ पद्मिनी का पराग है, सिर से उसे लगाले हम ?
रत्नसिह का कहा क्रोध है, गात रक्त गरमाले हम ?
जौहर व्रत करनेवाली करुणा की करुण पुकार कहाँ ?
और न कुछ कर सकते तो देखें उसकी तलवार कहाँ ?
मद पडे जिससे वीर,वह भीषण हाहाकार कहाँ ?
स्वतत्रता के सन्यासी, राणा का रण-उदगार कहाँ ?
किस न वीर की दमक उठी थी, दीप्ति दीपिका माला सी।
कौन वीर-बाला न चिता पर चमक उठी थी ज्वाला सी ॥
जमा सके अधिकार तनिक,खिलजी करके हथियार नही।
ठहर सकी क्षण-भर इस पर,अकबर की भी तलवार नही ॥

युद्ध-वर्णन

था मेघ बरसता झिमिर झिमिर तटिनी की भरी जवानी थी।
बढ चली तरगो की असि ले, चडी-सी वह मस्तानी थी ॥
वह घटा चाहती थी जल से सरिता सागर निर्झर भरना।
यह घटा चाहती थी शोणित से पर्वत का कण-कण तर करना॥

धरती की प्यास बुझाने को वह घहर रही थी घन सेना।
लोहू पीने के लिए खडी यह हहर रही थी जन सेना ।।
नभ पर चम चम चपला चमकी चम चम चमकी तलवार इधर।
भैरव अमद घननाद उधर दोनो दल की ललकार इधर ।।
वह कड कड कड कड कडक उठी,यह भीम नाद से तडक उठी।
भीषण सगर की आग प्रबल, बैरी सेना में भडक उठी ।।
डग डग डग डग रण के डके मारू के साथ भयद बाजे।
टप टप टप घोडे कूद पडे कट कट मतग के रद बाजे ।।
कल कल कर उठी मुगल सेना किलकार उठी ललकार उठी।
असि म्यान विवर से निकल तुरत अहि नागिनसी फुफकार उठी

पुरोहित प्रतापनारायण—'नल-नरेश' नामक १९ सर्गो के महाकाव्य मे इन्होने महाराज नल की कथा कही है। रोला, हरिगीतिका आदि छदो मे कथा सरल ढग से चलती है। उसम नवीन शैली के चिह्न नही है। प्राचीन परिपाटी के आधार पर बीच-बीच में अलकारो की योजना सुन्दर हुई है। मन के मोती, नव-निकुंज, काव्य-कानन, काव्यश्री, मणियो की माला आदि मे इनकी मुक्तक इतिवृत्तात्मक रचनाए सकलित है। काव्य-कानन मे व्रजभाषा की कविताए है।

प० राधेश्याम कथावाचक—आपका जन्म स० १९४७ मे बरेली में हुआ। इनकी राधेश्याम रामायण तथा अन्य कथा-कीर्तन सम्बन्धी बीसियो पुस्तको का गॉव-गॉव मे प्रचार है। ईश्वर भक्ति, भक्त प्रह्लाद, वीर अभिमन्यु, आदि आपके नाटको का आल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी ने सुन्दर अभिनय किया था।

तुलसीराम शर्मा 'दिनेश'—इन्होने श्रीकृष्ण के चरित्र के सम्बन्ध मे एक महाकाव्य लिखा है। यह ८सर्गों मे समाप्त हुआ है। इसमे कई पात्रो के मुखो से आधुनिक विचार व्यक्त हुए है। काव्य साहित्यिक दृष्टि से सामान्य ही बन पडा है।

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'—इनका जन्म स० १९३८ मे झालरा पाटन में हुआ। कठिनाइ मे विद्याभ्यास, जया जयत, भीष्म प्रतिज्ञा, सुकन्या, सावित्री, साख्यदोहावली, वेदस्तुति, चित्रागदा, गीताजलि आदि आपकी स्वरचित और अनुदित रचनाए है।

गुरुभक्तसिंह भक्त—आपका जन्म स० १९५० मे हुआ। 'नूरजहां' नामक आपका महाकाव्य सहृदय पाठको द्वारा पर्याप्त प्रशसित हुआ है। नागरिक जीवन की जटिलताए ग्रामो की रमणीय दृश्यावली से जितना हमको पृथक् कर रही है उतनी ही अधिक अनुरक्ति हमारे हृदय मे उनके प्रति बढ रही है। स्वाभाविक प्रकृति-वर्णन इनकी विशेषता है। कुसुमकुज, सरससुमन, विक्रमादित्य आदि इनकी अन्य रचनाए है।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री जयशकर प्रसाद आदि कविगण अपनी प्रतिभा का चमत्कार इसी युग मे दिखाने लगे थे। पर वे द्विवेदी-युग की परम्परा पर न चलकर भाषा, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे एक नवीन मार्ग के प्रवर्तक हुए। इतिवृत्तात्मकता या उपदेशात्मकता को हटाकर वे कविता को एक नवीन क्रान्तिकारी पथ की ओर अग्रसर करने लगे। इसलिए ऐसे कवियो का विवेचन यहाँ न किया जाकर आगामी अध्याय मे किया जायगा।

प्रचार-कार्य

भारतेन्दु-युग से आरम्भ होकर हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार का कार्य इस युग मे भी यथा-पूर्व चलता रहा। विभिन्न नेताओ, सभा-सस्थाओ और विश्व विद्यालयो ने अपने-अपने ढग पर हिन्दी-प्रचार-कार्य को प्रगति प्रदान की, जिनमे से निम्न विशेष उल्लेखनीय है—

पं० मदनमोहन जी मालवीय और हिन्दू विश्वविद्यालय—महामना मालवीयजी का जन्म स०१९१७ मे और देहान्त स० २००३ मे हुआ। यह महामना भी सचमुच इस युग के महर्षि थे। जैसे सात्विक और शुभ्र इनकी वेश-भूषा थी वैसी ही चित्तवृत्तियाँ भी। इस युग मे हिन्दू-सस्कृति के ये एकमात्र प्रतीक और प्रतिनिधि थे। यह एक ही महामानव अपने शरीर मे आज के सम्पूर्ण हिन्दू-समाज को समाहित किये बैठा था। हिन्दू-धर्म और हिन्दी-साहित्य के लिए इन्होने जो कुछ किया, वह युग-युग के लिए यथेष्ट है। यद्यपि राष्ट्रीय कार्यों मे अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण वे स्वय साहित्य-निर्माण मे स्पष्टत कोई भाग न ले सके पर उनके द्वारा प्रतिष्ठित हिंदू-विश्वविद्यालय की भूमि की मिट्टी के एक-एक कण मे सैकडो हिन्दी-साहित्य-निर्माता उत्पन्न हो रहे हैं और होते रहेगे। इस सौम्य मूर्ति के मुख से प्रवाहित शुद्ध परिष्कृत हिन्दी की वाग्धारा शरच्चन्द्र की स्निग्ध कौमुदी से कम मोहक और सुषमापूर्ण नही थी। इनके जीवन का प्रतिपल हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान का मूक सगीत गाते बीता। स० १९७३ मे इनके उद्योग से काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इस विश्वविद्यालय का असाधारण प्रभाव साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर एक ऐसा

वातावरण उत्पन्न करता है जो पूर्ण भारतीय होने पर भी आधुनिक है। हिन्दी इस विश्वविद्यालय का प्राण है। इसने हिन्दी को मानवीय विचारधारा की सर्वश्रेष्ठ वस्तुएँ दी है। इस महान् यज्ञ के प्रवर्तक महामना मालवीय जी ही है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा गुरुकुल कागडी—स्वामी जी का जन्म स० १९१३ मे और देहान्त स० १९८३ मे हुआ। स्वामी जी स्वय एक आचार्य, लेखक , वक्ता और सम्पादक के रूप मे हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ रहे है। कल्याणमार्ग का पथिक (आत्मचरित) मुक्ति सोपान, हिन्दू सगठन आदि इनकी पुस्तके प्रसिद्ध है। आप 'सद्धर्म प्रचार' और 'श्रद्धा' पत्रिकाओ का सम्पादन करते रहे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के पश्चात् आर्यसमाज के तो आप ही एकमात्र आधार थे। जिस समय नव-शिक्षित आर्यसमाज के सदस्य कॉलेज खोलकर पश्चिमीयता का प्रचार करने पर उतारू हो रहे थे ऐसे समय मे स्वामीजी ने गुरुकुलो का जाल बिछाकर जनता का ध्यान भारतीय सस्कृति और शिक्षा-पद्धति की ओर आकृष्ट किया। स० १९७० मे गुरुकुल कागडी की स्थापना की। यह एक ऐसा विद्यामदिर था जहाँ यूनिवर्सिटियो तथा पाश्चात्य शैली का सर्वथा त्याग कर दिया गया था। वैदिक धर्म और वैदिक सस्कृति का भारत मे प्रचार करना इसका मुख्य उद्देश्य है। यहाँ के छात्रो को भारतीय प्राचीन गुरुकुल-प्रणाली पर ब्रह्मचारी वेश मे अनागरिक वृत्ति से रहना पडता है। यहाँ हिन्दी माध्यम द्वारा विज्ञान, चिकित्सा आदि सभी विषयो की उच्च-से-उच्च शिक्षा दी जाती है। इस गुरुकुल से निकले हुए श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति (स्वामी जी के सुपुत्र) प्राणनाथ विद्यालकार, सत्यकेतु विद्यालकार, प० जयदेव शर्मा विद्यालकार, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, जयचन्द्र विद्यालकार और चन्द्रगुप्त वेदालकार आदि महानुभाव हिन्दी-साहित्यिक ससार में पर्याप्त प्रतिष्ठित स्थान पाये हुए है। जयदेवजी शर्मा ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद आदि के वैज्ञानिक भाष्य किये है, प्राचीन भारत में विज्ञान की सत्ता को सिद्ध करने के लिए आपने सत्य और सफल साक्षियाँ प्रस्तुत की है।

महात्मा गांधी और उनके आश्रम—गाधी जी का जन्म स० १९२६ मे पोरबन्दर मे हुआ और देहान्त २००४ मे दिल्ली में हुआ। इस महामानव ने राष्ट्र की राजनैतिक रूप मे जितनी सेवाएँ की है हिन्दी-सेवाएँ भी उनमे एक विशेष स्थान रखती है। दक्षिणी भारत में हिन्दी-प्रचार का सम्पूर्ण श्रेय गाधीजी को ही दिया जा सकता है। स० १९७५ से उन्होने यह कार्य आरम्भ कर दिया था। उन्होने दक्षिण-अफ्रीका के फिनिक्स आश्रम और अहमदाबाद के साबरमती आश्रम मे हिन्दी को

प्रमुख स्थान दिया था। गुजराती भाषा-भाषी होते हुए भी राष्ट्रभाषा के रूप मे वे सदा हिन्दी के पक्षपाती रहे। इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व कर उन्होने सम्मेलन को एक नवीन प्रगति दी। यद्यपि अन्तिम दिनो मे परिस्थितियो के प्रभाव मे पडकर उन्हे हिन्दुस्तानी नाम अपनाने के लिए बाध्य होना पडा था। परन्तु धीरे २ वे हिन्दुस्तानी के मोह-जाल से छूटते जा रहे थे। दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार -सभा के द्वारा दक्षिण मे हिन्दी का पर्याप्त प्रचार हुआ। इसकी परीक्षाओ मे हजारो विद्यार्थी प्रतिवर्ष बैठते है। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य भी दक्षिण भारत मे हिन्दी के प्रतिष्ठापको में से एक है। मद्रास के प्रधान-मन्त्री के पद को हिन्दी-प्रेम के कारण ही आपको छोडने के लिए बाध्य होना पडा था। इनके अतिरिक्त प० सत्य-नारायण शर्मा, भदत आनन्द कौशल्यायन, आध्र के कौड वैंकट पैया, तामिल के मि० एस० जी० गगा नायडू, अवधनन्दन, केरल के एक सुन्दर अय्यर, करनाटक के अन्ना साहब लट्ठे, सिद्धनाथ पत, मद्रास के आर० विश्वनाथ, तथा पट्टाभिसीता-रमैया, महाराष्ट्र के काका कालेलकर आदि की हिन्दी-सेवाएँ भी उल्लेखनीय है। श्रीयुत कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी गुजराती-भाषी महान् साहित्यकार होते हुए भी हिन्दी के प्रबल पक्षपाती है। उदयपुर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के रूप मे आपने स्तुत्य सेवाएँ की है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन—सर्व श्री प० मदनमोहन मालवीय, राम नारायण मिश्र और पुरुषोत्तमदासजी टडन आदि के अथक प्रयत्न और उत्साह से सवत् १९७७ मे अखिल-भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अनेक रूप में जो हिन्दी की सेवा की है वह सदा स्मरणीय रहेगी। आज विधान परिषद् द्वारा हिन्दी को राज्य-भाषा स्वीकार करा लेने का अधिकाश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आदि सस्थाओ तथा हिन्दी के प्रमुख साहित्य-सेवियो का है। यह महान् मानव और यह सस्था यदि आरम्भ से हिन्दी के लिए भगीरथ प्रयत्न न कर रही होती तो आज हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित न हो पाती। अपनी प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा तथा अहिन्दी प्रान्तवासियो के लिए 'परिचय' और 'कोविद' परीक्षाओ के द्वारा इसने प्रतिवर्ष सहस्रो छात्रो को आरम्भ से लेकर उच्चतम हिन्दी की योग्यता प्रदान की है। उक्त दक्षिणभारत हिन्दी-प्रचार-सभा भी इसी के तत्वावधान मे काम कर रही है। विभिन्न नगरो मे होने वाले इसके वार्षिक अधिवेशनो मे जनता मे हिन्दी का उत्साह बढता है।

पजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी परीक्षाएँ—पजाब विश्वविद्यालय ने भी इसी समय के लगभग हिन्दी-परीक्षाओ का विभाग खोला। इस विभाग के खुलने से

हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषा के प्रसार मे अत्यधिक प्रगति हुई। पजाब सदैव भारतीय साहित्य और सस्कृति का केन्द्र रहा है। वेद,उपनिषद्, दर्शन और नीतिग्रन्थ यही प्रकट हुए थे। तक्षशिला के विश्व-विख्यात विद्यालय मे ससार-भर के ज्ञानपिपासु अपनी आत्माओ को तृप्त कर गये किन्तु कुछ समय से यह प्रान्त अवचेतन की-सी अवस्था मे पडा हुआ था। इस युग मे आकर इसने पुन आत्मचितन प्रारम्भ किया। शिक्षा के क्षेत्र मे पजाब विश्वविद्यालय ने एक अनुकरणीय प्रयत्न किया। इसकी हिन्दी और सस्कृत परीक्षाओ के द्वारा जनता मे हिन्दी-प्रचार दिन-दूना और रात-चौगुना बढता गया। यद्यपि १९३२ तक हिन्दीवालो की सख्या सैंकडो तक ही सीमित रहती थी पर आज उसकी विभिन्न हिन्दी-परीक्षाओ मे प्रतिवर्ष १५ हजार के लगभग छात्र बैठते हैं। इस प्रकार पजाब मे हिन्दी-प्रचार का बहुत-कुछ श्रेय इस विश्वविद्यालय और स्वर्गीय ए०सी० वुलनर तथा कुछ अन्य उच्च अधिकारियो को दिया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि द्विवेदी-काल मे प्रचलित हिन्दी प्रचार-कार्य पल्लवित और पुष्पित होकर आज फलान्वित हो चुका है।

अभ्यास

१ द्विवेदीजी की साहित्य-सेवाओ पर प्रकाश डाले।

२ पडित अयोध्यासिह उपाध्याय का परिचय देकर उनके साहित्य की समालोचना करे।

३ श्री मैथिलीशरण गुप्त के जीवन व साहित्य पर प्रकाश डालते हुए उनकी किसी एक प्रसिद्ध रचना की व्यापक समालोचना करे।

४ पडित श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न व बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर के साहित्य की विशेषताओ का विश्लेषण करे।

५ श्री सियारामशरण गुप्त, पडित रामचन्द्र शुक्ल और श्यामनारायण पाडेय के काव्यो की विशिष्टताओ की विवेचना करे।

६ प० मदनमोहनजी मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्दजी, बाबू पुरुषोतमदास टडन व महात्मा गांधी की हिन्दी-सेवाओ पर प्रकाश डाले।

७ पजाब विश्वविद्यालय, गुरुकुल कागडी, अखिल-भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार-सभा का परिचय देकर स्पष्ट करे कि इन्होने हिन्दी-प्रचार-कार्य मे किस प्रकार भाग लिया।

८ द्विवेदी-युग के साहित्य की गुण-दोष-विवेचनात्मक सक्षिप्त समालोचना करे

प्रसाद-प्रवर्तित
छायावादात्मक सुकुमार-युग

अठारहवाँ अध्याय

सामयिक परिस्थितियाँ

द्विबेदीजी के अनवरत श्रम से किस प्रकार अग्रेजी, उर्दू और बगला आदि मे लिखनेवाले लेखक हिन्दी की ओर प्रवृत्त हुए, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। द्विवेदी जी के प्रयत्नो से साहित्य-निर्माण को एक नई प्रगति प्राप्त हुई थी, इसमे तो कोई सन्देह नही, किन्तु उस समय के साहित्य मे भी कुछ एक अवाछनीय तत्त्व सहसा सम्मिलित हो गये। अन्य भाषाओ मे लिखने वाले लेखक हिन्दी मे दूसरी भाषाओ की प्रकृति को साथ ले आये। भारतेन्दु-युग की प्रान्तीयता की पुट तो समाप्त हो गई, पर उसके स्थान पर अग्रेजी, बगला और उर्दू की पदावली या शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव पडने लगा। लेखक मूल रूप मे अपने विचारो को हिन्दी मे सोचने के स्थान पर अग्रेजी आदि मे विचार कर (आप्टे के कोष के सहारे) अपने भावो को हिन्दी मे रूपान्तरित करने लगे। ऐसे लेखको की रचनाओ मे न तो शैली और न भाषा ही हिन्दी की रह पाई। कई बार तो हिन्दी की प्रकृति से अनभिज्ञ होने के कारण ये लोग भाव-प्रदर्शन में वास्तविकता से बहुत दूर जा पडते। उदाहरण के लिए एक विख्यात समालोचक ने उपन्यास की तीन विधाओ म से 'आत्म-चरित' के रूप मे लिखे जाने वाले उपन्यासो का वर्णन करते हुए लिखा कि इसका नायक 'प्रथम पुरुष' में रहता है। यह 'प्रथम पुरुष' अग्रेजी का First Person रूपान्तरित है, किन्तु लेखक ने इस बात पर ध्यान नही रखा कि First Person का अनुवाद 'प्रथम पुरुष' शब्दार्थ की दृष्टि से शुद्ध होते हुए भी व्याकरण की परिभाषा की दृष्टि से सर्वथा अशुद्ध है। अग्रेजी का First Person हिन्दी मे 'प्रथम' नही प्रत्युत 'उत्तम पुरुष' बन जाता है। हिन्दी में प्रथम या अन्य पुरुष अग्रेजी के Third Person को कहते है। इस एक ही उदाहरण से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि अग्रेजी मे सोच कर हिन्दी मे लिखने वाले लेखक हिन्दी की मूल प्रकृति से कितनी दूर जा पडते है। द्विवेदी जी ने इस प्रकार की त्रुटियो को दूर करने का प्रयत्न आशिक रूप मे ही किया है। वे इस ओर पूरा ध्यान नही दे सके। साथ ही 'कादना', 'सिहरना' आदि बगला के तथा 'हवाई किले बनाना' आदि अग्रेजी के सैकडो शब्द और मुहावरे हिन्दी म धडाधड प्रविष्ट होने लगे। उर्दू शब्दो के प्रयोग का प्रचार भी मुशी प्रेमचन्द जी आदि

लेखको के द्वारा बढने लगा। जहाँ तक शब्द-भण्डार की वृद्धि का सम्बन्ध है, इससे हिन्दी को लाभ भी हुआ, पर हिन्दी की प्रकृति को पहिचाने बिना विदेशी शब्दो को अपनाने से उसमें विकृति हो जाना भी स्वाभाविक था। विदेशी पदावली का प्रयोग बिना सोचे-समझे नही होना चाहिए।

भाषा के पश्चात् साहित्य पर विचार करते हुए हम देखते है कि द्विवेदीकालीन साहित्य में उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता अपनी पराकाष्ठा तक पहुच चुकी थी। मध्यकालीन शुग, मौर्य और गुप्त वशो का अत्युज्ज्वल सुनहरा इतिहास अभी तक अज्ञात ही पडा हुआ था। राम, कृष्ण और बुद्ध को लेकर भारत के प्राचीन गौरव को प्रदर्शित करने मे कोई विशेष सहायता नही मिल सकती थी, केवल धर्म-परायण भावुकजन ही उनसे प्रभावित हो पाते थे। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के इस युग मे प्रताप आदि हिन्दू वीरो का यशोगान भी समान रूप से सबको आकृष्ट नही कर पाता था। अन्य प्रकार की सदाचार-प्रचारक रचनाए सुनते-सुनते जनता पर्याप्त तृप्त हो चुकी थी। सस्कृत वार्णिक वृत्त या कवित्त सवैयो के प्रति अब कोई विशेष रुचि न रह गई थी। द्विवेदी-युग की समाप्ति के साथ साहित्यिक-सरणी ऐसी ही अवस्था की ओर अग्रसर हो रही थी। राष्ट्र की विचारधारा सामाजिक और राजनैतिक रूप मे अब तक गाधीवाद से पर्याप्त प्रभावित हो चुकी थी। अहिंसा, सत्याग्रह आदि की भावनाए जनता मे घर कर चुकी थी। खडीबोली में कविताए तो प्रचुर परिमाण मे प्रस्तुत हो गई थी, पर अभी तक उनमें व्रजभाषा की-सी कोमलकान्त पदावली का प्रवेश न हो पाया था। उसने केवल सस्कृत शब्दो को ही अपनाया था, उसकी सुकुमारता और मधुरता को नही। खडी बोली का अक्खडपन पद्य में प्रयुक्त हो जाने के पश्चात् भी ज्यो का त्यो बना हुआ था। जीवन मे जागृति का सचार करने के लिए साहित्य मे नूतन चिन्तन पद्धति का प्रकट होना स्वाभाविक था और वह हुई।

यद्यपि भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के बीच मे क्राति के प्रथम बीज बोने वाले श्रीधर पाठक जी थे फिर भी वे नवयुग के प्रवर्तक के रूप मे प्रसिद्ध न होकर स्वच्छन्दतावादी कविमात्र रह गये। द्विवेदीजी की प्रतिभा और साहित्य की स्मरणीय सेवाओ ने उन्हे पीछे ढकेल दिया। वैसी ही घटना इस युग मे घटी। माखनलाल चतुर्वेदी, मुकुटधर पाडेय आदि कलाकार द्विवेदी-युग में रहते हुए भी उससे प्रभावित न होते हुए साहित्यिको को नवीन दिशा का सकेत कर रहे थ। उनकी रचनाए आरम्भ ही से अपन एक विशेष मार्ग पर चल निकली थी। चतुर्वेदीजी के नाटक 'कृष्णार्जुन-युद्ध' पर द्विवेदी-युग की छाया को स्वीकार करते हुए भी, उनकी कविताओ

पर द्विवेदी-युग का प्रभाव नही माना जा सकता। इतना होने पर भी ये लोग साहित्य की उक्त भाषा, विषय, शैली आदि की समग्र समस्याओ का एक साथ समाधान न कर पाये। वे एक नवीन शैली मात्र बना पाये। ऐसे समय मे 'प्रसाद' जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा के प्रसाद ने हिन्दी-साहित्य को समय के अनुकूल एक सर्वथा नये रग-रूप मे उपस्थित किया। वे सर्वाशत इस युग के प्रवर्तक सिद्ध हुए। इसीलिए आगामी सभी काव्यकारो ने नतमस्क हो उनके नेतृत्व को स्वीकार किया। 'प्रसाद' से जिस नवीन काव्य-धारा का प्रचलन माना जाता है, वह साहित्यिक ससार में छायावाद तथा रहस्यवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

द्विवेदीजी ने खड़ी बोली को खराद पर चढाकर---उसे घिस-घिसाकर काव्य के लिए उपयोगी बना दिया था। उसमे लालित्य और सौकुमार्य प्रतिष्ठित किया छायावादी कवियो ने। प्रसाद ने उसे प्राजलता दी, निराला उसके स्वर और ताल को ठीक करने लगे, पन्त ने उसे माधुर्य और सौकुमार्य से समन्वित किया और महादेवी ने हृदय की वेदनाओ के द्वारा उसे स्पन्दित कर दिया। इन छायावादी कवियो मे अनेक साम्य और वैषम्य दिखाई देते है। प्रसाद की भाषा में समुद्र की उमडती हुई लहरो के समान कही शान्त और कही उद्दाम स्पन्दन है। निराला की भाषा मे अखण्ड दिङमडल को गुजा देनेवाले गगनगत मेघ की गुरु-गर्जना है। पन्त की कोमलकान्त पदावली मे प्रभात की कोमल समीर की सुखद सनसनाहट और मधुर मर्मर-ध्वनि है। निराला की कविता मे उद्दाम, ओज और पौरुष प्रकट हो रहा है तो पन्त की कविता सुकोमल सुषमामयी है। निराला अतुकान्त और स्वच्छन्द छन्दो के प्रवर्तक है। उनकी रचनाओ में स्वच्छन्दवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा है। मुक्त-छन्द व स्वच्छन्दवाद के मानो वे ही प्रतिनिधि कवि है, किन्तु पन्त प्रकृति के कोमल और प्रिय कवि है, तुकान्तता भी उन्हे प्रिय है। प्रसाद की भाषा विषयानुरूप परिवर्तनशील है, उसमे समय-समय पर सभी प्रकार के स्वरूप प्रकट होते रहते है। प्रसाद जी प्राचीनता के पुजारी होते हुए भी युग के साथ चलते है। निराला एकदम क्रान्तिकारी और स्वच्छन्दवादी कवि होते हुए भी हृदय से भारतीयता के उपासक है। 'शिवाजी का पत्र', 'राम की शक्ति-उपासना', 'गोस्वामी तुलसीदास' आदि रचनाए हिन्दू-सस्कृति के प्रति उनकी परम निष्ठा को प्रकट करती हैं। इसके विपरीत पन्त प्रमुख रूप से प्रकृति-प्रेमी कवि ही रहे। प्रगतिवाद और गाधीवाद को सुकोमल स्पर्श देकर आप अब अध्यात्म-वाद की ओर उन्मुख है। महादेवी आदि से अन्त तक वेदना की विरहिणी गायिका है। यही इनकी रचनाओ की अपनी २ विशेषताए है।

इस युग मे प्रसाद, पन्त और निराला को हम 'बृहत्त्रयी' या 'तीन बडे ' के रूप मे पाते हैं। वर्मात्रयी—महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा और भगवतीचरण वर्मा—ने उनके पश्चात् काव्य मे स्थान प्राप्त किया। उदयशकरभट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी और हरिकृष्ण-प्रेमी को 'लघुत्रयी' के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार छायावादियो के ये नवरत्न कहे जा सकते हैं। इन सभी कवियो की अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ हैं। एक-दूसरे से प्रभावित होते हुए भी ये स्पष्टतया किसी के अनुयायी नही प्रत्युत अपने पथ-प्रवर्तक आप है।

अब यहॉ पर पहले छायावाद और रहस्यवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालकर फिर इस युग के प्रमुख कलाकारो का परिचय दिया जायगा।

छायावाद और रहस्यवाद

रहस्यवाद हिन्दी साहित्य के लिए कोई नवीन वस्तु नही है। कबीर, जायसी आदि निर्गुणवादी सन्तो के प्राचीन साहित्य मे इसके एक या दूसरे रूप मे दर्शन होते है। किन्तु छायावाद हिन्दी साहित्य मे एक सर्वथा नवीन वस्तु है और रहस्यवाद आधुनिक रूप मे नवीन ही है। आज के रहस्यवाद और प्राचीन रहस्यवाद मे अन्तर है। प्राचीन रहस्यवाद प्रधानतया उपदेशात्मक रूप मे प्रकट हुआ था।

'जल मे कुभ कुभ मे जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुभ जल जल ही समाना यह तथ कथा गियानी।।

आदि पदो मे साहित्यिकता की अपेक्षा उपदेशात्मकता की ही प्रधानता है। आज का रहस्यवाद साहित्यिक-सौन्दर्य-समन्वित है। वह अपनी पुरानी परम्परा पर आधारित न होकर पश्चिमी प्रणाली पर प्रतिष्ठित है। छायावाद और रहस्यवाद की स्पष्ट परिभाषा के लिए अनेक विचारको ने विभिन्न मत प्रकट किये है। किन्तु छात्रो के लिए सरल, सहज, सुबोध परिभाषाएँ बहुत कम देखने मे आई हैं। वास्तव मे छायावाद और रहस्यवाद की परिभाषा छाया की तरह अस्पष्ट और रहस्यपूर्ण ही रहती रही है, फिर भी उसे यहॉ कुछ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है।

साधारण मनुष्य सदा सीमित और सकुचित घेरे मे बधा रहता है। अपना-पराया, जड-चेतन, मनष्य और पशु, सजातीय और विजातीय की भेद-भावनाओ ने उसे एक अत्यन्त क्षुद्र रूप दे रखा है। वह आत्मतत्त्व की विश्व-व्यापक विशालता का अनुभव नही कर पाता। नदी, पर्वत, वृक्ष, लता आदि प्राकृतिक जड-पदार्थों

की तो बात ही क्या, पशु-पक्षियो को भी जाने दे, उसे तो दूसरे मनुष्य मे भी आत्म-तत्त्व नही दिखाई देता। विपरीत इसके सहृदय कवि चराचर-मात्र मे एक अव्यक्त आत्मतत्त्व को अन्तर्हित पाता है। वह बहती हुई नदी, खिले हुए पुष्प और प्रकट होती हुई उषा मे चेतना का अनुभव करता है। साधारण मनुष्य विकसित कुसुम को देखकर प्रसन्न हो जायगा, उसकी प्रशसा भी करेगा और अधिक-से-अधिक उसे तोडकर अपना शृगार भी बना लेगा, किन्तु उस पुष्प के भी कोई आत्मा है उसके भी अपने सुख और दुख है, वह भी हसता और रोता है, इस प्रकार की चेतनानुभूति प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त नही हो पाती। यह अन्तर्दृष्टि तो सुकवि का अन्तर्तम ही प्राप्त कर सकता है। कवि जब प्रकृति के प्रत्येक परमाणु मे अपनी इसी प्रवृत्ति का परिचय देता हुआ कुछ गुनगुना उठता है, पदार्थ मात्र को अपने ही समान आत्मवान मानकर उनके सुख-दुखो को अपने मे ढालता है और अपने अभाव-अभियोग उन्हे सुनाता है—अपनी कहता और उनकी सुनता है, ऐसी अनुपम, अलौकिक आत्मलीनता की अवस्था मे पहुचा हुआ कवि कुछ गुनगुनाने लगता है। यह गुनगुनाहट ही छायावादी कविता का रूप ग्रहण कर लेती है।

दूसरी स्थिति मे कवि इस अवस्था से भी ऊपर उठता है। वह चराचर मात्र मे आत्मतत्त्व का तो अनुभव करता ही है साथ ही प्रकृति के प्रत्येक रूप मे अपने परम प्रियतम का भी साक्षात्कार करता है। पुष्प की प्रत्येक पखुडी मे, सरिता की प्रत्येक लहर मे, पवन की प्रत्येक हिलोर मे, उषा की प्रत्येक किरण की कोर मे उसे अपने प्रियतम के विरह और मिलन के नाना रूप और आकृतियो के चित्र दिखाई देते है। इस प्रकार सर्वत्र उस अनन्त अज्ञात सत्ता के प्रत्यक्ष साक्षात्कार के चित्र उपस्थित करने वाली रचनाएँ रहस्यवादात्मक कविताएँ कहलाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद और रहस्यवाद एक ही विचारधारा की दो स्थितियाँ है। निचली स्थिति 'छायावाद' के नाम से और ऊपर की अवस्था 'रहस्य-वाद' के नाम से प्रसिद्ध है। सक्षेप म समझाने के लिए हम यो कह सकते है कि कविता मे पुष्प का वर्णन तीन प्रकार से किया जाता है—१ पुष्प की प्रशसा मात्र—इसमे पुष्प की कलियो की कोमलता, विकास और पराग आदि का वर्णन करते हुए कवि स्पष्ट वर्णन करता है कि पुष्प की ऐसी कोमल कलियाँ है, वे इस प्रकार खिली रही है, उसका पराग चहुँ ओर बिखर रहा है, वह पवन के झकोरो से झूम रहा है आदि। पुष्प का यह वर्णन इतिवृत्तात्मक कहलाता है। २ पुष्प हस रहा है, वह अपनी प्रेयसी पवन से कहता है कि मै तेरे प्रेममय थपेडो से उत्फुल्ल और रोमाञ्चित होकर आनन्द-विभोर हो जाता हूँ। वह रात्रि मे

स्निग्ध चादनी के आलिंगनपाश मे बधकर सुख की नीद मे सो जाता है, किन्तु प्रात. होते ही विरह-वेदना से मुरझा जाता है, यह सजीव-वर्णन छायावाद कहलाता है।
३. तीसरी स्थिति मे कवि पुष्प का सजीव वर्णन करके ही सन्तोष नही लेता, वह उसमे अपने प्रियतम की छवि देखता हुआ कहता है कि पुष्प मे प्रतिष्ठित मेरा प्रियतम मुझे देखकर हस रहा है। किन्तु मै आँखे रखता हुआ भी उसे नही देख रहा। सरिता के कल-कल मे उसकी हसी मेरे कानो मे गूज रही है फिर भी मै उसे नही सुन पाता। ऐसा वर्णन 'रहस्यवाद' कहलायेगा। श्रीमती महादेवी वर्मा के निम्न गीत में रहस्यवाद की झलक है—

> कैसे कहती हो सपना है
> अलि उस मूक मिलन की बात,
> भरे हुए अब तक फूलों मे
> मेरे आसू उनके हास।

यहाँ कवयित्री पुष्प में अपना और प्रियतम का प्रत्यक्ष मिलन अनुभव कर रही है।

इस रहस्यवाद को निंम्न चार वैज्ञानिक विभागो में विभक्त किया गया है—

१ प्रेम और सौन्दर्य-सम्बन्धी रहस्यवाद। एक भारतीय आत्मा, जायसी, महादेवी वर्मा, नवीन आदि का रहस्यवाद इसी कोटि मे आता है।
२ दार्शनिक रहस्यवाद। प्रसाद जी का रहस्यवाद अधिकतर दार्शनिकता लिए हुए है।
३ धार्मिक उपासनात्मक रहस्यवाद। निर्गुणोपासक कबीर आदि सन्तो का रहस्यवाद इसी श्रेणी का है।
४ प्रकृति-सम्बन्धी रहस्यवाद। यह अपने आरम्भिक रूप मे छायावाद भी कहलाता है। सुमित्रानन्दन पन्त आदि का रहस्यवाद इस कोटि मे गिना जा सकता है।

प्रमुख कवि

जयशकर प्रसाद—आपका जन्म स० १९४६ मे काशी के एक ऐश्वर्यशाली, महादानी वैश्य-वश मे हुआ था। आपके पितामह शिवरत्न साहू जी बनारस के परोपकारी दानियो मे श्रेष्ठ माने जाते थे। प्रसाद जी के पिता का नाम श्री देवीप्रसाद जी था। प्रसादजी बारह वर्ष के ही थे कि इनके पिता स्वर्ग सिधार गये।

उस समय प्रसाद जी सातवी श्रेणी मे पढ रहे थे। पिता की असामयिक मृत्यु के कारण आपका विद्यालय जाना बन्द हो गया। और परिवार का सारा भार सभालना पडा। आपने स्कूल छोड कर घर पर ही पढने का प्रबन्ध कर लिया। कुछ समय तक सस्कृत का अध्ययन करते रहे।

आपने उन्नीस वर्ष की आयु मे ही गम्भीर, ऐतिहासिक गवेषणाओ तथा छायावादी रचनाओ मे प्रवृत्ति दिखाई थी। क्रमश आपने हिन्दी-साहित्य की ठोस सेवाएँ की। उन्होने कई भिन्न रूपो मे हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि की। उनमे से सर्वप्रथम तो यह कि हिन्दी-साहित्य के काव्य-क्षेत्र को परिष्कृत कर सुरुचि की ओर प्रवृत्त किया और वास्तविक सत्य मार्ग पर चलाया। प्राचीन काव्यकार या तो रसराज शृगार से सर्वथा अछूते रहा करते थे या ऐसे शृगार मे निमग्न रहते थे कि नाम लेते ही घृणा उत्पन्न हो जाय। वास्तव मे ये दोनो ही मार्ग असमीचीन है। किन्तु प्रसादजी ने साहित्य-क्षेत्र मे प्रवेश कर सात्विक-प्रेम का परिचय कराते हुए कर्त्तव्य-पथ का प्रदर्शन किया।

हिन्दी मे छायावाद के आप प्रवर्तक मान जाते है। प्रसाद जी ने नवीन शैली तथा नये विचारो द्वारा हिन्दी-साहित्य-भण्डार को अपूर्णता के दोष से ही नही बचाया प्रत्युत शत-शत कवियो को अपने मार्ग पर चला कर—अपना अनुयायी बनाकर सर्वदा के लिए उसे अक्षय्य बना दिया। मौलिक नाटक-लेखको में भी आप ही हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटककार अथच पथ-प्रदर्शक माने जाते है। प्राचीन युग की गवेषणा विशेषकर बौद्ध-युग के इतिहास के अनुसधान के कार्य से तो आपका स्थान हिन्दी-साहित्य मे बहुत मान्य है।

इसके अतिरिक्त आपके उपन्यास और आख्यायिकाएँ भी अत्युत्कृष्ट है। कहने का तात्पर्य यह है कि आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आपने वर्तमान साहित्य के प्रचलित विषयो तथा शैलियो पर तो लिखा ही है साथ ही नई २ शैली, नये २ विषयो पर भी बहुत-कुछ लिखा है। आपकी वेश-भूषा, खान-पान सर्वथा साधारण ही था। सर्वतोमुखी प्रतिभा की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य म प्रसादजी गोस्वामी तुलसीदास तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समकक्ष है।

प्रसादजी ने भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग और छायावाद-युग इन तीनो मे रचनाएँ लिखी थीं। फलत प्रसाद जी की रचनाओ को काल-क्रम की दृष्टि से (१) पूर्व काल, (२) मध्यकाल, (३) नवीनकाल इन तीन भागो मे विभक्त कर सकते है। 'विशाख', 'राज्यश्री' 'अजातशत्रु', 'झरना', 'प्रतिध्वनि', 'छाया', 'प्रेम-पथिक',

'महाराणा का महत्त्व', और 'चित्राधार' उनकी पूर्वकाल की रचनाएँ हैं। 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'कामना', 'आकाश-दीप', 'ककाल', 'एक घूट', उनकी मध्यकाल की रचनाएँ है। 'आधी', 'तितली', 'ध्रुव-स्वामिनी', 'इन्द्रजाल', 'लहर', 'कामायनी', 'काव्य और कला' तथा अपूर्ण उपन्यास 'इरावती' नवीन काल की रचनाएँ हैं। प्रसाद जी के काव्य मे निम्न विशेषताएँ स्पष्ट लक्षित होती हैं—

(१) **काव्य-विषय में नवीनता**—प्रसाद जी न भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग की उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता को दूर कर उसके विषयो में नवीनता और आधुनिकता का प्रसार किया। साहित्य मे नवीन विषयो की अवतारणा का बहुत-कुछ श्रेय प्रसाद जी को ही है।

(२) **भाव-जगत् का संस्कार**—जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रसादजी ने हिन्दी-साहित्य से सस्ती और विकृत भावुकता या उसके सर्वथा बहिष्कार, दोनो का तिरस्कार कर उसे स्वस्थ और सस्कृत-मानसिक पृष्ठ-भूमि पर स्थापित किया, वासनात्मक शृगार का विरोध कर निर्मल प्रेम का प्रवाह बहाया।

(३) **नवीन कल्पनाओ की सृष्टि**—नवीन भावनाओ के साथ, काव्य को नवीन कल्पनाएँ भी प्रसाद जी के प्रेरणा से प्राप्त हुईं।

(४) **मानवीय सौन्दर्य का चित्रण**—प्रसाद जी आरम्भ में आन्तरिक सौन्दर्य को ही प्रमुख रूप से चित्रित करते रहे। 'कामायनी' मे उन्होने बाह्य सौन्दर्य का भी अपने ही ढग पर अद्‌भुत किन्तु सर्वथा स्वाभाविक चित्रण किया है।

(५) **प्राकृतिक सौन्दर्य**—प्रकृति के प्रति सच्चे प्रेम के वे प्रथम परिचायक और प्रेरक हैं। प्रकृति के नाना रूपो के जैसे चित्रण उनके काव्य मे हुए हैं वैसे अन्यत्र कही नही हो पाये। कोमल-से-कोमल रूप से लेकर भयकर प्रकृति का चित्र उनके काव्य मे अकित हुआ है। कामायनी के प्रलय के वर्णन को पढते २ पाठक स्वय सागर की उत्ताल तरगो मे बहने लगता है।

(६) **भाव-सौन्दर्य की स्थापना**—प्रसादजी को यौवन और प्रेम का भी कवि कहा जाता है। उनकी प्रेम-भक्ति या पौराणिक आख्यानो को लेकर लिखी गई आरम्भिक रचनाएँ विषय-प्रधान ही हैं। 'आँसू', 'झरना', 'लहर', तथा 'कामायनी' भाव-प्रधान रचनाएँ हैं। प्रकृति के साथ प्रसाद जी की भावनाएँ एक अलौकिक मूर्त-रूप ग्रहण कर लेती है।

(७) **रहस्यवाद और छायावाद**—प्रसादजी प्रकृति-प्रेम, अज्ञात के प्रति

जिज्ञासा, अद्वैत दर्शनो के अभ्यास और रवि बाबू की 'गीताजलि' से प्रेरित होकर हिन्दी-साहित्य मे छायावाद और रहस्यवाद नामक शैली के प्रवर्तक हुए ।

(८) **प्रेम-साधना**—प्रेम और वासना को अपने पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप मे चित्रित करने वाले प्रसादजी प्रथम कवि है। उनका लौकिक प्रेम भी अलौकिक का सकेत-सा करता रहता है।

(९) **विषयानुसारिणी-भाषा**—प्रसादजी आरम्भ से अन्त तक सभी विषयो और भावनाओ को एक ही भाषा की लाठी से न हाक कर पात्रो और परिस्थितियो के अनुसार उसमे परिवर्तन करते रहते थे। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' आदि मध्य कालीन नाटको का सस्कृतनिष्ठ भाषा मे ही लिखा जाना उचित है। 'कामायनी', 'आँसू' आदि की भाषा सरल साहित्यिक है। उनकी लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ता भी पग-पग पर प्रकट हो रही है। 'ककाल', 'तितली' आदि उपन्यास सर्व-साधारण की भाषा मे लिखे गये है।

हम उनके सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कामायनी पर यहाँ कुछ विचार प्रकट करते है—

कामायनी की कथा ब्राह्मण ग्रन्थो के आधार पर सृष्टि के प्रथम ऐतिहासिक पुरुष मनु से आरम्भ होती है। खण्ड-प्रलय के पश्चात् अकेले बच निकले मनु चिन्ता-ग्रस्त बैठे है। उन्हे अपने जीवन से भी घृणा-सी हो गई है। इतने मे श्रद्धा नामक गधर्व-राजकन्या आ मिलती है। 'कामगोत्रजा' होने के कारण उसे कामायनी भी कहा जाता है। वे दोनो क्रमश प्रेम और परिचय के बढ़ने पर पति-पत्नी रूप में रहने लगते है, किन्तु श्रद्धा के गर्भवती हो जाने पर मनु उसके प्रति कुछ उपेक्षा-सी प्रकट करते है। एक दिन शिकार से लौटने पर मनु को श्रद्धा ने स्वाभाविक रूप से ही कह दिया कि तुम दिन-भर न जाने कहाँ भटका करते हो, मै अकेली सूनी कुटिया मे बैठी रहती हूँ पर अब मै अकेली न रहूँगी। यह सुनते ही मनु क्रोध से विकल हो 'अब तुम्हे मेरी आवश्यकता नही है, मेरे भाग मे तो अकेले ही रहना लिखा है' आदि कहते हुए श्रद्धा को अकेली छोड चले गये। उन्हे सारस्वत प्रदेश की रानी इडा ने अपने राज्य के प्रबन्धक के रूप मे अपना लिया। जब उन्होने इडा पर भी अधिकार जमाने का प्रयत्न किया तो प्रजा मे विद्रोह हो उठा। सघर्ष मे मनु घायल होकर गिर पडे। श्रद्धा यह सब घटना स्वप्न मे देखकर अपने द्वादशवर्षीय पुत्र को साथ लेकर उनकी रक्षा के लिए दौड पडी। घायल और मूर्छित मनु का उसने उपचार किया किन्तु स्वस्थ और जागृत मनु लज्जा के कारण श्रद्धा को वही छोड भाग निकले। श्रद्धा अपने पुत्र 'मानव' को इडा को सौप कर मनु

को खोजने निकली और हिमालय मे उनसे जा मिली। उसने मनु की सात्विक वृत्तियो को जागृत कर शिवरूप का दर्शन कराया और बताया कि इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय के बिना आत्मरूप का साक्षात्कार या मानव का कल्याण नहीं हो सकता। मनु और श्रद्धा एक पहुँचे हुए महापुरुष के रूप मे सर्वत्र विख्यात हो गये है। उनके दर्शनार्थ पहुँचने वाले सैकडो यात्रियो मे इडा और मानव भी उनके पास पहुँच जाते है। मनु मानवता का दिव्य सन्देश देते है। कामायनी की यही सक्षिप्त कथा है।

कथानक की दृष्टि से कामायनी तो एक साधारण काव्य प्रतीत होता है परन्तु इसके बहिरग की अपेक्षा अन्तरग ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। कथानक तो प्रसादजी के विचारो को मूर्तरूप देने के लिए स्वल्प-सा सहारा मात्र है। इस काव्य के द्वारा कवि ने युग को मानवता का दिव्य सन्देश दिया है। सुख, विलास, ऐश्वर्य, स्वाभिमान और अप्सराओ की रगरलियो से परिपूर्ण दैवी सभ्यता तथा मार-काट, सघर्ष और हिसा से परिपूर्ण दानवी सभ्यता, इन दोनो पर स्नेह, सद्भाव, सहानुभूति तथा सुख-शान्ति से समन्वित मानवीय सभ्यता को प्रतिष्ठित करना ही कामायनी के कलाकार का एकमात्र लक्ष्य है। मनु के रूप मे समग्र मानवजीवन का और साथ-ही-साथ सम्पूर्ण मानव-जाति के इतिहास का प्रत्यक्ष चित्र अकित कर दिया गया है। श्रद्धा के रूप मे आदर्श भारतीय नारी और इडा के रूप मे आधुनिक वैज्ञानिक युग की नारी चित्रित हुई है।

'दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास।

इस एक ही पद मे श्रद्धा का सम्पूर्ण चित्र चित्रित हो गया है। श्रद्धा ही क्यो अपितु प्रत्येक भारतीय नारी दया, माया, ममता, माधुर्य और अगाध विश्वास की साकार प्रतिमा है। वह मनुष्य को ऐहिक सुख देनेवाली ही नही प्रत्युत परम-तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाली भी है। कबीर आदि सभी सत कवियो ने—

नारी की झाई पडे अन्धा होत भुजग।
कबिरा तिन की कहा गति, जो नित नारी के सग॥

आदि कहकर स्त्री को साधना के मार्ग मे बाधक ही माना है। कुछ दूसरे कलाकारो ने उसे मनुष्य की वासना को तृप्त करने वाली कामिनी के रूप मे देखा है। तुलसी आदि भक्त-कवि उसे मातृत्व की महिमा से मडित कर सतुष्ट हो गये है। प्रसादजी ही पहले कवि हैं जिन्होने नारी को साधना-मार्ग मे भी साधक ही माना, बाधक नही।

उन्होने यहाँ तक कहा कि नारी की सात्विक प्रवृत्तियो के बिना मानव आत्मरूप को प्राप्त ही नही कर सकता। साथ ही प्रसाद जी की श्रद्धा केवल 'श्रद्धा' न होकर 'कामायनी' भी है। तुलसी की सीता केवल श्रद्धा ही की पात्र होने के कारण अमानवी हो गई है। साधारण ललना के लिए उसका अनुकरण करना असाधारण बात है। अन्य कवियो की नायिकाएँ कामायनी या कामिनी ही बनकर रह गईं। वे अपना और मानव का कल्याण करने मे सर्वथा असमर्थ है। प्रसादजी की कामायनी नारी के सम्पूर्ण सौन्दर्य और आकर्षण से परिपूर्ण सुख-दु ख, राग-विराग तथा मानवोचित निर्बलताओ से समन्वित समाज की साधारण स्त्री होते हुए भी श्रद्धात्मिका है। हम केवल उसके चरणो का ही ध्यान न कर उसके अग-प्रत्यग से फूट रही यौवन की मादकता, मधुरता और तज्जन्य चेष्टाओ का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हुए भी मनु के शब्दो मे—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पगतल मे।
पीयूष स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल मे॥

महा-महिमामयी श्रद्धा के रूप मे उसे अपने हृदय की देवी बनाते है। उन्होने आज की वैज्ञानिक-युग की नारी को इडा के रूप मे अकित किया है और मनु तो नित्य नवीन के प्रति आकृष्ट रहने वाले मानव का प्रतिनिधि है ही—

हो अब तुम बनने को स्वतन्त्र॥
सब कलुष ढालकर औरो पर रचते हो अपना अलग तत्र,
द्वन्द्वो का उद्गम तो सदैव शाश्वत रहता वह एक मत्र।
डाली मे कटक-सग कुसुम खिलते मिलते भी है नवीन,
अपनी रुचि से तुम बिधे हुए जिसको चाहो ले रहे बीन।
तुम ने तो प्राणमयी ज्वाला का प्रणय प्रकाश न ग्रहण किया,
हाँ, जलन-वासना को जीवन-भ्रम तम मे पहला स्थान दिया।
अब विकल प्रवर्तन हो ऐसा जो नियति-चक्र का बने यत्र॥
हो शाप-भरा तव प्रजा-तन्त्र॥

इस लौकिक या भौतिक व्याख्या के साथ ही कामायनी का आध्यात्म-पक्ष भी अत्यन्त मार्मिक है। आज मनुष्य केवल बुद्धि या विज्ञान के सहारे सब सुख-साधनो को प्राप्त कर लेने का प्रयत्न कर रहा है। मस्तिष्क के विज्ञान ने हृदय की भावनाओ को अभिभूत कर दिया है। विज्ञान की दौड मे आगे बढता हुआ मनुष्य कभी वास्तविक शान्ति प्राप्त नही कर सकता। इसके लिए तो उसे श्रद्धा की शरण में जाना ही पडेगा। भारतीय मानवता का यही दिव्य-सन्देश प्रसादजी की कामायनी के प्रत्येक अक्षर मे मुखरित हो रहा है।

प्रसादजी की उक्त विशेषताओ का विवेचन करते हुए हमे एक बात यह भी स्मरण रखनी चाहिए कि प्रसादजी साहित्यिको के काव्यकार या कवियो के कवि है। उनके काव्य मे आध्यात्मिकता, वास्तविकता, अभिव्यजनात्मकता और लाक्षणिकता आदि के कारण उन्हे साधारण पाठक सहसा नही अपना पाता। कवि-हृदय ही उन्हे पूरी तरह पहचान सकता है। इसलिए 'भारत-भारती' की भाँति प्रसाद जी की रचनाएँ सर्व-साधारण का स्नेह प्राप्त करने मे असमर्थ होते हुए भी कालीदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' या रवीन्द्र बाबू की रहस्यवादी रचनाओ के समान, रसिक सहृदयो को आत्मलीन करने मे पूर्ण समर्थ है, इसमे कुछ सन्देह नही। जिस प्रकार कालीदास की महत्ता को उन्ही के सरीखे महाकवि गेटे और रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने पहचाना और प्रकट किया वैसे ही एक युग आयगा जब प्रसाद जी के काव्य के महत्त्व को भी उन्ही के समान कोई महाकवि प्रकट करने मे समर्थ होगा।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—निराला जी का जन्म सवत् १९५५ म मेदनीपुर जिला बगाल में हुआ। अत आप जन्मजात बगला-भाषी है। सस्कृत, बगला और सगीत-दर्शनादि का आपने गम्भीर अध्ययन किया है। आपकी रचनाओ मे इन सब का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। निराला जी हिन्दी के युगान्तरकारी स्वच्छन्दवादी कवि है। हिन्दी-साहित्य मे प्रसादजी ने जिन नवीन प्रवृत्तियो को पल्लवित किया था, उन्हे विकसित करने वालो मे आप सर्वप्रमुख है। आधुनिक युग की रहस्यवाद सम्बन्धी काव्य-धारा के ये मुख्य स्तम्भ समझे जाते है। प्रसादजी की भाँति दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता इनके काव्य की दो विशेषताएँ है। भाषा और छन्द के बन्धन को तोडकर इनकी प्रतिभा ने एक अभिनव-पथ को परिष्कृत किया है। अतुकान्त एव मुक्त-छन्द की कविता के ये कुशल कलाकार है। हिन्दी गीति-काव्य की प्रणाली का प्रचार इन्ही से हुआ है। गम्भीर दार्शनिकता और निराली प्रतिपादन-शैली के कारण अनेक स्थलो पर इनके चित्र उलझे हुए एव दुरूह हो गये है, किन्तु जहाँ भाषा सरल और कल्पना स्वाभाविक है, वहाँ इनके व्यक्तित्व एव प्रतिभा का प्रभाव पर्याप्त स्पष्ट और आकर्षक है। इनके

साहित्य पर बगला और अग्रेजी का प्रभाव है । रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्दजी के दार्शनिक विचार आपकी दार्शनिक रचनाओ मे सर्वत्र झलकते हैं । "तुम और मैं" शीर्षक इनकी रचना अत्यन्त गम्भीर और लोकप्रिय है । अमूर्त भावो को मूर्त रूप देने मे ये भी प्रसाद जी के समकक्ष हैं । "महाराज शिवाजी का पत्र" "गोस्वामी तुलसीदास", "राम की शक्ति-साधना" आदि इनकी रचनाओ मे प्राचीन सस्कृति के प्रति प्रेम प्रकट होता है । 'भिक्षुक', 'विधवा', "तोडती पत्थर" आदि इनकी रचनाएँ प्रगतिवाद का रूप प्रकट करती हैं । निरालाजी स्वच्छन्द प्रकृति के कवि हैं और अपनी प्रकृति के अनुकूल ही कविता-कामिनी को स्वच्छन्दता देकर आपने उसका स्वाभाविक सगीतमय सौन्दर्य उद्भासित करने का प्रयत्न किया है । निरालाजी के हम कई रूपो मे दर्शन करते हैं । ये विचारो से अद्वैतवादी है, किन्तु इनका हृदय भक्ति और प्रेम का आगार हैं । अपनी कुछ रचनाओ मे ये दार्शनिक विचारो की ओर उन्मुख जान पडते हैं । कविताओ के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास और निबन्ध भी इनके लोकप्रिय और सत्कृत हुए हैं । इनकी ये रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, बेला, अणिमा, अपरा और नये पत्ते और अर्चना काव्य-सग्रह हैं । अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती, उच्छृङ्खल, चोटी की पकड, काले कारनामे, चमेली आदि उपन्यास । लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीबी आदि कहानी-सग्रह । कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरीहा आदि रेखा-चित्र । प्रबन्ध-पद्य, प्रबन्ध-प्रतिभा, प्रबन्ध-परिचय, रवीन्द्र-कविता-कानन आदि आलोचनात्मक निबन्ध-सग्रह हैं । राणा प्रताप, भीम, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुन्तला आदि जीवन-चरित, महाभारत, श्री रामकृष्ण-रसनामृत (चार भाग), स्वामी विवेकानन्दजी के भाषण, देवी चौधरानी, आनन्द-मठ, दुर्गेश-नन्दिनी, युगलागुलीय, वात्स्यायन कामसूत्र तथा तुलसी-रामायण की टीका व गोविन्ददास-पदावली (पद्य मे) इनके अनूदित ग्रन्थ हैं । ये 'समन्वय' और 'मतवाला' नामक पत्रो के सम्पादक भी रहे हैं । द्विवेदीजी से इन्हे सदा पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त होता रहता था । सवत् २००३ मे काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा मे इनकी जयन्ती बडे समारोह के साथ मनाई गई । अत्यन्त भावुक और मनमौजी यह कवि आर्थिक सकटो के कारण जीवन से उदास होकर अब शारीरिक व मानसिक शक्ति से शिथिल हो चुका है ।

"मै और तुम" कविता इनकी दार्शनिक भावनाओ का परिचय देती है—

तुम गंध-कुसुम कोमल-पराग, मैं मृदुगति-मलय-समीर ।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति-प्रेम-जजीर ।

तुम शिव हो मै हूँ शक्ति,
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र मै सीता अचला भक्ति ।।

मनुष्य की सहज भावनाओ को उच्चतम स्थान देने का श्रेय निरालाजी को ही है । हृदय मे जब नये राग की लहर उठती है वह जैसे छलकती हुई अलको और पलको मे छिप जाती है । स्नेह-भरे नयनो की पलके उठाकर वह प्रिय का अधरासव पान करती है । स्नेह का मेह बरसने के बाद अमर अकुर फूटता है, जिससे सासारिक भय दूर हो जाते है ।

प्रेम चहक कर उठा नयन नव, विधु चितवन मन ए मधुकलरव ।
मौन पान करती अधरासव, कठ लगी तरुणी ।
मधुर स्नेह के मेह प्रखर तर, बरस गए रस निर्झर झर-झर ।
लगा अमर अकुर उर भीतर, ससृति भीर भई ।।

हिन्दी मे ऐसे गीत बहुत कम लिखे गये है, जहॉ रूपक मे इतनी पूर्णता हो । एक अन्य गीत मे प्रकृति और मानव के व्यापारो को एक कर दिया गया है, प्रेम के समीर से दो विटप हिल उठते है । इसी वायु से जीवन रूपी सर लहरा उठता है । नये प्रकाश की किरण गात छूकर चली जाती है । इससे सीमाओ मे बधी हुई भावनाओ की मुक्ति हो जाती है । सुख चाहने वाली दृष्टि रहस्यो को जान लेती है । दोनो प्रेमी जान लेते है कि राग से ही मुक्ति मिलती है । ज्ञान और प्रेम मे वे ऐसे ही बध जाते है, जैसे अपूर्ण शक्ति के दो चरणो से श्लोक बन गया हो । पूरे गीत मे भावो का बधान देखिए—

नयनो से नयनो का बधन, कापे थर-थर युगतन ।
समझे-से हिले विटप हँसकर, चढे मजु खिले सुमन खसकर ।
गई विवश वायु बॉध वश कर, निर्भर लहराया सर-जीवन ।
ज्ञात रश्मि गात चूम रे गई, बँधी हुई खुली भावना नई ।
गई दूर दृष्टि जो सुखाशयी, छिपे वे रहस्य दिखे नूतन ।।
समझे युग रागानुराग मुक्ति रे-ज्ञान परम मिले चरम युक्ति से ।
सुन्दरता के, अनुपम उक्ति के, बँधे हुए श्लोक पूर्णकर चरण ।।

निरालाजी निराशावादी नही है । उन्हे अपने जीवन मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा है । जब उन पर आपत्तियो के बादल घिर कर आते है तो वे एक उद्धत और उत्साही वीर का रूप धारण कर लेते हैं जो करुणा-मार्ग मे नियति को भी चुनौती देता है ।

खण्डित करने को भाग्य अक, देखा भविष्य के प्रति अशक,

हिन्दी मे ये पक्तियाँ निराला ही लिख सकते है और भविष्य के प्रति अशक होकर देखना उन्ही का काम है । परन्तु यह भाग्य-अक खण्डित नही कर पाये । अन्त मे इस उदात्त-गर्जना के बदले उनका दु ख जर्जर हृदय बोल उठता है —

दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहू आज जो नही कही,

जीवन के सघर्षों और परिस्थितियो ने निरालाजी के काल्पनिक ससार को खण्डित कर दिया है । अब वे यथार्थवाद की ओर आते जारहे है । पूँजीवाद व्यवस्था ने कविको प्रगतिवाद की ओर उन्मुख कर दिया है । निरालाजी ने पूँजीवादी शोषण के कडे करुणाजनक चित्र खीचे है । एक भिखारी का चित्रण देखिए—

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनो मिलकर है एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूक मिटाने को ।
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता—
वह आता—

पूजीवादी सत्ता अपनी कूटनीतियो द्वारा जिस प्रकार जनता का शोषण कर रही है, वह भेद अब निराला जी ने समझ लिया है—

खुला भेद विजयी कहाए हुए जो,
लहू दूसरो का पिये जा रहे है ।

सुमित्रानन्दन पन्त—पन्तजी का जन्म स० १९५८ मे अलमोडा जिला कसौनी नामक गाँव मे हुआ था । इनके पिता का नाम प० गगादत्त पन्त था । इन्होने एफ ए तक शिक्षा प्राप्त की है । अनेक अन्य साहित्यिको की भाँति अधिकतर अध्ययन इन्होने घर पर ही किया है । सस्कृत, बगला के अतिरिक्त अग्रेजी-

साहित्य का इन्होने प्रेम से अध्ययन किया। बगला-साहित्य की छाप इनके ऊपर स्पष्ट है।

आधुनिक युग के क्रातिकारी कवियो में प्रसाद और निराला के बाद पन्तजी का स्थान है। छायावादी एव रहस्यवादी काव्य के ये तीनो मुख्य स्तम्भ समझे जाते है। प्रसादजी ने अपनी मौलिक प्रतिभा से जिस काव्यधारा को जन्म दिया था और जिस शैली को अपनाया था उसका विकास हम निराला और पन्तजी के काव्य मे देखते है। प्रसादजी और निरालाजी की तरह पन्तजी ने भी भाषा, व्याकरण, छन्द एव परम्परागत कवि-समय को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है।

पन्त जी वास्तव में प्रकृति के कवि है। प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण प्रदेश मे जन्म लेने से प्रकृति मानो इनकी आत्मा और प्राणो से एक हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कवि ने प्रकृति का साक्षात्कार किया है। ये प्रकृति और मानव-हृदय दोनो मे एक मधुर सम्बन्ध मे विश्वास रखते है। प्रकृति को एक सहचरी के रूप मे देखते है और उसके साहचर्य मे वास्तविक आनन्द का अनुभव करते है। प्रकृति के सम्बन्ध मे इनका यह दृष्टिकोण अग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ से मिलता-जुलता है। उनकी भाँति प्रकृति का मधुर ओर कोमल पक्ष ही इन्हे आकृष्ट कर सका है, उग्र तथा भयानक नही। भाषा की कोमलता के लिए ये प्रसिद्ध है। शब्द-चयन इनका अनूठा होता है। कुछ अन्य आधुनिक कवियो की भाति ये भी मार्क्सवाद तथा साम्यवाद के प्रभाव मे आ गये थे पर अब अरविन्द अध्यात्मवाद की और अग्रसर है।

इनकी वीणा, ग्रन्थि, उच्छ्वास, पल्लव, गुजन, युगान्त, युगवाणी, पल्लविनी, स्वर्ग-किरण आदि रचनाएँ पर्याप्त प्रसिद्ध है। युगान्त और युगवाणी मे प्रगतिवाद व गाधीवाद की झलक है। 'ग्राम्या' आपकी सुन्दर रचना है। इसमे ग्राम-जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है, न कल्पना की उडान है, न अलकृत पदावली में अस्पष्ट अभिव्यंजनात्मकता, सीधी-सादी गद्यमयी भाषा मे गॉव का वास्तविक चित्र अकित कर दिया गया है। ग्राम का प्रत्येक कार्य और व्यापार अपने प्राकृतिक रूप मे प्रकट हुआ है। गाधीजी के देहान्त के पश्चात् उन्हे श्रद्धाजलि समर्पित करने के उद्देश्य से इन्होने और बच्चन ने मिलकर 'खादी के फूल' नामक रचना प्रकाशित की। इधर आप अरविन्द की आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि से प्रभावित होकर प्रगतिवाद से अध्यात्मवाद की ओर मुडे है। 'स्वर्णधूलि,' 'स्वर्गकिरण' युगपथ, मानसी, गीतिनाट्य आदि आपकी नवीनतम रचनाओ मे

उक्त विचार-धारा की झलक लक्षित होती है। यहा 'ग्राम्या' और 'खादी के फूल' से कुछ कविताएँ उद्धृत की जाती है––

प्रथम अहिंसक मानव बन के तुम आए हिंस्र धरा पर,
मनुज बुद्धि को मनुज-हृदय के स्पर्शो से संस्कृत कर;
निबल प्रेम को भाव-गगन से निर्मम धरती पर धर,
जन-जीवन के बाहुपाश में बांध गये तुम दृढ़तर;
द्वेष-घृणा के कटु प्रहार सह करुणा दे प्रेमोत्तर,
मनुज अहं के गत विधान को बदल गये हिंसाहर;
(खादी के फूल)

ग्राम्या मे ग्राम-नारी का कैसा वास्तविक चित्र अकित हुआ है––

स्वाभाविक नारीजन की लज्जा से वेष्टित,
नित कर्मनिष्ठ, अंगों की हृष्ट-पुष्ट सुन्दर;
श्रम से है जिसके क्षुधा, काम चिर मर्यादित,
वह स्वस्थ ग्राम-नारी नर की जीवन-सहचर;
वह शोभा-पात्र नहीं, कुसुमादपि मृदुल गात्र,
वह नैसर्गिक जीवन-संस्कारों से चालित;
सत्याभासों में पली, न छाया मूर्ति मात्र।
जीवन-रण में सक्षम सघर्षो से शिक्षित,
वह वर्ग नारियों-सी न सुज्ञ संस्कृत कृत्रिम,
रंजित कपोल, भ्रू, अधर, अंग सुरभित वासित,
छाया-प्रकाश की सृष्टि,––उसे सम ऊषा हिम,
वह नहीं कुलों की कामवन्दनी अभिशापित,
है मांसपेशियों में उसके दृढ़ कोमलता।
संयोग अवयवों में अश्लथ उसके उरोज,

कृत्रिम रति की है नही हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव, कल्पित मनोज ।

(ग्राम्या)

अब एक ग्राम के बनिये का चित्र भी देखिए—

'अनुभव करता लाला का मन, छोटी हस्ती का सस्तापन,
जाग उठा उसमे मानव, औ असफल जीवन का उत्पीडन ।
दैन्य दु ख अपमान ग्लानि,चिर क्षुधित पिपासा,मृत-अभिलाषा,
बिना आय की क्लान्ति बन रही, उसके जीवन की परिभाषा ।
जड अनाज के ढेर सदृश ही वह दिन भर बैठा गद्दी पर,
बात-बात पर झूठ बोलता कौडी की स्पर्धा मे मर मर ।
फिर भी क्या कुटुम्ब पलता है? रहते स्वच्छ सुघर सब परिजन,
बना पा रहा वह पक्का घर? मन में सुख है, जुटता है धन ।
खिसक गई कन्धो से कथडी, ठिठुर रहा अब सर्दी से तन,
सोच रहा बस्ती का बनिया घोर विवशता का निज कारण।
शहरी बनियो-सा वह भी उठ क्यो बन जाता नही महाजन ?
रोक दिये है किसने उसकी जीवन-उन्नति के सब साधन ?

महादेवी वर्मा—श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म स० १९६४ मे फर्रुखाबाद में हुआ । इनके पिता श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा थे । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर मे हुई । स० १९७३ मे डाक्टर रूपनारायण वर्मा के साथ इनका विवाह हुआ । विवाह के पश्चात् इन्होने मैट्रिक, एफ ए , बी ए , एम ए परीक्षाएँ पास की । कुछ समय तक 'चाद' की सम्पादिका का कार्य कर 'प्रयाग-महिला-विद्यापीठ" की आचार्या-पद पर प्रतिष्ठित हुई । 'साहित्य-ससद' नामक सस्था स्थापित कर ये हिन्दी लेखको की सहायता करने का स्तुत्य प्रयत्न कर रही हैं । 'नीरजा' पर पाचसौ का सेक्सेरिया-पुरस्कार और 'यामा' पर १२००) का मगलाप्रसाद-पारितोषिक इन्हे प्राप्त हो चुका है । सेक्सेरिया-पुरस्कार के ५००) रुपये इन्होने प्रयाग-महिला-विद्या-पीठ को दान कर दिये ।

महादेवी मीरा की अवतार कही जाती है। मीरा की मधुरता और वेदना महादेवी के प्रत्येक पद्य मे प्रतिबिम्बित है। इनकी रचनाएँ परिमाण मे अपेक्षाकृत स्वल्प होते हुए भी उत्कृष्ट गुणो की आगार है। ये अपनी रचनाओ के द्वारा हिंदी-काव्य के एक महत्त्वपूर्ण अग का नेतृत्व कर रही है। महादेवी हिन्दी मे स्वर्गीय गीतो की श्रेष्ठतम गायिका है। वे स्थूल को छोडकर ऐसे सूक्ष्म की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है जिसमे जीवन का दिव्य सत्य अन्तर्हित है। स्थूल जगत् की अपूर्णता से विक्षुब्ध होकर अव्यक्तपूर्णता के अन्वेषण मे लीन आत्मा सदैव विरहित ही रहती है, इसीलिए उसकी वाणी मे विरह-वेदना की प्रधानता रहती है। महादेवी प्रकृति के प्रत्येक प्रात से अमृत-सुषमा का प्रेमोपहार लाकर अपने अनुपम प्रियतम का शृगार करती है। वे प्रकृति के नाना रूपो और व्यापारो मे अपने प्रियतम का प्रतिबिम्ब पाकर उससे चिरमिलन के लिए उत्कण्ठित हो उठती है।

कैसे कहती हो सपना है अलि! उस मूक मिलन की बात,
भरे हुए अब तक फूलो मे, मेरे आसू उनके हास।

में प्रियतम से दिव्य-साक्षात्कार का परिचय भी देती है। प्रिय की उत्सुकता-पूर्ण प्रतीक्षा ही इनकी कविता का पाथेय है। इनके अलौकिक विरह और मिलन-औत्सुक्य और नैराश्य, आह्वान और प्रत्याख्यान या रूठने और मनाने मे कही वासनाजन्य कालुष्य या दूषित प्रवृत्ति का चिन्ह भी नही है। उनका शृगार भी तुलसी के समान सात्विक और पवित्र है। चाहे सयोग पक्ष हो चाहे वियोग-पक्ष, शृङ्गार के दोनो पक्षो का ऐसा सुरुचिपूर्ण सात्विक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ ही है।

कवयित्री के अन्तरतम मे प्रकृति के प्रति अपूर्व प्रेम प्रवाहित हो रहा है। छायावाद की अभिव्यजनात्मक शैली मे कोमल-कान्त रूपको के द्वारा प्रकृति के मार्मिक चित्र अकित करने में ये अपना उपमान आप ही है। महादेवी के रहस्यवाद का हिन्दी-जगत् मे अपना विशेष स्थान है। प्रमुख आलोचक गण महादेवी की ही रचनाओ मे वास्तविक रहस्यवाद का प्रदर्शन करते है। महादेवी के प्रत्येक पद से परिष्कार-प्रियता और सुकुमारता टपकती है। दीप-शिखा मे उनकी उत्कृष्टतम तथा प्रौढ रचनाएँ सकलित है। प्रतीक, समासोक्ति और लाक्षणिक मूर्तिमत्ता व अभिव्यजनात्मकता आज की कविता की मुख्य विशेषताएँ है। महादेवी की रचनाओ मे भी इनकी प्रचुरता है। इसीलिए कही-कही इनकी रचनाएँ सामान्य पाठक के अन्तर् में सहसा नही पैठ पाती। बात तो यह है कि

प्रत्येक रहस्यवादी कवि की भाषा उसके भावो को भलीभाँति बिना प्रतीको के प्रकट ही नही कर सकती, और प्रतीकात्मक पदावली के रहस्य तक पहुँचने के लिए प्रखर प्रतिभा की परमावश्यकता रहती है ।

महादेवी की ये रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्य-गीत और दीप-शिखा। 'यामा' में 'नीहार' 'रश्मि' और 'नीरजा' की सब कविताएँ सकलित है । 'अतीत के चल-चित्र' और 'शृखला की कडिया' इनके निबन्ध है। 'हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य' एक आलोचनात्मक पुस्तक है । कवयित्री के साथ महादेवी श्रेष्ठ चित्रकार भी है ।

स्त्रियोचित सात्विकता ने महादेवी जी के काव्य मे एक सार्वत्रिक विशेषता उत्पन्न कर दी है। इनसे उनके काव्य को सुन्दर कान्ति मिली है । उनकी भावुकता भी देखने ही योग्य है—

चाहता है यह पागल प्यार, अनोखा एक नया ससार,
कलियो के उच्छ्वास शून्य मे ताने एक वितान,
तुहिन-कणो की मृदु कपन से सेज बिछाये गान—
जहा सपने हो पहरेदार !

महादेवीजी ने छायावादी काव्य में व्यक्त प्रकृति के सौन्दर्य-प्रतीको को न लेकर उन प्रतीको की अव्यक्त गतियो अथवा छाया का सग्रह किया है। इससे उनकी कविताओ में वेदना की विवृति और रहस्यात्मकता बढ गई है। देखिए—

उन हीरक के तारो को, कर चूर्ण बनाया प्याला ।
पीडा का सार मिला कर, प्राणो का आसव ढाला ।
मलयानिल के झोको मे, अपना उपहार लपेटे ।
मैं सूने तट पर आई, बिखरे उद्गार समेटे ।

प्रसाद के 'आसू', निराला की 'स्मृति' जैसी उडान और सुमित्रानन्दन पत के 'पल्लव' जैसा सौन्दर्यान्वेषण महादेवीजी मे नही है, किन्तु वेदना का विन्यास, उसकी वस्तुमता का बहुरूप और विवरणपूर्ण चित्रण जैसा महादेवी जी ने किया है, वैसा वे तीनो कवि नही कर पाये । देखिए—

जाग जाग सुकेशिनी री—
अनिल ने आ मृदुल हौले, शिथिल वेणी बन्ध खोले

पर न तेरे पलक डोले,
बिखरती अलके झरे जाते सुमन वर-वेषिनी री !
जाग जाग सुकेशिनी री !
छॉह मे अस्तित्व खोये, अश्रु के सब रग धोये ।
मद प्रभ दीपक सॅजोये ।
पन्थ किसका देखती तू, अलस स्वप्न निषेविनी री !

महादेवीजी ने अपनी कविताओ मे रूप-चित्रण की अपेक्षा भावचित्रण को प्रधानता दी है । किन्तु रूप-चित्रण के बिना रहस्यवाद के काव्य मे कला का पूर्ण प्रस्फुटन नही हो सकता । फिर भी जहा व्यक्त रूप किसी-न-किसी प्रकार आ गये है, वहा इनकी रचना भी सुन्दर बन गई है । देखिए—

किसी नक्षत्रलोक से टूट,
विश्व के शतदल पर अज्ञात ।
ढुलक जो पडी ओस की बूद,
तरल मोती-सा ले मृदु-गात—
नाद से जीवन से अनजान,
कहो हुआ परिचय हे नादान !

प्रसादजी और महादेवीजी के रहस्यवाद मे यह अन्तर है कि महादेवीजी का झुकाव करुणा और भक्ति-भाव की ओर रहता है । और 'प्रसाद' जी प्राय तादात्म्य (वही तू है) का सकेत करते है । महादेवी की भक्ति-भावना और आत्म-समर्पण का सुन्दर उदाहरण देखिए—

बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ !
नयन मे जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण मे, वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर मे छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छॉह वह चल हूँ,
दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

उदयशकर भट्ट—भट्ट जी का जन्म सवत् १९५५ मे हुआ। वर्षों तक ये लाहौर के सनातन-धर्म कॉलेज मे प्रोफेसर पद पर रहे। आजकल आप देहली रेडियो-विभाग मे काम कर रहे है।

भट्टजी आज के कलाकारो मे अपना प्रमुख स्थान रखते है। वैसे तो इनकी ख्याति सारे हिंदी जगत् मे व्याप्त है, पर ये पजाब के सर्वप्रमुख कवि और कलाकार स्वीकार किये जाते है। पजाब मे इन्होने अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अश व्यतीत किया है। वही शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर भिन्न-भिन्न सस्थाओ मे अध्यापन-कार्य किया। इनकी साहित्य-कला का विकास भी पजाब में हुआ। पजाब की जनता और सरकार ने आपकी रचनाओ को पर्याप्त सत्कृत एव पुरस्कृत किया। 'तक्षशिला' आदि काव्य पर पुरस्कार प्राप्त हुए।

भट्टजी की रचनाओ मे गम्भीर अनुभूति और दार्शनिकता के दर्शन होते है। इनकी कविताओ मे जीवन की वेदना, सामाजिक विषमता और तज्जन्य अन्यान्य दु खो व क्लेशो का मार्मिक चित्रण हुआ है। आरम्भ मे ये भी निराशावाद से प्रभावित होकर—

किसने परिणामो मे पाया सचित आशा भरा शृगार,
मै ससार-विहार-स्थल पर निरख रहा यह बारम्बार।

आदि रचनाओ मे अपने अन्तर् की निराशा और वेदना को प्रतिबिम्बित करते रहे। समय के बीतने के साथ निराशा की उक्त प्रवृत्ति विद्रोह की उग्र भावना मे परिणत होने लगी। कवि की प्रतिभा पौरुष के पथ पर अग्रसर हुई। भाग्यवाद की अपेक्षा पुरुषार्थ ने प्रधान स्थान प्राप्त किया। प्रभु-कृपा की बाट जोहते रहना भी प्रकारातरित भाग्यवाद ही है, इसलिए कवि परमात्म-बल की अपेक्षा आत्म-बल पर विश्वास करता हुआ कहता है कि—

कुछ न कर सका पीडित के प्रति,
कुछ न किया है अब तक उसने,
कुछ न करेगा आगे भी वह,
निर्बल को देगा यो चुसने!

इस प्रकार ईश्वर भी कवि के हाथो अन्याय और उत्पीड़न के दायित्व से बच नही सकता। थोथे सारहीन अध्यात्मवाद से, जिस के बल पर मानव मनमानी

करता आ रहा है, ऐसी दार्शनिकता के प्रति घृणा और रोष प्रकट करता हुआ भी कवि ईश्वर और विश्व के व्यापक नैतिक विधान मे तो अपनी पूर्ण आस्था प्रकट करता है। वह प्रगतिवाद का प्रचारक होते हुए भी प्राचीनता का पुजारी और आर्य-सस्कृति का उपासक है।

हिन्दी-नाटक-साहित्य में तो भट्टजी का अपना विशेष स्थान है। प्रसादजी के पश्चात् नाटक-क्षेत्र मे आपकी प्रतिभा को प्रमुख स्थान दिया गया है। हिंदी-दु खात नाटको के ये प्रवर्तक माने जाते है। आपके नाटको मे पौराणिक युग और आज के युग का सुन्दर समन्वय हुआ है। 'तक्षशिला', 'राका', 'मानसी', 'विसर्जन', 'अमृत और विष', 'युगवाणी', 'युगदीप', 'यथार्थ और कल्पना' आदि काव्य; 'दाहर', 'मत्स्यगन्धा', 'सगर-विजय', 'अम्बा', 'कमला', 'अन्तहीन अन्त', 'विश्वामित्र', 'विक्रमादित्य', 'आदिम युग', 'मुक्ति पथ', 'शक्त विजय', 'राधा' (भाव-नाट्य) आदि नाटक, 'दस हजार', 'अभिनव एकाकी नाटक', 'स्त्री का हृदय', 'समस्या का अन्त', 'धूमशिखा' आदि एकाकी नाटको के सग्रह, 'वह जो मैने देखा' उपन्यास, और 'एकला चालो रे' और 'कालीदास' रूपक इनके ये ग्रथ अत्यन्त लोकप्रिय है।

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'—'मिलिंदजी का जन्म स० १९६० मे मुरार (ग्वालियर) मे हुआ। ये कवि के साथ राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी है। राजनैतिक आदोलनो मे ये कृष्ण-मन्दिर के अतिथि भी रह चुके है। इनकी कविता मे इनका सामाजिक और राजनैतिक जीवन प्रतिबिम्बित है। उसमे इनके क्रातिकारी-अन्तर्तम की व्यक्त अभिव्यक्ति है। विशुद्ध कला की दृष्टि से कला के साथ कवि के जीवन का वास्तविक सामजस्य होना आवश्यक है, यह सिद्धात इनकी प्रत्येक रचना मे पूरा उतरता है। इन्होने किसी कविता मे ऐसे विचार व्यक्त नही किये जिनका इनके जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध न हो। कवि की उच्च कल्पना और उग्र विचार-धारा को गम्भीर अनुभूति से अमूल्य सहायता मिली है। इसी के सहारे--"जो बने वाणी नये युग की, वह मेरी कला है" जैसी दृढ आत्म-विश्वासपूर्ण भावनाएँ व्यक्त कर पाये है। निस्सदेह कवि की वाणी युग की ही नही प्रत्युत युग-युग की वाणी है। इनकी वाणी में दलित, पीडित और शोषित समाज का मार्मिक चित्रण हुआ है। उत्पीडन-जन्य-वेदना, अत्याचार से सघर्ष और विद्रोह तथा नव-निर्माण की भावनाएँ उसमे एक साथ व्यक्त हो रही है। प्रगतिवादी कवियो मे मिलिन्द जी का अपना विशेष स्थान है। 'प्रताप-प्रतिज्ञा' इनका अत्यन्त लोकप्रिय नाटक है। 'जीवन-सगीत', नवयुग के गान' आदि इनकी अन्य रचनाएँ भी प्रसिद्ध है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'—इनका जन्म स १९६५ मे गुना (ग्वालियर मे) हुआ। जीवन का अधिकाश भाग इन्होने लाहौर मे साहित्य-सेवा के कार्यों मे व्यतीत किया। ये एक सफल साहित्यिक नाटककार है। हिंदी के अधिकाश साहित्यिक नाटक रगमच पर अभिनय मे पूरे नही उतरते, प्रेमी जी के नाटक इसके अपवाद है। इनका प्रत्येक नाटक बिना किसी परिवर्तन के अपने अविकल रूप मे मच पर उपस्थित किया जा सकता है। 'रक्षाबन्धन' का अनेक बार अभिनय तो हुआ ही, साथ ही 'चित्तौड-विजय' के नाम से फिल्म भी सुन्दर बनी है।

इनकी रचनाओ मे छायावाद, निराशावाद और प्रगतिवाद तीनो ही के समय-समय पर दर्शन हुए है। आरम्भिक रचनाओ मे मार्मिक वेदना और दुखद अभाव के चित्र रहते थे। आरम्भिक जीवन इनका कष्ट मे बीता। आगे चलकर इनकी यह निराशा और वेदना ही प्रतिहिंसा विद्रोह के रूप मे भडक उठी। 'अग्निगान' मे समाज की विषमता के प्रति भयकर आग उगली गई है। दूसरी ओर कवि परिस्थिति से उत्पन्न दुख और अभाव की करुण चीत्कार से उद्धार पाने के लिए अन्तर्मुख हो अज्ञात प्रियतम का साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए "अनन्त के पथ" पर अग्रसर हो जाता है। उसकी आत्मा की एक बूँद उस महासिंधु मे मिलकर अपना अस्तित्व मिटा देने के लिए विकल हो उठती है, तरणि के बन्धन और पतवार के भुलावे से उन्मुक्त होना चाहती है, किंतु यह स्थिति स्थायी नही रहती, वह फिर समाज की विषमता के प्रति विद्रोहात्मक सिंह-गर्जना करता हुआ विश्व मे उथल-पुथल मचा देना चाहता है। अपनी गम्भीर अनुभूति, क्लिष्ट कल्पना और ऊँची उडान को सरल, स्वाभाविक तथा सहज भाषा में उतार कर जन-सामान्य के अन्तर्तम तक पहुँचाने की इस कवि में अद्भुत क्षमता है।

'आँखो मे', 'जादूगरनी', 'अनन्त के पथ पर' आदि अनेक काव्य-सग्रह; 'रक्षा बन्धन', 'पाताल-विजय' 'शिवा-साधना', 'प्रतिशोध', 'स्वप्न-भग', 'छाया', 'बन्धन' आदि नाटक इन के पर्याप्त लोकप्रिय है।

माखनलाल चतुर्वेदी—इनका जन्म स० १९४५ मे मध्यप्रान्त के होशगाबाद जिले में हुआ। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे। माधव-राव सप्रे के सहयोग से इन्होने 'कर्मवीर' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् 'प्रताप' तथा 'प्रभा' के भी सम्पादक रहे। अब फिर 'कर्मवीर' का प्रकाशन और सम्पादन कर रहे है। ये क्रातिकारी विचारो के अत्यन्त भावुक

भक्त वृद्ध योद्धा है। इनकी वाणी मे अपूर्व उत्साह और कडक भरी हुई है। देश-भक्ति और वीरता इनका सर्वस्व है। 'अखिल-भारतीय-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' के हरिद्वार-अधिवेशन के ये सभापति थे। परिमाण की दृष्टि से इनकी रचनाएँ अत्यन्त स्वल्प, सभवत सब लेखको से स्वल्प है, पर अपने उत्कृष्ट गुणो के कारण साहित्य मे इनका विशेष स्थान है। इन्होने जनता की मानसिक धारा और राष्ट्रीय चेतना को बड़े ओजस्वी शब्दो मे व्यक्त किया और राष्ट्रीय, प्रेम और सौन्दर्य-सम्बन्धी तथा रहस्यवादात्मक तीनो प्रकार की कविताएँ लिखी है। 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक इनकी देश-भक्ति सम्बन्धी कविता परम प्रसिद्ध है। चतुर्वेदीजी भाषा, शैली, विषय सभी दृष्टियो से मौलिक है। अभिव्यजनात्मकता और लाक्षणिकता तो इनकी छायावादी और रहस्यवादी रचनाओ की प्राण है। कृष्णमन्दिर मे रहकर इन्होने अपने देश-प्रेम और कृष्ण-भक्ति का क्रियात्मक परिचय दिया है। जैसा कि पहले कहा गया है, चतुर्वेदी जी आज के युग की नवीन धारा के प्रथम कवि है। इनकी निम्न रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है—'हिमकिरीटनी', 'हिम-तरगिनी' (कविता-सग्रह), 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (नाटक), 'साहित्य-देवता' (गद्यकाव्य), 'वनवासी' (कहानी-सग्रह) है। इनकी 'हरियाली की घडिया' देखिए—

कौन सी है मस्त घडियाँ चाह की?
हृदय की पगडडियो के राह की।
दाह की ऐसी कनक सुन्दर बने,
मौन की मनुहार की है आह की॥
भिन्नता की भीत सहसा फादकर,
नैन प्रायः जूझते लेखे गए।
बिन सुने, हँसते चले चलते हुए,
बिन बुलाए बूझते देखे गये॥

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—नवीनजी का जन्म उज्जैन के निकट 'मयाना' ग्राम मे स० १९५४ मे हुआ। इनके पिताजी 'श्रीनाथद्वारा' मे रहते थे। कुछ समय तक उनके साथ रहने के पश्चात् ये उज्जैन के माधव कॉलेज में पढने लगे, फिर कानपुर आ गये। श्री गणेशशकर विद्यार्थी के सपर्क मे आकर ये राष्ट्रीय कार्यों में प्रवृत्त हुए और कई बार कृष्ण मन्दिर भी पहुचे। वही इन्होने 'विस्मृता-उर्मिला'

मेरा मन्दिर, मेरी मस्जिद, काबा, काशी यह मेरी,
पूजा-पाठ, ध्यान, जप-तप है, घट-घटवासी यह मेरी।

मां ओ! कहकर बुला रही थी, मैने पूछा यह क्या लाई।
मिट्टी खाकर आई थी, बोल उठी वह "मा काओ"॥
कुछ मुह मे कुछ लिये हाथ मे, हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से।
मुझे खिलाने आई थी, मैने कहा तुम्ही "खाओ"॥

ऐसी कई कविताओ मे इनकी वात्सल्य भावनाएँ मूर्त रूप मे व्यक्त हो रही है। इनकी श्रृगार रसात्मक कविताएँ भी सुन्दर और सयत है। उनमे न तो प्रिय की निष्ठुरता के प्रति शिकायत है और न वासनात्मक प्रेम की आधी है—

बहुत दिनो तक हुई परीक्षा, अब रूखा व्यवहार न हो।
अजी! बोल तो लिया करो तुम, चाहे मुझ पर प्यार न हो॥

ऐसी रचनाओ मे इन्ही भावनाओ के दर्शन होते है "ठुकरा दो या प्यार करो", "मानिनी-राधे", "प्रियतम से" आदि रचनाएँ ऐसे ही सात्विक श्रृगार से परिपूर्ण है।

सुभद्राकुमारी, महादेवी के समान उत्कृष्ट कलात्मक कवयित्री तो नही, पर जन-साधारण के विचारो को मूर्त्त-रूप देने वाली राष्ट्रीय कवयित्री अवश्य थी। महादेवी की रचनाएँ अध्यात्मवादके सकेत और भावनाओ की जटिलता के कारण साधारण पाठक को सरलता से समझ मे नही आ सकती, पर सुभद्रा की प्रत्येक कविता मे सीधी-साधी भाषा मे मानव का स्वाभाविक चित्र अकित हो रहा है। इसीलिए वे महादेवीकी अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है। इनको दो बार सेक्सेरिया-पारितोषिक प्राप्त हुआ था। 'मुकुल', 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी', 'त्रिधारा', 'सभा के खेल' और 'सीधे-साधे चित्र' मे इनकी रचनाएँ सकलित है। 'त्रिधारा' मे प० माखनलाल चतुर्वेदी और प० केशवप्रसाद पाठक की कविताएँ भी है। 'सभाके खेल' मे बालोपयोगी कविताएँ है और 'सीधे-साधे चित्र' मे उनकी अन्तिम कहानिया है।

रामकुमार वर्मा—इनका जन्म स० १९६२ में मध्यप्रदेश के सागर जिले मे हुआ। इनके पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद जी डिप्टी-कलक्टर थे। इनकी

आरम्भिक शिक्षा मराठी भाषा के स्कूल म तथा हिंदी की शिक्षा घर ही मे अपनी माताजी के द्वारा प्राप्त हुई। विभिन्न विश्व-विद्यालयो मे पढने के पश्चात् आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी मे हिंदी एम० ए० पास कर वही अध्यापन-कार्य आरम्भ किया। आप मध्यप्रान्त शिक्षा विभाग के डिप्टी-डाइरेक्टर भी रहे है। नागपुर विश्वविद्यालय से इन्हे पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

ये हिंदी की नवीन काव्य-धारा के प्रमुख कवियो मे से है। इनकी आरम्भिक रचनाएँ इतिवृत्तात्मक और परवर्ती रचनाएँ अनुभूति प्रधान है। ये कबीर और पाश्चात्य रहस्यवाद से पर्याप्त प्रभावित है। इनके गीत भावपूर्ण तथा सक्षिप्त और सगीत की स्वर-लहरी से समन्वित है। इनके वर्णनात्मक काव्यो में 'निशीथ' का स्थान सर्वोत्तम है। इस खड-काव्यमे निराशा, प्रेम, करुणा, वेदना आदि वृत्तियो का समन्वयात्मक सुन्दर चित्र अकित हुआ है। सस्कृत की कोमल-कान्त-पदावली का प्रयोग करते हुए भी ये अपनी रचनाओ मे अस्पष्टता एव दुरूहता नही आने देते। कवि के साथ ही ये श्रेष्ठ नाट्यकार भी है। लोकप्रियता तो इन्हे नाटको से ही अधिक प्राप्त हुई है। इनके एकाकी नाटको का जनता ने अच्छा स्वागत किया है। समालोचना-क्षेत्र मे भी इनका अपना एक विशेष स्थान है। 'सन्त कबीर' और 'कबीर का रहस्यवाद'मे इन्होने अपने गम्भीर अध्ययन और व्यापक पाडित्य से पूर्ण समालोचना-शक्ति का परिचय दिया है। 'साहित्य-समालोचना' मे नाटक, कहानी, उपन्यास आदि साहित्य के विविध अगो की समीक्षा की गई है। 'हिंदी-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' मेभक्ति-काल तक के साहित्य का समालोचनात्मक व्यापक विवेचन किया गया है। 'चित्ररेखा' पर इन्हे २०००) का 'देवपुरस्कार' और 'चन्द्रकिरण' पर ५००) का चक्रधर पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इनकी निम्न रचनाएँ पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी है—

'कुल-ललना', 'चितवन', 'अजलि', 'रूपराशि','चित्ररेखा','चन्द्र-किरण', 'वीर हम्मीर', 'चित्तौड की चिता', 'अभिशाप', 'निशीथ' और सकेत आदि काव्य, 'पृथ्वीराजकी आखे', 'रेशमी टाई', 'शिवाजी' आदि नाटक, 'साहित्य-समालोचना', 'कबीर का रहस्यवाद', 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', 'हिंदी साहित्य का अनुशीलन' आदि समालोचना, 'हिमहास',(गद्य-गीत), 'सन्त कबीर', 'जौहर', 'कबीर पदावली', 'हिंदी-गीति-काव्य' आदि सग्रह और 'विचार-दर्शन' नामक विचार-सग्रह।

वर्माजी क्षणिक सुख मे भी दु ख छिपा हुआ देखते है—

धूल हाय बनने ही को, खिलता है फूल अनूप !
वह विकास है मुरझा जाने ही का पहला रूप ।

कही-कही आप की कविता मे तीव्र निराशा भी झलक उठती है—

मेरे दु ख मे प्रकृति न देती
पल भर मेरा साथ ।
उठे व्योम मे रह जाते है—
मेरे भिक्षुक हाथ ।

वर्मा जी की कल्पना विशद और कुशाग्र है । वास्तव मे आपको कल्पना-प्रिय कवि कहे तो अनुचित न होगा । कल्पना की कूची से आप कविता मे एक नवीन सौंदर्य और सजीवता उत्पन्न कर देते है । देखिए—

इस सोते ससार बीच, सजकर जगकर रजनी बाले ।
कहा बेचने ले जाती हो, ये गजरे तारो वाले !
मोल करेगा कौन सो रही है उत्सुक आखे सारी,
मत कुम्हलाने दो सूनेपन मे अपनी निधिया सारी !

भगवतीचरण वर्मा—इनका जन्म स० १९६०मे हुआ । आपकी कविताओ में भी दु ख और निराशा के दर्शन होते है, किंतु आप दु ख मे भी सुख और शान्ति की रेखा देखते है । जीवन की निराशाओ और उपेक्षाओ से ऊब कर तो भागना आपने सीखा ही नही है । आप न तो थक जाना जानते है और न छक जाना—

लेकर अनूप तृष्णा को,
आया हू मै दीवाना ।
सीखा ही नही यहा है,
थक जाना या छक जाना ।।

जीवन की परिस्थितियो ने अब वर्माजी को प्रगतिवादी बना दिया है । आप के 'मानव' नामक काव्य-सग्रह मे साम्यवादी विचार पाये जाते है । आपने

अपनी 'भैसा-गाडी' कविता मे समाज का वैषम्य बडे तीखे शब्दो मे दर्शाया है—

जिसमे मानवता की दानवता फैलाए है निज राजपाट,
साहूकारो के परदे मे है, जहा चोर और गिरह-काट ।
है अभिशापो से लदा जहा पशुता का कलुषित ठाठ-बाट ।
उसमे चादी के टुकडो के बदले मे लुटता है अनाज,
उन चादी के ही टुकडो से ही चलता है सब राज-काज ।

हरिवंशराय 'बच्चन'—आपका जन्म स० १९६४ मे हुआ है । आप प्रयाग विश्वविद्यालय के एम० ए० है । बच्चन जी उमरखैयाम की रूबाइयो के आधार पर हालावाद की धारा लेकर हिंदी मे प्रविष्ट हुए । आपकी 'मधु-शाला', 'मधुकलश','मधुबाला' आदि पुस्तको मे जीवन सुखी बनाने की प्रवृत्ति और ससार के दु ख-सुख भूलकर विस्मृत हो जाने की भावनाएँ पाई जाती हैं । बच्चन जी जीवन की वास्तविकता और मधुरता के बहुत निकट है और जीवन-रस को वह पी डालना चाहते हैं ।

किंतु उनके जीवन की अतृप्ति न बुझी और उन्हे निराशा और वेदना की ओर आना पडा । 'एकान्त सगीत' और 'निशा-निमत्रण' आदि मे भी कवि निराशावादी के रूप में आया है—

गान हो जब गूजने को,
विश्व मे क्रन्दन करूं मैं ।
हो चमकने को सुरभि जब,
विश्व मे आहे भरू मैं ।।

इधर बच्चनजी फिर जीवन की ओर अग्रसर हो रहे है । उनमे आशा का सचार हुआ है और वह नवजीवन का निर्माण करना चाहते हैं—

वर्ष नव
हर्ष नव
जीवन उत्कर्ष नव

नव उमग
नव तरग
जीवन का नव प्रसग
नवल चाह
नवल राह
जीवन का नव प्रवाह
गीत नवल
प्रीत नवल
जीवन की रीति नवल
जीवन की जीत नवल

आपकी नवीन कविताएँ', 'सतरगिनी', 'हलाहल', 'मिलन-यामिनी' और 'प्रणय पत्रिका' आदि मे सग्रहीत हैं।

श्री जनार्दन झा 'द्विज'––ये एक उत्कृष्ट कवि, कहानीकार और सुलेखक है। इनकी रचनाओ में प्रगतिवाद, यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय है। 'किसलय,' 'मृदुदल', 'मालिका', 'मधुमयी', 'अनुभूति', 'अजध्वनि', 'प्रेमचन्द की उपन्यासकला', आदि इनकी रचनाएँ है।

श्रीनाथसिह––ये 'सरस्वती' और 'हल'का वर्षों तक सम्पादन करते रहे है। श्रीनाथसिंह जी एक श्रेष्ठ उपन्यासकार, समालोचक, सुकवि और सम्पादक आदि सभी कुछ है। प्रत्येक क्षेत्र मे आपने अपनी मौलिक सूझ-बूझ व प्रतिभा का परिचय दिया है। 'प्रजामण्डल', 'जागरण', 'उलझन', 'एकाकिनी' 'स्त्री-दर्पण, एक और अनेक आदि इनकी रचनाएँ है।

आरसीप्रसादसिह––इनका जन्म स० १९६८ मे बिहार के दरभगा जिले मे हुआ। ये सुप्रसिद्ध कवि और कहानीकार हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। 'सचयिता', 'कलेजे के टुकडे' 'आरसी', 'कलापी', 'नई दिशा', 'आजकल' 'पाचजन्य', 'जीवन और यौवन' और 'चन्दामामा' नामक कविता-सग्रहो मे अनेक भावो की विविध व्यजनाओ से युक्त विभिन्न शैलियो की रचनाएँ सुन्दर बन पडी है। इनकी श्रृगारिक रचनाएँ भी उत्कृष्ट है।

इनके अतिरिक्त 'पच-पल्लव', 'खोटा सिक्का' कालरात्रि, एक प्याला चाय, आधी के पत्ते आदि अनेक कविताएँ एव कहानी सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके खड-काव्य भी सुन्दर बन पडे है। 'ताण्डव' शीर्षक कविता की कुछ पक्तिया देखिए—

अर्द्ध-सन्ध्या के धूमाच्छन्न, व्योम-प्रान्तर मे आत्म-विभोर;
रक्त-रजित, तम-व्यजित, तोम घनो के अन्तराल मे घोर;
कौन तुम उतर आज चुपचाप, नृत्य करते हो बन अभिशाप?
काल का कोप, तरणि का ताप!'

'खिसकती धरा शून्य की ओर, असह हो रहा पदो का भार!
देख शूली का विप्लव-नृत्य कराहे आज भीरु ससार!
जरा-तद्रिल वसुधा को बोर बालियो की झंकार कठोर,
मिला देती भू-नभ के छोर!

इनकी कोमलकान्त पदावली माधुर्यपूर्ण होती है। आपकी रचनाओ में जीवन का सौंदर्य और उल्लास मुखरित होता है। प्रम की पिपासा, जीवन की बाधाओ को नही देखती, सुख-दु ख, आशा-निराशा, वियोग-सयोग सभी को पार करती चलती है।

पत्थर है ऊचे टीले है,
प्रेमी बढते जाते है!
पर्वत हो या नदी सामने,
धुन मे चढते जाते है!

और फिर प्रेमी को मृत्यु अथवा प्रलय का डर ही क्या? इनकी आशका प्रम के मार्ग मे बाधा नही डाल सकती।

जाना है जब निश्चय जग से,
फल क्या रोकर जाने से।
रोना पाप यहा क्या होता,
अश्रु नीर बरसाने से?

हसते-हसते कभी मिटूगा,
प्रिये प्रणय का गान करो !
आओ आज भुला दो दुख को,
यही स्वर्ग निर्माण करो ।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—इनका जन्म स० १९६७ मे जालधर मे हुआ । 'अश्क' जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है । कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, एकाङ्की, रेखाचित्र, सस्मरण आदि साहित्य की सभी विधाओ पर आपकी लेखनी सफलता-पूर्वक चली है । इनकी पत्नी श्रीमती कौशल्या 'अश्क' भी अच्छी लेखिका है । श्री उपेन्द्रनाथ अश्क की २५ के लगभग पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है । जिनम से निम्नलिखित पर्याप्त लोकप्रिय हो चुकी है । पिंजडा, दो धारा, काले साहब आदि कहानी सग्रह । जय पराजय, स्वर्ग की झलक, कैद और उडान आदि नाटक । आदिमार्ग मे इनके चार नाटको का सग्रह किया गया है । सितारो के खेल और गिरती दीवारे इनके सुन्दर उपन्यास हैं । चादनी रात और अजगर 'अश्क' का नया काव्य है । 'गर्म राख' नामक नवीन उपन्यास भी अच्छा बन पडा है । जादूगरनी आदि इनकी कविताओ के सग्रह भी सुन्दर बन पडे है । 'अश्क' जी की कविताएँ प्रधानतया भाववादी और प्रगतिवादी इन दो रूपो में मिलती है । भावना-प्रधान कविताओ मे निराशा की मात्रा अधिक है । प्रगतिवादी कविताओ मे 'दीप जलेगा' शीर्षक कविता खूब प्रसिद्ध हुई । इस मे मानवता के अन्तिम विजय के चिह्न है । 'अश्क' की शैली परिष्कृत और भाषा प्रवाहयुक्त है । इनकी एक कविता देखिए—

किस स्नेह-परस ने छेड दिया
निष्प्राण पडी सी वीणा को
चिर-श्रात,थकित,चिर-मौन और,
चिर-एकाकिनी,चिर-क्षीणा को !
जिस के ढीले से मौन तार झंकृत हो गाना भूल गये,
मन को, मस्तक को, नस-नस को, पल मे सिहराना भूल गये ।
जिसका मन, शिथिल पडे जिसकी वाणी पर थे चुप के ताले ।
जिस के तन पर अगनित जाले,दुख की मकडी ने बुन डाले ।

किस स्नेह-परस ने छेड दिया? सब तार झने, झकार उठी !
ज्यो अधकार मे रजनी के, हो ज्योत्स्ना की दीवार उठी ?
किस स्नेह-परस ने छेड दिया, गानो के सागर फूट पडे ,
सगीत भरे नभ से तारे, तानो के अगनित टूट पडे !

सोहनलाल द्विवेदी——आप राष्ट्रीय कवि है। आपने गाधीजी के सम्बन्ध मे भी कुछ कविताएँ लिखी है। यह सौभाग्य का विषय है कि हिंदी-जगत् ने आपको राष्ट्रीय कवि की उपाधि दी है। भैरवी और वासवदत्ता, कुणाल, विषपान, गाँधी अभिनन्दन ग्रथ (सम्पादित), युगाधार, वासन्ती, चित्रा, सेवाग्राम, पूजागीत, प्रभाती आदि आपकी रचनाएँ है। आपकी कविता सीधी-सादी होती है। नमूना देखिए——

न हाथ एक शस्त्र हो,
न हाय एक अस्त्र हो।
न अन्न वीर वस्त्र हो,
हटो नही, हटो नही !

श्री अज्ञेय—आपका पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। अज्ञेय की काव्य-रचना का आरम्भ छायावाद की परिणतावस्था मे हुआ। परिणामत उसमे तत्कालीन प्रवृत्तियो का अन्तर्योग होना आवश्यक है। छायावादी कवियों और विचारको के समान ही आप भी अध्यात्मोन्मुख है। जिस प्रकार छायावादी कवियो मे एक प्रकार की रहस्यशीलता और रहस्यप्रियता पाई जाती है, उसी प्रकार की अज्ञेय मे पाई जाती है। अन्तर केवल इतना है कि छायावादी अपने आपको किसी शक्ति-विशेष का आश्रित समझता है और अज्ञेय सतर्क क्षणो मे ऐसा नही समझते। सम्भवत भौतिकवादी होने के कारण अज्ञेय की ऐसी अवस्था है। अज्ञेय की कविताओ मे विरोधात्मक एकोन्मुखता पाई जाती है। अज्ञेय की यह एकोन्मुखता समाज-निष्कर्ष और मन सत्य पर आधारित है। वे भावविमुग्ध होकर समर्पण नही करते, वरन् तटस्थ होकर तत्त्वान्वेषण करते है। फलत उन्हे हम बुद्धिवादी कह सकते है।

आजीवन चलता रहा प्रेम के साथ-साथ
निष्ठापूर्वक लगा रहा देह क पीछे।

या श्रेय भावना से ऊपर रहने का इच्छुक
ज्ञापित हो, है अज्ञेय धरा के नीचे ।।

जहा उनकी कविता मे बुद्धितत्त्व अधिक नही होता, वहा उनकी पदावली सरस और रमणीय हो उठती है—

मेरी थकी हुई आँखो को,
किसी ओर तो ज्योति दिखा दो ।
कुज्झाटिका के किसी रध्र से
ही लघु रूप किरण चमका दो ।
अनचीती ही रहे बासुरी
सास फूक दो चाहे उन्मन ।
मेरे सूखे प्राण-दीप मे ।
एक बूद तो रस बरसा दो ।

'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्' और 'हरी घास पर क्षण भर' आपके प्रमुख काव्य-सग्रह है ।

हंसकुमार तिवारी—इनकी कविताओ मे प्रेम और वियोग दोनो के दर्शन होते है। । इनका स्वदेश-प्रेम भी उच्चकोटि का है । कभी-कभी जग की उपेक्षा से ये निराश भी हो जाते है, किंतु कर्त्तव्य फिर आशा बधा देता है । आपकी भाषा सरल और सरस होती है और कविता हृदयग्राही । 'अनागत', 'रिमझिम' और 'सचयन' नामक काव्य-सग्रह प्रकाशित है ।

चादनी चाद से दूर है,
चाद से दूर है चादनी ।
चाद फूला कमल-सा गगन मे,
चादनी लुट रही है भुवन मे,
फूल से गध बाहर बिलखती,
दूर है मेघ से दामिनी ।

बन्ध मे बन्ध जीवन पडा है,
भाव पर खोल ऊपर उडा है,
प्राण से गगन रोता विलग हो,
दूर है वीणा से रागिनी !

जानकीवल्लभ शास्त्री—इन की कविताएँ ऊँची श्रेणी की होती है। आपकी भाषा सस्कृत-गर्भित होती हुई भी क्लिष्ट नही होती । आपकी कविताओ मे कवित्त्व भी होता है और स्वाभाविकता भी । आपकी कविता मीठे स्वरो में क्राति का राग अलापती है। इनकी कविताओ का 'रूप और अरूप' नामक सग्रह छपा है। एक कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

विपचि—वेणु-नाद से प्रणीत गीत ये रहे !
दिगन्त-दन्ति कर्ण मे न वर्ण ये चुभे कभी,
निरभ्र अभ्र मे भ्रमे प्रभा प्रभाव से सभी,
रुके नही, भ्रुवे नही, जभी अभीत ये रहे !
निशात शात कुम्भ से कुम्भ से किरण लहर रही!
सुधा-सुधाशु की अशोक-लोक से छहर रही!
अनादि औ अनन्त के वसन्त शीत ये रहे !

कमल साहित्यालंकार—इनकी रचनाओ मे सौन्दर्यानुभूति के साथ-साथ तीव्र-सवेदना और राष्ट्रीय-भावना की झलक है। भारत-विभाजन से पूर्व कमलजी क्वेटा (बलूचिस्तान) मे हिन्दी की सेवा करते रहे, ऑल इडिया रेडियो दिल्ली मे अनेको वर्ष टिकने के बाद आजकल विधान-भवन, लखनऊ में डिस्ट्रिक्ट इन्फार्मेशन ऑफिसर के पद पर आसीन है। इनकी प्रमुख रचनाएँ है—'कलाकार' उपन्यास, 'सुहाग-कामना' निबन्ध और काव्य-सग्रह, 'क्रान्ति-दीप' और 'सगिनी' काव्य-सग्रह । इनकी एक रचना का अश देखिए—

रत्न-प्रसूजय, वीर भोग्य जय
वसुन्धरा हे चिरकल्याणी

जल-थल-वन-गिरि-नभ मे गूजे,
कोटि-कोटि कठो की वाणी।
चिर सशक्त, चिर मगलकर हो,
प्रजातन्त्र का नव-विधान,
जयति-जयति-जय भारत महान।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'—हिंदी के एक भावुक और प्रतिभाशाली कवि हैं। 'मल्लिका' आपके आरम्भिक गीतो का सग्रह है। 'मल्लिका' के गीतों मे प्रेम की पीडा, कसक, वेदना सभी कुछ है। इसमे कवि की भाव-सत्ता एक साधना-प्रधान व्यक्तित्व की सूचक है। 'मल्लिका' का कवि निराशामय परिस्थिति में भी स्वात्मदर्शी बना रहता है। 'कारा' इनका एक खड-काव्य है, जिसमे 'बन्दी के गान' भी इनका कविताओ का सग्रह है।

है घोर निराशा अमा खडी, आखो से बरबस लगी झडी।
जीवन का लघु दीपक सहसा, सहता है जग का एक प्रहार।
मेरे मानस के मधुर प्यार!

बालमुकुन्द मिश्र—ये प्यार और प्रगति के सुकुमार-सौदर्यवादी कवि हैं। सर्वोदय की भावना को प्रश्रय देना भी इन्हे रुचिकर है। काव्य और सगीत का सम्मिश्रण इनकी रचनाओ की विशेषता है। एक गीत देखिए—

अधरो पै मुस्कान बसा लो!
पीड़ा हल्की हो जायेगी, विकल वेदना खो जायेगी,
मानो भी अपने अन्तर् मे—एक नया ससार बसा लो!
मेरा जीवन सतत रगीला, स्वस्थ साधनापूर्ण छबीला,
मेरी बगिया के फूलो से—अपना सुन्दर रूप सजा लो!
नही वेदना मेरी सहचर, निर्मल जीवन राह उजागर,
आओ, सग चलो तुम मेरे—अपनी जीवन-ज्योति जगा लो!

गांगेय नरोत्तम शास्त्री—आपका जन्म स० १९५० में हुआ, आप प्राचीन परिपाटी के भावुक कलाकार है, गागेय दोहावली, गीतगुच्छक, मालिनी मन्दिर, फूलो की दुनिया आदि इनकी बहुत-सी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

भगवद्दत्त शिशु—ये श्री वियोगीहरि जी के ज्येष्ठ दत्तक सुपुत्र है। शान्त और निर्वेद-रस इनकी रचनाओ मे बिखरा पडा है। 'ओजस्विनी', 'रस-गागरा' आदि सग्रह प्रकाश मे आये है।

सत्यदेव शर्मा—इनका जन्म १९६९ मे हुआ। प्रारभ में अग्रेज़ी कविताओ का हिन्दी मे अनुवाद किया। भारत-भारती से प्रभावित होकर छद लिखे और फिर 'खडहर' कविता १९४५ में लाहौर रेडियो से पढ़ी। आजकल दिल्ली रेडियो से सुन्दर गीत पढते है।

गोपालप्रसाद व्यास—ये एक अच्छे हास्य-व्यग्य लेखक ह। इनकी चलते विषयो पर लिखी गई रचनाएँ जनता को बहुत ही भाती हैं। सीधी-सादी सरल भाषा मे स्वाभाविक भाव प्रकट करते हैं। नया रोजगार, उनका पाकिस्तान, अजी सुनो आदि उनकी हास्य रस की सुन्दर रचनाएँ है।

श्री चिरंजीत—अमृतसर के निवासी है और आजकल ऑल इडिया रेडियो दिल्ली में कार्य करते है। चिरजीत के गीतो का सग्रह 'चिलमन' नाम से प्रकाश में आया है। ये अपने गीतो मे एक नवीन शैली का प्रयोग करते है।

ईशकुमार—इनकी रचनाओ मे प्राकृतिक यौवन की सुघड़ मुस्कान बजाती हुई उतरती हैं।

नगीनचन्द्र 'प्रदीप'—ये एक अच्छे भावुक कलाकार है। विविध गीतो के अतिरिक्त एकाकी नाटक भी इनके सुन्दर बन पडे है। 'जीवन वीणा' काव्य-सग्रह और 'कामना' तथा 'माडवी' नामक एकाकी इनकी कलापूर्ण रचनाएँ है।

श्री शेष—इनकी कविताएँ 'उन्मीलिका' मे सगृहीत है, जिनमें गीत, गजल रूबाइया आदि सभी कुछ है। 'शेष' जी की कविताएँ शृगार और प्रेम-सम्बन्धी होती है। इनकी विशेषता यही है कि इन्होने उर्दू बहर मे हिंदी की पद्य-रचना को प्रश्रय दिया है। इधर कुछ नये ढग की रचनाएँ लिखी है।

नवोदित कवयित्रियाँ

काव्य-क्षेत्र मे पुरुषो की भाँति स्त्रियो ने भी पर्याप्त भाग लिया है, स्वर्गीय श्री सुभद्राकुमारी चौहान, श्री होमवती, रामेश्वरी देवी 'चकोरी' और महादेवी वर्मा आदि के अतिरिक्त इस युग की निम्न श्रेष्ठ कवयित्रियाँ भी प्रकाश में आई है।

विद्यावती 'कोकिल'—आपका जन्म वि० स० १९७१ मे हुआ। आप एक सफल कवयित्री, सम्पादिका व अध्यापिका है। 'अकुरिता' और 'मा' नामक इनकी रचनाएँ सुन्दर है।

तारा पांडे—आप मृदुल कवयित्री है, जिनके भाव अति कोमल होते हैं। उनके गीतो मे जीवन का हास्य, रुदन, सुख और दु ख—मन की भावनाओं का उभार अच्छी प्रकार से उभरा है। 'शुक-पिक' और 'अतरगिणी' आपके काव्य-सग्रह है। एक रचना देखिए—

मेरी तो अति करुण कहानी
जीवन मे जब तुमको पाया
स्वप्नो का ससार सजाया
मैं समझी बन गई तुम्हारे उर-मन्दिर की रानी
कण - कण मे सूनापन पाया
मुझको कोई समझ न पाया
चुपके व्यथित हृदय को करने देती हूँ मनमानी

दिनेशनन्दिनी डालमिया—इनका जन्म स० १९७५ मे हुआ। ये सेठ रामकृष्ण डालमिया की जीवन-सगिनी है। आप एक श्रेष्ठ गद्य-गीतकार, और उत्कृष्ट कवयित्री है। 'शबनम', 'मौक्तिकमाल', 'शारदीय', 'उन्मन', 'स्पन्दन', 'सारग' और 'अज्ञात शिशु के प्रति' इनकी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। एक रचना का अश देखिए—

सुख स्वप्न से डरती हूँ,
दुख की छाया से अभिभूत।

मै अपने ही पथ जाऊगी,
देव पधारे या यमदूत।
आत्मसात् मानव से करके,
भी पाषाणों का अभिषेक।
सुधा गरल के बीच इसी से,
खीची मैंने रक्तिम रेख।

श्री निर्मला माथुर—उत्तर भारत की प्रसिद्ध कवयित्री, लेखिका, चित्रकार और मूर्ति-निर्मात्री हैं। 'स्वतत्र' झासी के 'महिला-ससार' की सम्पादिका रह चुकी है। 'अष्टदल' 'पद-चिह्न' 'चुनी हुई कलिया' और साहित्य-सुमन' मे आपकी कृतियाँ सग्रहीत हुई है। 'नीरजा' और 'सिंदूर'कहानियो पर प्रसाद-परिषद् काशी की ओर से आपको पुरस्कार मिला। आजकल अपनी रचनाओ मे आप नये रुझानो को विकसित कर साहित्य मे नई बात कहने की चेष्टा में संलग्न हैं। एक कविता देखिए—

आओ, मन्दिर मे चले,
लो, सज चुकी है आरती!

स्वर्गश्री भू को मिली है,
मुक्ति की बेला खिली है,

अब न सोओ, नयन खोलो, गा रही है भारती
आओ, मन्दिर मे चले, लो, सज चुकी है आरती

ज्योति मानस की जगा कर,
ध्यान चरणो मे लगा कर,

बढ चले, करने समर्पण, शंख ध्वनि गुंजारती
आओ, मन्दिर में चलें, लो, सज चुकी है आरती

गीत का क्रम चल रहा है,
समय पल पल ढल रहा है,
काल-क्रम की शृंखला मे बद्ध सृष्टि निहारती
आओ, मन्दिर मे चले, लो, सज चुकी है आरती

शान्ति सिहल—इनका जन्म स० १९७८ मे हुआ, ये भी नई पीढी की भावुक कवयित्री हैं। इनके 'बिखरे सुमन' और 'उर्मि माला' कविता-सग्रह प्रकाशित हो चुके है। कुछ पक्तियाँ यहाँ उद्धृत है—

सैंकडों पाषाण मे एक तू पाषाण ही था।
मै न होती भावना तो तू कहाँ भगवान होता॥
आदि युग के विवशता के गीत क्यो मानव सुनाता,
एक इस चिर सत्य को वह क्यो समझ अबतक न पाता,
देवता का भी मनुज के करो से निर्माण होता,
मै न होती भावना तो तू कहाँ भगवान होता।

श्रीमती शकुन्तला माथुर—आपका जन्म स० १९७८ मे हुआ। आपने हिन्दी मे 'नये-प्रयोग' किये है। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ मे कविताएँ प्रकाशित होती रहती है, और अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' सग्रह मे आपकी कुछ कविताएँ सग्रहीत हुई है। आपके पति श्री गिरिजाकुमार माथुर भी हिन्दी के प्रसिद्ध कलाकार है। आपकी एक प्रयोगवादी रचना देखिए—

हौले - हौले की पद - चाप
दबी पवन के साथ सुनायी पडती
तन्द्रिल अलकों का अटकाव
सुलझना फिर-फिर साफ सुनाई पडता
चुप सोयी इस नयी चमेली के नीचे
नूपुर किस के मन्द लजीले बज उठते हैं
इतनी रात गये।

गहरी खुशबू केसर की
बढी हुई मेहदी के नीचे फैल रही है
पीला पडकर सूरज नीचे उतर रहा है
या सहमा-सा चॉद उतर कर
उलझ गया है
फूलो के झुरमुट मे ।

शान्ति एम० ए०—अल्प समय मे ही इन्होने स्त्री-कलाकारो मे अपना स्थान बना लिया है । 'रेखा' और 'पच प्रदीप' नाम से आपके सग्रह छपे है । कुछ पक्तियॉ देखिए—

मेरे दुर्बल मन को यदि तुम प्यार न लोगे प्यार न दोगे,
तो सागर सा सूना व्यापक अन्तराल प्यासा भटकेगा ।
मेघदूत का यक्ष पतन के गिरि पर आकर के भटकेगा ।
मुक्त दिशाएँ अपनी बाहे फैलाकर उसको पकडेगी ।
उसे ग्रास कर लेने के हित भू का स्वर्णिम हृदय फटेगा ।
आकर्षण नीचे खीचेगा वायु उसे ऊपर फैकेगी ।
तुम अपने पावन चरणो का यदि उसे आधार न दोगे ।

सुमित्राकुमारी सिन्हा—इनका जन्म स० १९७२ मे हुआ । अचल सुहाग, वर्षगाठ, आशा पर्व विहाग और पन्थिनी आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है । इनकी कुछ पक्तियाँ ये है —

स्पर्श अन्तिम श्वास का दे भोर का जीवन जगाने ।
दीप मेरा जल रहा है ज्योति का दिनमान लाने ।
जागरण के दूत ने गति का चिरतन रथ सभाला ।
पथ उज्ज्वल हो तुम्हारा मै जलाती दीपमाला ।

इन प्रसिद्ध कवयित्रियो के अतिरिक्त रामेश्वरी शर्मा, चन्द्रमुखी ओझा, कुसुम कुमारी सिन्हा, उर्मिलावार्ष्णेय, शैल रस्तोगी, शान्ता राठी और सावित्री रस्तोगी आदि कवयित्रियॉ भी साहित्य में अपना स्थान निर्माण कर रही है ।

कुछ नवीन महाकाव्यकार

प्रचार-युग और सुकुमार-युग के अनेक कवियो ने सुन्दर महाकाव्यो की रचना की, जिनका उल्लेख यथास्थान हो चुका है अब यहाँ कुछ नवीन महाकाव्यो का विवरण दिया जाता है।

पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र—आपका जन्म स० १९५८ में हुआ। 'कृष्णायन' के द्वारा मिश्रजी ने भगवान् कृष्ण के पुनीत प्राचीन चरित्र को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसकी कथा मे लेखक ने अपने चरितनायक के जीवन का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करके कुछ उचित परिवर्तन किये है, जिन से आधुनिक युग के अनुकूल बुद्धिवाद की सतुष्टि हो जाती है। जैसे प्राचीन परम्परा के अनुसार जयद्रथ का वध छल के द्वारा कराया जाता है, किंतु कृष्णायन के लेखक ने छल के इस प्रसग को अनुचित समझ कर योद्धाओ के रण-कौशल की अपूर्व अवतारणा द्वारा जयद्रथ-वध भी सम्पन्न कराया है और अर्जुन के गौरव की रक्षा भी की है। काव्य के अन्य स्थलो मे भी इसी प्रकार के परिवर्तन किये गये है।

कृष्णायन मे हमे एक महापुरुष के उत्कृष्टतम चरित्र के साथ-साथ काव्य के सुन्दर स्थलो की झाकी भी मिलती है। मिश्रजी की शैली भी सहानुभूति जाग्रत करने वाली है। अनेक रस और भाव पारस्परिक सामजस्य के साथ हमारे हृदय में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पन्दन उत्पन्न करके प्रकट होते और विलीन हो जाते है। युद्ध के भयानक दृश्यो के पश्चात् कवि ने आकर्षक प्राकृतिक दृश्य अथवा कुछ करुण एव शात भाव के दृश्य उपस्थित किये है, जिस से हमारे क्षुब्ध हृदय को विश्राम प्राप्त होता है।

कृष्णायन के कवि पर राष्ट्रीयता की भी छाप है। कई स्थलो पर उन्होंने स्वतन्त्रता की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है—

> प्रिय स्वतत्रता क्लेश जेहि, तेहि पै वारहु प्राण।
> द्रिय दासता विभूति जेहि, सुतहु सो गरल समान॥

इसी प्रकार मातृ-भूमि का स्वरूप कितनी भावनापूर्ण पक्तियो में कवि उपस्थित करता है—

मुकुट मनोहर हिम-गिरि शोभत ।
आनन सप्त-सिन्धु मन मोहत ।।
मध्य देश जनु हृदय-विशाला ।
कटि तट मनहुँ विध्य गिरि माला ।

कृष्णायन के लिए कवि के सम्मुख रामचरितमानस का आदर्श था । मानस के समान ही 'कृष्णायन' मे सात काण्ड है, दोहा, चौपाई, और सोरठा छन्दो का प्रयोग है, ब्रज-अवधी-मिश्रित भाषा है, लम्बे-लम्बे रूपक है, वनस्थली और पार्वत्य प्रदेश के मनोहारी चित्र है और कथानक के क्रम-विकास मे भक्ति-भाव का अपूर्व केन्द्र-बिन्दु है ।

बलदेवप्रसाद मिश्र—आपका जन्म सवत् १९५५ म हुआ । शकर दिग्विजय, तुलसी दर्शन, जीवन सगीत आदि आपकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं । इनके 'साकेत-सत' मे भरत और माण्डवी के जीवन से सम्बन्धित कथा है । 'साकेत-सत' का निर्माण एक विशुद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य के ढग पर हुआ है, जिसमे लेखक ने अपनी कलाचातुरी के द्वारा पूरी सामयिकता ला दी है । यद्यपि इस महाकाव्य का कथानक रामायणकालीन है, तथापि इसमे विवेचित भ्रातृ-प्रेम, राजधर्म एव आदर्श पर मर मिटने की अटल साध आदि विषय आधुनिक एव सामयिक हो गये है, जिससे इसकी रोचकता और उपादेयता भी बढ गई है ।

श्री मैथिलीशरणगुप्त ने 'साकेत' द्वारा जहा 'लक्ष्मण' और 'उर्मिला' को अमर कर दिया है, वहा डा० बलदेव मिश्रने 'साकेत-सन्त' मे भरत और उनकी सहधर्मिणी माडवी का चरित्र-चित्रण करके हिन्दी महाकाव्य के एक अभाव की पूर्ति की है । 'साकेत-सन्त' मे जीवन के सभी अगो का स्पर्श किया गया है । राजधर्म एव समाज-धर्म का भी चित्रण किया गया है ।

भरत का हिंसा में विश्वास नही है, वे निरीह हत्या नही करना चाहते, तभी तो उन्होने अपने मामा से शिकार खेलने के लिए जाने से इन्कार कर दिया ।
इसी प्रकार भरत एक जगह शोषण-नीति की निन्दा करते हुए कहते है—

निर्धन की कुटिया ढाकर,
जो अपना महल बनाते ।

आहो की फूँकों से ही,
वे एक दिवस ढह जाते ।।

कैकयी का चरित्र 'साकेत' मे द्रवित होकर जबसे पवित्र बना है, तब से हिन्दी-कवियो का मानस उस हृदय-द्रव से सिक्त होता आया है। साकेत-सन्त मे भी कवि ने कैकयी के इस पवित्र स्वरूप की इस प्रकार अभिव्यजना की है—

अपनी ऊष्मा मे आप जली जाती थी।
स्थिर थी पर, फिर भी बही चली जाती थी ।।

'साकेत-सन्त' की रचना पूर्ण सामयिक आवरण से आवृत्त है। भाषा, सारल्य एव कल्पना-प्रवणता की दृष्टि से भी यह महाकाव्य सुन्दर बन पडा है। यत्र-तत्र छन्दो की त्रुटिया खटकने वाली अवश्य हैं।

विष्णुदत्त तिरंगी—ये हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक व पत्रकार है। इनकी नवीनतम रचना 'जयकाश्मीर' सुन्दर महाकाव्य है। इसकी प्रस्तावना भारतीय सेना के कमाडर-इन-चीफ जनरल के० एम० करिअप्पा ने लिखी है। ग्रन्थ पौरुष पराक्रम के जयघोष से ध्वनित हुआ है।

रघवीरशरण मित्र—इनका जन्म स० १९७७ मे हुआ। इनका 'जननायक' महाकाव्य बापू के जीवन को लेकर लिखा गया है।

रामचन्द्र शर्मा 'वीर'—'विजय-पताका' 'वीरवाणी' आदि आपके अनेको ग्रथ प्रकाशित हुए है। वीरजी की सब से प्रसिद्ध रचना जो लगभग एक सहस्र पृष्ठो मे समाप्त हुई है—'वीर रामायण महाकाव्य' है, जिसमे भगवान् राम का चरित्र एक नवीन दृष्टि से रक्खा गया है।

इनके अतिरिक्त दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' और मोहनलाल महतो का 'आर्यावर्त' तथा अनूपशर्मा का 'वर्धमान' भी उल्लेखनीय महाकाव्य प्रकाशित हुए है।

सिनेमा और हिन्दी-गीत

सिनेमा ने जहा हमारे हिन्दी-गीतो के प्रसार और प्रचार मे योग दिया है, वहा हिन्दी गीतो ने फिल्मो की दशा भी पलटी है। फिल्मी ससार मे पहले गजलो

और कव्वालियो का ही राज्य था किन्तु जबसे कुछ हिन्दी कवियो ने सिनेमा-ससार को अपना योग देना आरम्भ किया, तब से फिल्मी गानो की दशा पलट गई। नई-नई फिल्मो में हमे हिन्दी के भावपूर्ण मनोरम गीत सुनने को मिलने लगे। सिनेमा-ससार मे सबसे पहले हिन्दी के कवि प्रदीप ने प्रवेश किया। देखते-ही-देखते उनके गीत जनता की जिह्वा पर आ गये। उन्होने कई सफल चित्र जनता के सामने प्रस्तुत किये। इन चित्रो के गीत बहुत लोकप्रिय हुए। वास्तव मे प्रदीप ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी के गीत गजलो और कव्वालियो से सफलता की अधिक शक्ति रखते हैं।

इसके पश्चात् फिल्मो के लब्धप्रतिष्ठ कवि नरेन्द्र एम० ए० और गोपालसिंह नेपाली ने प्रदीप के मार्ग को प्रशस्त किया। फिल्म-ससार की भीषण वस्तुस्थिति को देखकर ये कलाकार भयभीत नही हुए प्रत्युत इन्होने सामने आनेवाली विषम परिस्थितियो का साहस के साथ सामना किया और फिल्म-ससार मे हिन्दी-गीतो का महत्त्व प्रतिष्ठित करके दिखा दिया।

नेपाली और नरेन्द्र के पश्चात् मोती बी० ए० के गीतो ने भी धूम मचा दी।

श्री सन्तोषी के गीत भी इस क्षेत्र मे काफी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। 'बसन्त' चित्र मे उन्होने हिन्दी मे बडे सुन्दर एव मधुर गीत दिये जो कि काव्य से लबालब भरे हुए थे।

इनके अतिरिक्त श्री हरिकृष्ण प्रेमी, भरत व्यास, दीपक और व्रजेन्द्र गौड प्रभृति गीतिकार भी हिन्दी-गीतो से फिल्म-ससार की दशा पलटने मे तत्पर हैं। ये हिन्दी के कलाकार बहुत सोच-समझकर आगे बढ रहे हैं। इनकी आशातीत सफलता से हमे विश्वास होता है कि फिल्मी-ससार मे आनेवाला मोर्चा हिन्दी के गीतो का होगा—सस्कृति और कला का होगा। इनके द्वारा फिल्म-जगत् मे एक ऐसा युग आयगा, जिसमे अश्लीलता, उच्छृखलता और अनैतिकता का कोई स्थान न होगा। वह ऐसा युग होगा, जो हमारे राष्ट्र को नैतिकता के पवित्र मार्ग की ओर ले जायगा।

अभ्यास

१ रहस्यवाद की परिभाषा लिखकर स्पष्ट कर कि इसके प्रमुख कवि कौन-कौन-से है।

२ छायावाद का स्वरूप समझाते हुए इसके प्रतिनिधि-कवि और उनकी रचनाओ का समालोचनात्मक परिचय दे।

३ श्री जयशकरप्रसाद का जीवन-परिचय लिखकर उनकी साहित्य-सेवाओ पर प्रकाश डाले।

४ छायावाद और रहस्यवाद-सम्बन्धी रचनाएँ किन परिस्थितियो मे प्रकट हुईं ? भाषा, विषय और शैली की दृष्टि से इन रचनाओ का अन्य रचनाओ से अन्तर स्पष्ट करें।

५. श्री उदयशकर भट्ट, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री रामकुमार वर्मा और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की रचनाओ का समालोचनात्मक परिचय दे।

६ पन्त, निराला और महादेवी वर्मा का जीवन-परिचय लिखकर इनके काव्य की समालोचना करें।

क्रान्तिवादी प्रगति-युग

उन्नीसवाँ अध्याय

क्रातिवादी प्रगति-युग

स० १९९० से साहित्य मे क्रातिवादी प्रगति-युग का प्रारम्भ होता है। सामान्यतया साहित्य सदा प्रगतिशील रहा है। समय-समय पर उसमे प्रवृत्तिया भी लक्षित होती रही है। समाज के दलित और शोषित-वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने की भावनाएँ भी साहित्य मे स्थान पाती रही है। सन्त कबीर से लेकर जयशकर प्रसाद तक के साहित्य मे समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति किसी-न-किसी रूप मे प्रकट होती रही है। अत यौगिक अर्थों मे किसी युग-विशेष को प्रगतियुग का नाम देना समीचीन प्रतीत नही होता परन्तु आजकल यह शब्द हिंदी-साहित्य-क्षेत्र मे कुछ योगरूढ-सा हो गया है। इस काल को 'प्रगतिकाल' कहने की प्रथा-सी चल पडी है, इसलिए हमने भी यह नाम स्वीकार कर लिया।

इस काल मे राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र मे अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ घटी। सर्वप्रथम स० १९९० से ससार मे भयकर मन्दी और बेकारी प्रकट हुई। फलस्वरूप जीवन-निर्वाह कठिन हो गया। भारत मे प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हुई। कुछ ही वर्ष बाद सारा ससार द्वितीय-विश्व-युद्ध की लपटो से घिर गया। युद्ध की समाप्ति के साथ ही बगाल के अकाल मे लाखो मनुष्य काल-कवलित हो गये। अकाल की विभीषिका का अन्त होते-न-होते देश मे भयकर साम्प्रदायिक सघर्ष उठ खडे हुए। महायुद्ध के प्रभाव ने समाज के ढाचे को खोखला कर दिया। व्यापारी-वर्ग, चोर-बाजारी और अधिकारी-वर्ग रिश्वतखोरी मे लीन हो गये। उधर श्रमिक सर्वत्र अपने आधिपत्य के स्वप्न देखने लगे। सन् ४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन के परिणामस्वरूप तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो से बाध्य होकर अग्रेज भारत से विदा होगया पर जाते-जाते वह हिंदू-मुसलमानो को लडा-कर भयकर नर-सहार को कर ही गया, साथ ही भारत भूमि के दो टुकडे भी कर गया। देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् पाकिस्तान ने काश्मीर पर आक्रमण कर दिया और इधर एक धर्मान्ध नवयुवक ने शान्ति के देवता गाधीजी की हत्या कर डाली। उधर चीन पर साम्यवादियो का अधिकार हो गया। आज

भारत सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र प्रजातन्त्र बन गया है और हमारे साहित्य पर इन सब घटनाओ की क्रियाएँ प्रतिक्रियाएँ निम्न दो रूप मे हुई—

(१) साम्यवाद का प्रभाव। (२) गाधीवाद का प्रभाव।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो ने समाज के शोषितवर्ग को विशेष प्रभावित किया। वे पूँजीवाद के विरुद्ध उठ खडे हुए। अन्न-वस्त्र की समस्या न छायावाद-युग मे प्रचलित साहित्य की कल्पनात्मक सुकुमारता, सौदर्य-लिप्सा और वैयक्तिक आनन्दवाद पर दृढ प्रहार किया। सभी नये-पुराने साहित्यिक समालोचक तथा विचारक वर्ग ने यह स्पष्ट अनुभव किया कि छायावाद की अस्पष्ट, सुखद और तद्रिल चेतना समाज का कल्याण नही कर सकती। छायावादी कवि श्रृगार के नाम पर रीतिकालीन कविता को कोसता हुआ भी स्वय प्रेम या विलासिता के नवीन सुकोमल पाशो मे बधता जा रहा है। साहित्य मे व्यक्तित्व की भावनाएँ अपनी सीमा का अतिक्रमण कर चुकी है। सभी 'मै' का रोना रोते है। अपनी कल्पित या वास्तविक पीडाओ से तडप रहे है। लौकिक या अलौकिक प्रियतम या प्रियतमाओ के विरह मे व्याकुल हो रहे है। किसी को भी समाज या राष्ट्र की कोई चिन्ता नही। साहित्यकार समष्टिगत भावनाओ से तटस्थ रहकर अपनी विरह-वेदना और निराशा मे गोते लगा रहा है। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता से पल्ला छुडाकर यह साहित्य-कल्पना के अलौकिक लोक मे जा पहुँचा। इसने दृढ और कठोर भूमि से मानो अपना सारा सम्बन्ध ही विच्छेद कर लिया। प्रत्येक सहृदय को यह स्थिति अखरने लगी थी। साहित्य की ऐसी दशा को देखकर ही समालोचक-प्रवर आचार्य शुक्ल जी को छायावाद की कडी आलोचना करते हुए लिखना पडा था कि—

'छायावाद' के नाम चल पडने का परिणाम यह हुआ कि बहुत-से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तु-विन्यास की विश्रृखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले। शैली की इन विशेषताओ की दूरारूढ साधना मे ही लीन हो जाने के कारण अर्थभूमि के विस्तार की ओर उनकी दृष्टि न रही। विभाव-पक्ष या तो शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह गया। इस प्रकार प्रसरणोन्मुख काव्य-क्षेत्र बहुत कुछ सकुचित हो गया। असीम और अज्ञात प्रियतम के प्रति अत्यन्त चित्रमयी भाषा मे अनेक प्रकार के प्रेमोद्गारो तक ही काव्य की गति-विधि प्राय बन्ध गई। हृत्तत्री की झकार, नीरव सदेश, अभिसार, अनन्त-प्रतीक्षा, प्रियतम का दबे पाँव आना, आँख-मिचौनी, मद मे झूमना,

विभोर होना इत्यादि के साथ-साथ शराब, प्याला, साकी आदि सूफी कवियो के पुराने सामान भी इकट्ठे किये गये । कुछ हेर-फेर के साथ वही बधी पदावली, वेदना का प्रकाड-प्रदर्शन, कुछ विश्रृखलता के साथ प्राय सब कविताओ में मिलने लगा ।

प्रणय-वासना का यह उद्गार आध्यात्मिक पर्दे मे ही छिपा न रह सका, हृदय की सारी काम-वासनाएँ इन्द्रियो के सुख-विलास की मधुर और रमणीय सामग्री के बीच एक बँधी हुई रूढि पर व्यक्त होने लगी । इस प्रकार रहस्यवाद से सम्बन्ध न रखनेवाली कविताएँ भी छायावादी ही कही जाने लगी। अत 'छायावाद' शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्य-शैली के सम्बन्ध मे भी प्रतीकवाद (Symbolism) के अर्थ मे होने लगा ।

छायावाद की इस धारा के आने के साथ-ही-साथ अनेक लेखक नवयुग के प्रति-निधि बनकर योरुप के साहित्य-क्षेत्र मे प्रवर्तित काव्य और कला-सम्बन्धी अनेक नये-पुराने सिद्धात लेकर सामने आने लगे । कुछ दिन 'कलावाद' की धूम रही और कहा जाता रहा—'कला का उद्देश्य कला ही है ।' इस जीवन के साथ काव्य का कोई सम्बन्ध नही, उसकी दुनिया ही और है। किसी काव्य के मूल्य का निर्धारण जीवन की किसी वस्तु के मूल्य के रूप मे नही हो सकता । काव्य तो एक लोकातीत वस्तु है। कवि एक प्रकार का रहस्यदर्शी (Seer) या पैगम्बर है । इसी प्रकार क्रोचे के अभिव्यजनवाद को लेकर बताया गया कि "काव्य मे वस्तु या वर्ण्य विषय कुछ नही, जो कुछ है वह अभिव्यजना के ढग का अनूठापन है ।" इन दोनो वादो के अनुसार काव्य का लक्ष्य उसी प्रकार सौन्दर्य की सृष्टि या योजना कहा गया जिस प्रकार बेल-बूटे या नक्काशी का । कवि-कल्पना प्रत्यक्ष जगत् से अलग एक रमणीय स्वप्न घोषित किया जाने लगा और कवि सौन्दर्य-भावना के मद मे झूमने वाला एक लोकातीत जीव । काव्य की प्रेरणा का सम्बन्ध स्वप्न और काम-वासना से बतानेवाला मत भी इधर-उधर उद्धृत हुआ । साराश यह कि इस प्रकार के अनेक वाद-प्रवाद पत्र-पत्रिकाओ मे निकलते रहे ।

छायावाद की कविता की पहली दौड तो बगभाषा की रहस्यात्मक कविताओ के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। पर उन कविताओ की बहुत कुछ गति-विधि अग्रेज़ी काव्य-खडो के अनुवाद द्वारा सघटित देख अग्रेज़ी काव्यो से परिचित हिंदी कवि सीधे अग्रेज़ी से ही तरह-तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यो-के-त्यो अनुवाद जगह-जगह अपनी रचनाओ मे जडने लगे। 'कनक-प्रभात', 'विचारो में

बच्चो की सास', 'स्वर्ण समय', 'प्रथम मधुबाल', 'तारिकाओ की तान', 'स्वप्निल कान्ति', ऐसे प्रयोग अजायबघर के जानवरो की तरह उनकी रचनाओ के भीतर इधर-उधर मिलने लगे। निराला जी की शैली कुछ अलग रही। उसमे लाक्षणिक वैचित्र्य का उतना आग्रह नही पाया जाता जितना पदावली की तडक-भडक और पूरे वाक्य के वैलक्षण्य मे। केवल भाषा के प्रयोग-वैचित्र्य तक ही बात न रही, ऊपर जिन अनेक योरुपीय वादो और प्रवादो का उल्लेख हुआ है उन सबका प्रभाव भी छायावाद कही जाने वाली वस्तु व कविताओ के स्वरूप पर कुछ-न-कुछ पडता रहा।

कलावाद और अभिव्यजनावाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पडा कि काव्य मे भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतो की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने मे ही प्रवृत्त हुई। प्रकृति के नाना रूप और व्यापार इसी अप्रस्तुत योजना के काम मे लाये गये। सीधे उनके मर्म की ओर हृदय-प्रवृत्ति न दिखाई पडी। पन्त जी अलबत्ता प्रकृति के कमनीय रूपो की ओर कुछ रुक कर हृदय रमाते पाये गये।

दूसरा प्रभाव यह देखने मे आया कि अभिव्यजना-प्रणाली या शैली की विचित्रता ही सब कुछ समझी गई। नाना अर्थ-भूमियो पर काव्य का प्रसार कुछ रुक-सा गया। प्रेम-क्षेत्र (कही आध्यात्मिक कही लौकिक) के भीतर ही कल्पना की चित्र-विधायिनी क्रीडा के साथ प्रकाड-वेदना, औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यजना तथा क्रीडा से दौडी हुई प्रिय के कपोलो पर की ललाई, हाव-भाव, मधुस्राव तथा अश्रुप्रवाह इत्यादि के रगीले वर्णन करके ही अब तक अनेक कवि पूर्ण तृप्त दिखाई देते है। बहुत से नये रसिक प्रस्वेद-गन्धयुक्त चिपचिपाती और भिनभिनाती भाषा को ही सब-कुछ समझने लगे है। लक्षणा-शक्ति के सहारे अभिव्यजना-प्रणाली या काव्य-शैली का अवश्य बहुत अच्छा विकास हुआ है। पर अभी तक कुछ बन्धे हुए शब्दो की रूढि चल रही है। रीतिकाल की शृगारी कविता की भरमार की तो इतनी निन्दा की गई पर वही शृगारी कविता कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान अपनी कुछ अदा बदल कर फिर प्राय सारा काव्य-क्षेत्र छेककर चल रही है।'

प्रगतिवाद

सामान्य विचार-पद्धति मे जिसे साम्यवाद कहते है, वही साहित्यिक रूप ग्रहण करने पर प्रगतिवाद के नाम से पुकारा जाता है। प्रगतिवादियो का सगठन सामान्यत सन् १९३५ मे यूरोप मे तथा सन् १९३६ मे भारत मे हुआ। इसी वर्ष श्री प्रेमचन्दजी के सभापतित्व मे प्रगतिशील लेखको का एक सम्मेलन हुआ। प्रगतिवाद कोई एक अद्‌भुत या जन-सामान्य के लिए गुह्यवाद नही प्रत्युत वह तो साधारण जनता के हृदय की पुकार ही है। आज पूजीपति श्रमिको के शोणित का शोषण कर स्वय सम्पूर्ण सम्पत्ति को हडप लेना चाहता है। फलत परिश्रम करने वाले को अपने श्रम का पूरा फल दिलाने के लिए और प्रत्येक व्यक्ति से पूरा परिश्रम लेने के लिए ही साम्यवाद का प्रचार हुआ है। पिछले १०-१५ वर्षो से साहित्य मे भी यही विचार उत्तरोत्तर प्रमुख पद प्राप्त करते जा रहे है। इससे पूर्व साहित्य छायावाद की छाया मे सुख-स्वप्न देख रहा था। उसमे व्यक्ति की आशा-अभिलाषा, निराशा और वेदना तो अवश्य व्यक्त हो रही थी, किन्तु उस मे समाज के सुख-दु खो को कही स्थान न था। छायावादी रचनाओ ने खडी बोली के अक्खडपन को दूर कर कविता के लिए कोमलकान्त पदावली जो प्रस्तुत कर दी, पर वह सस्कृत के सुललित पदो पर आश्रित होने के कारण जन-सामान्य की पहुच के परे की वस्तु बन गई। फलत कार्लमार्क्स के दार्शनिक सिद्धातो के आधार पर प्रगतिवाद पनपने लगा। यूँ साहित्य मे सदा कोई-न-कोई दार्शनिकवाद प्रधान रहता है। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सभी पुराने दार्शनिक सिद्धात मनुष्य को आत्म-चिन्तन या भक्ति में लगाने वाले है। मार्क्स का दर्शन मनुष्य मे ससार को बदलने और उसे अनुकूल बनाने की भावनाएँ भरता है। इसलिए प्रगतिवादी कहता है कि हमे परलोक नही प्रत्युत इस लोक को सुधारना है। और साहित्य के द्वारा स्वर्गीय सगीत नही सुनना, प्रत्युत कविता मे इसी मनुष्य-लोक की कहानी कहना है।

इस धरती की बात करो, प्रिय,
मत अम्बर की ओर निहारो !

रूढियो में पडकर अपने दु ख, दैन्य और दोषो की दुर्गन्ध को अपने अन्तर मे ही नही सडने देना, प्रत्युत अपनी सब विकृतियो को प्रकट कर स्वच्छ वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए। कवि को केवल अप्सराओ के नूपरो के सरस रव मे ही तन्मय न होकर दीन, दुखी और दलितो की कष्ट-कथा कहने और सुनने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भगवतीचरण वर्मा, उदयशकर भट्ट, पत, निराला, शिवमगलसिंह 'सुमन' आदि

की रचनाओ में ऐसी ही भावनाएँ भरी हुई हैं। प्रगतिवादी की दृष्टि मे ससार की सामन्तशाही का इतिहास एक अत्यन्त ही तुच्छ और गलित युग का प्रतिनिधित्त्व करता है। प्रगतिवादी सुधार मे नही, प्रत्युत नव-निर्माण में विश्वास रखता है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की—

कवि छ ऐसी तान सुनाओ जिस से उथल-पुथल मच जाए

इत्यादि कविता प्रगतिवाद के विचारो को ही प्रकट करती है।

गा कोकिल, वर्षा, पावक-कण, नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।
पावस पग धर आवे नूतन, हो पल्लवित नवल मानव तन॥

पन्त की इस रचना मे प्रगतिवाद स्पष्ट लक्षित हो रहा है।

छायावादी कवि अपने ही सुख-दु ख के रोने रोता है और समाज को भी अपने आँसुओ की धारा मे तर करना चाहता है। वह स्वय समाज की करुणा के प्रवाह में नही बहता किन्तु प्रगतिवादी समाज के सुख-दु खो को अपने सुख-दु ख समझता है। जैसे कि 'बच्चन' 'निशानिमत्रण', 'एकान्त सगीत' आदि मे सग्रहीत 'मैने भी जीवन देखा है', ऐसी कविताओ द्वारा अपने ही भावो या अभावो को समाज की अनुभूति मे उतारना चाहता है। किंतु आगे चलकर वही बच्चन 'बगाल के अकाल' में पूरे प्रगतिवादी के रूप मे प्रकट होता है। इस प्रकार हम देखते है कि जहा एक ओर छायावादी कवि आत्म-चिन्तन मे विश्व चिन्तन का अनुभव करता है वहाँ प्रगतिवादी कवि विश्व-चिन्तन मे ही अपनी आत्मा की पुकार सुनता है और सुनाता है। छायावादी सुकोमल और रसिक कवि अत्यन्त कोमलकान्त पदावली मे अपनी मृदुल तूलिका से परम पेशल चित्र अकित करता है। उसकी भाषा और भावनाएँ छुई-मुई से भी कोमल प्रतीत होती हैं, इसलिए यदि वह कही समाज की जर्जर अवस्था का चित्र खीचता भी है तो भी भाषा की पेशलता के कारण उसमे सजीवता और वास्तविकता नही आ पाती। पन्तजी के 'परिवर्तन' की अनेक पक्तिया 'पल्लव' के समान कलित-कोमल होने के कारण 'परिवर्तन' के उद्दाम और विकट बवण्डरो से परिपूर्ण प्रचड रूप का स्पष्ट चित्रपट नही अकित कर पाती। इसके विपरीत प्राय सभी प्रमुख प्रगतिवादी कवियो की भाषा आवश्यकतानुसार यथासमय विकट भावो को प्रकट करने के लिए सुदृढ, कठोर और क्लिष्ट रूप धारण कर लेती है। प्रगतिवादी नवीन, सृष्टि का निर्माण चाहता है इसलिए वह समाज के रूढिबन्धनो के साथ भाषा

भाव, छन्द आदि के साहित्यिक बन्धनो को भी तोड फेकना चाहता है। अपने विचारो को मूर्त्तरूप देने के लिए वह पुरानी उपमाओ और रूपको के चक्र से निकलकर मशाल हल, हसिया आदि नई-नई उपमाओ का प्रयोग करता है।

प्रगतिवाद पर आक्षेप

इस प्रकार प्रगतिवादी पीडितो की कष्ट-कथा कह कर दलितो के दुख दैन्य का दर्शन कराकर समाज मे क्राति उत्पन्न कर देना चाहता है—एक उथल-पुथल मचा देना चाहता है, परन्तु कुछ लोगो का यह आक्षेप है कि "वह अपनी प्राचीन आर्य-सस्कृति से सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद कर रवींद्र के रहस्यवाद और गाधी के राम-राज्य से भी घृणा प्रकट करता है। सामन्तशाही के नाम पर या विलासिता की कथा कह कर वह कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुतल' सरीखे काव्यो को भी तिरस्कृत करने का साहस करता है। वह यथार्थवाद के नाम पर भाई-बहिन का पारस्परिक वासनात्मक प्रेम दिखाने मे भी सकोच नही करता। समाज के हेय और कुत्सित अशो के प्रदर्शन मे वह गौरव का अनुभव करता है। वह समाज के निम्न वर्ग को प्रोत्साहित कर उच्च वर्ग के प्रति घृणा का भाव फैलाता है और इस प्रकार वर्ग-विद्वेष के बीज बोता है। प्रगतिवादी कलाकार स्वय तो विलासिता का पुतला और बडा ही छैल-छबीला है पर पाखड रचता है दुखियो की करुण-कथा कहने का। वह अपने भारतीय भाइयो की भावनाओ को छोडकर रूस के लैनिन और स्टालिन के गीत गाता फिरता है।" इस प्रकार आधुनिक प्रगतिवाद के दोष दिखाये जा सकते है। यूँ दरिद्र-नारायण के दुख-दैन्य का वर्णन करने और दलितो को उत्थान की ओर ले जाने की बात को भला कौन अच्छा नही कहेगा। पर किसी वाद-विशेष के बन्धन मे बधकर या किन्ही सिद्धातो का प्रचार करने के लिए या फैशन के नाते अपनी सम्पूर्ण प्राचीन परिपाटियो का प्रत्याख्यान कर नूतनता के राग अलापना तो उपयुक्त नही। नवीन और प्राचीन श्रीमन्त और श्रमिको का समन्वय करा देना अधिक हितकर है, बजाय इसके कि हम दोनो को भिडाकर इन दोनो का ही सर्वनाश करा डाले। ऐसी समन्वयमूलक भावनाएँ तथा पूजीपतियो के अत्याचार के विरुद्ध प्रतिक्रिया हिंदी साहित्य मे सदा से प्रकट होती रही है। कबीर, तुलसी, भूषण, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी आदि भारतीय सस्कृति के उपासक कविगण सदा से प्रगतिवादियो की श्रेष्ठताओ को स्वीकार करते रहे है। पर इनके दोषो से भी वे सदा बचे है। इसलिए रूसी साम्यवाद पर आधारित

प्रगतिवाद के रूप को तिलाजलि देकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओ को चित्रित करने वाला और सामाजिक विषमताओ के प्रति विरोध प्रकट करने वाला प्रगतिवाद ही सच्चा प्रगतिवाद या क्रातिवाद है । निष्कर्ष यह है कि छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप मे प्रगतिवादी विचार-धारा प्रकट हुई । सुकोमल और अलकृत पदावली का स्थान साधारण बोल-चाल की भाषा और गद्यात्मक शैली ने ले लिया । कल्पना तो कल्पना की वस्तु रह गई । कविता मे सर्वत्र यथार्थ चित्र अकित होने लगे । महायुद्ध के विविध दृश्य, किसान और श्रमजीवी और देश-भक्त वीरो ने साहित्य को अपनी ओर आकृष्ट किया । बगाल के अकाल पर भी सभी प्रमुख लेखको ने कुछ-न-कुछ लिखा, यहाँ तक कि प्रमुख हालावादी कवि, 'बच्चन' ने भी हालावाद की मादकता को त्याग कर 'बगाल के अकाल मे' मानव की तडपती हुई आत्मा को देखा और अपना ही 'एकान्त सगीत' गाना छोड पीडितो की पुकार राष्ट्र तक पहुँचाई । हिन्दू-मुस्लिम-सघर्ष भी साहित्य मे अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हुआ । 'नोआखली' आदि रचनाएँ पर्याप्त परिमाण मे लिखी गई । आज की कविता ऐसे ही साम्यवाद-मूलक यथार्थवाद पर आधारित है । अनेक प्रयत्न करने पर भी समाज से सुधार की किसी प्रकार की आशा न रख कवि सर्वनाश और नव-निर्माण की ओर अग्रसर हो रहा है । प्रगतिवादी कलाकार का हृदय-परिवर्तन या सुधार से विश्वास उठ-सा गया है । वह विश्व-भर मे नाश, महानाश और प्रलय की चिनगारिया बिखेर देना चाहता है ।

गाँधीवाद

गाधीवाद, हृदय-परिवर्तन मे विश्वास रखता है । वह आशा रखता है कि धीरे-धीरे प्रयत्न करते रहने पर सब कुछ ठीक हो जायगा, एक-न-एक दिन समाज को सुधारने मे हम अवश्य सफल होगे । गाधी जी की मृत्यु के पश्चात् गाधीवाद की विचार-धारा को कुछ उत्तेजना मिली । पर आज के कवियो का गाधीवाद गाधीजी के सिद्धातो के प्रचार की अपेक्षा उनकी प्रशसा-मात्र मे पर्यवसित हो रहा है ।

गाधीवाद हो या प्रगतिवाद, शोषित जन का कल्याण दोनो ही चाहते है, उद्देश्य दोनो का एक है । साहित्य को छायावाद से छुटकारा दिलाने मे दोनो सचेष्ट रहे है । यहाँ तक तो दोनो ही का मार्ग समुचित है परन्तु जब प्रगतिवादी भारत की अपेक्षा रूस के गीत गाता दिखाई देता है तो जनता उसके प्रति सदेहशील हो जाती है। जनता का यह सदेश सत्य भी है । प्रगतिवादी को विदेशी साम्यवाद का प्रचार

या सहारा छोडकर अपने ही देश की ओर देखना चाहिए। हर्ष का विषय है कि अधिकाश नये-पुराने प्रगतिवादी लेखक इस तथ्य को हृदयगम कर वाद के बन्धन से अपने आप को छुडा रहे हैं। वे राष्ट्र के सच्चे कल्याण के लिए अग्रसर हो रहे हैं। इस प्रगतिवाद के प्रवर्तक और प्रचारक तो हमारे पुराने छायावादी कवि ही हैं। 'प्रसाद', पन्त, 'निराला' प्रभृति छायावादी कलाकार सर्वप्रथम इस क्षेत्र में आये। उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण 'प्रेमी', भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' आदि छायावाद-युग के प्रसिद्ध कवियो ने ही प्रगतिवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। सियारामशरण गुप्त जैसे द्विवेदी-युग से प्रकाशित होने वाले कवि भी 'नोआखाली' मे प्रगतिवाद का पूर्ण परिचय दे रहे है। पन्तजी 'ग्राम्या' और 'खादी के फूल' मे प्रगतिवाद और गाधीवाद का सामजस्य उपस्थित कर रहे है। इस प्रकार पुरानी परम्परा के कवि आज नवयुग के प्रगतिवाद के स्वर को समुन्नत करन मे प्रयत्नशील है। इधर अनेक नवीन कवि भी इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रकाश कर रहे है जिनमे से निम्न मुख्य हैं—

रामधारीसिह 'दिनकर'—इनका जन्म स० १९६५ मे बिहार के मुगेर जिले मे हुआ। 'वीरबाला' और 'प्रणभग' इनकी विद्यार्थी-जीवन की रचनाएँ है। 'रेणुका' ने इन्हे खूब चमकाया। 'हुंकार' की कविताएँ भी अपनी ओजपूर्ण प्रभविष्णुता से नवयुवको को पर्याप्त प्रभावित करती रही। इन की कविताओ मे राष्ट्र-जागरण का स्वर सब से ऊँचा है। वे क्रातिकारी कवि कहे जाते है। इन की रचनाओ मे राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुता की भावनाएँ मुख्य है। 'कुरुक्षेत्र' नामक महाकाव्य मे अतीत के पात्रो द्वारा वतमान-युग को मुखरित किया है। युद्ध और शान्ति, हिसा और अहिसा, श्रद्धा और तर्क, पशुबल और आत्मबल, हृदय और मस्तिष्क के द्वन्द्वो का इसमे सुन्दर चित्रण है।

'रेणुका' 'रसवन्ती' 'द्वद्व-गीत' 'हुकार' 'धूप-छाह' 'समधनी' और 'बापू' इनके काव्य-सग्रह है। 'मिट्टी की ओर' इनकी आलोचनात्मक रचना है।

प्रगतिवादी कवियो मे 'दिनकर' जी का उत्कृष्ट स्थान है। आपका करुणार्द्र हृदय पूजीपतियो की शोषण-नीति से व्यथित हो उठता है। आप की कल्पना भी कभी-कभी शिव-का-सा प्रलयकारी रूप धारण कर लेती है। दिनकर जी राष्ट्रीय गौरव और स्वाधीनता सग्राम की परम्परा को लेकर साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, उन्होने निराशा और विवश जनता को आश्वासन देते हुए उदात्त स्वर में कहा—

गरज कर बता सबको, मारे किसी के
मरेगा नही हिन्द देश,
लहू की नदी तैर कर आ गया है
कही से कही हिन्द देश ।
लड़ाई के मैदान मे चल रहे है
लेके हम उसका उडता निशान,
खडा हो जवानी का झडा उडा
ओ मेरे देश के नौजवान ।

अहिंसा का बोदा मार्ग 'दिनकर' जी को पसन्द नही है । अपने 'कुरुक्षेत्र' काव्य में उन्होने भीष्मपितामह के मुँह से कहलवाया है—"धर्म, तप, करुणा, क्षमा आदि के सुन्दर भाव व्यक्ति के लिए है, किंतु जब पूरे समाज का प्रश्न उठता है तब हमे तप और त्याग को भूलना पडता है, हिंसा के समाने तपस्या सदैव हारी है ।"

हिसा का आघात तपस्या ने
कब कहाँ सहा है ?
देवों का बल सदा दानवो
से हारता रहा है ?

आगे चल कर आपने हृदय और मस्तिष्क के द्वद्व का विचित्र चित्र खीचा है। भीष्मपितामह को अपनी भूल मालूम होती है। उन्होने न तो कौरवो का हित साधा और न पाडवो का। अपने ही द्वन्द्व को सुलझाने के लिए उन्होने दुर्योधन को शारीरिक शक्ति दी किंतु हृदय से पाडवो को चाहा। वे पछताने लगे--

कर पाता यदि मुक्त हृदय को, मस्तक के शासन से ।
उतर पकडता बांह दलित की, मत्री के शासन से ।।
राजद्रोह की ध्वजा उठाकर, कही प्रचारा होता ।
न्याय पक्ष लेकर दुर्योधन, को ललकारा होता ।।

अन्त मे आप भाग्यवाद के प्रति अविश्वास प्रकट करते हुए मनुष्य को श्रम करने की चेतावनी देते है—

एक मनुज सचित करता है, अर्थ पाप के बल से।
और भोगता उसे दूसरा, भाग्यवाद के छल से।।
नर समाज का भाग्य एक है वह श्रम, वह भुजबल है।
जिसके सन्मुख झुकी हुई पृथ्वी, विनीत समतल है।।

रामेश्वर शुक्ल 'अचल'—वासना के कवि है। इन्होने तृष्णा को ही जीवन का सत्य माना है—

चिर तृष्णा मे प्यासे रहना
मानव का सन्देश यही!

धीरे-धीरे अचल जी के तृष्णा सम्बन्धी गान असतोष और विद्रोह-भावना मे परिणत हो जाते है। आज वे शोषित-पीडित मानवता का पक्ष लेकर क्राति की ज्वाला भडकाना चाहते है। आपने पीडित मानवता के जो चित्र खीचे है वे वास्तव मे करुणाजनक है।

और कई बच्चो की मा, आ रही उधर से अन्न बटोरे,
आचल मे कुछ लिए चबाती, कुछ बिखरे धोती के डोरे,
वह देखती पेड तले यह, खडी मानवी कृष तन जर्जर,
लेती बाध फटे दामन मे, थोडे से दाने अकुला कर,
किन्तु खडी रहती यह जड़ पत्थर निज निर्मोही की प्यासी।
घर के बिनते तो बीतेगी पेड तले फिर राते त्रासी।।

'अचल' पर उर्दू-रसिकता का प्रभाव अत्यधिक है। इनकी कविताओ के सग्रह मधूलिका, अपराजिता, करील, लाल चूनर, किरण वेला, यश प्रदीप, और स्वाति नाम से प्रकाशित है।

नरेन्द्र एम० ए०—तरुण कवियो मे नरेद्र जी अपना स्थान रखते है। नरेद्र की प्रतिभा बाल-विहग की प्रतिभा है, इसीलिए वे अपने शिशु-कठ मे भारी

स्वरो का भार वहन नही कर पाते। आपने शृगार और वीर रस दोनो को ही अपनाया है। आप की वीरता सामाजिक बन्धनो के गढ ढाने मे अधिक है। आप की कविता मे निराशावाद भी है किन्तु प्रगतिवादी होने के नाते आप उसे चिरस्थायी नही मानते। नरेद्र पर भी उर्दू का प्रभाव है, किंतु अचल की अपेक्षा कम। उनकी भाषा, शैली, आलम्बन और चित्रण मे अनेकरूपता है। गति मे एक फुदक, गीत मे एक कुहुक, चित्रमे एक पुलक नरेद्र के लिए पर्याप्त है। इसके आगे उनकी एकाग्रता भग हो जाती है। चित्र-गीत के रूप मे उनके मुक्तक सजीव है, उनके वातावरण का आकर्षण है। नरेद्र नीरव अनुभूति के कवि है मन की कोमल, अभिव्यक्ति उनका कठिन कर्म है। उनकी ठेठ काव्यात्मा बडी सरल और स्वाभाविक है—

चौमुख दिवला बार
धरूँगी चौबारे पै आज
सखी री चौमुख दिवला बार
जाने कौन दिशा से आवे मेरे राजकुमार

इस प्रकार के सगीत से वे गीत-काव्य को उसका प्राकृत हृदय दे सकते है। 'प्रवासी के गीत', 'प्रभात फेरी', 'कर्णफूल', 'शूल-फूल', 'कामिनी', 'हसमाला' और 'अग्निशस्य' इनके काव्य-सग्रह है।

शिवमगलसिह 'सुमन'—सुमन जी एक सुकुमार वृत्ति के कवि है। आप की रचनाओ मे कवित्व के दर्शन होते है। नई उमगे, नई तरगे, नई आशा, नई आकाक्षा लेकर जब तरुण कवि ससार से प्रेम की याचना करने चलता है, तो यह निष्ठुर जग उसकी आशाओ का, उसके प्रेम का मूल्याकन कब करता है? प्रेमी को ससार मे निराशा और अभिशाप ही मिलता है। उसी अभिशाप से अभिशप्त 'सुमन जी' की भावनाएँ असतोष और विद्रोह का रूप धारण कर लेती है। वे कल्पना के ससार से बाहर निकलकर यथार्थ की ओर देखते है तो उन्हे दिखाई देती है शोषित, पीडित और जर्जरित मानवता! उनके गान क्रदन बन जाते है। नीचे की कविता मे आप 'सुमन' जी का वास्तविक परिचय पा सकते है —

मैने गाये है गान जगत जीवन के
मैने खोले है भेद यहा कन-कन के

अभिशापित युग मे जन्म हुआ है मेरा
वरदान बन गये मान मनुज के क्रन्दन!

मैने जब देखा झुलस चुका था नदन
अवशेष कहानी मात्र कली का यौवन
दो बूँदो की ले प्यास मरुस्थल रोया
पर छिपा उसे छा गया सिधु का गर्जन

नारी की गोदी पला बना वैरागी
सब कुछ छोडा पर एक न तृष्णा त्यागी
देखा भी नही कि पात्र हृदय का छिछला
मिट्टी की पाकर देह अमरता माँगी!

सुर असुर पुनः कर रहे आज सघर्षण
मेरे युग मे फिर हुआ सिधु का मथन
जो देख हलाहल मुँह बिचका कर भागा
वह व्यर्थ माँगता फिरा सुधा के दो कन

ईश्वर-ईश्वर मे आज पड गया अन्तर
टुकडो-टुकडों मे बँटा मनुजता का घर
ली ओढ धर्म की खोल, हृदय पर सूना
पूजन अर्चन सब व्यर्थ देवता पत्थर।

'जीवन के गान', 'प्रलय सृजन' और 'हिल्लोल' सुमन जी के सुन्दर काव्य-सग्रह है।

गोपालसिह 'नेपाली'—नेपालीजी आरम्भ में सरल हृदय, सरल प्रकृति और सरल जीवन के कवि थे। "लौकी के चौडे पत्ते पर लहराते इनके मनोभाव" अथवा "यह घास नही है पनप उठी मेरे जीवन की मधुर आस" मे इनके हृदय की जो सहजता है, वह सुरक्षित न रह सकी। अब वे यौवन की महत्त्वाकाक्षाओ

के कवि है। उनकी नई रचनाओ मे जवानी की मस्ती है। भाषा में उनकी पहली सरलता सुपुष्ट हो गई है। उद्‌गारो मे चित्र-सजीवता है।

नेपाली जी ने अपनी रचनाओ मे नवीन प्रयोग किये है। आप तरुण कलाकार है। आपकी वाणी मे जहा प्यार है, वहा ललकार भी है—

तुम आग पर चलो जवान आग पर चलो
आग पर चलो
लाली न फूल की, बसन्त का गुलाल है।
यह सूर्य है नही प्रचड अग्नि ज्वाल है।
यह आग से उठी मलीन मेघ-माल है।
लो जल रही जहान मे कई जवानियाँ।
तुम ज्वाल मे जलो, किशोर ज्वाल मे जलो—
तुम आग पर चलो
अब तो समाज की नवीन धारणा बनी।
है लुट रहे गरीब और लूटते धनी।
सम्पत्ति हो समाज के न खून से सनी।
यह आंच लग रही मनुष्य के शरीर को
तुम आंच मे ढलो, नवीन आच मे ढलो।

आपकी कविताओ के सग्रह 'नवीन', 'रागिनी', और 'पछी' नामों से निकल चुके है।

केदारनाथ अग्रवाल—ये उन कवियो मे से है जो शहर की नकली सस्कृति से ऊब गये है, दिखावा और बनावट से जिन्हे चिढ है और जिनके हृदय मे अपने देश की धरती के लिए प्यार है। इनकी कविताएँ अधिकतर मुक्तक छद मे है जो भाव की झकोर में अपने-आप बनता-बिगडता चला गया है।

यदि आपने किसान को 'करवी' काटते सुना होगा तो उसकी ध्वनि इस छोटे-से छन्द में भी सुनाई देगी—

साइत और कुसाइत क्या है ?
जीवन से बढ साइत क्या है ?
काटो-काटो काटो करवी
मारो मारो मारो हँसिया,
हिसा और अहिसा क्या है ?
जीवन से बढ हिसा क्या है ?

केदार की कविताओ के दो सग्रह 'युग की गगा' और 'नीद के बादल' नाम से छप चुके है ।

प्रभाकर माचवे—आपका जन्म स० १९७४ मे हुआ । कवि, कहानी-लेखक, निबन्धकार, समालोचक, स्केच-लेखक, रिपोर्ताज लेखक सभी कुछ है आप । आपकी कविताएँ हास्य-रस की भी होती है, जिन मे विनोद, व्यग्य और वक्रोक्ति रहती है । आप सीधी-सादी कविता मे अपने विपक्षियो पर बडा तीखा व्यग्य कसते है । माचवे सहृदय लेखक है । एक रचना देखिए—

वह एक
मैला सा कुर्ता पहने बेच रहा अखबार,
'अरजुन, स्वराज, जन्मभूमि, आज, अधिकार—
दो पैसे या कि चार-चार ।
कहता है वह पुकार
आज चीन जापान लडाई,
कल हिटलर की चढाई
और परसो श्री गाधी का उपवास....
वह क्या समझता है राजनीति ? खाक-धूल !
उसे क्या पता यह फैला कहाँ तक है
मैला जीवन-दुकूल !

× × ×

कहती साथी डटे रहो तुम
इन फौजी बाडो के पीछे
यानी निज आत्मा की जिन्दा कब्र बनाकर ।
किन्तु यही सच्चा सेनानी

इनके दो सग्रह—'मजीर', 'नाश और निर्माण' के नाम से प्रकाशित हो चुके है ।

भारत-भूषण अग्रवाल—प्रगतिवादी कवियो मे इनका अपना स्थान है विचार सर्वथा प्रगतिवादी, भाषा पर भी वही प्रगतिवाद की मुहर लगी हुई है और छन्द भी वही नया-गणात्मक ।

खोल सीना, बाधकर मुट्ठी कडी
मै खडा ललकारता हूँ,
ओ नियति ! तू सुन रही है ?
मै खडा तुझको यहा ललकारता हूँ ।
हा, वही मै
जोकि कलतक कर रहा था चरनमे तेरे निवेदन फूल पूजाके
करुण आखो को भिगोकर
कांपती अँगुलियो की अजलि सजोकर ।
हा, वही मै ।

रामविलास शर्मा—आपका स० १९६९ में जन्म हुआ । 'हस' के कविता विभाग के ये कई वर्षो तक सम्पादक रहे । 'अगिया बैताल' के उपनाम से आप की कविताएँ और उनके सग्रह प्रकाशित हो चुके है । आप सामयिक समस्याओ पर लोक-प्रचलित छदो मे जैसे कुडलियाँ, कवित्त आदि लिखते है । आपने राजनीति के विषयो पर 'टेसू' छद मे कई मनोरजक चीज लिखी है । आपकी चुटकियाँ बडी प्रसिद्ध है ।

रामवृक्ष बेनीपुरी—आपका जन्म स० १९५८ मे हुआ । यह चित्त, प्रेम, फूलो का गुच्छा, और बिहारी सतसई, विद्यापति पदावली, महाकवि इक़बाल जोश के कलाम की टीकाएँ आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है ।

नेमचन्द्र जैन—आपकी कविताओ में, एक स्वाभाविक सरसता और रमणीयता होती है। आप प्रगतिवाद के उन इने-गिने कवियो मे से हैं। ऐसा जान पडता है कि आप को जीवन के अनेक सघर्षों, घात-प्रतिघातो का सामना करना पडा है। कही-कही आप निराश हो उठते है। नीचे की पक्तियो से यही प्रकट होता है—

मै जूझ रहा चौहानो से अपने मन की।
पड रही अनवरत चोटे जीवन के घन की ॥
हो उठे प्राण उद्दीपन एक आकुलता से।
है चाह न मुझको आज किसी आश्वासन की ॥

रागेय राघव—आप अच्छे कवि होने के साथ ही कुशल कहानी-लेखक भी है। वैसे आप बडे उग्रवादी और प्रगतिवादी है। आप की वाणी और विचार दोनो ही आग उगलते है। देखिए—

अरे ओ जल्लाद।
तेरी आख के इस खून मे भी
दिख रहा है इस अजेय मुक्त
बन्दी का उठा
अभिमान-केतन शीश
फेक मत तलवार
तेरी हड्डियो को काटती
तलवार भी—

शंकर 'शैलेन्द्र'—जनवादी कवि है। 'आवारा' आदि फिल्मो के गीत लिखे है, और मजदूर वर्ग की पत्र-पत्रिकाओ मे आपकी रचनाएँ छपती रहती है। नवोदित कवियो में शैलेंद्र का अपना स्थान है।

सुधीन्द्र—ये राजस्थान के प्रमुख नवयुवक कलाकार है। गाधीवाद और प्रगतिवाद दोनो मे पूरे उतरे है। 'शखनाद' इनकी प्रथम प्रकाशित राष्ट्रीय रचना है। 'प्रलय-वीणा' प्रलयवादी भावधारा की प्रमुख कृति है। 'जौहर' ओजस्वी-

खड-काव्य है और 'अमृतलेख' गीत-सग्रह। इन्होने कहानियाँ और एकाकी नाटक भी लिखे है, 'राम-रहमान' एकाकी सग्रह है। 'हिंदी-कविता का क्रातियुग' इनकी आलोचनात्मक रचना है, जिस पर आपको पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है।

पद्मसिह शर्मा 'कमलेश'—इनकी कविता मधुर और आकर्षक होती है। भाषा तरल और सरल। भाव एक आदर्श को लिए हुए, चेतना का सदेश देने वाले। आप प्राचीनता की नीव पर नवीन का निर्माण करना चाहते है। गाधीजी की वर्षगाठ पर लिखी हुई एक कविता का कुछ अश देखिए—

ओ! भारत के भाग्य-विधाता!
ओ जन-जन के जीवन-दाता!
ओ पीडित-दलितो के त्राता!
ओ करुणा के सिन्धु!
अहिसा का व्रत लेने वाले योगी?
सत्य-प्रीति की, न्याय-नीति की
श्रद्धा-सयुत शुभ प्रतीति की
प्रज्वलित मशाले लेकर कर मे
पशुता के तम से आच्छादित
जग-पथ को आलोकित करने वाले राही?
इस स्वतन्त्र आरत भारत मे
आज तुम्हारी वर्षगाठ है?

प्रगतिशील उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त अन्य भी अनेको ऐसे कवि है, जिनकी रचनाओ मे प्रगतिवाद की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है जैसे कि—

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी,' 'रग', ब्रह्मदेव शास्त्री, त्रिलोचन आदि हिंदी के अच्छे कवि है।

तरुण पीढी के उदीयमान कवियो मे—मेघराज 'मुकुल', देवराज 'दिनेश', 'नीरज', श्री वैकुण्ठनाथ दुग्गल, रामकुमार चतुर्वेदी, रामकृष्ण भारती 'शलभ' आदि की रचनाएँ अच्छी होती है।

अभ्यास

१ आधुनिक प्रगतिवादी कविता पर अपने विचार प्रकट करें।

२. प्रगतिवादी धारा के प्रमुख कवियो का परिचय दे।

बीसवाँ अध्याय

बगाल का अकाल और सन् '४२ का सघर्ष

भारत विभाजन, महात्मा जी का महाप्रस्थान

पिछले १५ वर्षो मे हमारे देश मे कई ऐसी असाधारण घटनाएँ हुईं, जिनका मानव-जीवन पर व्यापक और सक्रिय प्रभाव पडा। पहली घटना सन् १९४२ का जन-आन्दोलन और दूसरी घटना बगाल का अकाल। सन् '४२ का आन्दोलन जनता की भावनाओ और आकाक्षाओ का एक प्रज्वलित रूप था। यह वह युग था जब देश मे पूर्ण रूप से चेतना आ चुकी थी और पराधीन भारतीयो की आत्मा स्वाधीनता के लिए बलि होने को छटपटा रही थी। ९ अगस्त को गाधी जी ने 'अग्रेजो भारत छोडो' का नारा लगाया। उसी दिन सब नेताओं को पकडकर जेलो मे ठूस दिया गया। फिर क्या था, क्षुब्ध जनता प्रतिशोध के लिए उठ खडी हुई। उसी दिन समस्त देश मे एक ही साथ व्यापक आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। गाव-गाव मे, नगर-नगर मे, डगर-डगर मे विद्रोह की अग्नि भडक उठी। सरकारी इमारते जलाई गईं, रेल की पटरिया उखाडी गईं, बिजली के तार काटे गये, साराशत क्षुभित जनता से जो कुछ बन पडा उसने वह किया। इसके पश्चात् सरकार का दमन-चक्र चला। गाव-के-गाव उडा दिये गये। लाठिया और सगीने बरसी और हजारो जेलो मे गये।

इस असाधारण घटना का हमारे साहित्य पर भी प्रभाव पडना अनिवार्य था। हमारे कवियो और लेखको ने भी जनता की इस अमर-क्राति की भावनाओ को अपने लेखो, कहानियो और कविताओ मे व्यक्त किया। सन् '४२ के जन-आन्दोलन पर सैकडो पुस्तके लिखी गईं, अनेक कहानिया लिखी गई और बहुत सी कविताएँ रची गईं। आन्दोलन-काल का यह साहित्य एकदम ओज और क्राति की भावनाओ से भरा हुआ था। अनेक कवियो और लेखको ने —जिन्होने सक्रिय इस आन्दोलन मे भाग लिया था—जेलो मे ही रचनाएँ की। उनकी जेल-सम्बन्धी रचनाएँ विद्रोह और करुणा की अद्भुत मिठास और महत्वाकाक्षा लिए होती थी। 'सन् बयालीस का विद्रोह', 'हमारा सघर्ष', 'जन जागरण' आदि अनेक पुस्तके लिखी गईं, अनेक कहानियो और कविताओ की रचना हुई। श्री अचल का 'चढती-धूप' और श्री कृष्णदास के 'अग्नि-पथ' और क्रातिदूत' उपन्यास भी इसी आन्दोलन की देन हैं।

इसी बीच नेताजी और आज़ाद-हिन्द-फौज के साहसिक कार्यों की चर्चा भारत मे फैलने लगी। उस महान् 'सेनानी' के नाम ने अनेक युवको के हृदयो की सुप्त ज्वाला को जागृत कर दिया। देश मे राष्ट्र-प्रेम और स्वाधीनता के जोश की लहर दौड गई। तरुण और वृद्ध सभी साहित्यकारो ने भी लेखनी उठाई और राष्ट्रीयता की इस पावनधारा मे अनूठे साहित्य का निर्माण हुआ। 'जय-हिन्द' और 'चलो-दिल्ली' कविताएँ बच्चे-बच्चे की जिह्वा से सुनाई देने लगी। नेताजी और आजाद-हिन्द-फौज के बारे मे अनेक पुस्तके और बहुत-सी कहानिया लिखी गईं। इस समय राष्ट्र-प्रेम और क्राति की विचारधारा से ओत-प्रोत बडे सुन्दर काव्य का निर्माण हुआ। इस कार्य मे हमारे तरुण कवियो ने विशेष भाग लिया। इनमे बहुत-सी उच्च-कोटि की रचनाएँ होती थी। जैसे—

भारत के चालीस कोटि
'गाधी' अब कह दो 'भारत छोडो'।
भारत के चालीस कोटि टीपू
अब कह दो 'भारत छोडो'॥
अरे 'बहादुरशाह' आ रहा
पीछे से भागो परदेसी।
'नाना फडनवीस' के वशज
ऊंघ चुके, भागो परदेसी॥
आज 'सिराजुद्दौला' के जीने का नया पर्व आयगा
हैदरअली शाह कासिमा की कब्रो मे कमान आयगा।
—सोहनलाल द्विवेदी

बंगाल का अकाल—सन् '४२ के आन्दोलन मे जिस समय देश के बडे-बडे नेता जेलो मे थे, बगाल में भीषण अकाल पडा। लोग भूखो मरने लगे। अग्रेज सरकार चुपचाप देखती रही और भूख की भेट चढती हुई जनता की कोई सहायता उसने नही की। जनता ने सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से अकाल-पीडितो की सहायता भी की, किन्तु उस सहायता से हो क्या सकता था। देखते-ही-देखते लाखो और करोडो मानव भूख-पिशाचिनी की भीषण ज्वाला मे भस्मसात् हो गये। उस समय का बगाल विवेकानद और रामकृष्ण की रगभूमि, टैगोर और शरत् की

शस्यश्यामला मातृभूमि मृत्यु की नृत्यशाला बनी हुई थी। गलियो और सडकों पर, खेतो में और मेडो पर, नर-ककाल पडे दिखाई देते थे। सैकडो स्त्रिया और बच्चे घर-घर भीख मागते-फिरने लगे। इस असाधारण घटना से हमारा साहित्य भी प्रभावित हुआ। मानव की ऐसी दुर्दशा देख कर साहित्यकारो का हृदय द्रवित हो उठा। और बगाल के अकाल के करुणाजनक चित्र खींचे जाने लगे। रामचन्द्र तिवारी के 'सागर-सरिता' और अकाल' उपन्यास इसी काल के लिखे हुए है। अनेक कविताओ की रचना हुई। पन्त, निराला, महादेवी, उदयशकरभट्ट व बच्चन प्रभृति कवियो ने भी बगाल की विभीषिका की कविताएँ लिखी। नीचे कुछ कविताएँ दी जाती है :

मै देकर चैतन्य भक्ति से झूल उठी थी,
रामकृष्ण को लिए गोद मे फूल उठी थी
दिया विवेकानन्द, विश्व मानव ने माना,
विद्यासागर दिया रूढियो ने भय माना।

मैने बकिम दिया कि खनक उठी हथकडियाँ,
मा बन्दिनी की गोद बनी जागृति की घडियाँ।
जब सुरेन्द्र ललकार उठा माँ के आँगन ने,
जब अरविन्द पुकार उठा विद्रोही मन मे।

× × × ×

तब मै ले आई रवीन्द्र पश्चिम गति बाधी।
वाणी भरे रवीन्द्र, प्राण जब भर दे गाधी।
मै शिथिला—मैने चितनरत सत दिये थे।
देशबधु से परम तपी सामत दिये थे।

उसी बग को आज समय क्या भूखा मारे ?
वही बग क्या आज दर-बदर हाथ पसारे ?
उसी बग के बेटे-बेटी बेचे जावे ?
मेहतर की गाडियो, मृतक शव खेचे जावे ?

देश बग की भूख भीख को भाषा मत गिन।
पीडित भू को देख, पतन परिभाषा मत गिन।
इसके नौनिहाल, लाशो मे देख रहा तू—
फिर युद्धोत्तर-जगत बनेगा—लेख रहा तू?

लगे कला मै आग, अरे गाता फिरता है?
आसू भरे दिलो को भरमाता फिरता है?

—माखनलाल चतुर्वेदी

पड गया बगाल मे काल,
भरी कगालो से धरती,
दीनता के असख्य अवतार
पेट खुला,
हाथ पसार
पाच उगलिया बाध
मुँह दिखला
भीतर घुसी हुई आखो से
आसू ढार—
मानव होने का सारा सन्मान बिसार
घूमती गाव-गांव
घूमती नगर-नगर
बाजारो हाटो मे, दर-दर द्वार-द्वार

—बच्चन

समाचार है :
गजब हो गया ! गजब हो गया !!
मानव का परिवार सो गया !!!
सोच रहा हूँ :
शान्त रहे क्यो ? लडे नही क्यो !
किसी भूल के फल स्वरूप तो,
कही न उनका अन्त हो गया !
वे जर्जर थे
वे भूखे थे
वे नगे थे
साँस अटक कर जिनकी चलती
वे, कृश-तन जीवन भर रोते
जीवन बोझा ढोते-ढोते
मलिन झुरिया भरी—
चाम की चादर ओढे
हाँफ चले थे
शस्य-श्यामला—
किन्तु, धान्य से हीन धरित्री
और, स्वार्थी-क्षुद्र-राज्य की
कृपा-कोर की एक छोर पर?
वह निश्छल,विश्रान्त, श्रमिक-परिवार
निज धरती पर
एक दिवस वह जीया
एक रूपहली रजनी—
के झिलमिल आगन मे
"आह" ! मौत से आख मिचौनी खेल-खेलते
सदा-सदा के लिए
न जाने कहा खो गया !!

—बालमुकुन्द मिश्र

इसी प्रकार हिन्दी के अन्य कवियो ने भी बगाल के अकाल पर काव्य लिखा। कहानीकारो ने कहानी मे पीडित-जर्जरित मानवता का चित्र खीचा। प्रचुर साहित्य बगाल के अकाल और सन् '४२ के आन्दोलन पर लिखा गया, किन्तु यह कोई स्थायी साहित्य न था। कारण, यह दोनो घटनाएँ अकस्मात् ही जनता के सम्मुख आईं फिर इनके बाद ही अन्य असाधारण घटनाओ का ताता लग गया। एक के बाद एक घटना सिनेमा के चित्रपट की भाति बदलती रही—देश के स्वाधीन होने तक किसी भी घटना का स्थायी प्रभाव जनता के मन पर अकित न हुआ, और फिर भारत के स्वाधीन होने पर हमारी ही परिस्थितियाँ उपस्थित हो गईं। इसी कारण वह एक अस्थायी साहित्य था।

भारत-विभाजन की साहित्य पर प्रतिक्रिया

सन् १९४२ के आन्दोलन और बगाल के अकाल के बाद तीसरी असाधारण घटना जो देश मे हुई, वह थी भारत का विभाजन। यह एक युगपरिवर्तक और कल्पनातीत घटना थी। युगो से एक सीमाबद्ध देश दो भागो मे बट गया और इसके परिणामस्वरूप जो साम्प्रदायिकता की भीषण ज्वाला देश मे भडकी, जिसने लाखो मनुष्यो को घर-से बे-घर कर दिया, लाखो माताओ के पूत छिन गये, लाखो बहनो के भाई बिछुड गये, गुण्डो और म्लेच्छो द्वारा मानवता पर भीषण प्रहार हुए, इसका प्रभाव आज क्या युगो तक भी मानव-हृदय से नही मिट सकता। नोआ-खली, बिहार और पश्चिमी पजाब के भीषण रक्तपात से मानवता प्रकम्पित हो उठी। और इसके साथ-साथ लाखो मनुष्यो का स्थानान्तरित होना, ये सब ऐसी घटनाएँ थी, जिन्होने समाज के हृदयो को बदल डाला। लोगो के सामने नये प्रश्न और नई समस्याएँ खडी हो गई। साहित्य भी, जो समाज से भिन्न कोई वस्तु नही है, इस प्रभाव से अछूता नही रह सका।

इस समय जो साहित्य लिखा गया, उसे हम दो प्रकार का पाते है—एक तो साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से लिखा गया और दूसरा पीडित और आहत जनता को साहस देने, उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने और कराने तथा हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना को बढाने के लिए लिखा गया। यह दूसरे प्रकार का साहित्य महत्त्वपूर्ण है, जिसने विघटन, विनाश के स्थान पर शान्ति स्थापित करने में सहायता दी, हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार किया और शरणार्थियो की

समस्या पर प्रकाश डालकर उसका समाधान करने के उपाय निकाले। इस साहित्य को भी हम दो भागो मे बाट सकते है—एक हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए तथा परस्पर सद्भावना बढाने के लिए लिखा जाने वाला साहित्य, दूसरा शरणार्थियों की समस्या तथा अन्य परिस्थितियो की पृष्ठभूमि पर निर्मित साहित्य।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के ऊपर अनेक कविताएँ, कहानिया और उपन्यास लिखे गये। इन रचनाओ मे हम एक आदर्श और ऊँचा आदर्श पाते है। क्योकि इस युग का कलाकार जन-जीवन के प्रति सजग रहकर ही प्रगतिवादी रचना करता है और इसी में अपनी कला की यथार्थता समझता है। इन सजग कलाकारो में—उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', कृष्णचन्द्र, नरोत्तमप्रसाद नागर, अज्ञेय, पहाडी, प्रभाकर माचवे, भगवतीचरण वर्मा, शमशेरसिंह के नाम उल्लेखनीय है। इन्होने अपनी कहानियो, उपन्यासो तथा कविताओ द्वारा पीडित मानवता को पर्याप्त सान्त्वना पहुँचाई। इस सम्बन्ध मे कोई ग्रन्थ न लिखा जा कर फुटकर रचनाएँ ही अधिक हुईं। उदाहरण के लिए कुछ रचनाएँ दी जाती है।

भगवतीचरण वर्मा की 'अलविदा' शीर्षक कविता देखिए—

तुम मुसलमान हो पहले, उसके पीछे हो इन्सान—
अलविदा दोस्त! लो तुम्हे मिल गया अपना पाकिस्तान!
कहता तो मै तुमको भाई
पर है तुमको मजूर कहा
काफ़िर से भला आशनाई!
फिर किस बिरते पर मै तुमसे
रिश्ता जोडू, नाता रक्खू
तुम खोद चुके हो मेरे अपने बीच बडी गहरी खाई!
पर मेरे मन मे मैल नही,
तुम मुझे भले दुश्मन समझो!
एसा भी मौका आयेगा—
सर पकडोगे, पछताओगे,
मै तुम्हे दिलाता हूँ यकीन,
तब सबसे बढ़कर दोस्त यहा पर, तुम मुझको ही पाओगे!

श्री 'अज्ञेय' ने भी उस समय का एक सजीव चित्र खीचा है जबकि रेलगाडियो को रोककर आक्रमण किये जाते थे ।

रात गाडी रुक गई वीरान मे ।
नीद से जागा, चमककर, सुना
पिछले किसी डिब्बे मे किसी ने
मारकर छुरा डिब्बे मे किसीको दिया बाहर फेक
रुकी है गाडी—यही पडताल होगी।
न जाने कौन था वह—
पर हृदय ने तभी साक्षी दी
रात मे कोई अभागा मार बैठा छुरा अपने ही हृदय में
स्वयं अपने को उठाकर फेक बैठा
दनदनाती बढ रही कुल मनुजता की रेल से ।
और उसके लिए जाना पडेगा
मनुजता के मान को
मुक्ति-उन्मुख हमारी—वाहिनी सारी—
यहा रुक जायगी—
देह अपने रोग का भी भार ढोती है !
धिक् पुन धिक्कार
और यह धिक्कार
हिन्दू या मुसलमां नही, यह धिक्कार
आक्रोश है अपमानिता
मेना मनुजता का ।

इसी प्रकार 'अज्ञेय' जी ने अपनी 'शरणार्थी' शीर्षक कविता में शरणार्थियो की दुरावस्था का चित्र उपस्थित किया है—

शहरो मे कहर पडा है और ठाव नही गाव मे
अन्तर् मे खतरे के शख बजे, दुराशा के पख लगे पांव में
त्राहि। त्राहि।। शरण। शरण।।
रुकते नही युगल चरण
थमती नही भीतर कही गूज रही थी एक स्वर रटना
कैसे बचे, कैसे बचे, कैसे बचे, कैसे बचे
आन। मान। वह तो उफान है गरूर का—
पहली जरूरत है जान से चिपटना।

भगवतीचरण वर्मा की 'मनुष्य के प्रति' शीर्षक कविता मे इस झझावात का चित्र खीचा गया है—

रुको मकान जल रहे, रुको नगर उजड रहे।
रुको प्रलय उमड रही, विनाशघन घुमड रहे।
कराह आह का धुआ, हरेक सास घुट रही।
समस्त सभ्यता सुरुचि, दलित विनष्ट लुट रही।
विशाल हास्य हस रही
सशक्त हिस्र प्रवृत्तिया
मनुष्य सृष्टि की छुरा, अशक्त आज छुट रही,
रुको प्रमत्त। आख मे, असीम अन्धकार है,
रुको प्रमत्त। पैर मे, विनाश का प्रहार है।
मदाध पशु-प्रवृत्ति और चेतना विनष्ट है,
मनुष्य पथहीन है, मनुष्य लक्ष्य-भ्रष्ट है।
झुको कि भूमि चूम लो, रुको कि तुम उखड रहे।

सुमित्रानन्दन पन्त ने भी इस काल के मानव को अपना नव सन्देश दिया—

आँज तो फिर तुम मानव।
चुन-चुन सार प्रकृति से अतुलित
जाय न रूप धरा हे अभिनव।

नभ से शान्ति, कान्ति शशि से हर,
भूतो मे नव चेतनता भर,
निस्तलता जलनिधि से लेकर,
भव से विभव, मरुत से ले जव।
आज त्याग, तप, सयम साधन,
सार्थक हो पूजन आराधन,
नीरस दर्शन दर्शनीय—
मानव-वपु पाकर भस्म करे भव
निखिल ज्ञान-विज्ञान समीक्षा—
करना भव इतिहास प्रतीक्षा
मूर्तिमान नव सस्कृति बन
आओ नव मानव। युग-युग सभव।
आज बनो तुम फिर नव मानव।

कविताओ के अतिरिक्त अनेक कहानिया लिखी गईं, जिनमे शरणार्थी-समस्या पर प्रकाश डाला गया। प्रभाकर माचवे की 'शरणार्थी' और रामचन्द्र तिवारी की 'शरणार्थी' इस विषय पर अच्छी कहानिया है। कृष्णचन्द्र का इस विषय पर लिखा हुआ उपन्यास और 'इन्सान मर गया' श्रेष्ठ उपन्यास है, विष्णु तथा श्री उदयशकर भट्ट जी ने कई एकाकी इसी विषय पर लिखे। भट्ट जी का 'पिशाचो का नाच' इस विषय पर सर्वश्रेष्ठ एकाकी है। जिसमे इस बात पर जोर दिया गया है कि अपहरण की गई स्त्रियो को समाज मे पुन अपनाया जाय। भट्ट जी के इस एकाकी ने अपहृत स्त्रियो की समस्या को बहुत सुन्दरता से सुलझाने का उपाय हमारे सामने रखा है।

इन असाधारण घटनाओ का समाज और साहित्य पर एक अमिट प्रभाव पडा और स्वतन्त्रता मिलने पर भी देश की आर्थिक अवस्था सर्वथा बिगडती जा रही है। परिणामस्वरूप साहित्य भी, प्रगतिवाद की ओर बढता जा रहा है।

महात्मा जी का महाप्रस्थान

स० २००४ मे विश्ववन्द्य बापू (गाधीजी) के महाप्रस्थान के पश्चात् उन्हे

श्रद्धाजलि समर्पित करने के लिए प्राय प्रत्येक कवि ने कुछ-न-कुछ अवश्य लिखा। ऐसी कविताओ की सख्या हजारो तक पहुँच गई है। गाधीवादी साहित्य में इन रचनाओ का बहुत बडा भाग है। पर गाधीजी के भौतिक शरीर के हमारे मध्य से उठ जाने की घटना को लेकर लिखी गई इन रचनाओ में स्थायित्व नही है। पन्त जी आदि प्रमुख कवियो की इनी-गिनी कविताएँ ही स्थायी साहित्य की वस्तु बन पाईं। बच्चन और पन्त जी की सम्मिलित कृति 'खादी के फूल' की एक कविता पहले उद्धृत की जा चुकी है।

अभ्यास

१. बगाल के अकाल और सन् '४२ के सघर्ष का हिन्दी-साहित्य पर क्या प्रभाव पडा ?

२. भारत-विभाजन की साहित्य पर क्या प्रतिक्रिया हुई ?

३ सघर्षकालीन साहित्य स्थायी क्यो न रहा ?

गद्य-साहित्य

(नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, समालोचना आदि)

इक्कीसवाँ अध्याय

प्रचार-युग का गद्य

उपन्यास, नाटक, निबन्ध तथा कहानी

उपन्यास—भारतेन्दु-युग मे हिन्दी मे आधुनिक ढग के उपन्यास लिखने का सूत्रपात हुआ। यद्यपि उस समय के लेखको की प्रवृत्ति विशेषत नाटको की ओर ही रही तथापि कुछ मौलिक उपन्यासो के अतिरिक्त अनुवाद का कार्य पर्याप्त हुआ। भारतेन्दु-युग मे सर्वप्रथम लाला श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास की भाषा बहुत सयत, परिष्कृत और उद्देश्यानुकूल है। इसमे मुहावरो का प्रयोग भी बडे उचित ढग से किया गया है, 'परीक्षा-गुरु' से कुछ अश नीचे दिया जाता है—

"मुझे आपकी यह बात बिल्कुल अनोखी मालूम देती है। भला, परोपकारादि शुभ कामो का परिणाम कैसे बुरा हो सकता है?" पण्डित पुरुषोत्तमदास जी ने कहा।

"जैसे अन्न प्राणाधार है, परन्तु अति भोजन से रोग उत्पन्न होता है।" लाला ब्रजकिशोर कहने लगे × × × ×।

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई **राधाकृष्णदास** ने एक छोटा-सा उपन्यास 'नि सहाय हिन्दू' के नाम से लिखा और बगला के कई उपन्यासो का अनुवाद किया है—'स्वर्णलता', 'मरता क्या न करता' आदि।

बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री ने भी 'इला', 'प्रमीला', 'जया', 'मधु-मालती' इत्यादि अनेक बगला-उपन्यासो का अनुवाद किया है। इनके अनुवाद काशी के 'भारत जीवन प्रेस' से प्रकाशित हुए थे। प० राधाचरण गोस्वामी ने भी 'विरजा', 'जावित्री' और 'मृण्मयी' नामक उपन्यासों के अनुवाद बगभाषा से किये।

प० बालकृष्ण भट्ट के 'सौ अजान एक सुजान' तथा 'नूतन ब्रह्मचारी' उस समय के प्रसिद्ध मौलिक उपन्यास है। इन लेखको की अनूदित और मौलिक रचनाओ से इतना लाभ अवश्य हुआ कि आगे के हिन्दी-लेखको को समकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और अन्यान्य समस्याओ पर विचार करने का ढग ज्ञात हो गया।

नाटक—भारतेन्दु-युग मे नाटक-साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। गद्य-रचना के अन्तर्गत भारतेन्दु जी का ध्यान पहले नाटको की ओर ही गया। उन्होने अपनी 'नाटक' नामक पुस्तक मे लिखा है कि हिन्दी मे उनसे पूर्व दो ही नाटक लिखे गये थे—महाराज विश्वनाथसिंह का 'आनन्द रघुनन्दन-नाटक' और बाबू गोपालचन्द्र का 'नहुष नाटक'। य दोनो नाटक व्रज-भाषा मे थे। भारतेन्दुजी ने स्वय कई मौलिक नाटक लिखे तथा बगला व सस्कृत-नाटको का अनुवाद किया। साथ ही अपने सहयोगियो को भी नाटक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके नाटको का उल्लेख हम पीछे कर चुके है।

भारतेन्दुजी का 'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक बहुत लोकप्रिय हुआ। यह सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा के आधार पर लिखा गया है। कई स्थानो पर इसका सफल अभिनय हुआ और स्वय बाबू हरिश्चन्द्र ने भी अभिनय मे भाग लिया। भारतेन्दुजी के नाटको मे ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होने सामग्री जीवन के कई क्षेत्रो से ली है। 'चन्द्रावली' मे प्रेम का आदर्श है। 'नीलदेवी' पजाब के हिन्दू राजा पर मुसलमानो की चढाई का ऐतिहासिक वृत्त लेकर लिखा गया है। 'भारत-दुर्दशा' मे देश की दशा बहुत ही मनोरजक ढग से सामने लाई गई है। 'प्रेम-योगिनी' मे भारतेन्दुजी ने वर्तमान पाखडमय धार्मिक और सामाजिक जीवन के बीच अपनी परिस्थिति का चित्रण किया है। 'विषस्य विषमौषधम्' देशी रजवाडो की कुचक्रपूर्ण परिस्थिति दिखाने के लिए रचा गया है।

भारतेन्दुजी ने नाटको की रचना-शैली मे मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया। न तो उन्होने बगला-नाटको की भाति प्राचीन भारतीय शैली को एकबारगी छोडा ही, और न प्राचीन नाट्य-शास्त्र की जटिलता में अपने को फसाया। उनके बडे नाटको मे प्रस्तावना बराबर रहती थी। पताका-स्थानक आदि का प्रयोग भी वे कही-कही कर देते थे।

भारतेन्दुजी से प्रभावित होकर उनके समकालीन लेखको ने भी अनेक नाटको की रचना की। प्रतापनारायण मिश्र के 'हठी हमीर' और 'गो-सकट' नाटक अच्छे बन पडे है। **बद्रीनारायण चौधरी** ने स० १९४४ काग्रेस-अधिवेशन पर 'भारत-सौभाग्य' नाटक लिखा, जो एक विलक्षण नाटक है। नाटक की कथावस्तु है बद-इकबाल-हिन्द की प्रेरणा से १८५७ का गदर, अग्रेजो के अधिकार की पुन प्रतिष्ठा और नेशनल काग्रेस की स्थापना। इस नाटक की भाषा भी पात्रो के अनुरूप रग-बिरगी है।

ला० श्रीनिवासदास के 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' नामक नाटक की

उस समय बडी चर्चा हुई थी। यह नाटक अग्रेजी ढग पर लिखा गया है। 'रणधीर और प्रेममोहिनी' के नाम से ही 'रोमियो एण्ड जूलियट' का स्मरण हो आता है। कथावस्तु कल्पित है, जिसमें पाटन के राजकुमार और सूरत की राजकुमारी की प्रेम-कथा का चित्रण है। उसकी भाषा उर्दू-मिश्रित है। अग्रेजी नाटको की भाँति यह भी दु खान्त है। लालाजी का दूसरा नाटक 'सयोगिता स्वयवर' है। यह पृथ्वीराज द्वारा सयोगिता हरण का प्रचलित प्रवाद लेकर लिखा गया है।

प० राधाचरण गोस्वामी ने भी कई सुन्दर और मौलिक नाटक लिखे है। इनके 'सुदामा नाटक', 'सती चन्द्रावली' और 'अमरसिंह राठौर' नाटक बडे प्रसिद्ध हुए। 'सती चन्द्रावली' की कथावस्तु औरगजेब के साथ हिन्दुओ पर होने वाले अत्याचार का चित्र खीचने के लिए बडी निपुणता के साथ कल्पित की गई है। 'अमरसिंह राठौर' ऐतिहासिक नाटक है।

इसी समय **राधाकृष्णदास** के 'महाराणा प्रताप' की बडी धूम मची। अनेक स्थानो पर कई बार इसका अभिनय हुआ। भारतेन्दु-युग मे नाटको को रगमच पर लाने के लिए भी बहुत प्रयत्न किया गया था।

निबन्ध—भारतेन्दु के समकालीन साहित्य-सेवियो ने निबन्ध-रचना की ओर पर्याप्त ध्यान दिया था। इस युग मे प्राय तीन प्रकार के निबन्ध लिखे गये—१ सामाजिक, २ साहित्यिक और ३ विविध। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक—वे सभी प्रकार के विषय आ जाते है जिनका सम्बन्ध तत्कालीन स्थिति से था। ऐसे निबन्ध प्राय सुधारात्मक होते थे और किसी उद्देश्य-विशेष को लेकर लिखे जाते थे। हास्य और व्यग्य-युक्त तथा मधुर और मार्मिक उक्तियों के कारण इस प्रकार के लेख विशेष रोचक होते थे। विचारो की सत्यता, उद्देश्य की पुनीतता और स्वभाव की निर्भीकता ने इस प्रकार के निबन्धो को विशेष शक्तिशाली और सजीव बना दिया।

दूसरे प्रकार के साहित्यिक निबन्ध इस युग में अधिक नही लिखे गये, फिर भी जितने उपलब्ध है कला की दृष्टि से उनका स्थान ऊँचा है। अभी तक ऐसे निबन्धो के दो-एक सग्रह ही प्रकाशित हुए है, परन्तु इतने से ही यह कहा जा सकता है कि इस युग के अधिकाश लेखको को इस क्षेत्र मे पर्याप्त सफलता मिली थी। कभी भावपूर्ण, तो कभी विचारात्मक गठी हुई शैली तथा सजी हुई अलकृत भाषा और कभी अकृत्रिम स्वाभाविकता युक्त भाषा में लिखे हुए इस युग के साहित्यिक निबन्धो में व्यक्तित्व की छाप भी स्पष्ट झलकती है। प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट इस युग के सर्वमान्य निबन्ध-लेखक है। बालकृष्ण भट्ट के निबन्धो

का सग्रह 'साहित्य-सुमन' के नाम से प्रकाशित हुआ है। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ में इस प्रथम विकास-काल के महत्त्वपूर्ण लेख आज भी दबे पडे है। पुस्तक रूप मे इनके प्रकाशित हो जाने पर हमारे निबन्ध-साहित्य में पर्याप्त अभिवृद्धि होगी।

तीसरे प्रकार के निबन्ध ऋतु-छटा, पर्व-त्योहार, जीवन-चरित, ऐतिहासिक घटनाएँ और नैतिक आचरण सम्बन्धी है। इनकी सख्या पहले प्रकार के निबन्धो से कम है। इस प्रकार के निबन्धो की शैली प्राय वर्णनात्मक है। उपदेश की प्रधानता के कारण आज इन निबन्धो को विशेष महत्त्व नही दिया जाता। इन निबन्धो मे कही २ ऐसे भावात्मक और विचारात्मक स्थल भी है, जहाँ अलकृत भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है।

कहानी—कहानी लिखने का सूत्रपात भी भारतेन्दु-काल मे ही हुआ। उसका विकास आगे चलकर द्विवेदी-काल मे हुआ, जो आगे और भी विकसित होता रहा। इस युग की कहानियो का कोई साहित्यिक महत्त्व भले ही न हो, फिर भी कहानियों का बीजारोपण तो हो ही चुका था। इनमे उद्देश्यप्रधान कहानिया पाठ्यक्रम के दृष्टिकोण को लेकर लिखी गईं।

प० कृष्णदत्त मिश्र ने उद्देश्य प्रधान कहानियो का सग्रह 'बुद्धि-फलोदय' नाम से प्रकाशित कराया। इसमे सुबुद्धि और दुर्बुद्धि का वाद-विवाद दिखाया गया है। इसका रचनाकाल स० १९१७ के लगभग है। दूसरी कहानी-पुस्तक सितारेहिन्द की 'वामा मनोरजन' नाम से स० १९२४ मे प्रकाशित हुई। ये दोनो कहानी-पुस्तके स्त्री-शिक्षा के दृष्टिकोण से लिखी गई थी। स० १९२८ मे नजमुद्दीन की एक कहानी-पुस्तक 'सूर्यपुर की कहानी' नाम से प्रकाशित हुई। स्वतन्त्र कहानियो की पहली पुस्तक पराहूदास का 'दृष्टान्त कोष' स० १९२७ मे और इसके पश्चात् स० १९४५ मे प० अम्बिकादत्त व्यास की 'कथा-कुसुम-कलिका' प्रकाशित हुई।

रस-प्रधान कहानियो मे गौरीदत्त की देवरानी-जेठानी' स०१९२८ में प्रकाशित हुई। यह श्रृगार रस-प्रधान कहानी वास्तव मे एक छोटा-सा उपन्यास ही थी। स० १९४६ में श्यामलाल चक्रवर्ती की 'कहानी कलाकामी' प्रकाशित हुई। यह भी बहुत बडी श्रृगार-रस-प्रधान कहानी है। स० १९४५ मे मुन्शी दुर्गाप्रसाद की 'सपने की सम्पत्ति' प्रकाश में आई। १९५५ मे सूर्यभानु कृत 'लज्जावती का किस्सा' प्रकाशित हुआ।

वस्तु-प्रधान कहानिया तो केवल मनोरजन की दृष्टि से लिखी गईं, इनमे मुन्शी नवलकिशोर सितारेहिन्द ने सौ कहानियो का एक सग्रह 'मनोहर कहानी'

के नाम से १९४८ में प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त गोपालप्रसाद की दो कहानी-पुस्तके 'कजूस-चरित' और 'ठग लीला' प्रकाशित हुई ।

अभ्यास

१ भारतेन्दु-युग के गद्य की प्रमुख प्रवृत्तियो का उल्लेख करके, नाटक के विकास पर विशद रूप से प्रकाश डाले ।

२ निबन्ध की दिशा मे इस युग के साहित्यिको की क्या देन है ?

बाईसवाँ अध्याय

संस्कार-युग का गद्य

नाटक, उपन्यास, कहानी तथा निबन्ध

द्विवेदी-युग मे लेखको की प्रवृत्ति नाटको की ओर बहुत कम रही। अधिकतर लेखको की रुचि उपन्यास की ओर झुक गई। १९५० तक तो भारतेन्दुजी की नाटक-परम्परा न्यूनाधिक रूप मे चलती रही, किंतु उसके पश्चात् उसकी गति मन्द पडने लगी। द्विवेदी-युग मे दो-चार ही मौलिक नाटक लिखे गये, हाँ, बगला और सस्कृत के नाटको का अनुवाद-कार्य अवश्य हुआ।

बगला-नाटको का अनुवाद—बाबू रामचन्द्र वर्मा ने 'वीर-नारी', 'कृष्ण-कुमारी', और 'पद्मावती' का अनुवाद किया। बाबू गोपाल राम गहमरी द्वारा 'बनवीर', 'देश-दशा', बभ्रुवाहन' 'विद्या-विनोद' और 'चित्रागदा' का अनुवाद हुआ। प० रूपनारायण पाडेय द्वारा अनूदित 'पतिव्रता', 'खानजहाँ', 'अचलायतन', 'उस पार', 'शाहजहाँ', 'दुर्गादास', और 'ताराबाई' प्रसिद्ध नाटक थे। ये नाटक बगला-नाटककार श्री द्विजेद्रलाल राय, रवीद्र बाबू तथा गिरीश बाबू के नाटको से अनूदित किये गये थे।

अंग्रेजी के अनुवाद—पुरोहित गोपीनाथ का 'प्रेम लीला' नामक नाटक 'रोमियो जूलियट' का अनुवाद था। प० मथुराप्रसाद चौधरी ने 'मैकबेथ' का अनुवाद 'साहसेंद्र' नाम से किया। 'हैमलेट' का गणपतिगुर्जरकृत अनुवाद 'जयन्त' नाम से प्रकाशित हुआ।

सस्कृत के अनुवाद—लाला सीताराम बी० ए० ने अनेक सस्कृत नाटको के अनुवाद किये। प० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'वेणी-सहार', 'अभिज्ञान शाकुन्तल, तथा 'रत्नावली' नाटिका के अनुवाद किये। पडित सत्यनारायण कविरत्न ने 'उत्तररामचरित' और 'मालती-माधव' का बहुत सुन्दर अनुवाद किया।

मौलिक नाटक—गोस्वामी किशोरीलाल ने 'चौपट-चपेट' और 'मयक मजरी' लिखे। प० अयोध्यासिह उपाध्याय ने 'रुक्मणी-परिणय' और 'प्रद्युम्न-विजय' नामक दो नाटकों की रचना की। प० बलदेवद्रप्रसाद मिश्र ने 'प्रभात मिल्न' और

'मीराबाई' नाटको की रचना की। बाबू शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा नाटक' अच्छा प्रसिद्ध हुआ। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने 'चन्द्रकला भानुकुमार' नाटक लिखा।

उपन्यास

इस द्वितीय उत्थान मे उपन्यासकारो ने आलस्य का खूब त्याग किया। अनुवाद भी पर्याप्त हुए और मौलिक उपन्यास भी कई लिखे गये। पहले हम अनुवादो की चर्चा करेगे।

अनुवाद—बाबू रामचन्द्र वर्मा ने अग्रेजी और उर्दू से कुछ उपन्यासो का अनुवाद किया। जिनमे 'ठग वृत्तातमाला', 'पुलिस वृत्तातमाला', 'अकबर' 'अमला वृत्तातमाला' और 'चितौर-चातकी' प्रसिद्ध है। बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री ने 'इला' और 'प्रमीला' का अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त इनके 'जया' और 'मधुमालती' भी अनूदित उपन्यास है।

बाबू गोपाल राम गहमरी ने बगला-उपन्यासो के अनुवाद किये। इनके उपन्यास गार्हस्थ्य-सम्बन्धी थे। इनमे 'चतुर चचला', 'भानुमती' 'नये बाबू', 'बडा भाई', 'देवरानी-जेठानी', 'दो बहन', और 'तीन पतोहू' प्रसिद्ध है। काशी-निवासी बाबू गगा प्रसाद गुप्त का उर्दू से अनुवाद 'पूना मे हलचल' और बाबू रामचन्द्र वर्मा का मराठी से अनुवाद 'छत्रसाल' उच्च-कोटि के उपन्यास है। प० हरनारायण आपटे के 'वज्राघात', 'ऊषाकाल' आदि मराठी के उपन्यासो के भी सुन्दर अनुवाद हुए।

इस उत्थान के भीतर बकिमचन्द्र, रमेशचन्द्रदत्त, हारणचन्द्र रक्षित, चडी-शरण सेन, शरत् बाबू तथा चारुचन्द्र इत्यादि बग भाषा के प्राय सब प्रसिद्ध उपन्यास-कारो की कृतियो के अनुवाद हो चुके थे। रवीद्रबाबू के भी 'आँख की किरकरी' आदि कई उपन्यास हिंदी सघ मे दिखाई पडते है। इन अनुवादो के प्रभाव से आगे आने वाले उपन्यासकारो का आदर्श बहुत-कुछ ऊँचा हुआ।

इस काल के पहले मौलिक उपन्यासकार, जिन के उपन्यासो की सर्व-साधारण मे खूब धूम मची, काशी के बाबू देवकीनन्दन खत्री थे। इनके उपन्यास जासूसी और ऐय्यारी से भरे होते थे। द्विवेदी युग से पहले ही ये—'नरेन्द्र-मोहिनी', 'कुसुमकुमारी' और 'वीरेन्द्र-वीर' आदि कई उपन्यास लिख चुके थे। उक्त युग के आरम्भ मे तो इनके 'चन्द्र-कान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' उपन्यासो ने चारो ओर इतनी धूम मचा दी थी कि जो लोग हिंदी नही जानते थे वे भी इन नामो से परिचित हो गये। इन उपन्यासो का लक्ष्य केवल घटना-वैचित्र्य

ही था, रस-सचार, भाव-विभूति या चरित्र-चित्रण नही। साहित्यिक दृष्टि से इन उपन्यासो का कोई मूल्य नही। पर इन उपन्यासो से इतना उपकार अवश्य हुआ कि जो लोग हिंदी नही जानते थे, उन्होने भी 'चन्द्रकाता' को पढने के लिए हिंदी सीखी। कितने ही युवक इसी चन्द्रकान्ता को पढते-पढते अन्य उपन्यास व साहित्य का अध्ययन करने लगे। और धीरे-धीरे अच्छे लेखक बन गये।

बाबू देवकीनन्दन ने इन उपन्यासो में ऐसी भाषा का व्यवहार किया है, जिसे थोडी हिंदी और थोडी उर्दू पढे-लिखे लोग भी समझ ले। 'चन्द्रकान्ता' के चार भाग 'चन्द्रकाता-सन्तति' के २४ भाग है। इन्होने 'भूतनाथ' के भी कई भाग लिखे, शेष भाग इनके बडे पुत्र बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने लिखे थे।

दूसरे मौलिक उपन्यासकार प० किशोरीलाल गोस्वामी है। इनका जन्म स० १९१२ मे और मृत्यु १९८९ मे हुई। इनकी रचनाएँ साहित्यिक थी। इनके उपन्यासो मे समाज के सजीव चित्र, वासनाओ के रूप-रग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोडा बहुत चरित्र-चित्रण भी अवश्य पाया जाता है। गोस्वामी जी सस्कृत के पडित और हिंदी के प्राचीन कवि और लेखक थे। उन्होंने १९२५ मे 'उपन्यास' नामक मासिक पत्र भी निकाला था। गोस्वामी जी ने ६५ के लगभग उपन्यास लिख कर प्रकाशित किये। इनके कुछ प्रसिद्ध उपन्यास ये है—तारा, चपला, तरुण-तपस्विनी, रजियाबेगम, लीलावती, राजकुमारी, लवगलता, हीराबाई, हृदयहारिणी, लखनऊ की कब्र।

प्रसिद्ध कवि और गद्य-लेखक प० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी दो उपन्यास 'ठेठ-हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नाम से लिखे। ये दोनो उपन्यास भाषा के नमूने की दृष्टि से लिखे गये थे, औपन्यासिक कौशल की दृष्टि से नही। उपाध्याय जी ने इनमे अपनी सस्कृत पदावली को छोड कर ठेठ हिंदी का प्रयोग करके यह दिखाया है कि वे सस्कृतनिष्ठ भाषा ही नहीं, सरल हिंदी भी लिख सकते है। इसी समय के प० लज्जाराम मेहता ने भी कुछ उपन्यास लिखे जिन मे प्रसिद्ध ये है—'धूर्त रसिकलाल', 'हिंदू-गृहस्थ', 'आदर्श-दम्पति' और 'बिगडे का सुधार'।

इनके अतिरिक्त बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने भी दो-एक उपन्यास लिखे थे जिन के नाम 'सौदर्योपासक' और 'राधाकान्त' है।

कथा-कहानी

इस युग मे कहानी-साहित्य का विशेष विकास नही हुआ। यद्यपि उपन्यासो के साथ-साथ कुछ लेखको का झुकाव कहानी की ओर भी हुआ, तथापि

कोई प्रसिद्ध कहानीकार इस युग मे प्रकट नही हुआ। सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे जो कहानिया प्रकाशित होती थी, उनमे कहानी-तत्त्व अवश्य होता था, परन्तु वे अधिकतर अनूदित होती थी। अग्रेजी की मासिक पत्रिकाओ मे जैसी छोटी-छोटी कहानिया प्रकाशित होती है, वैसी ही रचना 'गल्प' के नाम से बगभाषा में भी होने लगी। इन कहानियो मे जीवन के बडे मार्मिक और भाव-व्यजक चित्र उपस्थित किये जाते थे। इन्ही के अनुकरण पर हिंदी मे भी ऐसी कहानियो का आविर्भाव होने लगा।

स० १९५७ मे 'सरस्वती' मे प० किशोरीलाल गोस्वामी की मौलिक कहानी 'इन्दुमती' नाम से निकली। इसके पश्चात् 'सरस्वती' मे बराबर कहानिया निकलती रही, किंतु वे अधिकतर बगभाषा से अनूदित होती थी। बग भाषा से अनुवाद करने वालो मे बा० गिरिजाकुमार घोष का नाम उल्लेखनीय है। उनके उपरान्त 'बग महिला' का स्थान है, जो मिर्जापुर-निवासी बाबू रामप्रसन्न घोष की सुपुत्री थी। उन्होने बहुत सी कहानियो का बगला से अनुवाद तो किया ही, साथ ही हिंदी मे कुछ मौलिक कहानिया भी लिखी। इनके अतिरिक्त मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुडेल', पं० रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और प० गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पडित और पडितानी' कहानिया उल्लेखनीय है।

स० १९६८ मे बाबू जयशकर प्रसाद की 'ग्राम' नाम की कहानी उनके मासिक पत्र 'इन्दु' मे प्रकाशित हुई। इस कहानी मे कल्पना और भावुकता प्रचुर मात्रा मे थी। इसके पश्चात् तो प्रसादजी की अन्यान्य कहानिया निकलने लगी, किंतु उनकी गणना द्विवेदी-युग मे न होकर वर्तमान-विकास युग मे की जाती है। उनके मासिक पत्र 'इन्दु' मे श्री जी० पी० श्रीवास्तव की कहानिया भी निकला करती थी। इन्ही दिनो प० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'रक्षा-बन्धन' नामक कहानी 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई। प० ज्वालादत्त शर्मा और चतुरसेन जी की कहानिया भी सरस्वती' मे निकला करती थी। १९७२ मे प० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की सर्व-श्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई। इसे हम उच्च-कोटि की कहानी कह सकते है। इसमे पूर्ण यथार्थवाद के साथ-साथ भावुकता, सुरुचि, कुतूहल आदि कहानी के सभी गुण विद्यमान थे। इसे हिन्दी कहानी-साहित्य का 'कोहेनूर' कह सकते है।

स० १९७३ से हमे श्री प्रेमचन्द्र जी की छोटी-छोटी कहानियो के भी दर्शन होने लगे। अब लेखको को उपन्यासो की ओर से कुछ अरुचि होने लगी तथा

कहानी की ओर प्रवृत्ति बढने लगी। इस प्रकार हम देखते है कि सस्कार-युग के अन्तिम भाग में कहानी के विकास का प्रारम्भ होता है, जो सौकुमार्य युग मे आकर पूर्ण विकसित हुआ।

निबन्ध

हम पहले बता चुके है कि भारतेन्दुजी के समय से ही हमारी भाषा मे निबन्धो की परम्परा चल पडी थी। परन्तु उस समय वर्णनात्मक निबन्ध-पद्धति ही प्रचलित थी। यो स्थायी विषयो पर भी कुछ निबन्ध लिखे गये, किंतु बहुत कम। भारतेन्दु के सहयोगी लेखक अधिकतर समाज की जीवन-चर्या, ऋतु-चर्या, पर्व त्योहार आदि पर ही साहित्यिक निबन्ध लिखते रहे। उन के लेखो मे देश की परम्परागत भावनाओ और उमगो का प्रतिबिम्ब रहा करता था। होली, विजयादशमी, दीपावली इत्यादि पर लिखे गये उनके प्रबन्धो मे जनता के जीवन का पूरा-पूरा रग रहता था। इस के लिए वे वर्णनात्मक और भावात्मक दो विधानो का सहारा लेते थे। किंतु आगे चलकर यह सामाजिक सजीवता मन्द पड गई।

सस्कार-युग निबन्ध-रचना का दूसरा युग है। इस युग मे कुछ महत्त्वपूर्ण निबन्ध अवश्य लिखे गये, किंतु फिर भी निबन्ध-रचना का चरम विकास नही हो पाया। सर्वप्रथम श्री द्विवेदी जी ने 'बेकन-विचार-रत्नावली' के नाम से 'बेकन' के अग्रेजी निबन्धो का अनुवाद किया। उसी काल के समीप प गगाप्रसाद अग्निहोत्री ने 'निबन्धमालादर्श' के नाम से 'चिपलूणकर' के मराठी निबन्धो का अनुवाद किया।

प० माधवप्रसाद मिश्र भी एक अच्छे निबन्धकार थे। उनके निबन्धो का सग्रह 'माधव मिश्र निबन्ध माला' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इनके सग्रह को देख कर इनकी बहुमुखी प्रतिभा के विषय में कुछ सदेह नही रह जाता।

श्री बालमुकुन्द गुप्त भी इस काल के अच्छे निबन्ध लेखको में से है। ये उर्दू के भी अच्छे लेखक थे, इसलिए इन की भाषा बडी प्रभावमयी, मुहावरे-दार और व्यावहारिक होती थी। गुप्तजी का एक निबन्ध-सग्रह भी प्रकाशित हो चुका है, इसी समय के एक अन्य लेखक गोविन्दनारायण मिश्र की भाषा बडी लच्छेदार और अनुप्रासमयी होती थी। आपके निबन्धो का सग्रह 'गोविन्द-निबन्धावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

मिश्रजी के समकालीन बा० श्यामसुन्दरदास भी एक अच्छे निबन्धकारो में से थे। उन्होने स्वय अनेक सुन्दर निबन्धो की रचना तो की ही, साथ ही अन्य

लेखको से भी निबन्ध लिखवाये। आपके निबन्धो के सग्रह 'हिंदी-निबन्ध-माला' के नाम से प्रकाशित हो चुके है।

अध्यापक पूर्णसिह जी के 'मजदूरी और प्रेम' आदि निबन्ध हिंदी साहित्य के अमूल्य रत्न है। जैसी दिव्य भाषा, विषय शैली पूर्ण जी के निबन्धो मे पाई जाती है। वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

प चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' भी सस्कार-युग के अच्छे निबन्धकारो मे से थ। इन्होने अधिक निबन्ध नही लिखे, किंतु जो कुछ भी लिखे, वह प्रौढ, परिमार्जित और साहित्यिक है। गुलेरी जी के लेखो मे हास्य का पुट मिलता है। भाव, भाषा, आत्मीयता और व्यक्तित्व की दृष्टि मे आपका तत्कालीन निबन्ध-कारो मे श्रेष्ठ स्थान है।

प जगन्नाथ चतुर्वेदी ने बहुत अधिक निबन्ध नही लिखे, फिर भी वे अपने युग के निबन्धकार है। उन्होने छात्रोपयोगी दो पुस्तके 'हिंदी-निबन्ध-शिक्षा' तथा 'प्रबन्ध-रचना-शैली लिखी है। आपके दो सग्रह 'गद्यमाला और 'निबन्ध-नियम' प्रकाशित हो चुके है।

प रामचन्द्र शुक्ल इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार थे। उनके निबन्धो की तुलना पश्चिम के प्रौढ से प्रौढ निबन्धकारो से आसानी से की जा सकती है। आपने अपनी लौह-लेखनी की शक्ति से हिंदी मे एक नवीन युग का सृजन कर दिया।

आप की शैली प्रौढ और गम्भीर थी। आप हिंदी मे स्वतन्त्र भावाभिव्यजना के पक्षपाती थे। आपका "हिंदी साहित्य का इतिहास" एक प्रसिद्ध ग्रथ है। शुक्ल जी की भाषा बडी सरल और सरस है। मनोविकारो पर आपने बहुत उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिक ढग के निबन्ध लिखे है। शुक्लजी एक श्रेष्ठ आलोचक भी थे। आपके निबन्ध सग्रह 'विचार-वीथी', 'त्रिवेणी' और 'चिन्तामणि' के नाम से प्रकाशित हो चुके है। 'चिन्तामणि' की रचना पर आपको 'मगलाप्रसाद पारि-तोषिक' भी मिला था।

समालोचना

समालोचना साहित्य का प्रधान अग है। समालोचना द्वारा ही साहित्य का सतुलित रूप हमारे सामने आता है। उसके बिना साहित्य में बिखरी हुई अनन्त विभूतिया सामने नही आती। आलोच्य काल से पूर्व हिंदी मे आधुनिक समालोचना का रूप नही मिलता। हमारे यहा सस्कृत आचार्यों की शैली पर रस, अलकार आदि की उत्कृष्ट काव्य-रचनाएँ उद्धृत करके लक्षण-ग्रथ लिखने की प्रथा बहुत

कम रही। गुण-दोष-विवेचना ही इस पुराने ढग की समालोचना का प्रधान उद्देश्य रहा था। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार के साथ किसी पुस्तक के गुण और दोष या अन्य सूक्ष्म विशेषताएँ दिखाने की प्रथा हमारे यहा भी अब चल पडी है, परन्तु आलोच्य काल मे हिंदी समालोचना का रूप केवल गुण-दोष दिखाना मात्र रहा।

भारतेन्दु-युग मे भी समालोचना का यही दृष्टिकोण था। समालोचना के उक्त रूपसे कुछ विकसित रूप, भारतेन्दु की मृत्यु के बाद मिलता है। स० १९४२ मे लाला श्रीनिवासदास ने 'सयोगिता-स्वयवर' नाटक लिखा। स १९४३ मे प बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी-प्रदीप' मे 'सयोगिता-स्वयवर' की आलोचना की। उसमे उन्होने नाटक की भाषा, कथानक का सगठन, कथोपकथन आदि के गुण दोष दिखाते हुए निष्पक्ष रूप से विचार किया है। उसी वर्ष बद्रीनारायण चौधरी ने 'आनन्द कादम्बिनी' मे उसकी विस्तृत और कठोर आलोचना की। किंतु इन्होने भी उसकी विशेषताओ का उल्लेख न करते हुए उसमे दोष ही निकाले।

समालोचना की यह प्रथा सस्कार-युग मे भी प्रचलित रही। स्वय महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स १९४२ मे 'हिंदुस्तान' मे 'हिंदी-कालिदास' की समालोचना की, उसमें भी इसी प्रणाली के दर्शन होते है। उसमे उन्होने लाला सीताराम कृत कालीदास की रचनाओ के अनुवादो मे व्यतिक्रम बताये है। फिर स० १९५६ मे उन्होने सरकारी रीडरो की खरी आलोचना की।

स० १९५४ मे 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' के प्रकाशन से नवीन समालोचना के दर्शन हुए। हिंदी-समालोचना के इतिहास मे 'पत्रिका' चिरस्मरणीय रहेगी। 'पुस्तक-समीक्षा' या 'पुस्तक-परिचय' के रूप मे आलोचना रहने के साथ-साथ उसमे गम्भीर अध्ययन के बाद लिखे गये गवेषणात्मक और समालोचना-सिद्धात-सम्बन्धी लेख भी प्रकाशित होते थे। 'पत्रिका' के प्रकाशन से पहले ऐसे लेखो का सर्वथा अभाव था। इसी प्रणाली का कुछ अनुसरण १९५७ मे महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने 'नैषध-चरित-चर्चा,' मे किया। कुछ समय बाद उन्होने 'विक्रमाकदेव-चरित-चर्चा' भी प्रकाशित की। ये दोनो लेख परिचयात्मक है। सस्कृत से अनभिज्ञ पाठको को उनसे मूल ग्रथो के सम्बन्ध मे कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। द्विवेदीजी ने उनके सुन्दर स्थलो की ओर भी पाठको का ध्यान आकृष्ट किया है। 'पत्रिका' मे ही सर्वप्रथम गवेषाणात्मक लेख प्रकाशित हुए। साहित्य-शास्त्र के सिद्धातो पर प्रकाश डालने वाला पहला लेख गगाप्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना' था। स १९५३ मे यह लेख एक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हो चुका था। इसमे लेखक ने

तत्कालीन पत्रो द्वारा नवीन प्रकाशित पुस्तको की चर्चा के रूप मे समालोचना, हिंदी मे समालोचना की प्रथा, समालोचक के ग्रथ सम्बन्धी ज्ञान, सत्य-प्रियता, शान्त स्वभाव आदि गुणो पर प्रकाश डाला है। वास्तव मे समालोचना सिद्धातो का प्रतिपादन करने वाली यह पहली पुस्तक थी। समालोचना साहित्य का यह एक महत्त्वपूर्ण विकास था। इसके पश्चात् स १९५४ मे 'पत्रिका' मे रत्नाकर कृत 'समालोचनादर्श' और अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखित 'गद्य-काव्य-मीमासा' शीर्षक लेख प्रकाशित हुए। 'गद्य-काव्य-मीमासा' मे लेखक ने प्राचीन और नवीन आदर्शों के अनुसार गद्य-रचना के सिद्धातो पर विचार किया है। 'समालोचनादर्श' मे समालोचना के व्यापक सिद्धातो का उल्लेख है। इसके पश्चात् 'पत्रिका' 'सरस्वती' और 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओ द्वारा समीक्षाप्रणाली का और भी विकास हुआ।

द्विवेदी-युग के समालोचको मे मिश्रबन्धुओ का अपना स्थान है। उन्होने 'हिंदी नवरत्न' मे देव और बिहारी की तुलनात्मक समीक्षा की। देव और बिहारी को लेकर हिंदी-साहित्य-क्षेत्र मे उन दिनो खूब चर्चा रही। लाला भगवानदीन जी ने बिहारी का पक्ष लिया और और प कृष्णबिहारी मिश्र तथा उनके दल ने देव का समर्थन किया। कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' नाम की पुस्तक मे आलोचना की कोई कसौटी नही रखी थी। इस पुस्तक के उत्तर मे लाला भगवानदीन जी ने 'बिहारी और देव' पुस्तक लिखी। लाला जी की समालोचना अपने विपक्षी को मूर्ख ठहराने मे समर्थ थी।

प पद्मसिह जी शर्मा द्विवेदी-युग के प्रमुख समालोचक थे। उन्होने बिहारी पर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक मे 'आर्या-सप्तशती' और 'गाथा-सप्तशती' आदि प्राकृत व सस्कृत ग्रन्थो तथा हिन्दी उर्दू की कई रचनाओ के पद्यो के साथ बिहारी की तुलना की गई है। इस प्रकार इस काल मे समालोचना की खूब धूम रही। पत्र-पत्रिकाओ द्वारा नये-नये समालोचक मैदान मे उतरने लगे।

प रामचन्द्र शुक्ल द्विवेदी-युग के लेखक होते हुए भी सुकुमार-युग के श्रेष्ठ समालोचको मे सर्वमान्य है। आपने जायसी के पद्मावत, सूरदास व तुलसीदास की बडी सुन्दर और अत्यन्त विशद आलोचनाएँ की है। इनके अतिरिक्त बाबू श्याम-सुन्दरदास इस युग के अच्छे आलोचक है। बाबू श्यामसुन्दरदास का 'साहित्यालोचन' विद्यार्थियो के लिए बडी उपयोगी पुस्तक है। तथा बाबू गुलाबराय जी की

आलोचनाएँ भी छात्रो के लिए काम की रही। यद्यपि द्विवेदी-युग मे समालोचना की बहुत-कुछ उन्नति हुई, परन्तु उसका स्वरूप अधिकाश मे रूढिगत ही रहा।

अभ्यास

१ द्विवेदी-कालीन नाटक-साहित्य के विकास पर प्रकाश डालते हुए इस युग के मौलिक एव अनूदित नाटको का वर्णन करें।

२ द्विवेदी-युग में उपन्यास-साहित्य में क्या-क्या प्रगतियाँ हुईं ? इस युग के उपन्यासकारो का परिचय दे।

३ द्विवेदी-काल मे हिन्दी-गद्य की भाषा मे क्या-क्या सुधार हुए ? सविस्तर वर्णन करो।

४ द्विवेदी-युग मे समालोचना-प्रणाली मे क्या-क्या परिवर्तन हुए ?

५ इस युग के प्रमुख समालोचको एव समालोचना-साहित्य का परिचय दे।

६ द्विवेदी-युग के कहानी-साहित्य पर प्रकाश डाले।

७ इस युग के प्रमुख निबन्धकारो का परिचय दें।

तेईसवाँ अध्याय

सुकुमार युग का गद्य

उपन्यास, समालोचना नाटक आदि

इस युग से पूर्व ही तुलनात्मक समालोचना के प्रचलित करने का श्रेय हम प पद्मसिंह शर्मा को दे सकते है। वास्तव मे हिंदी मे वह एक नवीन प्रणाली थी। उन दिनो हिंदी मे अधिकाश रीति-काव्य का ही प्रचलन था। यो थोडी-बहुत नई शैली की रचनाएँ भी होने लगी थी, किंतु वह रीति-काव्य की अपेक्षा बहुत थोडी थी। प पद्मसिंह शर्मा ने रीति-कविता के आधार पर ही समालोचना की, यद्यपि थोडा बहुत नवीन काव्य पर भी विचार किया है। जिस मात्रा मे ये दोनो प्रकार के काव्य-भेद उस समय प्रचलित थे, ठीक उसी अनुपात से शर्मा जी ने उनका विवेचन किया। इस प्रकार हम देखते है कि आधुनिक समालोचना की सुन्दर रूप-रेखा द्विवेदी युग मे ही तैयार हो चुकी थी।

प्रेमचन्द की प्रतिभा

वर्तमान कथा-साहित्य को सजीव और सरल बनाकर उसे विकास की चरम सीमा पर पहुँचाने वालो मे सर्वप्रथम प्रेमचन्द जी का नाम आता है। प्रेमचन्द जी के साहित्य की सब से बडी विशेषता यह है कि उन्होने अपने साहित्य मे जन-सामान्य की मान्यताओ और समस्याओ का स्पष्ट चित्र अकित किया। उन्होने जनता के एक ऐसे वर्ग को साहित्य मे स्थान दिया, जिस पर अभी तक किसी ने लेखनी भी नही उठाई थी। प्रेमचन्द साहित्य के ही स्रष्टा नही, प्रत्युत समाज के भी स्रष्टा थे। प्रेमचन्द जी के साहित्य पर विचार करने से पूर्व हम उनके जीवन का सक्षिप्त परिचय दे देना आवश्यक समझते है।

प्रेमचन्द जी का जन्म स १९३७ मे बनारस के पास लमही नामक एक छोटे से गाँव मे हुआ। उनका वास्तविक नाम धनपतराय श्रीवास्तव था। उनके गरीब माता-पिता मुहर्रिर का कार्य करते थे। इनके पूर्वजो का मुगल-अदालतो से घनिष्ठ सम्बन्ध था, इसलिए उन्होने इस्लामी और फ़ारसी सस्कृति के तत्त्वो को अपना लिया था। इसी कारण प्रेमचन्द को आरम्भ मे मौलवी द्वारा उर्दू और फारसी पढनी पडी। प्रेमचन्दजी के पिता की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी।

वे अपने परिवार का निर्वाह कठिनता से चला पाते थे। इस दरिद्रता की दशा मे १५ वर्ष की अवस्था मे ही एक कुरूप और असभ्य स्त्री के साथ उनका विवाह कर दिया गया। यह रूढिगत अनमेल विवाह प्रेमचन्द जी के लिए एक झझट ही था। परिणामत यह सम्बन्ध पूर्ण रूप से असफल सिद्ध हुआ। उनकी पत्नी उन्हे छोड कर अपने मायके चली गई। कुछ समय पश्चात् उन्होने अपना दूसरा विवाह एक बाल-विधवा से कर लिया। इस बीच उनके पिता की मृत्यु हो चुकी थी।

गरीबी और दरिद्रता की अवस्था मे ज्यो-त्यो करके प्रेमचन्द जी ने १९६७ मे द्वितीय श्रेणी मे मैट्रिक-परीक्षा पास की। द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण होने के कारण उन्हे कॉलिज मे भरती नही किया गया। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से उन्हे उसी स्कूल मे १८) रु० मासिक के वेतन पर अध्यापक का स्थान मिल गया। अध्यापन के साथ-साथ उन्होने बी ए की तैयारी भी जारी रखी। अपनी प्रतिभा और परिश्रम के बल से १५ वर्ष मे वे अध्यापक से डिप्टी-इन्स्पैक्टर ऑफ स्कूल के पद पर पहुँच गये।

प्रेमचन्द जी ने आरम्भ मे उर्दू मे कहानिया लिखना आरम्भ किया। उन की कहानिया उर्दू के सर्वश्रेष्ठ पत्र 'जमाना' मे प्रकाशित होती थी। उनकी प्रारम्भिक कृतियो ने जनता मे उनका नाम चमकाना आरम्भ कर दिया था। १९७१ मे उन्होने उर्दू को छोड कर हिंदी जगत् मे प्रवेश किया। १९७७ मे उन्होने गाधीजी के असहयोग-आदोलन से प्रभावित होकर नौकरी छोड दी और पूर्ण रूप से साहित्य की सेवा मे जुट गये।

प्रेमचन्द जी ने जिस युग मे साहित्य मे पदार्पण किया, वह सामन्तशाही को आभिजात्य मे बदलने का सक्राति काल था। उस समय ब्रिटिश सरकार की शोषण-नीति और ज़मीदारो तथा भूमिपतियों के अत्याचारो से मजदूरो और किसानो की दुरवस्था हो रही थी। कृषक वर्ग जड, दरिद्रता-ग्रस्त, उत्पीडित और अपने दुर्भाग्य पर रोने लगा था। सरकार, जमीदार, साहूकार, छोटे सरकारी अफसर, पुलिस, वकील और पडे-पुजारी किसानो का खूब शोषण कर रहे थे। जमीदारी-प्रथा के विरुद्ध गावो में काफी असतोष फैल रहा था। उधर मजदूर वर्ग में भी पूजीवाद के विरुद्ध पर्याप्त उत्तेजना बढ चुकी थी। प्रेमचन्द जी जनता के जीवन में होने वाले इन सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनो को भली-भाति देख रहे थे। वे जानते थे कि इस दिन-पर-दिन बढने वाले लगान के भार से किसानो की कमर टूटी जा रही है। उन्होने देखा कि किस प्रकार अवैधानिक तरीके से उनको खेतो और झोपडियो से बेदखल कर दिया जाता है, कैसे वे दिन-दिन भर कठिन

परिश्रम करते हैं और इस प्रकार जो पैदा करते है उस पर उनका कोई अधिकार नही होता, बल्कि उसके बदले मे उन्हे मार, अभिशाप सहन कर भूखे पेट सो रहना पडता है। प्रेमचन्द जी ने इन बातो को निकट से ही नही देखा, बल्कि उनके जीवन मे प्रवेश करके अपने हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियो द्वारा उसका यथार्थ अनुभव किया।

प्रेमचन्दजी ने अपने साहित्य मे इन समस्त समस्याओ और उलझनो का यथार्थ चित्रण किया। प्रेमचन्द इसीलिए महान् है कि उन्होने अपने युग के आधार भूत वर्गों के जीवन को समझा था। उन्होने बहुसख्यक जनता की जीवन-प्रणाली को समझ कर अपनी वृत्तियो मे प्रकट किया। उन्होने अपने कथा-साहित्य मे रूढि-ग्रस्त किसानो और निम्न मध्यम वर्गों की मानसिक स्थिति और नवीन व्यवस्था के प्रति उनकी स्वाभाविक घृणा का दिग्दर्शन कराया है, उन्होने पूजी-वाद के विरुद्ध, शहर के विरुद्ध, विदेशी शासन के विरुद्ध और उस सब के विरुद्ध, जो प्राचीन परम्परा को नष्ट कर रहा था, क्रोध और घृणा दोनो को जाग्रत किया।

समाज कोई कल्पना नही है, प्रत्युत एक ऐसा जीवित समुदाय है जिस में यथेष्ठ वैचित्र्य और विभिन्नता है, यह प्रेमचन्द जी के उपन्यासो से स्पष्ट झलकता है। उन्होने 'काया-कल्प' के सामन्त-वर्ग से लेकर 'रगभूमि' के किसानों और 'कफन' के चमारो तक समाज के भिन्न-भिन्न स्तरो और भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगो का चित्रण किया है। समाज का जीवन एक बहुत बडे कारखाने की भाति है, जिस मे तरह-तरह की मशीने है और लाखों छोटे-बडे कल-पुर्जे है। एक ओर तो हम यह जानना चाहते है कि इस कारखाने मे कौन-सा माल तैयार हो रहा है और उससे किस आवश्यकता की पूर्ति होगी, दूसरी ओर उसकी अलग-अलग मशीनो और लाखो कल-पुर्जों की गतिविधि को भी हम देखना और समझना चाहते है। इसी प्रकार एक श्रेष्ठ लेखक समाज की गति को पहचानता है और अपने पाठको को बताता है कि समाज सही दिशा मे आगे बढ रहा है या नही। किंतु इसके साथ-साथ सामाजिक क्रम में जो हजारो-लाखो मनुष्य लगे हुए है, उनके मानस को, सस्कारो को, परिस्थितियो के बीच उस की प्रत्येक गति और स्पन्दन को वह देखता और परखता है, तभी उस के साहित्य मे मासलता आती है और वह सजीव रूप से पाठक को आकृष्ट करता है। जो साहित्यकार इन विभिन्न रूपो में ही उलझकर रह जाता है और उनके कोटि-चित्र देखकर सतुष्ट रह जाता है, वह कला के उत्कर्ष तक नही पहुँचता,

दूसरी ओर जो सामाजिक सघर्ष की मोटी-मोटी बातो को ही सूत्र रूप मे लिख देता है वह अपनी कला को सजीव नही बना पाता। प्रेमचन्द जी के एक ओर प्रगतिशील देशभक्ति का दृष्टिकोण था, जो विदेशी साम्राज्य से अपने देश को मुक्त करके नये समाज का निर्माण करना चाहता था। दूसरी ओर समाज के विभिन्न वर्गो और हजारो व्यक्तियो के मानस और उनकी परिस्थितियो का ज्ञान भी उन्हे था। अपनी राष्ट्रवादी धारणा की सहायता से उन्होने जो कुछ देखा, उसमे परस्पर सम्बद्धता और कलात्मक सामजस्य उत्पन्न किया। प्रेमचन्द की कला उस फोटोग्राफर के लैंस की भाति नही, है, जिसमे बाह्य जगत् के चित्र इधर-उधर बिखरे हुए एक असम्बद्ध रूप मे सामने आते है। उन्होने बाह्य जगत् के चित्र खीचे, और उनमे परस्पर सम्बन्ध भी स्थापित किया। इसका कारण उनका वह दृष्टिकोण था जिससे उन्होने सामाजिक सघर्ष की मूल दशा को पहिचाना।

प्रेमचन्द जी ने सामाजिक आन्दोलन को ही राष्ट्रीयता का नाम दिया है। जो इस आदोलन के जितने साथ है, वह उतना ही राष्ट्रीय है। प्रेमचन्द जी इस राष्ट्रीयता के बहुत बडे प्रशसक थे, उन्होने इसमे कोई भी अवगुण अथवा अस्थायित्व नही बताया। राष्ट्रीयता की इस धारा को उन्होने सामान्य मनुष्य धारा मानकर राष्ट्र-धर्म को मनुष्य-धर्म के रूप मे ग्रहण किया। इसी राष्ट्रीयता के रग मे रगकर उनकी साहित्य-कला रजित हुई है। प्रेमचन्द जी की आत्मा मे भी इसका प्रकाश था। इस राष्ट्रीय वातावरण से प्रेमचन्द जी ने जीवन-दायक उत्साह सचय किया और उनका यह उत्साह कभी क्षीण नही हुआ। उनके उपन्यासो और कहानियो में जो उत्कट आशावाद दिखाई देता है वह इस युग की वरेण्य विभूति है। नवयुवक-रचनाकारो की निराशा और रुदन के सामने प्रेमचन्द जी की प्रौढ आशा आज शोभा-शालिनी और उत्साहप्रद दिखाई देती है। जान पडता है कि प्रेमचन्द जी का व्यक्तित्व, उत्साह और उत्कट उद्योग की आधार शिला पर ही स्थापित हुआ था। उस समय की परिस्थितियो मे आशा के लिए बहुत कम स्थान था, यद्यपि उस समय एक आशाप्रद राष्ट्रीय हलचल मची हुई थी। परन्तु प्रेमचन्द जी में यह पक्ष इतना प्रबल था, कि उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। उनके साहित्य मे आशा और उत्साह का सदेश मिलता है। प्रेमचन्द जी की चेतना इन्ही दोनो के सम्मिलिन से उद्दीप्त हुई और यही प्रकाश उनकी रचनाओ में प्रसार पा रहा है। राष्ट्रीय शक्ति का इतना बडा उपासक हमारे साहित्य मे शायद ही कोई दूसरा हुआ हो।

प्रेमचन्द जी हिंदी के एक तपस्वी कलाकार थे। उनकी रचनाएँ सामाजिक क्राति की भावना से ओतप्रोत है। स्वय अपने जीवन मे वह सक्रिय क्रातिकारी थे। उन्होने आदर्श के लिए अपने को मिटा दिया। किंतु उनका सब से महान् क्रियात्मक प्रयोग उनका साहित्य था। उनके साहित्य मे एक शक्ति थी। शक्ति-के साथ यदि सयम भी हो, तो उसकी उपयोगिता और भी बढ जाती है। प्रेमचन्द जी की रचनाएँ विशेष रूप से सयमित है। प्रेमचन्द जी मे प्रगतिवाद नही था, बल्कि वे मध्यवर्ती कलाकार थे। और यह उनके सयम का ही परिणाम था। वे तीव्र व्यग्य न करके मीठी चुटकियो का ही प्रयोग करते थे। अपनी धारणाओ पर उनकी आस्था बड़े ही प्रसन्न रूप मे दीख पडती है, नही तो वे मीठी चुटकिया न ले पाते। यह प्रेमचन्द जी की प्रशसनीय वृत्ति थी कि जिस विषय अथवा भावना को उन्होने अपनाया, उसके सम्बन्ध मे उन के मन मे कोई तर्क-वितर्क नही उठता था। और उसे भी वे अधिकतर तीव्र बनाकर, कटु बनाकर प्रभाव नही डालते थे, इसे उनकी सदारता और सयम ही समझना चाहिए।

कुछ लोगो का कहना है कि प्रेमचन्द की दृष्टि निम्न और मध्यवर्ग की जनता तक ही सीमित थी, उच्चवर्ग की जनता के बारे में उन्हे अधिक ज्ञान न था, और न ही वह उच्च वर्गीय लोगो की अन्तर्वृत्तियो तक पहुच पाये। किंतु ऐसा नहीं है। प्रेमचन्द की अन्तर्दर्शिनी दृष्टि चारो ओर जाती थी। उनकी दृष्टि पाडेपुर की झोपडियो तक ही नही, प्रत्युत बनारस के ऊचे महलो और महन्तो के मठो तक भी जाती थी। सच तो यह है कि यदि आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार भाव-भाषा, रहन-सहन, आशा-आकाक्षा, दुख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते है, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आप को नही मिल सकता। झोपडियो से लेकर महलो तक, खोमचे वालो से लेकर बैको तक, ग्राम-पचायतो से लेकर धारा-सभाओ तक, आपको इतने कौशल पूर्ण और प्रामाणिक भाव से कोई दूसरा नही ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड कर मेडो पर गाते हुए किसान को, अन्त पुर मे मान किये प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वारागना को, रोटियो के लिए ललकते हुए भिखारियो को, दूर परामर्श में लीन गोयन्दो को, ईर्ष्या-परायण प्रोफेसरो को, दुर्बल-हृदय बैकरो को साहस-परायण को, ढोगी पडित को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को देख सकते है, और इस देखने मे आप कोई धोखा नही खा सकते। इससे अधिक सचाई के साथ दिखा सकने वाला प्रदर्शक अभी हिंदी-उर्दू-जगत् मे कोई नही। साथ ही प्रेमचन्द जी ने यह भी दिखाया है कि जो लोग अशिक्षित और अबोध है, सस्कृति

और सम्प्रदायो से लदे नही है, जो गवार और निर्धन है, वे सस्कृत, सम्पन्न, शिक्षित, चतुर, दुनियादार और शहरियो की अपेक्षा अधिक आत्म-बल रखते है और न्याय के प्रति अधिक सम्मान दिखाते है। इसका यह आशय नही है कि प्रेमचन्द जी आगे बढने की अपेक्षा पीछे लौटना श्रेयस्कर समझते थे। बात यह है कि वे मनुष्य की सद्वृत्तियो मे विश्वास रखते थे। वे मानते थे कि जडोन्मुखी सभ्यता ने हमें जडता को ही प्रधान मानने की ओर प्रवृत्त किया है। हमने टीम-टाम को भीड-भम्भड को, दिखाव-बनाव को और दुनिया दौलत को प्रधानता दी है। ये वस्तुएँ मनुष्य को न तो महान् ही बनाती है और न क्षुद्र, परन्तु ये मनुष्य के मन को दुर्बल कर देती है। आत्मा को सशक बना देती है। आत्म-बल प्रत्येक व्यक्ति मे है, किंतु जड-पूजा से वह अवरुद्ध हो जाता है। इसलिए जो जितना त्याग करता है, अथवा जितना इस जडिमा के बन्धन को तोडता है, वह उतना ही महान् है। जिसके पास बन्धन जितने कम होते हैं, वे उतने ही सत्यपरायण हो जाते है। प्रेमचन्द जी के उपन्यासो मे यह बात सर्वत्र ही दिखाई गई है।

प्रेमचन्दजी ने निम्न मध्यमश्रेणी के पुरुषो और स्त्रियो को ही अपने साहित्य मे प्रमुख रूप से चित्रित किया। बात यह है कि प्रेमचन्द जी की दृष्टि में वे निम्न और मध्यम श्रेणी के नही है। ये ही वे लोग है जिनका यथार्थ परिचय पाकर ही आप देश की वास्तविक समस्याओ के बारे में जान सकते हैं। इन्हे जानकर ही आप अपनी शक्ति का अनुमान लगा सकते है। ये ही भारतवर्ष के मेरुदण्ड है। इनके बनने-बिगडने पर हमारा और इसलिए सारे ससार का बनना-बिगडना निर्भर है। ये लोग शताब्दियो तक केवल उपेक्षित और पददलित ही नही रहे, प्रत्युत परिहास और अपमान के पात्र भी बने रहे। हजारो वर्ष के भारतीय साहित्य में इनकी आशाओं, आकाक्षाओ, सुख-दुखो और सूझबूझो की चर्चा नही के बराबर हुई है। प्रेमचन्दजी ने इन्ही लोगों को अपने साहित्य का विषय बनाकर अपनी महत्ता का परिचय दिया है।

प्रसाद का अवतरण

हिन्दी-गद्यसाहित्य के विकास के इतिहास मे प्रेमचन्दजी का जो स्थान है, वही स्थान बा० जयशकरप्रसाद का है। प्रसादजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने गद्य-साहित्य के साथ-साथ काव्य को भी एक अमर सौन्दर्य प्रदान किया। वस्तुतः वे कवि पहले थे—पीछे और कुछ। उनके काव्य पर प्रकाश पहले डाला जा चुका है, अत यहा हम उनके काव्य पर विचार न करते हुए गद्य-साहित्य पर ही

प्रकाश डालेगे । प्रसादजी के उपन्यास और बृहत् नाटक मानो एक-एक महाकाव्य है, छोटी कहानिया और एकाकी एक-एक खडकाव्य । और इसका कारण उनका मुख्यत कवि होना है । किन्तु सामाजिक दार्शनिक होने के कारण उन्होने जीवन को विविध लोक-भूमि के विस्तृत प्रागण मे रखकर देखा है ।

प्रसादजी ने गम्भीर, विवेचनात्मक या भावात्मक लेख न लिखकर गद्य मे नाटक, उपन्यास और कहानियाँ ही लिखी है, जिनका उद्देश्य जन-साधारण की दृष्टि मे चाहे मनोरजन ही हो, परन्तु वास्तव मे प्रसादजी की रचनाएँ केवल मनोरजन और विनोद की दृष्टि से न लिखी जाकर अध्ययन के लिए लिखी गई है । उनके साहित्य से भारतीय सस्कृति और सभ्यता का सुन्दर दिग्दर्शन होता है । उनके ऐतिहासिक नाटको मे सघर्ष के चित्रो के साथ-साथ गवेषणात्मक और भावात्मक स्थल भी है । इसका कारण यह है कि अपने नाटको के लिए उन्होने भारतीय इतिहास का वह युग चुना है जो गम्भीर और उनके प्रादुर्भाव के समय तक कुछ अनिश्चित-सा था । इसके अतिरिक्त नाटको मे घात-प्रतिघात तथा अन्तर्द्वन्द्व के लिए विस्तृत क्षेत्र भी उन्हे मिला ।

यहाँ प्रसादजी की उन विशेषताओ पर प्रकाश डालनाआवश्यक हैजिनके कारण वे एक नवीन युग के स्रष्टा कहलाये । क्योकि किसी साहित्य मे नवीनता का सूत्रपात करने के लिए किसी व्यक्ति मे कुछ तो विशेषता होनी आवश्यक है । प्रसादजी की यह विशेषता थी कि वे कुछ विशेष आदर्शो के उपासक-युग में, नवीन वस्तु-स्थिति का, नये युग की स्वस्थ मनुष्यता का सचार करने वाले पहले पुरुष थे । उन्होने अपने समय के आदर्श की सीमा को, जो सकुचित हो रही थी, इतिहास और मनोविज्ञान की सहायता से बढाने, और न बढे तो तोडने को चेष्टा की, इसलिए वे इस युग के सबसे पहले विद्रोही साहित्यकार हुए ।

प्रसादजी के ऐतिहासिक नाटको मे जो गम्भीरता और दार्शनिकता मिलती है, उसका प्रयोजन यह है कि हमारी सकुचित चेतना का तिरस्कार हो और हम रूढिबद्ध-विचार-शृखला को छोडकर व्यापक मानवीय स्वरूपो को देखे । साथ ही इतिहास के प्रकाश मे मनुष्यो के उठने-गिरने के कारणो को समझकर किसी व्यक्ति मे अनायास ही उच्चता और नीचता का आरोप न कर ले । किसी की परिस्थिति को समझ लेना ही मुख्य प्रयोजनीय वस्तु है । उसके प्रति ईर्ष्या-द्वेष करना कोई वस्तु नही । बौद्ध-साहित्य मेप्रवेश करके प्रसादजी अपनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमारे लिए सुप्रसिद्ध करुणा और अहिंसा आदि विभूतिया लाये, जिनका

और उसके अनुशासनो के बाहर पाप की कही सत्ता नही है। पाप की प्रेरणा चाहे भय द्वारा दी जाय, चाहे प्रलोभन द्वारा अथवा समाज के सस्कार-मात्र ही पाप के प्रेरक क्यो न हो, उनका उद्‌गम समाज मे ही है। बेचारा व्यक्ति इस पाप-चक्र से इस बुरी तरह दबा हुआ है कि वह क्षण-भर के लिए भी अपनी विवशता को त्याग कर स्वतन्त्र नही हो सकता। वह एक निश्चेतन समाज का बलात् काम करने वाला पुर्जा है। वह इस परवश अवस्था से उठकर एक क्षण भी यह विचार नही कर सकता कि अपनी आत्मा ही—हम स्वय ही—पाप और पुण्य के निर्णायक हो। समाज ने हमसे सुनवाई का—प्रार्थना का अधिकार भी छीन लिया है और अब स्थिति यह है कि पूर्ण सचेत और महान् सभावनाओ वाला मानव-आत्मा जड समाज-यन्त्र के द्वारा निरन्तर पीसा जा रहा है। उसकी भावना और विचारों के सभी क्षेत्र अवरुद्ध है और वह अपने को सब ओर से पगु पा रहा है।

और इस सामाजिक यन्त्र से लाभ उठाने वाले कौन है—ये ऊचे-ऊचे पदो वाले सशक्त व्यक्ति और वर्ग, जो अपने को निरापद बनाकर निर्बलो, अशक्तो और अबलाओ पर विशेष रूप से अत्याचार कर रहे है। देखा जाय तो इन लोगो पर सबसे अधिक पाप का भार है, किन्तु ये उस पर परदा डालकर अपने को अछूता सिद्ध करने मे तनिक भी नही हिचकिचाते। ध्यान देने की बात यह है कि सामाजिक विधि-निषेधो का यह भार उन लोगो पर सबसे अधिक है, जो सबसे अधिक अशक्त, अपाहिज और दीन-हीन है।

इस प्रकार प्रसाद जी ने अपने उपन्यास मे समाज के नियम-बन्धनो का यह क्रियात्मक रूप दिखाया है। इससे हम धारणा कर सकते है कि अपने उपन्यासो में प्रसादजी व्यक्तिवाद को मानने वाले है। किसी भी सामाजिक प्रणाली मे उनकी आस्था नही है। उनका यह व्यक्तिवाद सात्विक प्रेममय, उत्कृष्ट चेष्टामय, शुद्ध, निर्दभ, शक्तिमय और सतत आयोजनमय है। प्रसादजी की धारणा है कि यदि मनुष्य शुद्ध मानव-प्रकृति के नियमो का अनुसरण करे तो किसी प्रकार के शासन की आवश्यकता ही नही है। समाज की एक भी रीति, परपरा, मान्यता, व्यवस्था शुद्ध और साधार नही है, न व्यक्ति के लिए उपयोगी है। व्यक्ति को चाहिए कि वह समाज के आदेशो की परवाह न करके अपनी प्रकृति के आदेश को माने। प्रकृति और अन्तरात्मा एक ही है। भाव रूप में जो आत्मा है, क्रिया रूप में वही प्रकृति है। बस अन्तरात्मा की प्रेरणा से सारे कार्य करने चाहिएँ।

अपने इन नवीन और मौलिक विचारों को लेकर प्रसाद जी ने एक नवीन और सुन्दर साहित्य का सृजन किया है। प्रसाद जी की शैली पर भी उनकी रुचि

और गहरे विचारो का प्रभाव पडा है, साथ ही कवि होने के कारण इनकी समस्त कृतियो मे काव्यात्मक चमत्कार रहता है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होने बडी सुन्दर उक्तियो का प्रयोग किया है।

प्रसाद जी की भाषा सस्कृत-प्रधान है। जहाँ साधारण भाव-प्रवाह के अनुकूल भाषा लिखी है वहाँ सस्कृत की तत्समता अधिक नही है और जहाँ गम्भीर स्थलो पर लिखा गया है वहाँ सस्कृत की तत्सम शब्दावली अधिक है। फिर भी आपकी भाषा मे एक अनुपम रमणीयता, सरसता और प्रवाह रहता है।

इन समस्त गुणो के कारण प्रसाद जी ने हिन्दी को जो नवीन और सुन्दर साहित्य दिया है, इसके लिए हिन्दी-जगत् में आपका नाम सदैव स्मरणीय रहेगा। अब यहा इस युग के विविध गद्य-साहित्य का विवेचन किया जाता है —

नाटक

द्विवेदी युग के नाटको का उल्लेख हम पीछे कर चुके है। द्विवेदी-युग मे मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गये—हा बगला और अग्रेजी नाटको का अनुवाद अवश्य हुआ है। द्विवेदी काल का सारा नाटक साहित्य अनुवादो से भरा पडा है। द्विजेद्रलालराय और गिरीश घोष के बगला नाटको से लेकर शेक्सपीयर के अग्रेजी नाटको तक का अनुवाद हो चुका था। नाटकीय कला की दृष्टि से स० १९५२ से १९७५ तक का नाटक-साहित्य एक ही श्रेणी के अन्तर्गत आ जाता है। द्विवेदी-युग के अन्त मे कुछ धार्मिक और पौराणिक नाटको की रचना हुई। उस समय दो प्रकार के नाटक लिखे जाते थे। इन दोनो प्रकार के नाटको की परम्परा २०वी शताब्दी के आरम्भ से चली आती है। पहली प्रकार के नाटक पारसी रगमच के लिए उपस्थित किये जाते थे और दूसरी प्रकार के नाटक भारतेन्दु मडल के नाटककारो द्वारा प्रस्तुत किये जाते थे। पारसी रगमच के लिए नाटक लिखने वालो मे प० राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद, 'बेताब' तथा आगा हश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनके नाटको में कथा विस्तार और चमत्कार की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। साहित्यिक नाटको में प्राचीन सस्कृत नाटको के प्रभाव से रस की ओर ही दृष्टि अधिक थी, यद्यपि कथा-तत्त्व की सर्वथा उपेक्षा यहा भी नही होती थी। इन पिछले नाटको पर रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव था। उनमें कलातत्त्व की प्रधानता थी, और कल्पना तथा बुद्धिवाद का जोर था।

बीसवी शताब्दी के मध्य में पारसी रगमच मे कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। प० नारायणप्रसाद 'बेताब' ने पारसी नाटको में हिंदी के गीत और भजन आदि

का प्रवेश कराया। और पौराणिक विषयो को आगे किया। प० राधेश्याम कथा-वाचक, आगा हश्र, हरिकृष्ण जौहर ने भी इन तत्त्वो को आगे बढाया। पौराणिक नाटक शहर के मध्यम वर्ग की जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। यद्यपि पारसी रगमच के लिए लिखे जाने वाले नाटको मे साहित्य की मात्रा बहुत-कम होती थी, भाषा भी उर्दू-मिश्रित हिंदी थी, तथापि इनके द्वारा हिंदी को रगमच पर स्थान मिल गया यह बात माननी पडेगी।

नाटक-साहित्य का विकास वास्तव में बाबू जयशकरप्रसाद के प्रादुर्भाव से प्रारम्भ हुआ। जिस प्रकार हिंदी उपन्यास मे प्रेमचद जी ने प्राण-सचार किया, इसी प्रकार जयशकरप्रसाद ने हिंदी-नाटको मे नव-जीवन डाल दिया। आज अग्रेजी नाटककारो मे शेक्सपीयर का जो स्थान है, हिंदी में वही स्थान जयशकरप्रसाद का है। चरित्र-चित्रण, शैली, कथोपकथन आदि नाटकीयतत्त्वो की दृष्टि से भी प्रसाद जी के नाटक सर्वोत्कृष्ट है। उन्होने ११ नाटक लिखे, जिनमे से 'अजात-शत्रु','जनमेजय का नाग-यज्ञ', 'स्कन्द-गुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'कामना', 'ध्रुव-स्वामिनी', और 'विशाख' बहुत प्रसिद्ध है। प्रसाद जी के नाटको मे नाट्य-शास्त्र के नियमो की अवहेलना की गई है। इनमे मगलाचरण, नान्दी, सूत्रधार और भरतवाक्य आदि नही है। हत्या, युद्ध आदि के जो दृश्य नाटको मे वर्जित है, उनका बेरोक-टोक प्रयोग किया गया है। इसका आशय है कि उन्होने प्राचीन परिपाटी को छोड कर एक नवीन ढग से नाटक रचना की।

प्रसाद जी के अधिकाश नाटक ऐतिहासिक है, जिन मे हमे गम्भीर विचार और गहन दार्शनिकता के दर्शन होते है। इसका कारण कुछ तो इनका कवि होना था, कुछ गम्भीर, मननशील एव अन्वेषक होना। वस्तु, पात्र और रस—ये तीनो बाते, जो नाटक की प्राण होती है, बराबर उनके नाटको मे विद्यमान है। एक विशेषता प्रसादजी के नाटको मे हमे और मिलती है वह यह कि नाटक की परिभाषा की उपेक्षा भी कर डाली गई है। सभवत इसका कारण हिंदी रगमच का अभाव है।

प्रसाद जी के नाटक कलामय होते हुए भी साधारण रगमच के योग्य नही है। उनमे ऐसे क्लिष्ट विषयो का प्रतिपादन किया गया है, कि वे किसी विवेचना पूर्णग्रथ के योग्य हो सकते है, किंतु साधारण रगमच के दर्शको की समझ से बाहर है। उन के लिए विशेष रगमच, अभिनेताओ और सुशिक्षित एव सुसस्कृत दर्शको की आवश्यकता है। उनके नाटको में हमे प्राचीन भारतीय सभ्यता और सस्कृति

के दर्शन होते है । नाटको के बीच-बीच मे प्रसगवश आए हुए गीत और सूक्तियाँ भी हिंदी साहित्य की एक अमूल्य निधि है ।

हमारे आधुनिक नाटको पर बर्नार्ड शा और इब्सन के नाटको का स्पष्ट प्रभाव पडा है । आधुनिक नाटको मे जीवन और उसका रूप अर्थात् वस्तु सवाद, अभिव्यजना, शैली आदि सभी कुछ बदल गया है । इन नाटको मे प्रतिदिन जीवन से सम्बन्ध रखने वाली समस्याएँ है । और पात्र भी साधारण लोग ही है । इनमें कल्पना की ऊची उडान भी नही होती । आकार-प्रकार मे भी ये छोटे होते है । इनमे रग-मच के सकेत भी विस्तृत होते है । आज के नाटक उपन्यास के वर्णन का स्थान लेते जा रहे है ।

प्रसादजी के पश्चात् नाटक-क्षेत्रो मे प० बद्रीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प० गोविन्दवल्लभ पन्त, चतुरसेन शास्त्री, उदयशकर भट्ट, व हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने सराहनीय कार्य किया । भट्ट जी के नाटको मे हास्यरस का पुट अधिक है । पडित माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध', मिलिन्द जी ,का 'प्रताप-प्रतिज्ञा' पन्त जी के 'वरमाला' और 'राजमुकट' उदयशकर भट्ट के 'दाहर', 'विक्रमादित्य', 'विश्वामित्र', और प्रेमी जी के 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा-साधना' और 'प्रतिशोध' उपेन्द्रनाथ अश्क का 'जय पराजय' अच्छे नाटक है । प्रेमी जी ने अपने नाटक हिंदू-मुस्लिम-समस्या मे प्रेरित होकर लिखे है । उन्होने हिंदू-मुसलमानो को एक दूसरे के समीप ले जाने का प्रयास किया है । इनके नाटक साहित्यिक होने के साथ ही रगमच पर खेले जाने के योग्य है । इनके कई नाटको का सफलता पूर्वक अभिनय भी हो चुका है ।

चतुरसेन शास्त्री के नाटक ऐतिहासिक और पौराणिक है । उनकी अपनी शैली है । वे नाटको मे गीतो को स्थान नही देते । हाल ही में उन्होने 'भास' और 'भवभूति' के सस्कृत नाटको का अनुवाद 'श्रीराम' और 'सीताराम' नाम से किया है । उनके अनुवाद का ढग भी नया है ।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव के नाटक अधिकाश हास्य रस के होते है, किंतु इनका हास्य रस उच्च कोटि का नही । रामनरेश त्रिपाठी का 'जयन्त' और सुमित्रा-नन्दन 'पन्त' का 'ज्योत्स्ना' साहित्यिक दृष्टि से उत्तम नाटक है । प०पृथ्वीराज शर्मा के 'दुविधा' और 'अपराधी' सामाजिक नाटक है, जो यूरोपीय ढग से लिखे गये है । रगमच पर खेलने के लिए भी वे उपयुक्त है ।

सेठ गोविन्ददास आधुनिक नाटककारो मे एक प्रमुख स्थान रखते है । इनके 'प्रकाश', 'कर्त्तव्य', 'हर्ष', 'नवरस' और 'कुलीनता' आदि नाटक अच्छे है ।

इनके नाटको मे वर्तमान राजनैतिक आदोलनो का अच्छा चित्रण है। प० लक्ष्मी-नारायण मिश्र के 'सन्यासी', 'राक्षस का मन्दिर', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', आदि समस्या-नाटक अच्छे है। मिश्र जी का नवीन ऐतिहासिक नाटक 'वत्सराज' भी सुन्दर बन पडा है। भास के 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' का आधार लेते हुए भी लेखक ने इसमें अपनी नवीन सूझ-बूझ का प्रमाण दिया है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'छलना' एक नाट्य रूपक है, जो प्रसाद जी की 'कामना' के ढग पर लिखा गया है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'स्वर्ग की झलक', भट्ट जी की 'कमला' सुदर्शन का 'भाग्य-चक्र', सद्गुरुशरण अवस्थी का 'मुद्रिका', गोविंदवल्लभ पन्त का 'अगूर की बेटी' नवीन ढग के नाटको के अच्छे उदाहरण है। उदयशकर भट्ट ने पौराणिक नाटको के अतिरिक्त 'मत्स्यगन्धा' तथा 'राधा' आदि कई गीति-नाट्य भी लिखे है। श्री वी०पी० माधव का 'आदर्श वीरता' महोबे के प्रसिद्ध वीर आल्हा-ऊदल को लेकर लिखा गया है।

इन नाटको के अतिरिक्त अब हिंदी मे एकाकी नाटको का प्रचलन बढता जा रहा है। डा० रामकुमार वर्मा के—'पृथ्वीराज की आखे', 'रेशमी टाई', 'चारु-मित्रा', आदि एकाकी सग्रह निकल चुके है। भुवनेश्वरप्रसाद का 'कारवा', भट्ट जी का 'समस्या का अत' और 'धूम शिखा' एकाकी सग्रह निकल चुके है। इनके अति-रिक्त उपेन्द्रनाथ अश्क, सुदर्शन, सेठ गोविन्ददास, विष्णुप्रभाकर, गणेशप्रसाद द्विवेदी ने भी बहुत से एकाकी लिखे है। एकाकी का ज़ोर अब उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। वे रगमच के उपयुक्त होते है और इनमे समस्या-मूलक, भावनाट्य, मोनो-ड्रामा, कवित्वपद, प्रहसनादि अनेक रूप मिलते है। हमे विश्वास है कि हिंदी-रगमच और एकाकी नाटक का भविष्य उज्ज्वल रहेगा।

उपन्यास

द्विवेदी-युग मे नाटको की भाति उपन्यास-क्षेत्र मे भी अनुवादो की भरमार रही। यो तो मौलिक उपन्यास भी लिखे गये, किंतु बहुत-कम। बगला के उपन्यासो के अनुवाद सब से अधिक हुए। इस युग मे कोई भी नवीन उपन्यासकार नही हुआ। हाँ, बाबू देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी के जासूसी उपन्यासो की चर्चा अवश्य रही। ये उपन्यास तिलिस्मी और रोमाचकारी होते थे। किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक उपन्यास भी लिखे। उन दिनो हिंदू समाज में एक नही, अनेक बुराइया विद्यमान थी। भाई-भाई के झगडे, स्त्री का निम्न-स्थान, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह आदि इन्ही समस्याओ को लेकर उपन्यास लिखे गये। अत सामाजिक उपन्यासो की एक बाढ-सी आ गई। द्विवेदी-युग मे

हम दो प्रकार के उपन्यास पाते है, एक सामाजिक दूसरे तिस्लिमी और जासूसी।

साधारण जनता जो व्यवसाय आदि करती थी और मनोरजन के लिए उपन्यास पढती थी, उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति जासूसी उपन्यासो ने की। परन्तु उच्च वर्ग की जनता, विशेषत अग्रेजी पढे-लिखे लोग इनसे असतुष्ट थे। उच्च वर्ग की जनता ने बगला अनुवादो की ओर रुचि प्रदर्शित की। इसी कारण बकिमचन्द्र, आदि के कई अनुवाद हुए। इन अनुवादो ने ही सुदर लेखक उत्पन्न किये। क्योकि उस समय के अनेक पाठक अच्छे उपन्यासो की माग करने लगे और कितने ही इन्हे पढ-पढ कर लेखक बन गये।

उपन्यास कला का नवीन युग मुन्शी प्रेमचन्द जी से आरम्भ होता है। उन्होने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से हिंदी-उपन्यास-क्षेत्र की काया ही पलट दी। प्रेमचन्द की विशेषता यह है कि उन्होने अपने उपन्यासो मे जीवन के तत्कालीन सघर्ष का चित्रण किया। प्रेमचन्द जी ने दर्जनो उपन्यास लिखे और सभी मे किसानो और मजदूरो की दुर्दशा, मध्यम वर्ग की कुरीतियो का सफलतापूर्वक चित्रण किया। उनके उपन्यास में 'कर्मभूमि', 'रगभूमि', 'ग्रबन' 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'प्रतिज्ञा', 'काया-कल्प', 'निर्मला' और 'गोदान' उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द जी के उपन्यासो मे आशा और उत्साह का एक नवीन सदेश रहता है। उनकी रचनाएँ राष्ट्रीयता के रग में रगी हुई है।

प्रेमचन्द जी की भाषा बोलचाल की सरल भाषा है जिस में उर्दू की छाप के कारण अधिक प्रवाह और सुन्दरता आ गई। बीच-बीच में मुहावरो के प्रयोग ने उनकी भाषा को और भी सजीव और आकर्षक बना दिया है।

प्रेमचन्द जी के बाद इनकी श्रेणी में आने वाले लेखको में सर्वश्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जयशकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन, जैनेद्रकुमार और सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन लेखको ने गाधीवाद, असहयोग, समाजसुधार आदि की भावना को लेकर उपन्यास क्षेत्र में नये प्रयोग किये।

विश्वम्भरनाथ कौशिक के 'मा', 'भिखारिणी' और 'सघर्ष' उपन्यास हिंदी के उत्कृष्ट उपन्यास है। इन्होने प्रेमचन्द की परिपाटी को आगे बढ़ाने में योग दिया।

श्री जयशकर प्रसाद एक यथार्थवादी उपन्यास लेखक थे। उन्होने अपने उपन्यासो में समाज की तात्कालिक धार्मिक, सास्कृतिक और सामाजिक कुरीतियो का भडाफोड करके रूढ़िवाद, जातीय प्रतिष्ठा और उच्च वर्गीयता के विरुद्ध

प्रबल आन्दोलन किया। 'ककाल', 'तितली', और 'इरावती' उनके प्रसिद्ध उपन्यास है।

श्री चतुरसेन शास्त्री के 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा', 'वैशाली की नगर-वधू' आदि प्रसिद्ध उपन्यास है। इनके उपन्यासो ने समाज मे भयकर काम-लोलुपता की वृत्ति को जगाया है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो मे ऐतिहासिक सस्कृति का दिव्य सदेश मिलता है। उनका 'झासी की रानी' उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुआ है। 'कभी-न-कभी' मे मजदूर जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इनके अतिरिक्त उनके विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी', 'गढ कुडार', 'कुडली चक्र', 'कोतवाल की करामात', तथा 'अचल मेरा कोई', उपन्यासो ने हिंदी जगत् में विशेष आदर पाया है। वर्मा जी ने उपन्यासो के अतिरिक्त नाटक भी अनेक लिखे है। जिनमे से हसमयूर, नीलकठ और पूर्व की ओर ये तीनो उनके नये नाटक पर्याप्त सफल है।

श्री 'उग्र' जी ने अपने 'चन्दहसीनो के खतूत', 'बुधुआ की बेटी', 'घण्टा', तथा 'चुम्बन', 'अन्नदाता' आदि उपन्यासो मे जीवन की सच्ची वृत्तियो और दमन की शृङ्खला को तोडकर यौवन के मासल अनुभव की झाकी दी है। उग्र जी की भाषा और विचार दोनो ही उग्र है। उनकी रचनाएँ भी उनके उग्र व्यक्तित्व से आच्छादित है।

श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपने उपन्यासो मे भारतीय नारी के अनेक रूपो का चित्रण किया है। उनके उपन्यासो में हमें नारी के प्रति एक विचित्र कामुकतामयी भावना देखने को मिलती है। उन्होने नारी को जिस नग्न रूप मे दिखाया है उससे उसकी मनोभूमि पर आघात पहुँचा है। इनके 'सुनीता', 'कल्याणी' और 'त्याग-पत्र' आदि उपन्यास ऐसे ही है।

'निराला' जी के 'अप्सरा', 'अलका' तथा 'प्रभावती' उपन्यास उल्लेख-नीय है। उन्होने वर्तमान युग के नारी -जागरण की कर्कश भावनाओ को छोडकर विज्ञान-मूलक भावो को ही अपनाया है।

दूसरे प्रकार के उपन्यासकारो में हम सर्वश्री भगवतीचरण वर्मा, भगवती-प्रसाद वाजपेयी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव और सियारामशरण गुप्त के नाम ले सकते है। भगवतीचरण वर्मा ने हिंदी-उपन्यासो में एक नवीन क्राति उत्पन्न की है। उनके 'पतन', 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष' और 'टेढे मेढे रास्ते' चार उपन्यास उल्लेखनीय है। वर्माजी के उपन्यासोमे हमे एक नवीन कल्पना और नई शैली और नवीन विचार मिलते है। 'चित्रलेखा' मे एक सास्कृतिक सदेश मिलता है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अपने उपन्यासो में जीवन के व्यग्य को बडी निर्ममता के साथ चित्रित किया है। पूजीवादी वर्ग के द्वारा आज सामाजिक क्षेत्र मे जो दु खद घटनाएँ हो रही है, उनका उन्होने सजीव चित्रण किया है। उनके 'दो बहने', 'पतिता की साधना', 'पिपासी' तथा 'निमत्रण' प्रसिद्ध उपन्यास है।

श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस', 'विकास' और 'विदा' तीनो अच्छे उपन्यास है। उन्होने अपने उपन्यासो मे सामाजिक रूढियो को तोडकर नवसमाज के निर्माण का सकेत किया है। हाल ही में आपका 'विसर्जन' नामक नया उपन्यास और प्रकाशित हुआ है।

सियारामशरण गुप्त वास्तव मे कवि है। शौक पूरा करने के लिए 'गोद' 'नारी' और 'अन्तिम आकाक्षा' तीन उपन्यास भी लिखे है। जैनेद्र जी की भाति इन्होने भी अपने उपन्यासो मे नारी का ही रूप चित्रण किया है। यह एक आश्चर्य की बात है कि जैनेद्र और सियारामशरण गुप्त दोनो ही गाधी जी के सिद्धातो— सत्य, अहिसा, अस्तेय आदि के समर्थक है, किंतु इनके उपन्यासो मे इन सिद्धातो की छाया भी नही मिलती।

उपर्युक्त उपन्यास-लेखको के अतिरिक्त श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' और श्री गुरुदत्त जी का उल्लेख न करना भी अन्याय होगा। 'वियोगी' जी कवि है, किंतु 'एकाकी' 'विसर्जन', 'शेषदान' और 'फरार' आदि उपन्यास लिखकर इन्होने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। इन के उपन्यासो पर प्रसिद्ध बगला उपन्यासकार शरत् की छाप दृष्टिगोचर होती है।

श्री गुरुदत्त जी के 'स्वाधीनता के पथपर', 'उन्मुक्त-प्रेम', 'पथिक', 'विकृत छाया' और 'स्वराज्य-लग्न' पाच उपन्यास प्रकाश मे आये है। इन के उपन्यासो में राष्ट्रीय चेतना की प्रबल भावना मिलती है। 'विकृत-छाया' मे समाज की वर्तमान कुरीतियो का चित्रण किया गया है। 'बहती रेता' उनका एक नवीन सुन्दर उपन्यास है।

तीसरी श्रेणी की उपन्यासकारो मे तरुण पीढी के प्रगतिशील लेखक है, जिनमे उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय, श्रीकृष्णदास, यशपाल, पहाडी, सर्वदानन्द वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अचल, उदयशकर भट्ट और राहुल साकृत्यायन के नाम प्रमुख है। इनकी रचनाओ का विवरण हम प्रगतिवाद के प्रकरण में देगे।

महिला-लेखिकाओ में कुमारी कचनलता सब्बरवाल और उषादेवी मित्रा का नाम उल्लेखनीय है। कुमारी कचनलता ने अपने 'भोली भूल' 'मूक प्रश्न' 'सकल्प' और 'मूक तपस्वी' आदि उपन्यासो में भारतीय नारी के उज्ज्वल स्वरूप

का भली भाति दिग्दर्शन कराया है।

विजयकुमार पुजारी के 'पर्दे के पीछे', नेपाल का मोर्चा' और 'आत्मदान' ये तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके है।

उषादेवी मित्रा के चार उपन्यास 'वचन का मोल', 'मुस्कान', 'आवाज' और 'पिया' प्रकाश मे आ चुके है। इन्होने अपने उपन्यासो में नारी की समस्याओ को लेकर उसके पक्ष का प्रबल समर्थन किया है।

कहानी

द्विवेदी-युग के कहानी साहित्य का उल्लेख पीछे हो चुका है। उस युग में 'सरस्वती', 'इन्दु' तथा 'शकर' आदि मासिक पत्रिकाओ ने कहानी-साहित्य का यथेष्ठ प्रचार किया और श्री जयशकरप्रसाद, प विश्वम्भरनाथ जिज्जा, राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' प्रभृति लेखको ने कहानी साहित्य को विकास की ओर उन्मुख किया।

आधुनिक युग मे श्री प्रेमचन्द जी के साथ ही कहानी के विकास-काल का आरम्भ होता है। प्रेमचन्द जी ने छोटी-बडी लगभग ४०० कहानिया लिखी। इन्होने कहानी साहित्य को एक चचल-चपल-बालिका से गुरु, गम्भीर लाजवन्ती का रूप दिया। प्रेमचन्द जी की कहानिया बहुत लोक-प्रिय है और ससार की लगभग सभी समृद्ध भाषाओ मे उनका अनुवाद हो चुका है। इनकी कहानियो के सग्रह 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम-प्रसून' 'नवनिधि', 'सप्त-सरोज' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रेमचन्द जी के पश्चात् 'प्रसाद' जी, चतुरसेन शास्त्री, कौशिक, रायकृष्ण-दास, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, सुदर्शन और जैनेद्रकुमार, चडीप्रसाद 'हृदयेश' आदि कहानीकारो ने हिंदी के कहानी-साहित्य के भडार को भरपूर किया।

'प्रसाद' जी की कहानिया उनकी कवि-कल्पना से युक्त अत्यन्त मधुर और हृदयस्पर्शी होती थी। यद्यपि उन्होने अधिक कहानिया नही लिखी, तथापि जो कुछ लिखी वे उच्च-कोटि की थी। चतुरसेन जी ने भारतीय इतिहास के आधार पर कहानी-रचना की। इनकी कहानियो मे वैभव, विलास और यौवन-मद के चित्र अकित है। इन की कहानियो ने इनकी भाषा के गठन और तडक-भडक के कारण खूब सफलता पाई है।

रायकृष्णदास ने ऐतिहासिक और सामाजिक कहानिया अधिक लिखी हैं। उग्र जी की कहानियो में एक विद्रोहात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है। इनकी भाषा और शैली के प्रलयकारी आवेग ने इनके विचारो को और भी उग्र रूप दे दिया है।

इनकी भाषा और शैली पर उर्दू का प्रभाव भी पडा है।

श्री विश्वम्भरनाथ कौशिक की कहानिया अधिकतर सामाजिक होती है। इन की अधिकाश कहानियो मे शहरी जीवन के अच्छे चित्र खीचे गये है। कौशिक जी की कहानिया वार्तालाप-प्रधान होती है। कौशिक जी के साथ ही श्री सुदर्शन जी का भी नाम आता है। इन्होने कुछ कहानियो की रचना राजनैतिक आन्दोलनो से प्रेरित होकर की हैं। इनकी 'न्याय-मन्त्री' शीर्षक कहानी ऐतिहासिक है। जिसने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है। सुदर्शन जी ने भी शहरी जीवन के चित्र खीचने में सफलता प्राप्त की है।

श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' की कहानिया देशभक्तिपूर्ण है। उनमें भाषा का चमत्कार अधिक है। उनकी कहानिया गद्य-काव्य-सी जान पडती है। इनका उपन्यास 'मगल प्रभात' भी सुन्दर है।

प्रेमचन्द जी के पश्चात् हिंदी कहानियो मे सर्वप्रथम नवीनता लेकर आने वाले जैनेन्द्रकुमार है। इनकी कहानियो मे युग की नई भावनाओ के दर्शन होते है। इनकी कहानियो के पात्रों में वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रचुरता मिलती है। इन्होने जीवन-दर्शन मे नारी का एक अद्भुत स्वरूप हमारे सामने रखा है। इनकी 'अपना-अपना भाग्य' और 'निर्मम' कहानिया अच्छी है। जैनेद्र जी की कहानियो में उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। वे जैसे नीरस, शुष्क और दार्शनिक के रूप मे हमारे सामने आते है उनकी कहानिया उसी रूप को परोक्ष में बराबर लाती है। कदाचित् यही व्यक्तित्व उनको जनता के समीप पहुचने में बाधा डाल रहा है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने पिछले दिनो अनेक अच्छी कहानियो की रचना की है। कहानिया यथार्थवाद के दृष्टिकोण को लेकर लिखी गई है।

श्री भगवतीचरण वर्मा की कहानियो का सग्रह 'इन्स्टालमेंट' नाम से पहली बार हिंदी जगत् के सामने आया। वर्मा जी की कहानियो में एक उच्छृखलता पाई जाती है। उनके कथानक विशेषत नवीन समाज को लिए होते है। उन्होने नवीन नारी का भी चित्रण किया है, जो धन के लिए प्रेम बेच देती है,परन्तु अपने हृदय का एकाश भी पुरुष को नही देती। वह पुरुष को भुलावा देकर मृत्यु तक ले जाती है। उन्होने अपनी 'बाय' 'एक पेग', 'प्रेजेन्ट्स' 'उत्तरदायित्व' आदि कहानियो में इसी नारी को बार-बार दोहराया है।

श्री निराला जी की कहानिया अधिकत कल्पना-प्रधान है, क्योंकि वे कवि है। उनकी कहानियो के सग्रह 'लिली' और 'सखी' नाम से निकल चुके हैं। 'भक्त और भावना' निराला जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। यह कहानी कहानी-क्षेत्र में

एक नई भूमि उपस्थित करती है। यह एक सुन्दर आध्यात्मिक कहानी है। हिंदू मूर्ति मे जो प्रतीक है, उसकी यह सफल व्याख्या है।

इसके अतिरिक्त श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त', श्री विनोद शकर व्यास, सियारामशरण गुप्त, विष्णु प्रभाकर, श्रीराम शर्मा 'राम', रामचन्द्र तिवारी प्रभृति लेखक अपनी कृति-कला से कहानी साहित्य की अभिवृद्धि कर रहे है। हास्य-रस के कहानी-लेखको मे अन्न-पूर्णानन्द, कृष्णदेवप्रसाद गौड, हरिशकर-शर्मा, राधाकृष्ण, रघुकुल तिलक और गोपालप्रसाद व्यास के नाम उल्लेखनीय है। इनकी हास्य रस की कृतिया उच्च कोटि की होती है। उनमे प्राय अभद्रता नही होती।

हिंदी में स्त्री-कहानी-लेखिकाओ मे शिवरानी देवी, स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, कमला देवी चौधरानी, उषादेवी मित्रा तथा होमवती देवी, सत्यवती मलिक, निर्मला माथुर, कुवरानी तारा देवी रामेश्वरी शर्मा आदि ने विशेष ख्याति प्राप्त की है।

निबन्ध

द्विवेदीकालीन निबन्ध-रचना का उल्लेख पीछे हो चुका है। निबन्धो की दृष्टि से भारतेन्दु-युग द्विवेदी-युग से अधिक हार्दिक था। इसका कारण यह है कि वह निबन्धो की परम्परा का नवीन काल था। उसमे हिंदी की अपनी सामाजिक स्वाभाविकता बनी रही। उसके बाद यह स्वाभाविकता कम होती चली गई। यो तो निबन्ध आज भी लिखे जाते है, उनमे शैली का विकास हुआ है, विचार भी विकसित हुए है किंतु उस स्वाभाविक स्वास्थ्य का उनमे अभाव है, जो प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि के लेखो मे है।

निबन्ध-रचना का तीसरा और अन्तिम युग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की शुद्ध निबन्ध-रचना से आरम्भ होता है। आचार्य शुक्ल वैसे तो द्विवेदीकाल के ही लेखक थे, किंतु उन्होने तटस्थ रहकर द्विवेदी-कालीन साहित्य की गम्भीर परख की। अपने गम्भीर अध्ययन के अनुभवो तथा प्रतिभा के द्वारा उन्होनें द्विवेदी युग की कहानियो को पूरा ही नही किया, प्रत्युत हिंदी को बहुत-कुछ नवीन देन भी दी। शुक्ल जी ने क्रोध, करुणा, उत्साह, घृणा, श्रद्धा आदि विषयो पर विश्लेषणात्मक निबन्ध लिखे और कविता, कहानी, उपन्यास आदि विषयो पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखे। पहले प्रकार के निबन्धों में मनोविकारो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। और दूसरे प्रकार के निबन्ध साहित्यिक आलोचना की दृष्टि से बहुत सुन्दर है। हिंदी-साहित्य में इनके पहले ऐसे लेख

बहुत कम लिखे गये थे। विचारो की गम्भीरता और मौलिकता की दृष्टि से ऐसे निबन्ध आज तक नही लिखे गये है। इस दृष्टि से हम शुक्ल जी की तुलना रस्किन और बेकन से कर सकते है। आपके निबन्धो के सग्रह 'विचार-वीथी' 'चिन्तामणि' और 'त्रिवेणी' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

शुक्ल जी के पश्चात् प० पद्मसिंह शर्मा और जयशकरप्रसाद तथा प्रेमचन्द जी ने भी कुछ निबन्ध रचना की है। प्रसाद जी के लेख 'काव्य और कला' तथा अन्य 'निबन्ध' नाम से प्रकाशित हो चुके है। प्रेमचन्द जी के निबन्धो का सग्रह 'कुछ विचार' नाम से प्रकाशित हो चुका है। वैसे भी इनके साहित्यिक लेख 'हस मे बराबर प्रकाशित होते रहते थे।

प्रेमचन्द जी के पश्चात् हम रायकृष्णदास जी का नाम निबन्धकारो में ले सकते है, किंतु इनके निबन्ध कोई महत्त्वपूर्ण नही है। इनके लेखो को हम रहस्यात्मक ढग से लिखे गये गद्य-काव्य ही कह सकते है। इनके लेखो के सग्रह 'साधना' 'सलाप' 'पगला', 'छायापथ' और 'प्रवाल' नाम से प्रकाशित हो चुके है। श्री वियोगीहरि जी भी इसी प्रकार के निबन्ध-लेखक कहे जा सकते है। वियोगी हरि जी बडे भक्त-हृदय और भावुक तथा साहित्य-प्रेमी है। इनके रहस्यात्मक लेखो के सग्रह 'अन्तर्नाद', 'ठडेछीटे' और 'साहित्य-विहार' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

बाबू गुलाबराय जी का आधुनिक निबन्ध-लेखको मे प्रमुख स्थान है। इनके निबन्ध अधिकाश आलोचनात्मक होते है, जिन पर इनके गम्भीर अध्ययन की छाप दृष्टिगोचर होती है।

श्री **पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी** की गणना भी प्रमुख निबन्ध-लेखको मे की जाती है। इनका अध्ययन गम्भीर और व्यापक है। ये पाश्चात्य भाषाओ और साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता है। यही कारण है कि इनके निबन्धो मे पाश्चात्य ढग की समीक्षा और पाश्चात्य साहित्य से भारतीय साहित्य की तुलना प्राय देखी जाती है। 'विश्व-साहित्य' इनका इसी दृष्टिकोण से लिखे गये निबन्धो का सग्रह है। इनकी दूसरी पुस्तक 'प्रबन्ध-पारिजात' है, जिसमे निबन्ध-निर्माण कला पर प्रकाश डाला गया है। हाल ही में इनके २० निबन्धो का सुन्दर सग्रह 'कुछ' नाम से प्रकाशित हुआ है।

आलोचनात्मक निबन्ध लिखने वालो में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी और हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम प्रमुख है। नन्ददुलारे वाजपेयी के लेख गम्भीर

और उच्च-कोटि के होते हैं। आप साहित्य के अद्वितीय पारखी हैं। हजारी-प्रसाद द्विवेदी की कुछ मूल्यवान् साहित्य कृतिया साहित्य की अमूल्य निधि है, जिनमें 'सूर-साहित्य' और 'हिंदी-साहित्य की भूमिका' उल्लेखनीय हैं। इनके आलोचनात्मक निबन्धो का सग्रह 'विचार और वितर्क' नाम से अभी प्रकाशित हुआ है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा भी हिंदी-साहित्य के गम्भीर मर्मज्ञ और भाषा शास्त्र के प्रकाड पडित हैं। आपने विभिन्न विषयो पर स्फुट निबन्ध लिखे हैं। आपके निबन्धो का सग्रह 'विचार-धारा' नाम से अभी प्रकाश में आया है। आपके यूरोप से लिख कर भेजे हुए निबन्ध समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते हैं।

आधुनिक निबन्धो मे डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल का भी प्रमुख स्थान है। आप एक श्रेष्ठ निबन्धकार थे। आपके निबन्ध तर्कपूर्ण और न्यायसगत होते थे, जिन मे विवेचना की प्रधानता रहती थी। आपके प्रमुख निबन्ध 'जायसी का अध्यात्म-वाद' और 'पद्मावत की कहानी', 'हिंदी काव्य की निरजन धारा', 'हिंदी कविता में योग-प्रवाह,' 'मीराबाई' और 'वल्लभाचार्य' हैं।

डा० रामकुमार वर्मा के निबन्ध भी साहित्यिक दृष्टि से उच्च-कोटि के हैं। इनके विचार गम्भीर और शैली गठी हुई होती है। 'साहित्य-समालोचना' और 'विचार-दर्शन' आपके निबन्ध-कला-कौशल का उत्कृष्ट प्रमाण है।

श्री **रामकृष्ण शुक्ल** और **शान्तिप्रिय द्विवेदी** जी का नाम भी आलोचनात्मक निबन्धकारो मे स्मरणीय है। द्विवेदी जी ने साहित्यिक विषयो पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं। द्विवेदी जी के निबन्धो के पाच सग्रह 'हमारे साहित्य-निर्माता', 'कवि और काव्य', 'साहित्यिकी', 'जीवन-यात्रा', तथा 'सचारिणी' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

डा० रघुवीरसिंह भी एक श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। आप हिंदी-साहित्य के गम्भीर मर्मज्ञ हैं और साथ ही निबन्ध-रचना-कला में भी पारगत हैं। आपके निबन्ध 'शेष-स्मृतियाँ', 'सप्तदीप', 'जीवनधूलि' और 'जीवन कण' मे सग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त पूर्व मध्यकालीन भारत, बिखरे फूल, मालव में युगान्तर, रतलाम का प्रथम राज्य, पूर्व आधुनिक राजस्थान आदि अन्यान्य रचनाओ से आपकी इतिहास अनुसन्धान विषयक विद्वत्ता प्रकट होती है।

श्री **जैनेंद्रकुमार** ने भी कहानी और उपन्यासो के अतिरिक्त कुछ निबन्ध भी लिखे हैं। साहित्यिक दृष्टि से आप के निबन्ध कोई महत्त्व नही रखते। हाँ,

विचारों की दृष्टि से अच्छे है। आपके लेखो के दो सग्रह 'जैनेद्र के विचार' और 'जड की बात' प्रकाशित हो चुके है।

कविवर सियारामशरण गुप्त ने भी कुछ निबन्ध लिखे हैं। यद्यपि आपके निबन्धो की सख्या अधिक नही है, तथापि जो कुछ है वह शुद्ध निबन्ध-रचना की दृष्टि से अच्छे है। 'झूठ-सच' नाम से आपके निबन्धो का सग्रह हिंदी जगत् को मिला है।

बा० सम्पूर्णानन्द जी—प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हैं। आपके निबध विचार-पूर्ण और प्रभावशाली होते है। समाजवाद और चिद्‌विलास नामक आपके ग्रथो पर मगलाप्रसाद पुरस्कार व अन्य कई पदक, परितोषिक आदि प्राप्त हो चुके है। धर्मवीर गाधी, महाराज छत्रसाल, भौतिक विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, ज्योति-विनोद, सृष्टि-क्रम-विचार, भारत के देशी राष्ट्र, चेतसिंह और काशी का विद्रोह, सम्राट् हर्षवर्द्धन, महाराज सिंधिया, चीन की राज्य-क्रान्ति, मिश्र की स्वाधीनता, अन्तर्राष्ट्रीय विधान, साम्यवाद का बिगुल, व्यक्ति और राज्य, आर्यो का आदि देश आदि हिन्दी ग्रथो के अतिरिक्त आपने अग्रेजी के भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। चिद्‌विलास और समाजवाद का गुजराती मे अनुवाद हो चुका है।

श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर—धार्मिक और दार्शनिक लेखको में आपका स्थान विशेष उल्लेखनीय है। वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, महाभारत, ईशोपनिषद्, केनोपनिषद् आदि अनेक सस्कृत ग्रथो के इन्होने हिन्दी मे प्रामाणिक अनुवाद उपस्थित किये है। स० २००८ का प्रथम गाधी-पुरस्कार आप ही को दिया गया है। अपने प्रसिद्ध वैदिक धर्म (स्वाध्याय मडल पारडी) के द्वारा हिन्दी-भाषा व राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा कर रहे है।

आचार्य अभयदेव—आपके निबन्ध सद्य प्रभावोत्पादक है। 'ब्राह्मण की गौ' आदि आपकी अनेक रचनाए प्रकाशित हो चुकी है। श्री अरविन्द के आध्यात्मिक पत्र 'अदिति' के सम्पादन कार्य में आप विशेष मनोयोग देते है।

श्री अमृतवाग्भवाचार्य—के धार्मिक, राजनैतिक व सास्कृतिक आदि विभिन्न विषयो के निबन्ध व सस्मरण 'श्री स्वाध्याय' आदि पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित होते रहते है। आत्मविलास, राष्ट्रालोक और उसका राष्ट्रसजीवन नामक सस्कृत भाष्य, श्री परशुराम स्तोत्र, सप्तपदी हृदय आदि रचनाओ से आपका प्रकाण्डपाण्डित्य प्रदर्शित होता है।

पण्डित सूर्यनारायण व्यास—आपके सामयिक निबधो को जनता बड़े चाव से पढती है। कालीदास प्रेरित 'शिल्प शृगार' का हिन्दी अनुवाद 'मेरी

यूरोप यात्रा' आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। 'विक्रम' नामक आपका मासिक पत्र बेजोड है।

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय—आप भी उच्चकोटि के लेखक है। धार्मिक और सामाजिक विषयो पर लिखे गये आपके निबधात्मक 'आस्तिकवाद' नामक दार्शनिक ग्रथ पर आपको मगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चका है। शेक्सपियर के नाटको तथा ईशोपनिषद आदि ग्रथो का इन्होने सुन्दर अनुवाद किया है।

भगवानदास केला—हिंदी मे राजनीति, अर्थ शास्त्र, समाज शास्त्र आदि कई अनुपलब्ध और नवीन विषयो के लेखक है। इस क्षेत्र मे आपका कार्य अत्यन्त स्तुत्य है। शासन विज्ञान, भारतीय अर्थ शास्त्र तथा दर्शन विषयक अनेक ग्रथ लिखकर आपने छात्रो एव हिंदी जगत् का महान् उपकार किया है।

सत विनोबा भावे—आपके लेख अत्यन्त सात्विक एव विचार प्रवर्त्तक होते है। गाधी साहित्य के ये प्रामाणिक व्याख्याता है। भूमि-दान आन्दोलन को लेकर लिखी गई 'भूदान यज्ञ' नामक इनकी पुस्तक का पर्याप्त प्रचार हुआ है। 'विनोबा के विचार' मे इनके कई निबन्ध सकलित है।

रामदास गौड—ये विज्ञान धर्म, राजनीति आदि सभी नवीन प्राचीन विषयो पर अधिकार-पूर्ण रचनाएँ लिखते रहे थे। सस्कार-युग और सुकुमार युग के साहित्यस्रष्टाओ मे इनका अपना स्थान था।

कहानी और उपन्यास की भाति निबन्ध-क्षेत्र मे भी हमारी स्त्री-लेखिकाएँ पीछे नही रही है। इनमे सुश्री चन्दाबाई, गोदावरी केलकर, कमलाबाई किवे, महादेवी वर्मा और चन्द्रावती त्रिपाठी, दिनेशनन्दिनी डालमिया, भगवती देवी विह्वला, शचीरानी गुर्टू, निर्मला माथुर, विद्याविभा एम० ए० के नाम उल्लेखनीय है। इनके सुन्दर निबन्ध सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है।

समालोचना

हम पीछे बता चुके है कि द्विवेदी-काल में तुलनात्मक समालोचना का जोर रहा है। यद्यपि द्विवेदी जी ने आधुनिक समालोचना-पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत कर दी थी, तथापि द्विवेदी जी की प्रवृत्ति भी गुण-दोष ढूढने तक ही सीमित रही। कवियो की अन्तर्दृष्टि की प्रवृत्ति और प्रेरणा तक नही पहुँच पा रहे थे। उनकी समालोचनाएँ भी अधिकतर खडनात्मक ही होती थी। आधुनिक काल में व्याख्यात्मक समालोचना का जन्म हुआ। व्याख्यात्मक समालोचना में आलोचक

न तो अपनी सम्मति को ही प्रधानता देता है, और न आचार्यों के सिद्धातो ही को, क्योकि आचार्यों के सिद्धात तो प्राचीन साहित्य के आधार पर ही बनाये हुए है, अत नवीन साहित्य-स्रष्टाओ पर वे कैसे लागू हो सकते है। वरन् वह कवि को प्रधानता देता है। वह कवि की अन्तरात्मा में प्रवेश करके उसके आदर्शो, प्रवृत्तियो के अनुकूल उसकी व्याख्या करता है। इस प्रकार की आलोचना मे कवि के समय की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियो और उनके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। उसके वैयक्तिक चरित्र पर आधारित उसकी मानसिक स्थिति के सहारे भी उसकी वृत्तियो को समझने का प्रयत्न किया जाता है। यह समालोचना मनोवैज्ञानिक कहलाती है। आधुनिक काल मे मनोवैज्ञानिक आलोचना मे मनोविश्लेषण के सहारे लेखक के मन की अन्तर्भावनाओ तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है।

विकासकाल मे इस मनोवैज्ञानिक समालोचना के प्रवर्त्तक प रामचन्द्र शुक्ल थे। उन्होने समालोचको के सामने एक नवीन आदर्श रखा। शुक्ल जी से पहले जो लोग अग्रेजी साहित्य का अध्ययन करके हिंदी के आलोचना-क्षेत्र में आये, उनका आदर्श अग्रेजी आलोचको के विचारो का अनुवाद-मात्र कर देना था। कुछ लोग तो इससे भी आगे बढकर अग्रेजी कवियो और लेखको के विषयो में लिखी हुई उक्तियो और विचारो को वैसे ही हिंदी-कवियो और लेखको के विषय मे लिखने लगे। ऐसी आलोचनाओ मे मौलिकता या अध्ययन का तो अभाव था ही, साथ ही आलोचना सम्बन्धी भारतीय आदर्श के प्रति एक प्रकार की उदासीनता भी थी, जो हिंदी के लिये अहितकर थी। शुक्लजी ने इन दोनो को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होने सस्कृत और अग्रेजी के आलोचना-साहित्य का गम्भीर अध्ययन करके दोनो के सुन्दर समन्वय द्वारा मनोवैज्ञानिक आलोचना का नवीन आदर्श हिंदी-साहित्य के समीक्षको के सामने रखा। इस प्रकार भावी आलोचना के लिये वे पथ-प्रदर्शक बने। सूर, तुलसी, और जायसी पर लिखी हुई उनकी आलोचनाएँ इसी दृष्टि-कोण की है। उनके पहले हिंदी में गम्भीर और मननशील समीक्षा-साहित्य का जो अभाव था, उसकी पूर्ति करने का शुक्लजी ने सफल प्रयत्न किया। आगे चलकर कतिपय आलोचक इनकी पद्धति के अनुयायी बने।

पाश्चात्य ढग की मनोवैज्ञानिक समालोचना लिखने वालो में शुक्लजी के पश्चात् बाबू श्यामसुन्दरदास का नाम प्रख्यात है। उन्होने समालोचना सम्बन्धी सिद्धातो का योग्यतापूर्वक निरूपण किया है। इस विषय में इनका 'साहित्यालोचन'

एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है, जिसमे समीक्षा-सिद्धातो का प्रतिपादन किया गया है। उनके 'रूपक-रहस्य' मे नाटकीय सिद्धातो पर विवेचना की गई है। 'गोस्वामी तुलसीदास' और 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' भी इनके प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रथ हैं। तुलसीदास पर तो कई आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी गई है, किंतु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर इस प्रकार की पुस्तकें बहुत कम लिखी गई हैं।

समालोचना की शास्त्रीय पद्धति का स्वरूप-निदर्शन कराने वालो मे श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का भी विशेष स्थान है। उनकी 'हिंदी-साहित्य-विमर्श' और 'विश्व-साहित्य' आदि पुस्तके उनके गम्भीर अध्ययन और अनुशीलन की परिचायक है।

इस काल मे प्राचीन एव अर्वाचीन कवियो के ऊपर बहुत से आलोचनात्मक ग्रथ लिखे गये है। गगाप्रसाद सिंह ने 'पद्माकर की काव्य-साधना' तथा 'केशव की काव्य-कला' लिख कर दोनो कवियो पर प्रकाश डाला है। केशव की काव्य-कला मे केशवदास के आचार्यत्व का शास्त्रीय विवेचन किया गया है। श्री भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र 'माधव' कृत 'मीरा की प्रेम-साधना', रामकुमार वर्मा का 'कबीर का रहस्यवाद' नगेंद्र का 'सुमित्रानन्दन पन्त' तथा 'साकेत एक अध्ययन', सत्येंद्र जी की 'गुप्त जी की कला', नन्द दुलारे वाजपेयी का 'जयशकरप्रसाद', रामनाथ 'सुमन' की 'प्रसाद की काव्य-साधना' भी महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतिया हैं। तुलसी के ऊपर भी पर्याप्त आलोचनात्मक साहित्य इकट्ठा हो गया है। सद्‌गुरुशरण अवस्थी का 'तुलसी के चार दल' माताप्रसाद गुप्त का 'तुलसी-सदर्भ', डा० बलदेवप्रसाद मिश्र का 'तुलसी-दर्शन' रामदास गौड की लिखी हुई 'रामचरितमानस की भूमिका' तुलसी के साहित्य पर प्रकाश डालने वाले अच्छे ग्रथ हैं।

इसी प्रकार सूरदास जी के ऊपर भी कई ग्रथ लिखे गये है। नलिनीमोहन सान्याल का 'भक्तवर सूरदास' शिखरचन्द्र जैन का 'सूर एक अध्ययन' डा० रामरत्न भटनागर तथा श्री वाचस्पति त्रिपाठी द्वारा लिखित 'सूर-साहित्य की भूमिका' सूर-साहित्य पर प्रकाश डालने वाले अच्छे साहित्यिक ग्रथ है।

इसी प्रकार नाटको के ऊपर प्रकाश डालने वाली कई पुस्तकें लिखी गई हैं। प रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद जी की नाटचकला के साधारण सिद्धातों को बतलाकर प्रसाद जी के नाटको पर अच्छा प्रकाश डाला है। श्री व्रजरत्न दास का 'हिंदी नाटच-साहित्य', सेठ गोविन्ददास जी की 'नाटच-कला-मीमासा', नगेंद्र का 'आधुनिक हिंदी नाटक' सत्येंद्र जी का 'हिंदी-एकाकी' गुलाबाराय जी का

'हिंदी नाटच विमर्श' श्री सोमनाथ गुप्त का 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' नाटको पर प्रकाश डालने वाली अच्छी पुस्तकें है ।

इस काल मे हिंदी साहित्य के कई आलोचनात्मक इतिहास भी लिखे गये हैं। बा श्यामसुन्दर दास का 'हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास' श्री डा सूर्यकान्त जी का 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', कृष्णशकर शुक्ल का 'आधुनिक साहित्य का इतिहास' रामकुमार वर्मा का 'हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास' प्रो० मोहनलाल 'जिज्ञासु' का हिन्दी गद्य का विकास, प्रो० समारचन्द्र का 'हिन्दी गद्य का प्रसार' इस विषय के महत्त्वपूर्ण इतिहास है ।

समालोचना के सिद्धातो पर भी कई महत्त्वपूर्ण ग्रथो की रचना हुई है। बाबू श्यामसुन्दरदास कृत 'साहित्यालोचना' के अतिरिक्त नलिनी मोहन सान्याल का 'आलोचना-तत्त्व', सुधाशु जी का 'काव्य मे अभिव्यजनावाद', इलाचन्द्र जोशी की 'साहित्य-सर्जन' पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव की 'आदर्श और यथार्थवाद' श्री डा० सोमनाथ गुप्त रसाल का 'आलोचना और उसके सिद्धान्त' महत्त्वपूर्ण पुस्तकें है ।

प्राचीन ढग की रस और अलकार की पुस्तको मे सेठ कन्हैयालाल पोद्दार की 'रस-मजरी' और 'अलकार-मजरी', बा गुलाबराय का 'नव-रस' केडिया जी का 'भारती-भूषण', हरिशकरजी का 'रस रत्नाकर'रसाल जी का 'अलकार-पीयूष' प्रो० ससारचन्द्र की छन्दोऽलकार मजरी आदि ग्रथ उल्लेखनीय है।

चन्द्रबली पाडेय ने सूफी साहित्य पढ-सुनकर मननात्मक समालोचना-साहित्य प्रकाशित कर हिंदी-साहित्य में इस अभाव की पूर्ति की है । पाडेय जी सूफी मत के प्रतिनिधि व्याख्याता व आलोचक है। श्री प परमेश्वरानन्द जी महामहोपाध्याय ने छन्दशिक्षा, अलकार-कौमुदी आदि अलकारादि विषयो पर सुन्दर ग्रथ लिखे है। महामहोपाध्याय जी सस्कृत के साथ ही साथ हिंदी के भी माने हुए लेखक है । सस्कृत मे तो इन के अनेक ग्रथ है।

उपर्युक्त आलोचको के अतिरिक्त डा० धीरेन्द्र वर्मा का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है । इन्होने शुक्ल जी और बाबू श्यामसुन्दरदास के बाद हिन्दी के आलोचना-साहित्य को एक नवीन गति और प्रेरणा दी है । आप तुलनात्मक समालोचना के स्थान पर कवि के ऐतिहासिक पक्ष का समर्थन करते है । श्री गुलाबराय जी की आलोचना-पद्धति में शुक्ल जी की प्रतिच्छाया दिखाई पडती है। इधर डाक्टर हेमचन्द्र जोशी ने हिन्दी में जो आलोचनाएँ की है, वे भी उल्लेखनीय हैं। उनकी समीक्षाएँ मनोवैज्ञानिक आधार पर होती हैं ।

नन्ददुलारे वाजपेयी साहित्य की बडी सूक्ष्म परख करते हैं। शुक्ल जी को यदि कौमेण्टिक स्फूर्ति मिल जाती, तो उनकी आलोचना का वही रूप होता, जो वाजपेयी जी की समालोचना का है। शुक्लजी की साहित्यिक परिस्थितियो को विकास देने वाले एक-मात्र वाजपेयी जी ही है । इनका मुख्य प्रयत्न रचना और रचनाकार के मनोवैज्ञानिक उद्घाटन की ओर है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी तत्त्व-बोधक आलोचक हैं । 'कबीर' और 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' से स्पष्ट है कि वे भावुक कम है और आनुसन्धानिक अधिक। पुरातत्त्व की भाँति ही वे कवित्व का भी स्थापत्य उपस्थित करते हैं। इसलिए उनकी शैली प्रतिपादन की ओर है। उनके अनुसन्धान का क्षेत्र हृदय का रमणीय लोक है, अतएव स्वभावत उनके प्रतिपादन में भी रमणीयता है।

श्री चन्द्रवलि पाण्डेय एम० ए०—ने 'तस्सवुफ अथवा सूफीमत' नामक पुस्तक में सूफी सिद्धातो की जैसी सुन्दर विवेचना की है वह दर्शनीय है। समालोचना-साहित्य मे इस ग्रथ का अपना विशेष स्थान है।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—पत्र-पत्रिकाओ में लेख लिखकर साहित्य एव साहित्यकारो के सरक्षण सम्बन्धी समालोचक के मुख्य कर्त्तव्य का पालन कर रहे है। आपके समालोचनात्मक लेख बडे चाव से पढे जाते है।

पडित किशोरीदास वाजपेई—भी एक खडे समालोचक है, 'रहस्यवाद' नामक पुस्तिका में रहस्यवाद की खडी और मार्मिक आलोचना की है। ब्रजभाषा का व्याकरण तो आपकी इस विषय की एकमात्र रचना है। इनका 'द्वापर की राज्य-क्रान्ति' नामक नाटक भी सुन्दर बन पडा है।

श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—के समालोचनात्मक निबन्ध अत्यन्त गम्भीर और मनन-पूर्ण होते है।

समालोचना के सिद्धान्त-सम्बन्धी इधर कुछ नवीन रचनाएँ आई है जैसे कि—डा० सूर्यकात कृत 'साहित्य-मीमासा' का उच्च कक्षाओ में विशेष आदर हुआ। इसमें पूर्वीय और पश्चिमीय दोनो दृष्टियो से साहित्य का सुन्दर विवेचन हुआ है। 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास भी' इनका आलोचना सम्बन्धी एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। सात महा मानव, जवाहरलाल, एक अनुशीलन आदि इनकी जीवन-चरित्र सम्बन्धी रचनाएँ भी सुन्दर बन पडी है, डा० इन्द्रनाथ मदान कृत 'हिन्दी कलाकार' नामक ग्रन्थ भी अपने ढग का एक ही है। इसमें सूर, तुलसी, गुप्त जी, प्रसाद जी आदि अनेक नये, पुराने कलाकारो की विशेष-

ताओ को अत्यन्त प्राजल भाषा में प्रकट किया गया है। 'प्रेमचन्द एक विवेचना' और 'काव्य विवेचना' इनके उत्कृष्ट आलोचनात्मक ग्रथ है।

पडित रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख कृत 'काव्य-जिज्ञासा' और 'आलोचना समुच्चय' भी अपने विषय की अच्छी रचनाएँ है।

डा० सोमनाथ गुप्त कृत 'आलोचना और उसके सिद्धात' नामक ग्रथ हाल ही में प्रकाश मे आया है।

डा० हरदेव बाहरी—की 'काव्य शैली के विकास' नामक पुस्तक अपने विषय की एक अच्छी रचना है।

शचीरानी गुर्टू—ने 'साहित्य दर्शन' नामक ग्रन्थ मे हिन्दी के प्रसिद्ध कवियो के साथ यूरोप के प्रसिद्ध कलाकारो की सुन्दर तुलना उपस्थित की है। यह ग्रथ भी अपने ढग का एक ही बन पडा है।

पं० रामधन शास्त्री—ने सूरदास की 'साहित्य-लहरी' या सूरदास के दृष्टिकूट पर एक बडा विवेचनात्मक ग्रथ लिखकर सूरदास के समालोचना-सम्बन्धी कार्य को आगे बढाया है। इनकी तथा सरनदास भनोत' की लिखी हुई 'भारतीय सस्कृति की रूपरेखा' भी सुन्दर है। इनकी लिखी हुई रघुवश की व्याख्यात्मक आलोचना भी अच्छी बन पडी है।

आजकल प्रगतिवाद के झडे के नीचे मार्क्सवादी विचार-धारा की आलोचना का प्रचार हो रहा है। मार्क्सवादी विचार-धारा कला की अपेक्षा भौतिक आवश्यकताओ को अधिक महत्त्व देती है। इसी ध्येय को अग्रसर करने के मापदण्ड से वे साहित्य का मूल्याकन करते है। प्रगतिवादी आलोचको में श्री शिवदानसिंह चौहान, डा० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, भगवतशरण उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, गजानन माधव, मुक्तिबोध, अमृतराय, वीरेन्द्र त्रिपाठी प्रमुख हैं। इनका उल्लेख प्रगतिवाद के प्रकरण मे करेगे।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ की सख्या बहुत बडी है। प्रमुख प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं का परिचय पहले यथास्थान दिया जा चुका है। इस युग के पत्रो मे निम्न विशेष उल्लेखनीय है —

त्रैमासिक—लखनऊ से 'विश्वभारती' नामक ज्ञान-विज्ञान का एक विशाल कोष मासिक रूप से प्रकाशित हो रहा है। हिन्दी-साहित्य में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। 'विश्वभारती' त्रैमासिक सास्कृतिक पत्रिका भी विशेष कार्य कर रही है। सोलन से पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'श्री स्वाध्याय' ने सास्कृतिक क्षेत्र मे अपना विशेष स्थान बना लिया है।

मासिक—गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' धार्मिक जगत् की महत्त्वपूर्ण अतुल्य सेवाएँ कर रहा है। मासिक पत्रो में चाद, प्रभा, माधुरी, विशालभारत, विश्वमित्र, हस, नोक-झोक, गीता-धर्म, धर्म-दूत, सरस्वती, विक्रम, रानी, सुधा-निधि, सहेली, हिन्दुस्तानी, साहित्य-सदेश, सरिता, वसुन्धरा, विज्ञान आदि अनेक सुन्दर पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी है।

साप्ताहिक—साप्ताहिक पत्रो में आकाशवाणी, पाटलीपुत्र, भविष्य, श्री कृष्ण सन्देश, हिन्द केसरी, हिन्दू-पच, सैनिक, स्वदेश, राजस्थान, तथा देशदूत आदि पत्र अपने-अपने समय तक हिन्दी की अच्छी सेवा करके कुछ बन्द हो गये और कुछ चल रहे है। लीडर प्रेस के सचालको ने प्रयाग से 'भारत' नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला था, जिसका अब दैनिक सस्करण भी निकलने लगा है। इस समय प्रकाशित होने वाले कुछ साप्ताहिक पत्रो के नाम ये है—कर्मवीर, पाचजन्य, कर्म-भूमि, ग्रामसुधार, ग्राम-ससार, जागृति, दरबार, देशदूत, नया राजस्थान, नवजीवन, अशोक, आर्य मार्तण्ड, आदर्श, आर्य-मित्र, प्रकाश, नवीन भारत, पुकार, भास्कर, मजदूर, आवाज, युगवाणी, युगातर, रामराज्य, राष्ट्र-पताका, लोकमत, विक्रम, प्रजा, श्री वेंकटेश्वर, समय, ससार, आज, सन्मार्ग, सगम, समाज, स्वराज्य, सेवक, सूत्रधार, विन्ध्य-केशरी, वसुन्धरा, हरिजन-सेवक, धर्मयुग, वीर अर्जुन शुभचिन्तक नाम का एक अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र भी निकलने लगा है।

दैनिक—दिल्ली से हिन्दुस्तान, अमर-भारत, नवभारत, विश्वमित्र, वीर अर्जुन, नेताजी, सन्मार्ग, लखनऊ से नवजीवन और स्वतन्त्र भारत तथा प्रयाग से भारत व अमृत पत्रिका निकल रहे है। काशी से तीन दैनिक आज, सन्मार्ग और ससार निकलते है। इनके अतिरिक्त अधिकार, आर्यपुत्र, जयभारत, हिन्दी-मिलाप, स्वतन्त्र-भारत, प्रताप, भारत, स्वदेश, भारतमित्र, लोकमत आदि दैनिक पत्र निकलते है। कई दैनिको के साप्ताहिक सस्करण भी निकलने लगे है। नवभारत के कलकत्ता और बम्बई से भी सस्करण प्रकाशित होते हैं।

इधर कुछ बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलने लगी है। इनमे बालक, होनहार, बालसखा, शेरबच्चा, दीदी, शिशु, बालभारती, खिलौना आदि उल्लेख-नीय है।

उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओ के अतिरिक्त और भी अनेक साप्ताहिक एव मासिक पत्र निकल कर अपनी जाति एव पार्टी की उल्लेखनीय सेवाएँ कर रहे है।

अभ्यास

१. द्विवेदी-युग की देन पर स्पष्ट प्रकाश डालते हुए विकासकाल की आरम्भिक प्रवृत्तियो पर विचार करे।

२ प्रेमचन्द जी के साहित्य की विशेषताएँ बताते हुए उनके जीवन पर सक्षिप्त प्रकाश डाले।

३ जयशकरप्रसाद के साहित्य पर प्रकाश डालते हुए उनके साहित्य की विवेचना करे।

४ विकास-काल के आरम्भिक नाटक-साहित्य का वर्णन करते हुए बताएँ कि इस काल मे नाटक-साहित्य की कहा तक प्रगति हुई ?

५ विकास-काल के उपन्यास, निबन्ध एव कहानी-साहित्य के क्रमिक विकास का सविस्तर वर्णन करे।

६ विकास-काल मे समालोचना-पद्धति मे क्या-क्या परिवर्तन हुए ? इस युग के प्रमुख समालोचको तथा समालोचना साहित्य का वर्णन करे।

७ सिद्ध करे कि प० रामचन्द्र शुक्ल आधुनिक समालोचना पद्धति के प्रवर्त्तक थे।

८ विकास-काल की पत्र-पत्रिकाओ का सविस्तर वर्णन करे।

चौबीसवाँ अध्याय

प्रगति-युग का गद्य

उपन्यास

प्रगति-युग में उपन्यास-कला के दृष्टिकोण में भी पर्याप्त अन्तर हो गया है। द्विवेदी-युग के बाद कला-साहित्य की परिणति युग के क्रम-विकास के अनुरूप होती गई। द्विवेदी-युग के आदर्शोन्मुख (वस्तुरूप) स्थूल से छायावाद के अन्तर्मुख सूक्ष्म (भाव-सत्य) की ओर, अन्तर्मुख सूक्ष्म से यथार्थवाद के अन्तर्गत स्थूल (मनोविकार) की ओर, और अन्तर्गत स्थल से प्रगतिवाद के बहिर्गत स्थूल (इतिहास-विज्ञान) की ओर। इस युग की जैसी चेतना थी, उसकी अभिव्यक्ति भी वैसी ही स्थूल या सूक्ष्म हो गई। प्रगति-युग की कथा-शैली अपने युग के अनुरूप मनोवैज्ञानिक है।

प्रगतिवादी उपन्यासकारो मे सर्वश्री राहुल सास्कृत्यायन, यशपाल, अज्ञेय, पहाडी, उपेन्द्रनाथ अश्क, सर्वदानन्द वर्मा, श्री कृष्णदास, रागेय राघव, श्री मन्मथनाथ गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय है।

यशपाल के 'देशद्रोही', 'दादा कामरेड', 'दिव्या' और 'पार्टी कामरेड' उपन्यास हमारे सामने आये है। यशपाल प्रगतिवाद के उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिनिधि है। यशपाल की विशेषता यह है कि उन्होने मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धो का आभिजात्य बनाये रखकर यथार्थवाद का धरातल दिया है। उन्होने वास्तविकत्व के अतिरिक्त हृदय-पक्ष का भी स्पर्श किया है। 'दादा-कामरेड' में यथार्थवाद मनुष्य के नैसर्गिक कौतूहल में परिणत हो गया है। उसमें बुभुक्षित क्रातिकारी नारी का नग्न समर्पण चाहता है, जिसके हृदय मे अपने सन्तप्त सखा के लिए कुछ भी दु ख नही है, वह अभिन्नहृदया नारी नग्न होकर भी दिगम्बरता में अवगुठित हो जाती है। वास्तव में यशपाल ने हिन्दी-उपन्यास को एक सकीर्ण मार्ग से निकाल कर कला की दृष्टि मे नई शैली दी है।

अज्ञेय—यथार्थ कला के प्राजल कलाकार है। उनका उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' बौद्धिक होते हुए भी सूक्ष्म मर्मस्पन्दनो के कारण हृदय को छूता है। इसमें एक क्रातिकारी युवक की जीवनी है। अज्ञेय की शैली अब तक के सभी उपन्यासकारो

से नूतन है । छोटे-छोटे अनेक कथा-खडो के सयोजन से इसकी घटनावली सुन्दर बन गई है । एक व्यक्ति के मनोविकास की सुदीर्घ कहानी होने के कारण इसकी मनोवैज्ञानिकता स्वयसिद्ध है, किन्तु शेखर के आरम्भिक जीवन मे गुरुतर बौद्धिक चितन करना उसके बाल-मन के लिये अस्वाभाविक है ।

पहाड़ी के उपन्यासो में पुरुष की वासना, काम, प्रेम और आकर्षण आदि यौन-प्रवृतियो की विभिन्न दिशाओ का दर्शन मिलता है। उनके उपन्यास अधिकतर वैज्ञानिक सामाजिकता लिये हुए है । उनके 'सराद' आदि उपन्यास इसी प्रकार के है ।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' केउपन्यास भी इसी कोटि के है । अश्क ने यथार्थ और आदर्श के सघर्ष को पैनी दृष्टि से उद्भासित किया है । उनके 'सितारो के खेल' और 'गिरती दीवारे' उपन्यासो मे नारी-चरित्रो का अच्छा अध्ययन है ।

सर्वदानन्द वर्मा के चार उपन्यास 'नरमेध', 'प्रश्न', 'अनिकेतन' और 'निकट की दूरी' प्रसिद्ध है । इनके उपन्यासो मे कही-कही वासना और प्रेम की नग्न परिणति दी गई है, जो बहुत अखरती है । सामाजिक विषमता से पीडित मनुष्य का दु ख दूर करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य जान पडता है ।

श्री कृष्णदास ने 'अग्नि-पथ' मे मजदूर-जीवन को पृष्ठ-भूमि बनाकर रोमास और राजनीति के समन्वय का विफल प्रयत्न किया है । 'क्रातिदूत' सन् ४२ के जन-आन्दोलन को आधार बनाकर लिखा गया है । राजनैतिक क्षेत्र मे देश की विपन्नावस्था के प्रति उनके हृदय मे तीव्र वेदना दीख पडती है ।

प्रोफेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति—पत्रकार और समालोचक के साथ एक कुशल उपन्यासकार भी है । सरला की भाभी, ज़मीदार आदि इनके सामाजिक समस्याओ पर प्रकाश डालने वाले सुन्दर उपन्यास आये है ।

रागेय राघव—का 'घरौंदे' और शैलेन्द्रनाथ गौड के 'पैरोल-पत्र' में सन् ४२के जन-आदोलन की स्पष्ट छाप दिखाई देती है ।

महापडित राहुल का जीवन एक प्रकार से घुमक्कड की कहानी है । यह उस वेगवती नदी की भाँति है जो अनेक झीलो से सगम करके फिर नई खोज में निकल पडती है । अपने जीवन के उद्देश्य के सम्बन्ध मे उनकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि भले ही पुष्ट हो, किन्तु उनकी प्रवृत्तियाँ बन्धन-मुक्त होकर विचरने मे ही विश्वास करती है । तपस्वी होते हुए भी वे तपस्या की आच का अनुभव नही करते । वे प्रकृति और पुरुष के बन्धन में भी वीतराग है ।

राहुलजी का जन्म सवत् १९५२ मे आजमगढ़ जिले मे हुआ। ११ वर्ष की अवस्था में ही उनका विवाह हो गया, किन्तु समझ आने पर घर छोडकर चले गए। घर से निकलकर वे कलकत्ता चले गए फिर हिमालय और उत्तराखड का भ्रमण किया। फिर काशी मे आकर सस्कृत का अध्ययन करने लगे। काशी मे वे एक महन्त के पल्ले पड गये। उसने उनका नाम केदारनाथ पाडेय के बदले रामउदारदास रखा। फिर ये दक्षिण भारत के भ्रमण को निकल पडे। आप पर आर्यसमाज का भी पर्याप्त प्रभाव पडा। १९७२ से १९७९ तक मुसाफिर-आर्य-विद्यालय आगरा मे रहे। फिर लाहौर जाकर सस्कृत का अध्ययन करने लगे। जलियावाला बाग के हत्याकाड से ये अत्यन्त प्रभावित हुए और काग्रेस मे सम्मिलित हो गये। बिहार की सारन भूमि आपका कर्मक्षेत्र बनी। गोहाटी-काग्रेस मे आप प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुए थे। इसके पश्चात् आपके जीवन के महत्त्वपूर्ण अध्याय का प्रारम्भ होता है—वह है आपका लका प्रवास। पाली भाषा सीखकर बौद्ध-धर्म के ग्रन्थो का अनुशीलन करने की धुन ही आपको लका खीचकर ले गई। लका मे जाकर उन्होने पाली भाषा सीखी ही नही, उसका पाडित्य भी प्राप्त कर लिया। फिर उन्होंने एक भक्त के रूप में नही, एक सत्य अन्वेषक की दृष्टि से बौद्ध-ग्रन्थो का विवेचन भी किया। लका मे आपने एक वर्ष तक विद्यालकार परिवेण में अध्यापक का कार्य किया, वही त्रिपिटक का गम्भीर अध्ययन और मनन भी किया।

लका-प्रवास में प्राचीन ज्ञान-भडार के उद्घाटन की इच्छा प्रकट हुई और तिब्बत गये। राहुलजी ने अपने मितभाषण और कठोर आचार द्वारा साधारण लोगो का ही नही, वहा के मठाधीशो का भी विश्वास प्राप्त कर लिया। और उन्होने राहुल जी को समस्त प्राचीन ग्रन्थोका अनुसन्धान करने की सुविधाएँ दे दी। यही नही, राहुल जी उन्हे अपने साथ भारत भी ले आये। बौद्धधर्म तो आपने स्वीकार कर ही लिया था, साथ ही आपका नाम भी रामउदारदास से राहुल साकृत्यायन हो गया था। राहुलजी ने तीन-चार बार तिब्बत-यात्रा की। इसके अतिरिक्त कई बार रूस भी गये। पहली बार आपको केवल २४ घन्टे ही रूस में ठहरने दिया गया था। दूसरी बार वे लगभग ६ मास रूस में रहे और तीसरी बार जो गये तो कई वर्षों में लौटे। वहा आपने एक रूसी महिला से विवाह भी कर लिया और उनका एक पुत्र भी है जिसकी आयु अब १४ वर्ष की है। उसका नाम ह्यगो राहुलोविथ है। रूस में आप लेनिनग्राड यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर भी रहे।

संवत् १९८५ से आपका जीवन सघर्षमय रहा है। इस बीच मे आपने सतत अध्ययन और मनन द्वारा प्रत्येक विषय की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न किया है। इसका फल हिन्दी-साहित्य को एक अमूल्यनिधि के रूप मे मिला है।

राहुलजी हिन्दी के महापडित है। बहुमुखी प्रतिभा की दृष्टि से बहुत कम लोग ऐसे होगे, जो आपकी कोटि मे गिने जा सके। प्रतिभाशाली विद्वान् होने के अतिरिक्त जो इससे भी बडी विशेषता उनमे है, वह है—उनकी प्रगतिशीलता और क्राति-तत्परता। उनमे सेवा की असाधारण लगन और उसके लिए शक्ति और क्षमता सभी-कुछ विद्यमान है। राहुलजी ने हिन्दी को एक नवीन साहित्य दिया है। आपने अपनी क्रातिदर्शिनी दृष्टि से सर्वथा नवीन प्रयोग किये है और साथ-ही-साथ उन्मुक्त रूप से रूढिवाद और साहित्य की प्राचीन परिपाटी को चुनौती देकर एक नई शैली और नये मापदड को अपनाया।

राहुलजी अग्रेजी, बगला, गुजराती, मराठी, तामिल, उर्दू, सिंधी और पजाबी आदि भाषाओ के मर्मज्ञ ज्ञाता है। इन्होने हिन्दी की भी अमूल्य सेवा की है। धर्म, दर्शन, कथा, उपन्यास, साम्यवाद, राजनीति, विज्ञान, जीवनी, पुरातत्व, यात्रा-वृत्तात—कोई भी विषय ऐसा नही, जिसमे आपने लेखनी न उठाई हो। आपके हिन्दी-ग्रन्थो के नाम ये है—

बुद्धचर्या, धम्मपद, मज्झिमनिकाय, दीर्घनिकाय, विनयपिटक, तिब्बत में बौद्ध-धर्म, तिब्बत मे सवा वर्ष, मेरी तिब्बत-यात्रा, मेरी यूरोप-यात्रा, लद्दाख-यात्रा, लंका, ईरान, जापान, सोवियत भूमि, साम्यवाद ही क्यो ? बाईसवी सदी, कुरान-सार, पुरातत्व निबन्धावली, शैतान की आख, जादू का मुल्क, सोने की ढाल, विस्मृति के गर्भ में, सितमी के बच्चे, दिमागी गुलामी, तुम्हारा क्षय, क्या करें, दर्शन-दिव्य-दर्शन, वैज्ञानिक भौतिकवाद, नये भारत के नये नेता, भागो नही दुनिया को बदलो, बोलगा से गगा, सिंह सेनापति, जय यौधेय, जो दास थे, किन्नर देश में, मेरी जीवन-यात्रा, आज की समस्यायें, आज की राजनीति, घुमक्कड शास्त्र, शासन-शब्द-कोष इत्यादि। इसके अतिरिक्त अनुवाद, सपादन, सार-सकलन भी बहुत है।

राहुल जी को हिन्दी से अधिक अनुराग है। हिन्दी का अपमान आप कभी सहन नही कर सकते। सदैव एक जागरूक प्रहरी की भाति आप हिन्दी-रक्षा का ध्यान रखते है। जब कोई हिन्दी पर प्रहार करता है तो राहुल जी उसका बराबर उत्तर देते है, फिर चाहे वह कोई भी क्यो न हो। जिस समय प० जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दुस्तानी का समर्थन किया था, उन्होने राष्ट्रभाषा के

पद पर हिन्दुस्तानी को बिठाने का सकल्प किया था, राहुल जी ने तुरन्त लिखा—

"नेहरू जी का चेलेन्ज केवल हिन्दी वालो को ही नही, भारत के उन सारे ही लोगो के लिए है, जो भारत मे एक राष्ट्रभाषा हिन्दी और एक लिपि का समर्थन करते है। × हिन्दुस्तानी की आड में अग्रेज़ी के हिमायतियो से यह कहना है कि भारतीयो ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने मे जो सफलता प्राप्त की है, उसका प्रभाव बहुत ही गम्भीर और दूर तक होकर रहेगा। जिसे समझने मे भारत के 'आविष्कार करने वाले' भी धोखा खाया करते है। 'ते हि नो दिवसा गता' का रोना छोडकर नेहरू, ताराचन्द और आज़ाद को भवितव्यता के सामने सिर झुकाना चाहिये और हिन्दी व नागरी लिपि को हिन्द-सघ की राष्ट्रभाषा तथा सर्वत्र व्यवसाय की भाषा और लिपि स्वीकार करनी चाहिये।"

उनके इस कथन से पाठक राहुल जी के हिन्दी-प्रेम का अनुमान लगा सकते है। हिंदी के लिए आप एक प्रगतिशील मार्ग का निर्माण कर रहे है। उनका कहना है कि प्रगतिवाद ही प्रगति के अवरुद्ध मार्ग को खोल सकता है। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतन्त्रता का नही, परतन्त्रता का शत्रु है। प्रगति जिनके रोम-रोम मे बस गई है,प्रगति जिनकी प्रकृति बन गई है,वह स्वय अपनी सीमाओ का निर्धारण करते है। प्रगतिवाद कला की अवहेलना नही करता, वह तो कला और उच्च साहित्य के निर्माण मे रूढियो की बाधा को हटाकर सुविधा उत्पन्न करता है। प्रगतिवाद देश और काल दोनो के लिए विशाल दृष्टि रखता है।

ये है प्रगतिवाद के सम्बन्ध मे राहुल जी के विचार।

राहुल साकृत्यायन ने समाजवाद को पुराना आदर्श मानकर साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण किया है। इनके ऐतिहासिक ज्ञान मे कोई भी सन्देह नही कर सकता। ऐतिहासिक सामग्री को अपनी कल्पना द्वारा नये रूप में उपस्थित कर देना ही राहुल जी की विशेषता है। इनके 'सोने की ढाल', 'जादू का मुल्क', 'सिह सेनापति', 'भागो नही', 'दुनिया को बदलो', 'जय यौधेय' उपन्यासो में यही भावना पाई जाती है। शोषण और हरण की सामाजिक अव्यवस्था के प्रति भयकर प्रताडना राहुल जी का प्रमुख लक्ष्य है।

श्री मन्मथनाथ गुप्त के 'रक्षक भक्षक', 'बलि का बकरा', 'दुश्चरित्र', 'अधेर नगरी' नामक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त 'रक्त के बीज' नामक कहानी सग्रह तथा 'प्रेमचन्द' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ भी अभी प्रकाशित हुए है।

कहानी

पिछले दस वर्षों मे कहानी ने भी चतुर्दिक् प्रगति दिखाई है। आज का हमारा कहानी-साहित्य इतना उच्च-कोटि का हो गया है कि हम पूर्व-पश्चिम के किसी भी कहानी-साहित्य के समक्ष अपना कहानी-साहित्य रख सकते है। प्रगति-युग की कहानियो में कला के अनेक विधान और सामयिक जीवन, इतिहास एव सस्कृति के अनेक अगो का स्पर्श किया गया है। इनमें सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार की कहानिया है।

इस युग के प्रमुख कहानी-लेखको को हम तीन श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है। पहली श्रेणी के कहानी लेखक वे है जिन्होने उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढाया है। वे ही अधिकाश में नये कहानीकार भी हैं। इनमें अज्ञेय, यशपाल, अमृतलाल नागर, अमृतराय और पहाडी का नाम ले सकते हैं। अज्ञेय की कहानिया अधिकाश में मनोवैज्ञानिक ढग से लिखी गई है। मनुष्य को जब किसी नवीन समस्या को पुरानी घटनाओ के प्रकाश में सुलझाना होता है, तो अतीत के ये चित्र सिनेमा-चित्रो की भाँति इस तेजी से आते है कि हमारी धारणा-शक्ति उन्हे जहा-तहा ही पकड पाती है। इस प्रकार की कहानियो में चेतना के प्रवाह को दिखाने के लिये कथानक मे तेजी लानी पडती है। अज्ञेय जी की 'शान्ति हसी थी' आदि कहानिया इसी प्रकार की है।

अज्ञेय जी की दूसरी प्रकार की देश-भक्ति के सघर्ष की कहानिया है। इनकी 'अकलक', 'रोजा' और 'कडिया' इसी प्रकार की है। 'जयदोल' के नाम से आपका नया कहानी सग्रह है।

देहली के श्रीराम शर्मा 'राम' की कहानिया भी इसी कोटि मे आती है। इनकी चार सौ से भी अधिक कहानिया प्रकाशित हो चुकी है। इनका 'रोहिणी' उपन्यास भी सुन्दर है।

प्रेमचन्द के बाद यशपाल जन-साधारण के लिए प्रगति-युग के कथा-साहित्यकार है। उनकी कहानिया जन-साधारण और साहित्यिक दोनो के लिए ही आकर्षक है। प्रेमचन्द और यशपाल की भाषा और शैली मे कोई अन्तर नही है, किन्तु बाह्य समानता होते हुए भी दोनो में दो युगो (गाधीयुग, प्रगतियुग) का अन्तर पड गया है। यशपाल में प्रेमचन्द के आगे का यौवन है। फलत. दोनो के दृष्टि-बिन्दु और चरित्र-चित्रणो में भी अन्तर है।

यशपाल की कहानिया प्रेमचन्द की कहानियो से बहुत छोटी है। 'पिंजडे की

उडान', 'ज्ञानदान', 'वो दुनिया' मे उनकी कथावस्तु का क्रमिक विकास है। 'उडान' की कहानिया प्राय भावमूलक है, 'ज्ञानदान' की कहानिया यथार्थमूलक और 'वो दुनिया' की कहानिया समस्यामूलक है। इन कहानियो मे साकेतिक व्यजना है जो बिना लेखक के बोले ही प्रश्न उपस्थित कर देती है। इनकी कहानियो की भाषा प्रेमचन्द की भाति सीधी-सादी, किन्तु उनसे अधिक चित्रात्मक है।

अमृतलाल नागर का कहानी-सग्रह 'तुलाराम शास्त्री' और अमृतराय का 'जीवन का पहलू' प्रकाशित हो चुके है। अमृतराय ने हाल मे ही लिखना आरम्भ किया है। इनके वार्तालाप और शब्द-चित्र बडे सजीव होते है। भाव स्वाभाविक हिन्दुस्तानी है। ये भी अपनी कहानियो तथा लेखो द्वारा साम्यवादी धारा का प्रचार करने मे प्रयत्नशील है।

पहाडी यथार्थकाल के प्राजल कलाकार है। इनके लगभग आधे दर्जन कहानी-सग्रह प्रकाशित हो चुके है। इस दृष्टि से देखा जाय तो प्रगतिवादी कहानीकारो मे पहाडी की प्रगति सबसे अधिक है। इनकी अधिकाश कहानिया यथार्थवाद की भित्ति पर खडी की गई है, जिनमे मनोवैज्ञानिकता का भी पुट है। अधिकतर कहानिया युद्धकालीन सामयिक घटनाओ को लेकर लिखी गई है। 'सफर', 'सडक पर', 'अधूरा चित्र' और 'छाया मे' आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-सग्रह है।

दूसरी श्रेणी के कहानी-लेखको मे रागेय राघव, हसराज रहबर, तेजबहादुर सिह चौधरी, श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरिक्शा, चद्रगुप्त विद्यालकार, धर्मवीर भारती, मोहनसिह सेगर और देवेन्द्र सत्यार्थी के नाम आ सकते है। इन सभी लेखको की कहानियो का दृष्टिकोण यथार्थवाद और उद्देश्य साम्यवाद का प्रचार। इन सभी लेखको की कहानियो मे हमे देश के विभिन्न भागो के नर-नारियो की सवेदनाओ का सुन्दरतम रूप देखने को मिलता है। बगाल के अकाल, कलकत्ता और पजाब के जन-सहार, युद्धकालीन अव्यवस्था और मध्यवित्तो के आर्थिक और नैतिक सघर्ष का चित्रण इन कहानीकारो का प्रिय विषय रहा है। इनकी कहानिया जनता मे लोकप्रिय भी खूब हुई है। तेजबहादुरसिह चौधरी की 'दिल मे जगह चाहिए' शीर्षक कहानी बहुत ख्याति प्राप्त कर चुकी है। श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरिक्शा को हम हिन्दी की एकमात्र प्रगतिवादी कहानी-लेखिका कह सकते है। इन्होने अपनी कहानियो मे पीडित और शोषित जनता का बडा मार्मिक चित्रण किया है और प्रगतिवादी कहानी को एक नये दृष्टिकोण से कला का रूप और सौष्ठव प्रदान किया है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी मुख्य रूप से लोकगीतो के सग्रह-कर्त्ता

हैं, किन्तु समय-समय पर कहानी और लेख भी लिखते रहते हैं। इनकी कहानिया भी साम्यवादी दृष्टिकोण को लिये होती हैं, उनका गावो का चित्रण बडा सादगीपूर्ण होता है। 'चाय का रग' इनका नवीनतम कहानी-सग्रह है।

तीसरी श्रेणी मे हम उन नवयुवक लेखको को ले सकते हैं जो अपना-अपना व्यक्तित्व लेकर कहानी-क्षेत्र में आये। इनमें वीरेन्द्रकुमार जैन, विष्णु प्रभाकर, वीरेश्वर सिंह, कमलाकान्त वर्मा, रामसरन शर्मा, व्रजेन्द्रनाथ गौड, मुक्तिबोध, सर्वदानन्द वर्मा और रामचन्द्र तिवारी श्री यश व रणवीर के नाम उल्लेखनीय हैं।

वीरेन्द्रकुमार ने कुरूप समाज को आत्मा की अनुरागिनियो का अन्त सौन्दर्य दिया है। वास्तविकता के कठोर पत्थर पर उन्होने बडी कोमल रेखा खीची है। आदर्श और यथार्थ के सकुचित क्षेत्र के बाहर उनमे शुद्ध हृदयवाद है। 'आत्म परिणाम', 'शेषदान', 'मुक्तिदूत' उनकी कथा-कृतिया है।

विष्णु प्रभाकर ने गृहस्यसबधी आभिजात्य बनाये रखकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहानिया लिखी है। इनके कई सग्रह प्रकाशित हो चुके है।

वीरेश्वरसिंह की कहानियो के सग्रह का नाम है—'उगली का घाव'। इनकी भाषा और शैली मे मादकता, सरसता और चित्रकारिता है।

कमलाकान्त वर्मा ने कहानी की एक नवीन भावात्मक शैली दी ह। अपने रसोद्रेक से निर्जीव आलम्बनो को सामाजिक पात्रो की भॉति सजीव कर उन्होने जीवन की अनुभूति का विस्तार किया है। उनकी 'पगडण्डी' शीर्षक कहानी इसी प्रकार की है।

रामसरन शर्मा ने लघुतम कहानी का मॉडल दिया है। उनके कथानक छोटे-छोटे मेघ-खडो की तरह अपना विरल वातावरण और उसकी द्रुत-परिणति लिये हुए है।

रामचन्द्र तिवारी की कहानिया समसामयिक परिस्थितियो को लेकर लिखी गई मनोवैज्ञानिक कहानिया है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओ में इनकी कहानिया बराबर निकलती रहती है।

श्री रणवीर व श्री यश की कहानिया उनके दैनिक पत्र हिन्दी मिलाप व अन्यान्य पत्रो में प्रकाशित होती रहती है।

नाटक

रगमच के अभाव मे हिन्दी-नाटक अभी तक बहुत पिछडी हुई दिशा में है। पिछले कुछ दिनो से हिन्दी-जनता में एमेच्योर स्टेज का शौक बढ रहा है और

उसके साथ-ही-साथ नाटको का सौदर्य भी बढ रहा है। परन्तु हिन्दी-नाटक-साहित्य की इस उन्नति पर प्रगतिवाद की कोई स्पष्ट छाया दिखाई नही देती; हा, कुछ एकाकी नाटक अवश्य ही प्रगतिवादी दृष्टिकोण के लिखे गये है। परन्तु यह कहना कठिन है कि हिन्दी-नाटक साहित्य में इन एकाकी नाटको ने अपने लिये कोई विशेष स्थान बनाया अथवा नही।

प्रगतिवादी नाटककारो में हम उपेन्द्रनाथ 'अश्क' , गणेशप्रसाद द्विवेदी, भुवनेश्वर प्रसाद, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, श्रीचन्द्र अग्निहोत्री तथा अविनाशचन्द्र की गणना कर सकते है। चद्रगुप्त विद्यालकार के 'रेवा' नाटक पर गाधीवाद का प्रभाव है। भुवनेश्वर जी बुद्धिवाद के अधिक निकट है। यद्यपि वे बुद्धि को समाज का चोर-दरवाजा मानते है, तथापि उन्होने अपनी रचनाओ में इसी चोर-दरवाजे का उपयोग अधिक किया है। विष्णु प्रभाकर के एकाकी समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ में निकलते रहते हैं। इनके नाटक अधिकतर समस्या-मूलक होते हैं। आजकल एकाकी नाटक अवश्य प्रगति के पथ पर है। आजकल नाटको का मुख्य प्रयत्न एक ही दिशा मे चल रहा है, नाट्यकौशल में। यों भी, नाटक शब्द की व्यजना ने ही कौशल की माग है। कुशलता की दृष्टि से इस समय हिन्दी नाट्य-साहित्य का विकास एकाकी अथवा मुक्तक नाट्य मे हो रहा है।

सस्मरण और जीवनी

साहित्यिक अभिव्यक्ति के विविध साधनो (कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध) के उत्कर्ष के पश्चात् अब साधनो का नूतन सस्करण हो रहा है। नाटको ने एकाकी का, काव्य ने गद्यात्मकता का, निबन्धो, कहानियो और जीवन-चरित्रो ने शब्द-चित्रो और सस्मरणो का रूप अपनाया है। इन विभिन्न रूपान्तरों मे 'आपबीती-जगबीती' के रूप मे आज का युग कथा-साहित्य का युग है। भावयुग (छायावाद) के पश्चात् साहित्य अब अनुभव-युग है।

शब्द-चित्रो और सस्मरणो का अभी प्रारम्भ-काल है। इस दिशा के कतिपय लेखक ये है—**बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, विनोदशंकर व्यास, रामनाथ लाल 'सुमन', सत्यजीवन वर्मा, श्रीराम शर्मा, इन्द्र विद्यावाचस्पति, ब्रह्मदत्त शर्मा।**

महादेवी के सस्मरणो 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखा में' में सामाजिक साधना है। 'अतीत के चलचित्र' सस्मरण में कहानी है, कहानी में सस्मरण। हमारे साहित्य में पुरुष की आँखो से देखा हुआ समाज पर्याप्त आ चुका है। किन्तु

यह प्रथम गम्भीर प्रयत्न है जो नारी की आँखो से समाज का चित्रोद्घाटन करता है। शरच्चन्द्र ने समाज की जिस मर्यादा का भार नारी के कन्धो पर डाल दिया है, उसे 'अतीत के चलचित्र' मे महादेवीजी ने सभाल लिया है । यह पुस्तक एक स्वच्छ सामाजिक दर्पण है, अत्याचारी इसमे अपनी मुखाकृति देख सकते है और नारी अपनी साधना का प्रकाश। इसका प्रत्येक आख्यान साचो मे ढली सुघड सृष्टि की भाँति सुडौल है। कवि होने के कारण महादेवी जी की भाषा मे रसात्मकता और चित्रमनोरमता है । किन्तु कवित्व के नीचे वस्तुतत्व दब नही गया है प्रत्युत वह हृदय-स्निग्ध होकर पत्थर से सगमरमर हो गया है । काव्य मे महादेवी जी का मानमलोक है तो 'अतीत के चलचित्र' मे है उनका समाजलोक । उनके सस्मरणो मे उनके जीवन का अनुभव-सूत्र है ।

'स्मृति की रेखाएँ' सस्मरण मे अधिक कथा-निबन्ध बन गई है, तथापि इनमे भी रसात्मकता और चित्रात्मकता है । पात्रो का चरित्र-चित्रण इतना सजीव है कि मानो वह पृथ्वी से उठाकर शब्दो मे रख दिया गया है ।

जीवनिया लिखने वालो मे केदारनाथ भट्ट, बनारसीदास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि के नाम उल्लेखनीय है ।

रेखाचित्र-स्केच

रेखाचित्र एक प्रकार से कहानी के ढग पर लिखा जाता है, इसे एक प्रकार मे आपबीती कहे तो उपयुक्त होगा। रेखाचित्र की शैली व्यग्यात्मक है और गठन भी नवीन ढग का । रेखाचित्र भी हिन्दी-गद्य मे एक नया प्रयोग है। रेखाचित्रो के लिखने वालो मे **कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, बनारसीदास चतुर्वेदी 'रामवृक्ष बेनीपुर, पारसनार्थ ह और प्रभाकर माचवे** के नाम उल्लेखनीय है । कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के स्केचो का सग्रह **'भले हुए चेहरे'** प्रकाशित हो चुका है । रामवृक्ष बेनीपुरी का **'माटी की मूर्ति'** और भदन्त आनन्द कौशल्यान का **'रेल का टिकट'** भी प्रकाश मे आया है। अन्य लेखको के चित्र भी समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है।

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज फ्रासीसी भाषा का शब्द है । इसका रूप अग्रेजी के रिपोर्ट शब्द मे मिलता है, जो हिन्दी मे आकर सीधा रपट हो गया है । रिपोर्ट विशेषत अखबारो के लिए लिखी जाती है और रपट थानो और अदालतो के लिए । यह तो सभी जानते है कि रपट मे वास्तविकता मे अधिक बढा-चढा कर बाते लिखी जाती है, अखबारी

'रिपोर्टो मे भी खूब नमक-मिर्च लगाकर घटना का वर्णन लिखा जाता है। इससे विषय मे आकर्षण और रोचकता आ जाती है। रिपोर्ताज रिपोर्ट का ही साहित्यिक रूप है, किन्तु उसका अन्त करण साहित्य की श्रेणी मे आने से शुद्ध होता है।

किसी घटना का ऐसा वर्णन करना कि वस्तुगत सत्य पाठक के हृदय को प्रभावित कर सके, रिपोर्ताज कहलायेगा। कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज नही लिखा जा सकता। रिपोर्ताज लिखने की कला इस महायुद्ध मे विशेष रूप मे विकसित हुई है। साहित्य का यह सबसे लचीला रूप है, जिसकी सीमा एक पृष्ठ से लेकर कई पृष्ठो तक हो सकती है। वर्तमान पत्रकार-कला मे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पत्रो मे जैसे लम्बे उपन्यास एक साथ नही छप सकते, वैसे ही उनमे बहुत लम्बी रिपोर्ताज भी नही छप सकती। इसकी सीमाएँ कहानी और निबन्ध से मिलती-जुलती है और इन दोनो से इसका भावात्मक सम्बन्ध है। रिपोर्ताज मे एकाध छोटी कहानी देने से विशेष रोचकता आ जाती है। परन्तु कहानी अधिकतर एक ही घटना को लेकर चलती है और उसी को केन्द्र मानकर पात्रो का चरित्र अकित किया जाता है। रिपोर्ताज मे एक से अधिक घटनाएँ हो सकती है, लेखक का लक्ष्य इनके सम्मिलित प्रभाव की ओर रहता है। वह कहानीकार की भाँति किसी समस्या को लेकर नही चलता, न कहानी के अन्त मे पाठको को समस्या के विचित्र रूपाधान से आश्चर्य मे ही डालता है। वह लेख के प्रारम्भ से ही छोटी-छोटी बातो की ओर इस प्रकार ध्यान आकर्षित करता है कि इन सबसे मिलकर एक बृहत् चित्र बन सके। रिपोर्ताज मे चरित्र-चित्रण के लिए विशेष स्थान नही होता। यह रेखा-चित्रकार की तरह ब्रुश के इशारे से चित्र को उभार कर आगे बढता है। रिपोर्ताज-लेखक को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है कि वह अपने लेख को घटना-प्रधान बनाये अथवा चरित्र-प्रधान, वह उसमे नाटकीयता का अधिक पुट दे अथवा गीतात्मकता का। उसके लिए सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि वह ऐसे विषय पर लेखनी उठाये, जिसे स्वय देख या सुन चुका हो।

रिपोर्ताज लिखने मे श्री रागेय राघव, प्रभाकर माचवे, शिवदानसिंह चौहान ने आशातीत सफलता प्राप्त की है।

आत्म-कथा

हिन्दी मे आत्म-कथा लिखने की प्रथा भी खूब चल निकली है। श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्म-कथा', वियोगी हरि जी का 'मेरा जीवन-प्रवाह', स्वामी भवानी-दयाल सन्यासी की 'प्रवासी की आत्म-कथा', सत्यदेव परिव्राजक कृत 'स्वतत्रता की खोज में' और हरिभाऊ उपाध्याय की 'साधना के पथ पर' उल्लेखनीय है।

इधर गाधीजी की 'आत्म कथा' और प० जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी' का भी हिन्दी मे अनुवाद हो चुका है। डा० श्यामसुन्दर दास ने भी आत्मकथा लिखी थी।

पुरस्कृत रचनाएँ

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा दिये जाने वाले पदक और पुरस्कार

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा अब तक निम्न लेखको की रचनाएँ उल्लिखित पुरस्कारो से पुरस्कृत हो चुकी है—

१—मगलाप्रसाद पारितोषिक—१२००) का, विविध विषयो पर। कलकत्ता के ११वे अधिवेशन मे काशी के सुप्रसिद्ध धनी और हिन्दी-हितैषी बाबू गोकुलचन्दजी रईस ने अपने स्व० भाई श्री मगलाप्रसाद की स्मृति रक्षार्थ ४००००) के सरकारी प्रोमेसरी नोट सम्मेलन को इसलिये प्रदान किये कि इसके व्याज से १२००) का पारितोषिक प्रतिवर्ष हिन्दी के किसी मौलिक ग्रन्थ पर दिया जाय। उस समय के लिए यह पारितोषिक समस्त भारत मे अपने ढग का अनोखा था। आज भी हिन्दी जगत् मे इसकी प्रतिष्ठा बेजोड है। इसके द्वारा आज तक जिन साहित्यिको का सम्मान किया गया है, जो रचनाएँ पुरस्कृत की गई हैं, वे दोनो हिन्दी-साहित्य-जगत् में अपनी समता नही रखती।

२—सेक्सेरिया-महिला पारितोषिक—५००) का, महिलाओ की किसी मौलिक रचना पर।

३—मुरारका-पारिपोषिक—५००) का बगला, उडिया तथा आसामी भाषा-भाषी सज्जन की किसी रचना पर।

४—नारग पुरस्कार—१००) का भारतीय सस्कृति-विषयक कविता पर केवल पजाबनिवासी कवि को।

५—रत्नकुमारी पुरस्कार—२५०) का हिंदी के किसी मौलिक नाटक पर।

६—नेमीचन्द्र-पाण्डया-पुरस्कार—५००) का वीर रसपूर्ण बाल-साहित्य पर।

७—गोविन्दराम-सेक्सेरिया—विज्ञान पुरस्कार—१५००) का विज्ञान के विविध विषयो पर।

मगलाप्रसाद पारितोषिक-प्राप्त लेखक

नाम	पुस्तक
पद्मसिंह शर्मा	बिहारी सतसई
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	प्राचीन लिपिमाला
प्रो० सुधाकर	मनोविज्ञान

नाम	पुस्तक
त्रिलोकीनाथ वर्मा	हमारे शरीर की रचना
वियोगी हरि	वीर सतसई
प्रो० सत्यकेतु	मौर्य साम्राज्य का इतिहास
गंगाप्रसाद उपाध्याय	आस्तिकवाद
डा० गोरखप्रसाद	फोटोग्राफी की शिक्षा
डा० मुकुन्दस्वरूप	स्वास्थ्य विज्ञान
जयचन्द्र विद्यालंकार	भारतीय इतिहास की रूपरेखा
चन्द्रावती लखनपाल	शिक्षा-मनोविज्ञान
स्व० रामदास गौड	विज्ञान हस्तामलक
स्व० अयोध्यासिंह उपाध्याय	प्रियप्रवास
मैथिलीशरण गुप्त	साकेत
स्व० जयशंकर प्रसाद	कामायनी
स्व० रामचन्द्र शुक्ल	चिंतामणि
वासुदेव उपाध्याय	गुप्त साम्राज्य का इतिहास भाग १-२
बा० सम्पूर्णानन्द जी	समाजवाद
बल्देव उपाध्याय	भारतीय दर्शन
महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	सूर्य-सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य १-२
शंकरलाल गुप्त	क्षय रोग
श्रीमती महादेवी वर्मा	आधुनिक कवि नीरजा और रश्मि
डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर
डा० रघुवीरसिंह	मालव में युगान्तर
कमलापति त्रिपाठी	बापू और मानवता
बा० सम्पूर्णानन्द	चिद्विलास

मुरारका पारितोषिकप्राप्त लेखक

श्री सम्पूर्णानन्दजी	समाजवाद
अमरनारायण	समाजवाद
राहुल साकृत्यायन	सोवियतभूमि
रामनाथ 'सुमन'	गांधीवाद की रूपरेखा

रत्नकुमारी पुरस्कार-प्राप्त लेखक

नाम	पुस्तक
श्री गोविन्ददास	प्रकाश
हरिकृष्ण प्रेमी	स्वप्नभग

सेक्सेरिया पारितोषिक-प्राप्त लेखक

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान	मुकुल
,, ,,	बिखरे मोती
चन्द्रावती लखनपाल	स्त्रियो की स्थिति
महादेवी वर्मा	नीरजा
रामकुमारी चौहान	नि श्वास
दिनेशनन्दिनी डालमिया	शबनम
सूर्यदेवी दीक्षित विदुषी उषा	निर्झरिणी
तोरनदेवी शुक्ल लली	जागृति
सुमित्राकुमारी सिन्हा	विहाग
तारादेवी पाण्डेय	आभा
चन्द्रावती ऋषभसेन जैन	
चन्द्रकिरण सौनरिक्सा	
शान्ति, एम० ए०	

सम्मेलन के अतिरिक्त 'देव पुरस्कार' और 'हरजीमल डालमिया पुरस्कार' भी साहित्यिको को प्रोत्साहित कर रहे है।

अभ्यास

१—प्रगति-युग के गद्य-साहित्य का सक्षिप्त परिचय दे।

२—इस युग के सस्मरण और जीवनी-लेखको के सम्बन्ध मे आप क्या जानते है ?

३—प्रगति-युग के उपन्यास और कहानी-साहित्य की विशेषताओ का उल्लेख करे ?

४ राहुल साकृत्यायन व उनके साहित्य का परिचय दे।

५ बा० सम्पूर्णानन्द और चन्द्रबली पाण्डेय के सम्बन्ध मे आप क्या जानते है ?

६ 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' पर टिप्पणी लिखे।

पचीसवाँ अध्याय

भाषा-परिवार

विस्तृत विवेचन

१ हिंदी भाषा उस भाषा-परिवार मे सम्बन्ध रखती है, जिसे इण्डो-योरुपियन कहते है। इस भाषा परिवार के अन्तर्गत भारत तथा यूरोप एव इनके मध्यवर्ती प्रदेश की बहुत-सी भाषाएं है। कभी-कभी इस भाषा-परिवार को केवल 'आर्य' भी कह देते है, परन्तु 'आर्य' शब्द अब बहुधा सस्कृत-जन्य भारतीय भाषाओ के लिए बोला जाता है। हिंदी भाषा तथा उसकी बोलियो का इतिहास तथा विकास-क्रम जानने के लिए इण्डो-यूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओ की गवेषणा करने की आवश्यकता नही। केवल जिस समय आर्य भाषा ने इस भारत-भूमि पर अपना पॉव रखा, तब से लेकर आज पर्यन्त इस भूमि पर आर्यभाषा का इतिहास और विकास-क्रम जानना ही अपेक्षित है।

२ आज से कोई चार हजार वर्ष पहिले आर्यभाषा का भारतवर्ष मे विकास हुआ। यही समय प्राय वैदिक सस्थाओ के अविर्भाव का समझा जाता है। इण्डो-यूरोपियन भाषा-परिवार मे आज तक उपलब्ध ग्रथ तथा लेखादि मे, ऋग्वेद के मन्त्र ही सब से पुराने ठहरते है। भारत-भूमि पर आर्यभाषा का इतिहास तथा विकास क्रम मुख्यतया तीन अवस्थाओ मे विभक्त किया जाता है—

(१) वैदिक—वि पू २००० मे वि पू ६०० तक (२) प्राकृत—वि पू ६०० से वि स १००० तक (३) आधुनिक—वि स १००० से अब तक।

३ आरभिक युग के भारतीय आर्य कई बोलिया बोलते थे, जो परस्पर मिलती थी। इन्ही मे से एक बोली ऋग्वेद के मन्त्रो के लिए व्यवहृत हुई, जिसमे शेष बोलिया का भी कुछ अश मिश्रित हुआ प्रतीत होता है। भारतवर्ष में उस समय बोली जाने वाली आर्यभाषा को आदिम या प्राचीनकालिक आर्यभाषा कहते है। इसके साहित्यिक रूप की साक्षीभूत वैदिक भाषा है, जिसमे ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्य की रचना हुई। ओर बोलचाल के रूप की साक्षी वे बोलियॉ थी, जो समय के प्रभाव मे बदलते-बदलते पहले प्राकृत बनी, और फिर होते-होते आधुनिक आर्य-भाषाओ मे परिणत हो गई। सर्वसाधारण की यह प्राचीन आर्य बोलियाँ

नही किये जाते थे। कृदन्त रूप बहुधा विशेषण होकर ही आते थे। वैदिक भाषा मे छन्द इतने अधिक न थे, जितने कि पीछे सस्कृत मे हो गये। और उनमें अन्त के पिछले चार पाच अक्षरो को छोड कर दूसरो के गुरु लाघव मे भी कवियो को बड़ी स्वाधीनता थी।

४. वैदिक समय मे आर्यसभ्यता का केन्द्र पजाब प्रान्त था परन्तु समय के प्रवाह के साथ २ यह केन्द्र पूर्व की ओर सरकता गया, और कुछ काल पीछे गगा और यमुना नदियो के मध्यवर्ती प्रदेश का उत्तरी भाग इस सभ्यता का केन्द्र-स्थान हो गया। सस्कृत ग्रंथो में इसे मध्यदेश के नाम से पुकारा है। यह देश पूर्व मे प्रयाग, पश्चिम मे सरस्वती, उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याचल के बीचो बीच फैला हुआ था। आर्य सभ्यता के केन्द्र-परिवर्तन के साथ आर्यभाषा मे भी परिवर्तन होता गया। साहित्यिक दशा मे यह अपने वैदिक रूप से सस्कृत रूप मे परिवर्तित हो गई, जिस पर तत्कालीन मध्यप्रदेश की बोलचाल की भाषा का अच्छा प्रभाव है। यद्यपि सस्कृत को तो कुछ ही काल मे वैयाकरणो ने व्याकरण की शृंखलाओ से ऐसा जकडा कि फिर वह इनसे कभी न छूटी, और सर्वदा के लिए पाशबद्ध होकर परिवर्तन से भी मुक्त हो गई, परन्तु ऐसा होने पर भी यह अखिल भारत मे शिष्ट और पडित लोगो की भाषा बनी रही। साधारण बोलचाल की आर्यभाषा ने अब प्राकृतो का रूप धारण कर लिया था। कई एक प्राकृत तो स्वतन्त्र ग्रथो से जानी जाती है, कई शिला-लेखो से और कई सस्कृत-नाटको से, क्योकि सस्कृत नाटको मे विशेष २ पात्र भिन्न २ प्राकृत बोलते है। आर्यभाषा की इस अवस्था को 'प्राकृत' या मध्यकालीन अवस्था कहते है। इसके अन्दर महाराज अशोक के लेखो की भाषा जैन-साहित्य की 'अर्धमागधी' तथा बौद्ध ग्रथो की 'पाली' सम्मिलित है।

५. वैदिक भाषा के समान प्राकृतावस्था मे भी आर्य भाषा पूर्णतया विभक्तिमय रही, किंतु इसका व्याकरण बहुत सरल हो गया था। इसकी नामविभक्ति पर अकारान्त पुल्लिग विभक्ति का, और इसकी क्रियाविभक्ति पर भ्वादिगण की परस्मैपद विभक्ति का बडा भारी प्रभाव पडा। परिणाम यह हुआ कि नाम और क्रिया के बहुत से रूप अपने सकुचित मार्ग (अकारान्त शब्द, हलन्त शब्द) को छोडकर विशाल मार्ग (अकारान्त पुल्लिग, भ्वादिगण, परस्मैपद) पर चले आये। लङ्, लुङ्, लिट्, लृङ्, आदि क्रियाओ के रूप तो सर्वथा लुप्त हो गये। इसी प्रकार द्विवचन तथा चतुर्थी विभक्ति (सप्रदान) के रूप व्यवहार मे आने से बन्द हो गये। उच्चारण पक्ष में सब से अधिक परिवर्त्तन सयुक्त वर्णों तथा अन्तिम व्यजनो में हुआ। अन्तिम अनुस्वार, न् और म् को छोड कर और सभी अन्तिम

व्यजन लुप्त हो गये। अनुस्वार न् और म् तीनो के स्थान मे अनुस्वार हो गया। सयुक्त वर्णो के उच्चारण मे परसवर्ण और पूर्वसवर्ण का आदेश होकर बहुत ही सरलता आ गई। उदाहरणार्थ, सस्कृत के पश्चात्, गच्छन्, पुत्र, दुग्धम्, सप्त आदि शब्द प्राकृत मे पच्छा, गच्छ, पुत्तो, दुद्ध, सत्त आदि बन गये। वैदिक भाषा का गीतात्मक उदात्त स्वर श्वासात्मक बल मे बदल गया, और साथ ही यह नियम भी न रहा कि जिस अक्षर पर पहिले उदात्त स्वर था उसी पर बल भी पडे। वाक्य-रचना मे कृदन्त रूपो का प्रचार बहुत बढ गया। तिडन्त के स्थान पर बहुधा कृदन्त रूप ही प्रयुक्त होने लगे। जहा पहले लोग कहते थे, 'राम पुष्प ददर्श', अब कहने लगे 'रामेण पुप्फ दिट्ठ'। वैदिक समय की अपेक्षा अब छदो मे भी भेद आ गया था। अनुष्टुप् और आर्या छदो का प्रचार बहुत अधिक था।

६ आर्यभाषा की प्राकृत या मध्यकालीन अवस्था कोई वि० पू. ६०० वर्ष से वि स १००० तक रही, और इस सुदीर्घ काल मे सरलता लाने वाली शक्तियाँ निरन्तर अपना काम करती रही। वि स १००० के लगभग आर्यभाषा की उस अवस्था का प्रारम्भ होता है, जिसे आधुनिक अवस्था कहते है। इस अवस्था की सब से बडी विशेषता यह है कि नाम की, और बहुत अशो तक धातु की रूप-रचना अब विभक्तिमय नही रही। नाम रूप रचना मे अब आठ या सात विभक्तियो के स्थान मे केवल दो (या सम्बोधन सहित तीन) ही रूप रह गये। दूसरे कारको का बोध कराने के लिए विभक्ति-प्रत्ययो के स्थान पर अब ऐसे शब्द प्रयुक्त होते है, जो प्राचीन सज्ञा-शब्दो या विशेषण-शब्दो के अवशेष है और वाक्य-रचना मे अपने से सम्बन्ध रखने वाले नाम से भिन्न रहते है। उच्चारण मे भी बहुत परिवर्तन हुआ है। उदाहरणार्थ, उस ध्वनि को लीजिए, जिसको प्रकट करने के लिए देवनागरी लिपि मे 'अ' सकेत है। 'अ' का उच्चारण बगला भाषा मे कुछ-कुछ 'ओ' से मिलता है। हिदी और पजाबी के उच्चारण से पाठकगण परिचित ही है। मराठी भाषा मे भी 'अ' के उच्चारण मे कुछ विशेषता है। आधुनिक आर्यभाषाओ के उच्चारण मे ध्यान देने योग्य एक यह बात है कि पजाबी, लहन्दा और सिधी के अतिरिक्त और सब भाषाओ मे प्राचीन सयुक्त वर्णो के पूर्ववर्ती मध्यकालीन ह्रस्व स्वर अब दीर्घ हो गये है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि इन भाषाओ मे वैदिककालीन स्वरों की ह्रस्वदीर्घता का भेद लुप्त हो गया है। उदाहरण के लिए देखिये, सस्कृत शब्द 'सप्त' और 'काष्ठ' प्राकृत अवस्था मे दोनो शब्द क्रमश. 'सत्त' और 'काठ' बन गय। अर्थात दोनो शब्दो के प्रथम अक्षर मे ह्रस्व 'अ' था, और इससे वैदिक-कालीन

ह्रस्व दीर्घता का बोध नही होता । आधुनिक समय मे हिंदी, गुजराती, बगला और मराठी मे ये शब्द 'सात' और 'काठ' हो गये है, अर्थात् मध्यकालीन ह्रस्व 'अ' दीर्घ हो गया है, परन्तु यहाँ भी वैदिक कालीन ह्रस्व दीर्घता का भेद वैसे ही लुप्त रहा। इसके विपरीत पजाबी, लहन्दी और सिधी मे ये शब्द 'सत्त' (सिधी 'सत') और काठ है और यहाँ प्राचीनकालिक ह्रस्वदीर्घता का भेद बना रहा है । वाक्य स्वर-सक्रम (वाक्य मे ध्वनियो का ऊँचे नीचे स्वर मे बोलना) भी प्रत्येक भाषा का भिन्न २ है । जब भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाली जातियो का आपस मे सम्पर्क होता है, तो उनकी भाषाएँ एक दूसरे के कुछ अश ग्रहण कर लेती है । भाषाओ का परस्पर का यह लेन-देन प्राय शब्दो तक ही सीमित रहता है, व्याकरण पर इसका प्रभाव नही पडता । वैदिक युग और उसके पश्चात् भी सस्कृत मे अनेक दूसरी भाषाओ के सैकडो शब्द मिलते रहे । ऐसे हजारो विदेशी शब्द भारतीय भाषाओ में विशेषकर ज्योतिष मे इस प्रकार घुल-मिल गये कि अब वे सहसा पहचाने भी नही जाते । मुसलमानो का भारत पर आक्रमण आधुनिक आर्यभाषाओ के जन्म के समकालीन है । कई सौ वर्ष तक मुसलमानो का राज्य रहा । इसलिए आधुनिक आर्यभाषाओ के शब्दभडार मे अरबी, फारसी के अनेक शब्द सम्मिलित हो गये है, परन्तु उनके रूप मे इतना विकार नही हुआ कि वे पहिचाने नजा सके। अग्रेजो के शासन काल मे अग्रेजी भाषा के शब्द धडाधड आर्यभाषाओ मे मिल गए। प्रत्येक भाषा की छदोरचना अपनी भाषा के स्वरूप से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है । जो छन्द सस्कृत-प्राकृत-काल मे प्रचलित थे वे आधुनिक आर्यभाषाओ मे भाँति नही बनाए भली जा सकने । इसलिए आधुनिक भाषाओ मे नवीन प्रकार के छद चल पडे ।

७ भारत-भूमि पर आर्यभाषा के इस सक्षिप्त इतिहास और विकास-क्रम का वर्णन समाप्त करने से पहले 'अपभ्र श' का उल्लेख करना आवश्यक है । प्राकृत अवस्था की अन्तिम सीमा अपभ्र श कही जाती है । अपभ्र श के पश्चात् आधुनिक-भाषा-युग प्रारम्भ होता है । परन्तु अपभ्र श और आधुनिक भाषाओ के प्राचीन रूप मे अत्यन्त सादृश्य है, जैसा कि चन्दबरदाई-कृत 'पृथ्वीराजरासो' की भाषा मे स्पष्ट है, जो हिन्दी भाषा का सबसे पुराना नमना है ।

८ स्वाभाविक बात है कि जो भाषा ४००० वर्ष की आयु भोग चुकी हो और जिसने हजारो मील लबे-चौडे क्षेत्र मे वृद्धि पाई हो, उसकी कई शाखाएँ बन जायँ । आर्यभाषा इस नियम के विरुद्ध नही चली । आज वही प्राचीन आर्यभाषा की कली एक दर्जन से भी अधिक भिन्न-भिन्न भाषारूपी पखडियो मे खिली हुई दिखाई दे रही है । यहाँ यह बात भी कह देने योग्य है कि इन आर्यभाषाओ का विकास

एक दूसरे से पृथक् और स्वतत्र रहकर नही हुआ, किन्तु उन्होने आपस मे गहरा प्रभाव एक दूसरे पर डाला है। इस प्रभाव का स्वरूप और परिमाण अभी तक निश्चित नही हुआ। इनमे से कई एक तो साहित्य-क्षेत्र मे बडी प्रधान भाषाएँ है, और कई मे साहित्य नाममात्र को भी नही। कई भाषाएँ अपने बोलने वालो की नैतिक, धार्मिक व आर्थिक उच्चता के कारण इतर प्रदेशो मे भी बोली जाती है। और कईयो को अपने क्षेत्र के बाहर कोई जानता भी नही। इस स्थान पर इन भाषाओ का सक्षिप्त वर्णन कर देना अनुचित न होगा।

९ सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने, अपने 'लिग्विस्टिक सव ऑफ इण्डिया' नामक ग्रन्थ मे आधुनिक आर्यभाषाओ के व्याकरण पर पूर्णतया विचार करके उनको इस प्रकार विभक्त किया है —

(१) प्राच्यवर्ग—जिसमे आसामी, बगला, बिहारी तथा उडिया भाषाएँ सम्मिलित है।

(२) मध्यम वर्ग—जिसमे केवल पूर्वी हिदी समझी जाती है।

(३) दक्षिणीय वर्ग—जिसमें मराठी भाषा समझी जाती है।

(४) उत्तर-पश्चिमीय वर्ग—जिसमें सिन्धी, लहन्दा, काश्मीरी तथा अन्य दारद भाषाएँ है।

(५) केन्द्रीय वर्ग—जिसमे पजाबी और पश्चिमी हिदी, राजस्थानी और गुजराती, भीली और खानदेशी तथा पहाडी भाषाएँ शामिल है।

१० आसामी भाषा आसाम तराई के लखीमपुर और ग्वालपाडा जिलो मे तथा उनके मध्यवर्ती भाग में बोली जाती है। आसाम मे और भाषाएँ भी बोली जाती है। आसामी भाषा बोलने वालो की सख्या १५ लाख के लगभग है। आसाम को सस्कृत मे 'कामरूप' कहते है, परन्तु बगाली लोग उसे 'ओशोम' (सस्कृत—असम, अर्थात् ऊँचा-नीचा प्रदेश) कहते है, और इसी से वे लोग वहाँ की भाषा को 'आशामी' कहते है, जो बगला और नागरी लिपि में 'आसामी' करके लिखा जाता है।

बगला और आसामी का परस्पर बहुत ही सादृश्य है। इसी सादृश्य के कारण कई विद्वान् आसामी को बगला की एक बोली ही मानते है। कई बार दो भाषाओ को उनके व्याकरण मे समता रहने पर भी पृथक् माना जाता है,यदि उनके साहित्यो मे विशेष भेद हो। बगला और आसामी के साहित्य एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, तथा आसामी पर सस्कृत व्याकरण और शब्द-कोष का इतना प्रभाव नही पडा जितना कि बगला पर पडा है। अतएव इनको पृथक् भाषाए मानने मे कोई बाधा नही है।

आसामी साहित्य उतना ही पुराना और सौ सवा सौ साल पहले तक उतना ही विस्तृत था, जितना कि बगला का। आसामी साहित्य का प्रधान अग ऐतिहासिक रचनाएँ है, जिनको आसामी लोग 'बूरञ्जी' के नाम से पुकारते है। इनके अतिरिक्त कुछ धार्मिक ग्रन्थ भी पाये जाते है, जिनमे 'श्री शकर' कृत भागवतपुराण का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय है, जिसको हुए अनुमानत ५०० वर्ष हुए और जो आमामी साहित्य मे सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है।

११. आसामी की पडोसिन, पश्चिम की ओर बगला भाषा है जो आधुनिक आर्यभाषाओ मे बडा ऊंचा स्थान रखती है। यह भाषा बगाल प्रान्त मे बोली जाती है और इसके बोलने वालो की सख्या साढे चार करोड के लगभग है। बगाली लोग अपनी भाषा को 'बाङला' या वग भाषा (अर्थात् वग देश की बोली) कहते है।

उस माहित्यिक बगला ने जिसे बगाली साधु भाषा कहते है थोडे काल से ही जन्म लिया है। बग भाषा मे इस समय शत प्रतिशत शब्द सस्कृत के है—यह कह दे तो कोई अन्युक्ति न होगी। सस्कृतनिष्ठता के कारण बगीय साहित्य मे एक यह बडी विशेषता उत्पन्न हो गई कि जो लोग बगला नही जानते वे भी सस्कृत के सहारे बगीय रचनाओ का सरलता पूर्वक रस ले सकते है।

आधुनिक आर्यभाषाओ मे बगला का साहित्य सबसे अधिक मौलिक और विस्तृत है। अपने साहित्य और विशेषकर श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओ के कारण बगला का नाम ससार भर में प्रसिद्ध हो गया है। साधु भाषा का साहित्य तो सौ सवा सौ साल के अन्दर ही लिखा गया। बगाल के प्राचीन साहित्य में मानकचन्द का गीत सबसे पुराना समझा जाता है, परन्तु इसकी भाषा का रूप बहुत कुछ बदल गया है। चण्डीदास, जिन्होने श्रीकृष्ण की भक्ति के गीत लिखे, चौदहवी शताब्दी में हुए, और चैतन्य महाप्रभु जो उच्चकोटि के धार्मिक कवि थे, सोलहवी शताब्दी मे हुए। इनके पश्चात् बगला के अन्य प्रसिद्ध कवि और लेखक हुए।

१२ बगला के साथ लगती पश्चिम दिशा मे उडिया भाषा है जो उडीसा तथा मध्यप्रान्त और मद्रास के इहाते के निकटवर्ती भागो मे बोली जाती है। इसके बोलने वालो की सख्या सवा करोड के लगभग है।

नरसिहदेव (द्वितीय) के एक शिलालेख मे, जो विक्रम की चौदहवी शताब्दी का है, कुछ ऐसे शब्द पाये जाते है, जो उडिया का सब से पुराना रूप प्रकट करते है। उडिया भाषा में कुछ अधिक साहित्य नही मिलता। इसका पहला लेखक उपेन्द्रभज समझा जाता है जिसने कुछ धार्मिक कविता की है। कृष्णदास का 'रस-कल्लोल' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। आधुनिक साहित्य मे मौलिकता नही देखी जाती।

१३ बिहारी भाषा सारे बिहार प्रात तथा आगरा प्रात के पूर्वी जिलो और अवध के एक छोटे से भाग में बोली जाती है। इसके बोलने वालो की सख्या कोई पौने चार करोड है। इसके उत्तर मे भारत-चीनी भाषाएँ पूर्व मे बगला, दक्षिण में उडिया, तथा पश्चिम मे पूर्वी हिंदी बोली जाती है।

बिहारी भाषा की तीन मुख्य बोलियाँ है——(१) मैथिली, जिसे तिरहुतिया भी कहते हैं, (२) मगही, और (३) भोजपुरी। इनमे साहित्य की दृष्टि से केवल मैथिली ही महत्त्वपूर्ण है। मिथिला देश चिरकाल से अपने सस्कृत (न्याय, मीमासा आदि के) पण्डितो के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसी देश मे लखिमा ठकुरानी नामक एक विदुषी १५वी शताब्दी मे हुई, जिसने साहित्य-क्षेत्र में अच्छी प्रसिद्धि पाई। विद्यापति ठाकुर, जो अपनी कोमलकान्त पदावलि के कारण "मैथिल-कोकिल" कहलाये, इसी मिथिला देश मे हुए। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से मैथिली के लेखक हुए। मगही और भोजपुरी मे कुछ साहित्य नही मिलता। हाँ, भोजपुरी मे कुछ गीत सुने जाते है जो बडे मधुर और भावपूर्ण है, परन्तु अभी प्रकाशित नही हुए।

१४ आर्यभाषाओ के दक्षिणीय वर्ग के अन्तर्गत केवल एक ही भाषा है, और वह है मराठी। मराठी भाषा बम्बई प्रान्त, बरार, मध्यप्रान्त, मध्य-भारत, तथा मद्रास प्रान्त के कुछ भागो मे बोली जाती है। इसके बोलने वालो की सख्या दो करोड के लगभग है।

मराठी भाषा की तीन बोलियाँ है——(१) देशी, जो दक्षिण देश में बोली जाती है, और साहित्यिक तथा शिष्ट भाषा समझी जाती है। (२) कोकणी, जो समुद्र तट के साथ २ बोली जाती है। (३) वराडी, नागपुरी, जो बरार और नागपुर मे बोली जाती है। गोआ के आसपास की बोली भी मराठी से सम्बन्ध रखती है किन्तु कई अशो मे उससे भिन्न भी है।

मराठी का पुराना रूप ताम्र-पत्रो तथा शिलालेखो मे पाया जाता है, जिनका समय विक्रम की बारहवी शताब्दी है। मराठी के साहित्य का जन्म वैष्णवधर्म के साथ-साथ हुआ। प्राचीन कवियो मे से, जिनके ग्रन्थ अब तक विद्यमान है, ये प्रसिद्ध है——मुकुन्दराज (विक्रम की १३वी शताब्दी), ज्ञानदेव, जिन्होने स० १३४७ मे भगवद्गीता पर 'ज्ञानेश्वरी' नामक टीका लिखी, नामदेव, जो ज्ञानदेव के समकालीन थे तथा जिनकी कुछ कविता सिक्खो के आदि ग्रन्थ मे पाई जाती है। पीछे के लेखको मे से अभगो के कर्ता एकनाथ, जिनकी मृत्यु स० १६६६ मे हुई, और 'दासबोध' के कर्ता रामदास जो शिवाजी के गुरु थे, प्रसिद्ध है। इनके

अतिरिक्त मोरोपन्त (स० १७८६–१८५१) अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हुए है जिनकी कविता बडी सुन्दर और सरस है। आधुनिक मराठी साहित्य बहुत विस्तृत है। बगला की भाति उपन्यास इसका प्रधान अग है।

१५ आर्यभाषाओ के दक्षिणीय वर्ग की भाँति मध्यमवर्ग भी एक ही भाषा का बना हुआ है—जिसका नाम है पूर्वी हिन्दी। यह भाषा पश्चिमी हिन्दी के पूर्व मे सयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त तथा मध्यभारत के भागो मे बोली जाती है। इसमे बोलने वालो की सख्या अढाई करोड के लगभग है। पूर्वी हिन्दी की मुख्य तीन बोलियाँ है —(१) अवधी, (२) बघेली, और (३) छत्तीसगढी। परन्तु साहित्य की दृष्टि से इन सबमे अवधी ही प्रधान है। राम-भक्ति के शिरोमणि-कवि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने अपना 'रामचरित मानस' जो सर्वसाधारण मे 'तुलसी रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है, और हिन्दी साहित्य क्या, सारे ससार के साहित्यो मे एक अमूल्य रत्न है, इसी भाषा मे लिखा है। तुलसीदास से पहले कई मुसलमान कवि हुए है, जिन्होने दोहे चौपाई मे मनोहर और उपदेशदायक काव्य-रूप कथाएँ लिखी है। इनमे जायस के रहने वाले मलिक मुहम्मद जायसी सबसे प्रसिद्ध है। इन्होने स० १६०० के लगभग 'पदुमावती' नाम की कथा लिखी। इसके पश्चात् नूरमुहम्मद ने 'इन्द्रावती' और कुतुबन ने 'मृगावती' लिखी। इसी प्रकार के कथा-काव्य हिंदू कवियो ने भी लिखे है।

हिन्दी-भाषा और उसकी बोलियाँ

१६ आर्यभाषाओ के केन्द्रीय वर्ग मे पश्चिमी हिन्दी नमूने की भाषा है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इसके बोलने वालो की सख्या चार करोड के लगभग है, और इसकी पाँच बोलिया है। (१) व्रजभाषा, जो व्रज-मण्डल मे मथुरा और आगरा के आस-पास बोली जाती है। (२) कन्नौजी, जो गगा दोआब के उत्तरीय भाग मे व्रजभाषा के पूर्व मे बोली जाती है। (३) बुन्देली जो बुन्देलखण्ड और मध्यभारत के एक भाग म बोली जाती है। (४) बागरू, जो पूर्व दक्षिण पजाब मे, और (५) बोलचाल की हिन्दी जो व्रजभाषा के उत्तर मे अम्बाला से रियासत रामपुर तक बोली जाती है। इसको बोलचाल की हिन्दी इसलिए कहते है कि साहित्यिक हिन्दी या खडी बोली और उर्दू इसी के सम्मार्जित रूप है।

पश्चिमी हिन्दी का सबसे प्राचीन ग्रन्थ चन्दवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' है। परन्तु रासो की भाषा पर डिंगल-राजस्थानी, प्राकृत तथा अपभ्रश का गहरा

प्रभाव पडा हुआ है। प्राकृत पिंगल की भाषा, जो अपभ्र श का छन्दोग्रन्थ कहलाता है, और जो चौदहवी शताब्दी का लिखा हुआ है पश्चिमी हिन्दी का ही एक रूप है।

पश्चिमी हिन्दी की पाचो ही बोलियो मे से प्राचीन साहित्य की दृष्टि से व्रजभाषा सबसे प्रधान है। प्राय समग्र उत्तरीय भारत की कविता पर शताब्दियो से इसका साम्राज्य रहा है। न केवल यही प्रत्युत इतर भाषाओ की कविताओ पर भी इसकी छाप लगी हुई है। यद्यपि अब कुछ काल से खडी बोली मे भी कविता होने लगी और उसी का प्रचार बढ रहा है, पर प्राचीन साहित्य मे व्रज ही की प्रधानता थी, इसमे कुछ सन्देह नही।

व्रजभाषा मे कविता लिखने का महान् प्रयत्न महाप्रभु गोस्वामी श्री वल्लभाचार्य ने किया,जो विक्रम की १६वी शताब्दी मे हुए। उन्होने वल्लभकुल सम्प्रदाय (कृष्ण-शाखा) की स्थापना की और गोकुल को अपने उपदेश का केन्द्र बनाया। उन्होने तथा उनके शिष्यो ने इसी देश की, अर्थात् व्रज-मण्डल की भाषा मे उपदेश दिया और उसी देश की भाषा मे कविता रची। व्रजभाषा के कवियो मे सूरदास जी अग्रगण्य है। ये श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और चर्मचक्षु-विहीन थे। इनकी कविता की सख्या एक लाख से भी अधिक है।

'बिहारीसतसई' के कर्ता बिहारीलाल सत्रहवी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हुए है। सतसई का एक-एक दोहा भावपूर्ण है। बिहारी का माधुर्य, रस तथा ध्वनि ऐसे है कि किसी दूसरे साहित्य में बहुत कम देखने मे आते है।

जब से खडीबोली की कविता मैदान में आई है, तब से व्रजभाषा की स्थिति निर्बल होती जाती है। इस प्रकार आधुनिक युग मे आकर खडी बोली ने व्रजभाषा का स्थान ले लिया है।

१७ आर्यभाषाओ के केन्द्रीय वर्ग की दूसरी भाषा राजस्थानी है। यह भाषा राजपूताना अर्थात् राजस्थान मे बोली जाती है। इसके बोलने वालो की सख्या २ करोड के लगभग है। इसकी कई बोलिया है, उनमे से मारवाडी सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह मारवाड, पूर्वी सिन्ध, जैसलमेर, पजाब के दक्षिण तथा जयपुर के उत्तर-पश्चिमी भाग मे बोली जाती है। मारवाडी तथा मेवाडी आदि अन्यान्य भाषाओ मे भी प्राचीन साहित्य पर्याप्त है। यह साहित्य केवल समय की दृष्टि से प्राचीन ही नही, प्रत्युत विस्तार की दृष्टि से भी अति विशाल है। प्राचीन राजस्थानी भाषा, जिसमे कविता मिलती है, 'डिगल' कहलाती है। 'पृथ्वीराज रासो' व्रज से प्रभावित राजस्थानी भाषा मे है।

१८ आर्यभाषाओ के केन्द्रीय वर्ग की तीसरी भाषा गुजराती है। यह गुजरात

और काठियावाड (सौराष्ट्र) में बोली जाती है। इसके बोलने वालो की सख्या १।। करोड के लगभग है। देश-भेद से गुजराती की और बोलियाँ नही। हाँ, पढे-लिखे और अनपढ लोगो की बोली मे कुछ भेद है। जो बोली व्याकरण पुस्तको मे वर्णित है, वह पढे-लिखे लोगो की बोली है।

यह बात ध्यान मे रखने योग्य है, कि गुजराती बोलने वाले मुसलमान लोग बहुधा मूर्धन्य और दन्त्य वर्णों के उच्चारण में भेद नही करते। इसी प्रकार हिन्दुओ की अपेक्षा मुसलमान तथा पारसी लोग फारसी, अरबी शब्दो का अधिक प्रयोग करते है। गुजराती तथा राजस्थानी की शृखला को मिलाने वाली भील भाषाएँ है। यद्यपि इनकी राजस्थानी की अपेक्षा गुजराती से अधिक समानता है, तथापि इनका वर्णन एक पृथक् भाषा-समूह मे किया गया है।

गुजराती साहित्य अति विस्तृत है। प्राचीन काल से इसकी शृखला अटूट चली आ रही है। गुजराती साहित्य के निर्माण मे सब से अधिक श्रम जैन भिक्षुओ ने किया। यद्यपि उनकी रचनाओ का बहुत बडा भाग जैन धर्म से सम्बन्ध रखता है उन्होने अनेक लम्बे २ काव्य लिखे है, जिन्हे 'रासो' या 'रास' कहते है। इनमें ऐतिहासिक पुरुषो की जीवनियाँ है, जो नीति और उपदेश से भरी हुई है। पारसी लोगो ने भी कुछ गुजराती साहित्य लिखा है। यह भी महिमशाली है।

गुजराती का सबसे प्राचीन कवि नरसिं मेहता है, जिसका जन्म जूनागढ मे स० १४७० में हुआ। यह जाति का नागर ब्राह्मण था। इसकी रचना छोटे २ पद है, जो अत्यन्त सरस और भक्तिपूर्ण है।

पीछे के कवियो मे परमानन्द भट्ट, वल्लभ, कालिदास, प्रीतम, रेवाशकर, श्यामल भट्ट, ब्रह्मानन्द और दयाराम प्रसिद्ध है। गुजराती साहित्य का एक और अग है ऐतिहासिक राससग्रह। फार्बस साहिब ने अपनी पुस्तक 'रास-माला' अर्थात् गुजरात का इतिहास लिखने में इन रासो से बहुत सहायता ली थी।

राजस्थान, मध्यप्रान्त, मध्यभारत तथा बम्बई प्रेसिडेन्सी के बीच के प्रदेश मे भील, अहीर आदि जातियाँ बसती है, जिनकी सख्या अनुमानत बीस लाख है। इन जातियो की भाषाएँ गुजराती से बहुत कुछ मिलती है। इनमे साहित्य का सर्वथा अभाव है।

१९ पजाबी भाषा भी केन्द्रीय वर्ग के अन्तर्गत है। पजाबी शब्द का अर्थ है—पजाब, अर्थात् पाच नदियो के मध्यवर्ती प्रदेश की भाषा। वास्तव में पजाबी बोलने वाले सभी लोग इस प्रदेश में नही बसते, और न ही वे सभी लोग, जो इस प्रदेश में बसते है, पजाबी बोलते है। इस प्रदेश के पूर्व की ओर पजाबी नही बोली

जाती। सतलुज नदी के पार बहुत दूर तक पजाबी बोली जाती है और इसी प्रकार इस प्रदेश के पश्चिम में अर्थात् बारी, रचना और चज दोआबो के बड़े भाग मे।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने पजाबी शब्द को उन बोलियो के लिए प्रयुक्त किया है जिनके बोलने वालो की सख्या डेढ करोड के लगभग है, और जो पजाब के पूर्वी भाग, बीकानेर रियासत के उत्तरी भाग, तथा जम्मू रयासत के दक्षिण भाग मे बोली जाती है। पजाबी के मुख्य दो रूप है—साधारण पजाबी तथा जम्मू और कागडे की बोली जिसे डोगरी कहते है। पाश्चात्य लोगो ने पहले-पहल लुधियाना की पजाबी का अध्ययन किया और इसी का व्याकरण तथा कोष बनाया। पजाब-वासियो के मत मे लाहौर और अमृतसर के जिलो की माझी बोली पजाबी का ठेठ रूप है। आजकल प्रेस मे तथा प्लेटफार्म पर इसी का व्यवहार होता है।

पजाबी भाषा मे कुछ अधिक साहित्य नही पाया जाता। सिक्ख लोगो की धर्मपुस्तक श्री आदिग्रन्थ पजाबी का सबसे प्राचीन नमूना माना जाता है। परन्तु वास्तव मे आदिग्रन्थ का थोडा भाग ही पजाबी में है। शेष पुरानी हिन्दी मे है। कुछ पद बगला, मैथिली तथा मराठी के पाये जाते है, परन्तु उनका रूप बहुत बदल गया है।

मुसलमान लोगो ने गुजरात तथा गुजरावाला मे बोली जाने वाली पजाबी को लेकर साहित्य-रचना की। इनकी भाषा हिन्दू लेखको की अपेक्षा अधिक ठेठ है। हिन्दू लोग अपने कविता के भावो को व्रजभाषा से, अथवा तुलसी और कबीर के ग्रन्थो से लेते थे। इसीलिए उनकी भाषा में हिन्दी का अश मिला रहता था। इस मिश्रित भाषा मे कितना ही साहित्य विद्यमान है। अब भी कई साधु और पण्डित इस प्रकार की मिश्रित भाषा मे अपना उपदेश करते है।

जो लोग हिन्दू धर्म छोडकर मुसलमान हुए थे वे प्राय अपढ थे। इसलिए उनके निमित्त मौलवियो ने मुसलमान धर्म की बहुत-सी पुस्तकें पजाबी भाषा में लिखी। इनमे से अब्दुला आसी कृत 'अनबाअ बारा' बहुत प्रसिद्ध है, जो लगभग तीन सौ वर्ष पुरानी है। हजरत इमाम हुसैन तथा इमाम हसन का यजाद के साथ जो युद्ध हुआ, उसका वर्णन करने वाले अनेक जगनामे मिलते है। इसी प्रकार कुरानशरीफ की १२वी पुस्तक मे वर्णित यूसफ जुलैखा की कथा भी छन्दोबद्ध मिलती है।

कथा-साहित्य मे हीर-राझे की कथा बहुत प्रसिद्ध है। सय्यद वारिसशाह कृत हीर को ठेठ पजाबी का नमूना समझा जाता है। पिछले पच्चीस तीस वर्षों से पजाबी साहित्य खूब बढने लगा है।

२० केन्द्रीय वर्ग की अन्तिम भाषा पहाडी है। जैसा कि इसके नाम से

प्रकट होता है, ५ पहाडी के अन्तर्गत नेपाल से पजाब तक हिमालय पहाड के दामन मे बोली जाने वाली भाषाएँ है। यह भाषाएँ तीन विभागो में विभक्त है —

(१) पूर्वी पहाडी, जिसे खसकुरा या नेपाली कहते है। (२) मझली पहाडी अर्थात् गढवाली, और कमाउनी, और (३) पश्चिमी पहाडी, जिसमें शिमले के आस-पास से लेकर मण्डी तक की पहाडी बोलियाँ शामिल है। मरी पहाड और हजारा जिला के गूजरो की गूजरी बोली भी पहाडी बोली से सम्बन्ध रखती है। पहाडी बोली बोलने वालो की सख्या बीस लाख के लगभग है।

यद्यपि पहाडी बोलियाँ बिहारी, हिन्दी, तथा पजाबी के निकटवर्ती प्रदेशो मे बोली जाती है, तथापि इनकी अधिक समानता गुजराती तथा राजस्थानी भाषाओ से है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल मे राजस्थान के राजपूत लोग पहाडी प्रदेशो मे जा बसे थे और उन्होने वहाँ के पूर्व निवासियो को हिन्दू धर्म मे लाकर उन पर अपनी भाषा की छाप लगा दी थी।

२१ आर्यभाषाओ के उत्तर-पश्चिमीय वर्ग मे सिन्धी भाषा बहुत प्रसिद्ध है। यह सिन्ध तथा कच्छ प्रदेश मे बोली जाती है। इसके बोलने वालो की सख्या ३५ लाख के लगभग है। इसकी पाच मुख्य बोलियाँ है —

(१) बिचोली जो विचोलो, अर्थात् हैदराबाद के इर्द-गिर्द बोली जाती है। यह ठेठ सिन्धी है। पढे-लिखे लोग इसी को बोलते है, और साहित्य की भी यही भाषा है। (२) दूसरी का नाम थरेली है, जो 'थल' अर्थात् थल प्रदेश मे बोली जाती है। इसे 'थरेली' या 'ढाडका' भी कहते है। मारवाडी भाषा में 'ढाट' नाम थल का है। (३) तीसरी बोली 'लासी' है, जो कराची से उत्तर की ओर लासबेला में बोली जाती है। (४) चौथी बोली लाडी है, जो लाड़ में बोली जाती है। लड़ु शब्द का अर्थ है ढलवान। (५) पाँचवी बोली कच्छी है जो कच्छ प्रदेश मे बोली जाती है। यहाँ कच्छी के अतिरिक्त मारवाडी और गुजराती भी बोली जाती है।

सिन्धी लोग उत्तरी सिन्ध में बोली जाने वाली 'सिरायकी' को पृथक् बोली मानते है। परन्तु सर जार्ज ग्रियर्सन ने इसका समावेश 'विचोली' में किया है।

सिन्धी मे कुछ अधिक साहित्य नही है। इसका सबसे प्रसिद्ध कवि अब्दुललतीफ है जो अठारहवी शताब्दी मे हुआ। इसकी रचना का नाम 'शाह जो रिसालो' है। जिसमे सूफी मत के सिद्धान्त कथानको द्वारा समझाए गये है। सिन्ध के लोग इसे सिन्धु का हाफिज कहते है। वीर रस से भरी हुई कुछ और कविताएँ भी इस भाषा मे मिलती है।

२२ उत्तर-पश्चिमीय वर्ग की दूसरी भाषा लहन्दी है, जिसे पश्चिमी पजाबी,

जटका, हिन्दकी, मुलतानी, चिभाली आदि कहते है । लहिन्दी शब्द का अर्थ है लहिन्दे की बोली और लहिन्दा (अर्थात् 'उतरता हुआ, अस्त होता हुआ') नाम है पश्चिम का। इसके बोलने वालो की सख्या ९० लाख के लगभग है। लहिन्दी की तीन बोलियाँ है—(१) दक्षिणी बोली जो ठेठ समझी जाती है। (२) उत्तर-पूर्वी और (३) उत्तरपश्चिमी। लहिन्दी मे साहित्य का अभाव है। सोलहवी शताब्दी की लिखी हुई एक जन्मसाखी अर्थात् गुरु नानक का जीवन-चरित्र और कुछ कविताएँ मिलती है। लहन्दी की पोठहारी बोली मे कितना ही मुसलमानी साहित्य है, परन्तु लोग उसे पजाबी साहित्य के अन्तर्गत गिनते है।

२३ काश्मीरी तथा इसके निकटवर्ती शीना को सर जार्ज ग्रियर्सन ने एक पृथक वर्ग मे सम्मिलित किया था, जिसका नाम उन्होने 'दारद' या 'पैशाच वर्ग' रखा था। इनके मतानुसार दारद वर्ग आर्यभाषाओ के बाहिर है । परन्तु प्रो० ब्लाक और टर्नर के अनुसन्धान से इस सिद्धान्त की पुष्टि नही होती। उनका मत है कि यह भाषाएँ भी आर्य ही है ।

दारद वर्ग में काश्मीरी ही एक ऐसी है, जिसमे कुछ साहित्य पाया जाता ह। यह काश्मीर देश मे बोली जाती है और इसके बोलने वालो की सख्या दस लाख के लगभग है। हिन्दू और मुसलमान लोगो की भाषा में कुछ २ भेद हैं। हिन्दू लोग काश्मीरी को प्राय शारदा (या कभी नागरी) लिपि मे लिखते है, और मुसलमान लोग फारसी अक्षरो में लिखते है ।

काश्मीरी भाषा की आदि-कवि एक देवी है जिसका नाम 'लल्ला' या 'लालदे' था। यह चौदहवी शताब्दी मे हुई, और नगी फिरा करती थी। यह कहती थी कि मै लज्जा किस से करूँ, पुरुष तो कोई दिखाई नही देता। वास्तव में पुरुष वह है, जिसके हृदय में ईश्वर का भय हो । परन्तु ससार में ईश्वर का भय मानने वाला कोई विरला निकलता है। काश्मीरी भाषा के इतर पुस्तक प्राय संस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद है, या उनके आधार पर लिखे गये है। मुसलमान लेखको मे से महमूद गामी का नाम उल्लेखनीय है। इसकी मृत्यु स० १८१२ मे हुई। इसने फारसी पुस्तको के आधार पर 'यूसफ जुलैखा', 'लैला मजनू' और 'शीरी फरहाद' के उपाख्यान लिखे है।

२४ दारद वर्ग की भाषा मे काश्मीरी से उतर कर दूसरे स्थान पर शीना है जिसका सभ्य ससार को कुछ ज्ञान है। यह गिलगित में बोली जाती है। इस वर्ग की अन्य भाषाओ के विषय में अधिक ज्ञात नही।

२५. भारतवर्ष की आर्यभाषाओ का वर्णन पूरा करने के लिए सिंहली और

जिप्सी भाषाओ का भी उल्लेख अवश्यक है। सिंहली तो उस आर्यभाषा की सन्तान है जिसे लगभग २५०० वर्ष पहले विजयकुमार और उसके अनुयायी अपने साथ सिंहल द्वीप मे ले गये थे। इसका अपनी दूसरी बहिन भाषाओ से सम्बन्ध टूट गया था। सिहली का प्राचीन साहित्य १०वी शताब्दी का है। इसके पुराने रूप को 'इलू' कहते है। यह शब्द सिंहल शब्द का अपभ्र श है। सिंहली से सम्बन्ध रखने वाली मालद्वीप की भाषा है, जो पुरानी सिहली की ही सन्तान है।

२६ पश्चिमी एशिया (आर्मीनिया, टर्की, सीरिया) तथा यूरुप के कई भागो मे निरन्तर पर्यटन करने वाली कुछ जातियाँ है, जिन्हे 'जिप्सी' कहते हैं। इनकी भाषा का नाम जिप्सी है, जो पाँचवी शताब्दी की प्राकृत की सन्तान है। इसीलिए इसे आर्यभाषा समझना चाहिए। यद्यपि चिरकाल तक अन्य देशो मे भ्रमण करने से इनकी भाषा में अन्य भाषाओ के अनेक अश मिल गये है तथापि इनके शब्द-भाण्डार और शब्दरूपावली मे आर्य-प्रकृति के अनेक उदाहरण मिलते है।

सिंहली और जिप्सी तथा भारत की आधुनिक आर्यभाषाओ का सस्कृत और प्राकृत से सम्बन्ध प्रतीति-गोचर है। भारत की आर्यभाषाओ में परस्पर मेल-जोल रहने से इनमे एक-दूसरे के साथ बहुत कुछ समानता भी है। परन्तु सिंहली और जिप्सी का भारत के साथ सम्बन्ध न रहने से तथा इनका एक दूसरे से पृथक् २ विकास होने से उनमे बहुत अन्तर पड गया है। इसलिए भारत की आधुनिक आर्यभाषाओ की तुलना करते समय सिहली और जिप्सी पर विशेष ध्यान नही दिया जाता। परन्तु कई विषयो में वे आर्यभाषाओ के इतिहास पर बडा भारी प्रकाश डालती है।

२७ इस प्रकार भारतीय आर्यभाषा के सक्षिप्त इतिहास का वर्णन करके अब हिन्दी को लेते है। यहाँ पर यह बतला देना अनुचित न होगा, कि हिन्दी शब्द फारसी भाषा का है और इसका अर्थ है 'हिन्द-सम्बन्धी'। मुसलमान लेखको ने हिन्द शब्द को भारतवर्ष के लिए प्रयुक्त किया है। 'हिन्दी' शब्द को 'हिन्दू' शब्द से अलग समझना चाहिए, क्योकि हिन्दू शब्द को वे लेखक ऐसे भारतवासी के लिए व्यवहृत करते है जो मुसलमान न हो? अमीर खुसरो ने, जो चौदहवी शताब्दी मे हुआ है, अपने ग्रन्थ 'गुर्तुल कमाल' मे एक ही स्थल पर दोनो शब्दो का प्रयोग किया है, जहाँ वह फिरोजशाह खिलजी के सम्बन्ध मे लिखता है कि जो कोई जीवित 'हिन्दू' बादशाह के हाथ चढा, वह हाथी के पैरो तले रौंदवाया गया, लेकिन जो हिन्दी (भारतवासी) मुसलमान थे उनकी प्राण-रक्षा हुई।

ऊपर की कही व्युत्पत्ति के अनुसार 'हिन्दी' शब्द और उसका दूसरा रूप 'हिन्दवी' भारतवर्ष की भाषा या भाषाओ के लिए प्रयुक्त होते रहे है। फारसी पुस्तको मे ऐसे बहुत से स्थल है, जहा 'हिन्दी' और 'हिन्दवी' शब्द न केवल हिन्दी या उर्दू के लिए ही प्रयुक्त हुआ, प्रत्युत सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।

२८ पाश्चात्य लेखक हिन्दी शब्द का दो अर्थों मे प्रयोग करते है—(१) जिसे हम खडीबोली कहते है, उसके लिए, (२) या कभी २ बगाल और पजाब के मध्यवर्ती प्रदेश में बोली जाने वाली बोलियो के लिए। परन्तु सर जार्ज ग्रियर्सन ने हिन्दी शब्द के अन्तर्गत उन बोलियो को लिया है, जो सरहन्द (पजाब) और काशी के मध्य बोली जाती है। स्थूल रूप से पर वह दो भागो मे विभक्त है—पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी। जैसा ऊपर कहा गया है पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत पाच बोलियाँ है। खडीबोली, बागरू, व्रज, कन्नौजी और बुन्देली। ये बोलियाँ जिस प्रदेश मे बोली जाती है, वह सस्कृत पुस्तको मे प्राय मध्यप्रदेश के नाम से वर्णित है। भेद केवल इतना है, कि पश्चिमी हिन्दी तो पूर्व की ओर कानपुर तक बोली जाती ह, और मध्यप्रदेश की पूर्वी सीमा प्रयाग है। पश्चिमी हिन्दी बोलने वालो की सख्या चार करोड के लगभग है।

२९ पश्चिमी हिन्दी की बोलियो मे सबसे प्रधान बोली खडीबोली है, जो साधारण बोलचाल की भाषा के रूप मे रुहेल खड, गगा दोआब के उत्तरी भाग और पजाब के जिला अम्बाला मे बोली जाती है। मुसलमान लोग इसको अपने साथ भारत के दूसरे भागो मे भी ले गये है। इसका प्रयोग साहित्य मे भी हुआ है, साथ ही इसका समार्जन होता रहा है। इस के तीन रूप है—

(१) साधारणहिंदी जिसे हिन्दू-मुसलमान परस्पर बातचीत मे व्यवहृत करते है। (२) उर्दू जिसे मुसलमान और वह हिन्दू, जिन्होने फारसी की शिक्षा प्राप्त की हो, व्यवहार मे लाते है। और (३) साहित्यिक हिन्दी, जिसे वह हिन्दू, जिन्होंने सस्कृत शिक्षा प्राप्त की हो, व्यवहार मे लिए है। उर्दू के भी दो रूप है—

(१) ठेठ उर्दू, जो कि देहली और लखनऊ की शिष्ट भाषा है। (२) दक्खिनी उर्दू जिसे दक्षिण के मुसलमान बोलने तथा लिखने में प्रयोग करते हैं।

पश्चिमी बोली की दूसरी बोली बागरू है जिसे 'जाटू' या 'हरियानी' भी कहते है। यह पूर्वी पजाब अर्थात् हिसार, रोहतक और करनाल के जिलो मे तथा देहली

के एक भाग मे बोली जाती है। इसकी निकटवर्ती पजाबी तथा राजस्थानी से बहुत कुछ समानता है।

व्रजभाषा गगा दोआब के मध्यभाग मे बोली जाती है। कन्नौजी व्रज से मिलती-जुलती है तथा व्रज के पूर्व मे बोली जाती है। बुन्देली ग्वालियर और बुन्देलखण्ड की बोली है।

३० अब इनका कुछ विस्तृत वर्णन किया जाता है। हिन्दी शब्द का अर्थ है हिन्द की भाषा, और फारसी मे हिन्द कहते है हिन्दुओ के देश को अर्थात् भारत को। पजाब के लोग हिन्दुस्तान कहने से उस प्रदेश को लेते है, जिसके पश्चिम में पजाब, पूर्व मे बगाल, उत्तर मे हिमालय और दक्षिण मे विन्ध्य पर्वत है। जब हिन्दुस्तान का यह अर्थ हो तो हिन्दी के अन्तर्गत पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियाँ, पूर्वी हिन्दी, बिहारी और राजस्थानी भी आ जाती है।

३१ हिन्दी के दो रूप है—साधारण बोल-चाल की हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी जो बोल-चाल की हिन्दी का ही सम्मार्जित रूप है।

साधारण बोल-चाल की हिन्दी गगा दोआब के उत्तर भाग और रुहिलखण्ड के पश्चिम भाग में बोली जाती है। परन्तु साहित्यिक हिन्दी को उत्तरी भारत के पढ़े-लिखे लोग परस्पर प्रयोग में लाते है। असल बात तो यह है कि हिन्दी बोली समग्र भारतवर्ष मे समझी जाती है। और भिन्न २ प्रान्तो के लोग आपस मे बातचीत करते है, तो हिन्दी के ही किसी न किसी रूप का आश्रय लेते है।

जैसा कि अभी बतलाया गया है, साहित्यिक हिन्दी साधारण बोल-चाल की हिन्दी का ही परिमार्जित रूप है।

उर्दू हिन्दी का वह रूप है, जो फारसी अक्षरो मे लिखा जाता है तथा जिसमे फारसी और अरबी शब्दो का प्रयोग करने मे कोई सकोच नही किया जाता। मुसलमानी राज्य मे देहली दरबार के भिन्न २ भाषा-भाषियो के लिए एक साझी भाषा की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता ने इस भाषा को जन्म दिया, और मुसलमान राज्य के कर्मचारी जहाँ २ भारत मे गये इसे भी अपने साथ लेते गये। इसका उर्दू नाम तुर्की भाषा के शब्द 'उर्दू-ए-मुअल्ला' से पडा है, जो देहली शहर के बाहिर की छावनी का नाम था। इसको पढे-लिखे मुसलमान और वे हिन्दू, जिन्होने फारसी की शिक्षा पाई हो, बोलते है। जिसे बढिया उर्दू कहते हैं उसमे फारसी शब्दो का प्रयोग उचित सीमा को लाँघ गया है। इस प्रकार की भाषा मे कई बार ऐसे वाक्य मिलते है, जिनमे व्याकरण, शैली तथा अन्तिम क्रियापद को छोड और

सब शब्द फारसी तथा अरबी के होते हैं। आश्चर्य की बात है कि उर्दू भाषा मे फारसी शब्दो की भरमार का काम कायस्थ और खत्री लोगो ने किया है। मुसलमान शासक तो चिरकाल तक फारसी भाषा मे लिखते-पढते रहे। ठीक इसी भाँति आज अग्रेज़ी शब्दो का प्रचार भारतीय भाषाओ मे होता जाता है। अग्रेजी जानने वाले बाबू लोग जब आपस मे बातचीत करते है तब प्राय आधे शब्द अग्रेजी के बोलते हैं।

३२ उर्दू का दूसरा रूप रेखता कहलाता है। 'रेखता' शब्द का अर्थ है गिरा पडा या 'बिखरा हुआ'। इसको रेखता इसलिये कहते है कि इसमे फारसी शब्द बिखरे रहते है। एक प्रकार से यह नाम हिन्दुस्तानी का ही है, जिसमें थोडे बहुत शब्द फारसी के हो। जब स्त्रियो की बोली मे कविता रची जाय तो उसे रेखती कहते हैं।

३३ उर्दू का साहित्यिक तीसरा रूप दक्खिनी के नाम से प्रसिद्ध है। उर्दू की भाँति यह भी फारसी अक्षरो मे लिखी जाती है, परन्तु इसमे फारसी शब्द अधिक नही होते।

परन्तु अग्रेज़ी के पठनार्थ जो पुस्तके रची गई, वह खडीबोली मे थी। राजकीय शिक्षा-विभाग के स्कूलो मे पढाई जाने वाली पुस्तके खडी-बोली मे होने से अब यह प्राय सारे उत्तर भारत की साहित्यिक गद्य-भाषा बन गई। कुछ काल से कविता मे भी खडीबोली का प्रयोग होने लगा है, और अब इसने ब्रज और अवधी का स्थान ले लिया है, खडीबोली के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त हैं, जिनकी भारत-भारती, जयद्रथवध, साकेत और यशोधरा आदि ने देश भर मे ख्याति प्राप्त कर ली है।

उर्दू भाषा की उत्पत्ति का इतिहास

हिन्दी भापा और उसकी बोलियो के विषय मे उपर्युक्त कथन के पश्चात् उर्दू की उत्पत्ति पर कुछ विचार प्रकट करना अनुचित न होगा। पिछले कई वर्षों से मुसलमान भाइयो ने भी अपना ध्यान इस ओर किया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, लोगो का विचार है कि उर्दू का यह नाम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' से निकला है। जिसका अर्थ है 'शाही लश्कर' अर्थात् कटक। जब मुसलमान बादशाहो ने देहली को राजधानी बना लिया, तब जनता नगर के बाहिर जहाँ फोज की छावनी थी उस स्थान को उर्दू बाजार अर्थात् लश्करी बाजार कहने लगी। क्योकि इस स्थान पर फारसी बोलने वाली मुसलमानी सेना का आधिपत्य था इसलिए वहाँ के हिन्दुओ की भाषा मे फारसी, अरबी और तुर्की के शब्द मिल गये, जैसा कि आजकल

अग्रेजी के शब्द भारतीय भाषाओ मे मिल रहे है। उर्दू बाजार की इस मिश्रित भाषा का नाम धीरे-धीरे उर्दू पड गया।

हाफिज महमूद शैरानी लिखते है—भाषा के अर्थ मे उर्दू शब्द का प्रयोग कुछ बहुत पुराना नही है। इसका इस अर्थ मे प्रयोग कोई सौ सवा सौ साल से होने लगा है। साहित्य मे सबसे पहले मीर मुहम्मद अताहुसैन खान तहसीन ने अपने ग्रन्थ नौतर्जमुरस्सा (हि. स १२१३) मे उर्दू शब्द को भाषा के लिए प्रयुक्त किया है। लेकिन जब हम तहसीन से पूर्व के ग्रन्थो को देखते है, तब मालूम होता है कि उनके रचयिता, 'उर्दू' और 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के नाम तक से अनभिज्ञ थे। वे लोग अपने समय की भारतीय भाषा को, जिसे वे स्वय भी बोलते या जानते थे, कभी 'हिन्दी' और कभी 'रेखता' के नाम से पुकारते थे। अपने कथन की पुष्टि मे शेरानी ने ऐसे उल्लेख उद्धृत किये है, जिनको यहाँ देने की आवश्यकता नही है।

रेखता शब्द के बारे मे कहा जा चुका है कि इसका अर्थ है—गिरा पडा, टूटा-फूटा, बिखरा हुआ। क्योकि मुसलमान अधिकारी लोग अथवा कवि लोग जब अपने समय की भारतीय भाषा का बोल-चाल अथवा कविता मे प्रयोग करते थे तो उसमे फारसी, अरबी शब्द सहसा मिल जाते थे, इसलिए इस मिश्रित भारतीय भाषा को रेखता कहते थे, या हिन्दी अर्थात् हिन्द (भारत) की भाषा कहते थे। फारसी शब्दो की प्रधानता के आधार पर रेखता के कई भेद हो सकते है। क्योकि मीर तकीमीर ने रेखता के चार भेद माने है, यथा—

(१) एक पद्य मे आधा पद्य हिन्दी हो, और आधा पद्य फारसी। यथा—

दुन्या का फिक्र मत कर, कहता मै ख़ाज हाफिज।
की कीमिया-ए-हस्ती, कारू कुनद गदा रा॥

(२) एक पाद मे आधा पाद हिन्दी और आधा फारसी—

ख्वार शुदम जार शुदम लुट गया। दर रहे इश्के तू कमर तुट्टा है।

(३) जहा फारसी और हिन्दी शब्द मिले हो, जैसा कि साधारण उर्दू कविता मे होता है।

(४) जिसमे शब्दो का क्रम फारसी के अनुसार हो। धीरे २ रेखता शब्द कविता की भाषा के लिए और फिर छन्द या गीत-विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा।

इसी पुरानी भारतीय भाषा के रेखता के अतिरिक्त और नाम भी थे, जैसे—शेख बाजिन, जिनकी मृत्यु हि० सन् ९१२ मे हुई, 'जबाने देहलवी' कहते हैं,

जिसका नमूना यह है—यह फितनी क्या किसे यह मिलती है। जब मिलती है, तब छलती है । इत्यादि ।

इसी पुरानी भारतीय भाषा को गुजरात के मुसलमान लेखक 'गूजरी' या 'गुजराती' और दक्षिण के मुसलमान लेखक 'दकनी' कहते थे। नमूना गूजरी—सुनो मतलब अहे, अब यो अमी का लिखी मने यूसफ जुलैखा। हरयक जागे है किस्सा फारसी में, अमी इस को उतारी गूजरी मे । कि बूझे हर कदाम इम की हकीकत, बडी है गूजरी जग बीच नेमत ।

नमूना 'दकनी'—

यो मसलया को दकनी किया इस सबब
फहम कर के दिल मे करे याद सब ।

मौलाना वजही अपनी किताब 'सब रस' मे, जो मौलवी अब्दुलहक के विचारानुसार हि० सन् १०४० के कुछ पीछे रची गई, इस पुरानी भारतीय भाषा को 'ज़बाने हिन्दुस्तान' कहते है । यथा—

आगाज दोस्तान । जबाने हिन्दोस्तान । नकल एक शहर था उसका नाऊ सीस्तान ।

परन्तु इस भाषा का सबसे पुराना नाम 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' था। पुराने नमनो मे से शाह मीरा जी कृत रिसाला खुश नगज है। मीरा जी का काल हि० सन ७०२ मे हुआ ।

है अरबी बोल केरे, और फारसी बहुतेरे ।
यह हिन्दी बोलू सब, इन अर्थो के सबब ।

प्राचीन पुस्तको के देखने से मालूम होता है कि हिन्दू लोग अपनी कविता प्राय व्रज और अवधी मे लिखते थे, और मुसलमान उस भाषा में, जिसका 'हिन्दी', 'हिन्दवी', 'रेखता' आदि नामो से उल्लेख किया गया है। गद्य लिखने मे अपनी प्रातीय भाषा का प्रयोग होता था ।

नामानुक्रमणिका

विद्यार्थियो की सुविधा के लिए इस इतिहास-ग्रथ मे जितने भी गद्य-पद्य-लेखको का वर्णन आया है उन सब के नाम अकारादि क्रम से पृष्ठ-संख्या सहित दिये गये है ।

नामानुक्रमणिका

ग्रन्थ-सूची